हृषीकेशीयस्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध काली कामलीवाले बाबा ।
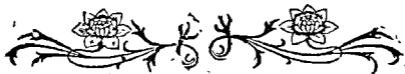
प्रस्तावना ।

इस अनादि कालके द्वन्द्वज संसारमें, नाना प्रकारके द्वन्द्वमें फँसे हुये प्राणी, कभी सुख और कभी दुःखको अनुभव करते हुये, आशा और भयके वश हो, नानाप्रकारके कर्मोंको करके, बारम्बार आवागमनको प्राप्त होते हैं ।

इस प्रकारके दुःख पूरित इस संसार सागरमें, अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो, जब प्राणी अतिशय सुखकी इच्छा करते हैं और नानाप्रकारके प्रयत्न करनेपरभी सच्चा सुख नहीं मिलता है तब धर्मकी ओर प्रवृत्त होतेहैं ।

परन्तु कालके प्रभावसे धर्मके ओटमें नानाप्रकारके पक्षपातने ऐसा जाल बिछाया है जिनमें फँसा हुआ जीव अधिकसे अधिक दुःखोंकोही अनुभव करता है । हाय ! ऐसे दुःखोंको अनुभव करते हुये भी रोचक और भयानक वचनोंके पाशमें फँसे हुये आशा और भयसे विह्वल होने पर भी जीव उस दुःखसे अलग नहीं होसक्ते ।

ऐसे धर्मके नामसे दुःखसागरमें डूबते हुओंको निकालनेके हेतु सत्यधारी सत्योपदेशक महात्माओंके धर्म्मव्याख्यानरूप वाणीका उपदेशाही मात्र सहारा है ऐसे सत्योपदेशमय ग्रन्थोंका तो पवित्र संस्कृत भाषामें भण्डार भरा है । यदि भाषामें भी सत्योपदेशके ग्रन्थ कुछ कम नहीं हैं परन्तु वे ग्रन्थ गद्यपद्यमय सारगर्भित कठिन कवितामें होनेके कारण, सरलबुद्धिवाले वर्तमान कालके धर्माभिलाषी मुमुक्षुओंको, उनका समझना भी अत्यन्त कठिन होजाता है, यदि वे उसको समझना चाहें तो, अपना सब काम छोड या तो साधु बनकर अथवा घरवालोंके नानाप्रकारके वचनरूपी कुठारोंका प्रहार सहकर; उसके समझनेके लिये बहुत समयकी आवश्यकता होती है । ऐसे करनेपर भी भाग्यवश सारतत्वको पागया तो वाह वाह ! नहीं तो उभयतोभ्रष्ट हो, अज्ञानके ऐसे गहरे समुद्रमें जा पडता है जिससे निकलना तो अलग, श्वास लेनेका भी अवसर नहीं मिलता । ऐसी २ अनेक कठिनाइयां हैं कहातक वर्णन किया जाये ।

ऐसी कठिनाइयों और आवश्यकताको देखकर हर्षकिशनिवासी प्रसिद्ध ब्रह्मनिष्ठ परमोपकारी सत्यधारी महात्मा श्री० १०८ गोस्वामी निगुद्धानन्दजी प्रसिद्ध कामलीवाले बाबाने अत्यन्त अनुग्रह और करुणा कर सत्य धर्म्मके मुमुक्षुओंके हेतु यह अमूल्य ग्रन्थ "पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश" लिखा है ।

इस पुस्तकमें चार वेद, षट् शास्त्रका सार और अठारह पुराणोंकी वे सब कथायें जिनको प्रायः अर्द्धप्रबुद्ध अथवा कलियुगी विचारके लोग असम्भव अथवा गप्प बतलाकर, नानाप्रकारके सन्देह करके, उनकी निन्दापर उतारू होते हैं, सबका आध्यात्मिक अर्थ ऐसा स्पष्ट और प्रत्यक्ष युक्तियोंद्वारा वर्णन किया है, जिससे एकवार भी इस पुस्तकको बाचनेवाला कभी सन्देह और शंकामें नहीं पड सक्ता ।

ऐसे धर्म्मरत्नके भण्डाररूप पुस्तकके कर्ता बाबाजीका जीवन चरित्र कैसा उपदेशपूरित और पुण्यरूप होवेगा परन्तु शोक है, इस बातका बहुत प्रयत्न करनेपर भी बाबाजीका पूर्ण जीवनचरित्र नहीं मिलसका इस कारण एक छोटासा संक्षिप्त जीवनचरित्र दिया है।

इस पुस्तककी भाषा प्रथम पंजाबीभाषामिश्रित थी और वर्तमान कालकी प्रचलित हिन्दी-भाषासे विलग नवीनही ढंगकी थी, तथा पुस्तकमें विषयोंका विभाग कुछ भी नहीं था जिससे किसी भी विषयको ढूंढनेके लिये बहुत समय और बहुत परिश्रमकी आवश्यकता होती थी। सो स्वामी युगलानन्द कबीरपन्थी भारतपथिकने, अत्यन्त शुद्ध और प्रचलितभाषाकी परिपाटीके अनुसार शुद्ध हिन्दीभाषा करके विषयोंका विभाग भी करदिया है तथा बाबाजीकी एक संक्षिप्त जीवनीभी लिख दी है जो आगे छपी है। अनुक्रमणिकाभी बहुत सुन्दर बनाई गई है जिससे किसीभी विषयके निकालनेसे विशेष परिश्रम होना सम्भव नहीं है। प्रथमावृत्ति पत्रेनुमा छपी थी परन्तु अबकी आवृत्ति बहुत सज्जनोंके आग्रहसे बुकसाइजमें उत्तम कागज और उत्तम जिल्दकी छपवाई गई है।

सत्य धर्म और लोक परलोकमें सुखप्रद आत्मज्ञानके जिज्ञासुओं तथा मुमुक्षुओंसे निवेदन है कि, जिस प्रकार प्रथमावृत्ति द्वितीयावृत्ति और तृतीयावृत्तिको लेकर सज्जनोंने अपनी उदारता प्रगट की है उसी प्रकार इस आवृत्तिको भी आश्रय देकर इसके द्वारा धर्म्ममें स्वयं प्रवृत्त होंगे और दूसरे अधिकारियोंको प्रवृत्त करावेंगे जिससे मैं अपने परिश्रमको सफल और अपनेको कृतकृत्य मानूंगा।

सर्वसज्जनोंका कृपाभिलाषी–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस-बम्बई.

हृषीकेशीय स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध कामलीवाले बाबाका संक्षिप्त जीवनचरित्र ।

यद्यपि बाबाजीका पूर्ण जीवनचरित्र लिखनेका विचार था और यदि पूर्ण जीवनचरित्र लिखा जाता तो गृहस्थसे लेकर संन्यासीतक सर्व श्रेणीके लोगोंको परम उपदेशप्रद और लौकिक पारलौकिक पथका सहायक बनजाता । परन्तु शोक है कि, बहुत परिश्रम करनेपर भी कामना पूर्ण नहीं होसकी इस कारण जहांतक फुटकर बातें बाबाजीके विषयमें प्राप्त होसकी हैं उनको संक्षेपसे लिखता हूँ ।

बाबाजीने गृहस्थ त्यागनेपर बहुत दिनोंतक सत्संग और देशाटन, तीर्थाटनमें काल बिताया। प्रथम अवस्थामें समय २ पर आकर हृषीकेशमें निवास करते थे । यह हृषीकेश हरिद्वारसे बारह कोश उत्तर बदरीनाथके मार्गमें तपोवनके नामसे प्रसिद्ध स्थान है जहां विचारवान् विद्वान् और तितिक्षु सतलोग नियत समयतक (प्रत्येक वर्षमें) वास करके ब्रह्म विचारमें निमग्न रहते हैं और ब्रह्मजिज्ञासु लोग भी वहां वासकर ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंसे आत्मज्ञानका लाभ प्राप्त करते हैं ।

कुछ दिनों उपरान्त बाबाजीको यह स्थान (हृषीकेश) ऐसा भाया कि, अपना बहुत समय यहीं बिताने लगे ।

उस समय हृषीकेशमें न तो आज कलके समान कोई क्षेत्र था न विशेष सेठ साहूकारोंका आवागमन था । उस समय वहांके रहनेवाले साधु महात्मा बडे परिश्रम और कष्टसे जंगली फल और पदार्थोंसे शरीरयात्रा करते और इधर उधर पहाडके गुफाओं आदि स्थानोंमें रहतेथे। यद्यपि उस स्थानका नाम ही तपोवन है तथापि साधु, सन्तोंको वहा बहुत कष्ट उठाना पडता था ।

सन्तोंके ये कष्ट बाबाजीसे सहन नहीं होसके आपने परोपकारकोही 'परमधर्म' जानकर सतोंको सुख देनेकी इच्छासे क्षेत्र लगानेका विचार किया ।

हृषीकेश छोडकर बाबाजी फिरते हुए कलकत्ता पहुँचे । कलकत्तेके प्रसिद्ध महाजन सूर्यमलको उपदेश देकर हृषीकेशमे अन्नक्षेत्र स्थापित कराया जिसके पीछे सन्तोंको किसी प्रकारसे कष्ट नहीं हुआ ।

प्रसिद्ध लक्ष्मणझूलेका (बदरीनाथके मुख्य मार्गका) पुल, हरिद्वारमें धर्मशाला व क्षेत्र आदि जो सेठ सूर्यमलने स्थापन किये बाबाजीनेही उपदेशका फल था ।

इतनेही पर नहीं वरन जिस शहरमें आप पधारते वहांके सेठ साहूकार रईसोंको इस प्रकार उपदेश देकर पुण्यमार्गमें लगा देते कि, जिससे उनके दोनों लोक सुधरते। साधु ब्राह्मण तथा दीन दुःखियोंको देखकर आप अति विह्वल होजाते यही कारण था कि, आपका कोई समय भी दीन दुःखियों और साधु ब्राह्मणकी सहायता विना नहीं जाता था। आप केवल लौकिक सहायता ही नहीं करते थे वरन् आपमें अधमसे अधम पुरुषको दुष्टाचरणसे हटाकर सदाचारमें लगा देनेकी ऐसी शक्ति और युक्ति थी कि, कोईभी आपका वचन सुनने पीछे पुण्यमार्गपर चले विना नहीं रहता था।

भारतवर्षके पुण्यशाली कौन ऐसे सेठ साहूकार हैं जिन्होंने बाबाजीका दर्शन कर धर्ममार्गमें प्रवृत्ति नहीं की हो।

आत्मज्ञानके उपदेश करनेमें आप ऐसे कुशल थे कि, मुमुक्षुओंको आपकी थोडीही सत्संगतिसे आत्मसाक्षात्कार होजाता था।

आपने सहस्रों नवीन शिक्षा पाये हुए नास्तिकतुल्य सनातनधर्म्म और स्वदेशके अश्रद्धालु पुरुषोंको उपदेश देकर ईश्वरभक्ति और परोपकारमें लगा दिया।

आपके वचनमें ऐसी मोहित करनेवाली आकर्षणशक्ति थी कि जिसने आपका वचन सुना वह सदाके लिये आपकी वाणीके सुननेका अनुरागी बनगया।

आपको किसी मत अथवा वेष विशेषसे कुछ सम्बन्ध न था। आप केवल दो कम्बल रखते थे। ऐसे निरपेक्ष और अलिंग होनेपरभी सर्व वेशोंके साधुओं तथा सर्व धर्मोंके लोगों पर आपकी समदृष्टि रहती थी। सर्व धर्म्मोंको आप समान समझकरही सर्व लोगोंको अपने २ धर्म्ममेंही रह कर सदाचरणमें वर्तनेका उपदेश किया करते थे।

आपने अन्तसमयमें अपने विचारोंको स्थायी रहने और जीवोंको सदाके लिये शिक्षकके समान वर्तमान रहने अथवा ऐसे कहा जाय कि, अपने समानही उपदेश कर्ता स्वरूपमें "पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश" नामक एक अमूल्य पुस्तक लिखा है।

यदि इस पुस्तकको धर्म्मका भण्डार सत्यका आगार और सदाचारका कोश कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी।

इस पुस्तकमें एक २ विषयका ऐसा स्पष्ट और नित्यके लौकिक उदाहरणोंद्वारा निरूपण किया है कि धर्म्ममार्गसे अत्यन्त अनभिज्ञ और अश्रद्धालु पुरुष भी इसको सुनकर धर्मके तत्त्वको समझने लगता है और धर्म्मपथमें प्रवृत्त होजाता है। इस ग्रन्थके आठ सर्ग किये हैं। प्रत्येक सर्गमें संसारभरमें प्रतिष्ठित ईश्वरीनियमके अनुकूल और सबके मनभाव निष्पक्ष साधा-

रण धर्मका निरूपण किया है । पुराणोंकी नानाप्रकारकी आश्चर्यमय कथाओंका यथार्थ सार और आध्यात्मिक अर्थ तथा भाव इस प्रकार स्पष्ट करके समझाया है कि, जैसा आजतक किसी अन्य पुस्तकमें देखनेमें नहीं आता । इस पुस्तकका एक बार श्रवण करनेवाला अथवा पाठ करनेवाला अवश्य धर्ममें श्रद्धालु होजावेगा ।

मनुष्य जीवनको सुखपूर्वक बितानेवाले, अपने धनकी रक्षा करनेवाले, अपने मकानको सुधारनेकी इच्छा रखनेवाले तथा सर्व प्रकारके लौकिक पारलौकिक सुखकी इच्छा रखनेवाले इस पुस्तकको पाकरही सर्व ज्ञान प्राप्त करसकेंगे ।

यद्यपि बाबाजीके जीवन वृत्तांत और भी बहुत कुछ सुनेगये हैं तथापि यहां दिग्दर्शनमात्र लिखा है । बाबाजीके पूर्णचरित्र लिखनेके हेतु प्रयत्न कररहाहूँ सफलता होनेपर सज्जनोंके सन्मुख फिर उपस्थित करूँगा ।

इति श्रीकामलीवाले बाबाका संक्षिप्त "जीवन चरित्र" स्वामी युगलानन्द कबीरपन्थी भारतपथिक (शिवहरवाले) द्वारा संकलित व संशोधित समाप्त हुआ ।

ॐ

अथ पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशकी विषयानुक्रमणिका.

अथ सप्तमः सर्गः ७.

अनुक्रमणिका।

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता।

श्रीगुरुभ्यो नमः ।

अथ पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश ।

प्रथम सर्ग १.

एक समय किसी एक एकांत स्थानमें वसिष्ठके पौत्र और शक्तिके पुत्र पराशरजी अपनी इच्छापूर्वक बैठेथे, तिसही कालमें मित्राके पुत्र मैत्रेयने आकर वेदविधि पूर्वक पराशको गुरु जानके आप अपनी पूर्ण श्रद्धासे शिष्य भावको प्राप्त हो, हाथ जोड़कर शिष्यरीत्यनुसार प्रश्न किया कि,

- हे भगवन् ! इस संसाररूपी देहमंदिरमें मैं कौन हूँ ? क्या श्रोत्रादिक ज्ञान इंद्रियोंका समूह हूँ ? अथवा एक २ ज्ञानेंद्रिय हूँ ? वाक्आदिक कर्म इंद्रियोंका समूह हूँ ? एक एक वाक् आदिक इंद्रियरूप हूँ ? प्राणादिक वायुओंका समुदायरूप हूँ ? वा एक एक प्राणादिक वायुरूप हूँ ? मनआदिक चतुष्टय अंतःकरणरूप हूँ ? वा मन बुद्धि आदिक एक एक रूप हूँ ? स्थूल सूक्ष्मरूप जोआकाशादि पंचमहाभूत हैं, उनका समुदायरूप हूँ ? वा आकाशादि एक एक रूप हूँ ? वा तिन्होंका कार्यरूप जो देह सो हूँ ? काम क्रोधादिक पचीस प्रकृतिरूप हूँ ? स्थावररूप हूँ ? वा जंगमरूप हूँ ? व्यापकरूप हूँ ? परिच्छिन्नरूप हूँ ? परमाणुरूप हूँ ? वा अपरमाणु रूप हूँ ? भूत पिशाचादिरूप हूँ ? किसीका प्रतिबिंब हूँ ? वा बिंबरूप हूँ ?

हे भगवन् ! मैं जीव हूँ! वा ईश्वररूप हूँ वा ब्रह्म हूँ! वा जड़रूप
हूँ! वा चेतनरूप हूँ!वा सर्व शक्तिमान् हूँ!वा सर्वशक्तिरहितहूँ! माया
और अविद्याके संबंधवाला हूँ! वा तिनके संबंधते रहित हूँ! माया
वा अविद्याकरके मोहित हूँ! वा अमोहित हूँ! सुख दुःखका कारण
जो धर्माधर्म, उनवाला हूँ ! वा तिनते रहित हूँ!धर्माधर्मका कार्य
जो सुख दुःख उनका भोक्ता हूँ! वा अभोक्ता हूँ! क्रियावान् हूँ! वा
अक्रिय हूँ! शांति आदि मनके धर्मरूप हूँ!वा धर्मीरूप हूँ! वा तिनके
रहित हूँ!समाधिरूप हूँ! वा विक्षेपरूप हूँ!वा तिनतेरहितहूँ! रूपादिक
विषयरूप हूँ!वा तिनते रहित हूँ! नित्य वा अनित्य हूँ! दृश्य हूँ!
वा द्रष्टा हूँ! वा दृश्य द्रष्टा उभयरूप हूँ! वा तिनते रहित हूँ! ब्राह्मणा-
दिक वर्णी हूँ! वा ब्रह्मचारी आदि आश्रमी हूँ!वा तिनते रहित हूँ! हे
दीनबंधु !कृपालु गुरो! इस देहविषे मैं सगुणरूप हूँ!वा निर्गुणरूप हूँ!
देव हूँ! वा मनुष्यरूप हूँ! स्त्री हूँ वा पुरुषरूप हूँ! वा नपुंसकरूप हूँ!
पर करके देखनेमें आता हूँ वा नहीं! ग्रहणरूप हूँ!वा त्यागरूप हूँ!
इयत्तावाला हूँ!वा इयत्तारहित हूँ! सारांश यह कि,अनंत हूँ! कि,
अन्तवाला हूँ! मधुर रसादिकरूप हूँ!वा तिनते रहित हूँ!ऋषि हूँ!वा
मुनि हूँ!अनेकशास्त्ररीत्यनुसारपच्चीस(२५)वाएकसौपच्चीस(१२५)
वा सत्ताईस(२७)आदिप्रकृतिरूप हूँ! वा तिनते रहित हूँ! व्यापक हूँ
कि, अव्यापक हूँ! कि, असंगहूँ कि, संगी हूँ!मैं मृत्युको प्राप्त होताहूँ
कि नहीं! चक्षुआदिज्ञानेंद्रियोंकेप्रकाशकऔर अभिमानीसूर्यादिदे-
वता रूप हूँ!वा तिनते रहित हूँ!वाक् आदि कर्मेन्द्रियोंके अभिमानी
अग्नि आदि देवतारूप हूँ!कि,तिनते रहित हूँ! तैसेहीमनादिचतुष्टय
अंतःकरणके अभिमानी चंद्रमादि देवता हूँ!कि, नहीं ? मनादिकों
के संकल्पादि धर्मरूप हूँ ? वा नहीं! तात्पर्य यह है कि, पंचज्ञानें-
कर्मेंद्रिय, अंतःकरण चतुष्टय और शब्दादिक चतुर्दश

ादिक इंद्रियोंके विपय) तथा चतुर्दश तिनके देवता आदि
रा त्रिपुटीरूप हूँ? वा नहीं ? वा तिनते रहित हूँ? वा श्रोत्रादिक
योंके बधिरत्वादिक धर्मरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ ? तथा दूर
कि, समीप हूँ ? लंबा हूँ ?कि, चौड़ा हूँ? ऊर्ध्वरूप हूँ ? कि,
ोरूप हूँ ? वा दिशा वा उपदिशा रूप हूँ वा तिनते रहित हूँ ?
ागादि तीर्थरूप हूँ? वा नहीं ? वा प्रयागादि तीर्थोंके अभिमानी
णीमाधव आदिक हूँ ? वा नहीं ? वक्ररूप हूँ ? वा अवक्ररूप
? मातारूप हूँ वा पितारूप हूँ वा पुत्ररूप हूँ? वा मातादिभावते
रहित हूँ ? समव्याहृतिरूप भूरादि ऊपरके लोक हूँ? वा अतलादि
नीचेके लोक हूँ ? तिन लोकोंमें रहनेवाला हूँ ? वा नहीं ? रसादि
सप्तधातुरूप हूँ वा नहीं ? आकाशादि पंचभूतोंके शब्दादि गुणरूप
हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? कोई उत्तमपदार्थ हूँ वा मध्यम हूँ ? वा
कोई निकृष्ट पदार्थ हूँ ? जाग्रतरूप हूँ ? वा स्वप्नरूप हूँ वा सुषुप्ति
रूप हूँ? वा तुरीयरूप हूँ? वा तुरीयातीत हूँ? वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिके
अभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञनामा जीव हूँ? वा जाग्रदादि अव-
स्थाके अभिमानी रहित हूँ? व्यष्टिस्थूल शरीर हूँ? या व्यष्टि सूक्ष्म
शरीरहूँ? वा व्यष्टि कारण शरीर हूँ? वा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, समष्टि
रूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? पंचकोश रूप हूँ ? वा तिनते रहितहूँ?
वैखरी मध्यमा पश्यंती परा वाणीरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ ?समष्टि
कारण शरीर हूँ? वा समष्टि सूक्ष्म शरीर हूँ? वा समष्टि स्थूल शरीर
हूँ ? वा तिन समष्टि स्थूलादि शरीरोंके अभिमानी विराट् हिरण्य-
गर्भ ईश्वर क्रमते हूँ ? वा समष्टि स्थूलादि अभिमानते रहित हूँ ?
सत्त्वगुणरूप हूँ वा रजोगुणरूप वा तमोगुणरूप हूँ? वा तिनते रहित
हूँ ? अमानित्वादि दैवी संपदारूप हूँ ? वा दंभादि आसुरी संप-
दारूप हूँ? षट्ऊर्मिमान् हूँ ? वा नहीं हूँ? षट् भावविकारवान् हूँ

वा नहीं हूँ ? श्रोत्रादिक इंद्रियोंका तथा मनादिकोंका मैं विषय हूँ ? वा अविषय हूँ ?तात्पर्य यह कि, मनादिक इंद्रियके द्वारा मैं जाननेमें आताहूँ? वा नहीं? स्वप्रकाश हूँ? वा परप्रकाश हूँ? कर्म-वान् हूँ वा नहीं हूँ ? कर्म उपासनाका फल भोक्ता हूँ ? या नहीं? तथा कर्म और उपासनाका मैं कर्ता हूँ ? कि, कोई अन्य कर्ताहै, और मैं निष्कर्तव्य हूँ ? कि, सकर्त्तव्य हूँ ? मैं बंधरूप हूँ ? कि, मोक्षस्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? कारणस्वरूप हूँ कि, कार्य्य-स्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ? गुरुके उपदेश वा शास्त्रद्वारा मैं जाननेमें आता हूँ ? कि, नहीं ? देश, काल, वस्तुस्वरूप हूँ कि, तिनते रहित हूँ? नाम, रूप स्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ?

हे भगवन् ! मैं आदि हूँ? कि, अनादि हूँ? सच्चिदानंदस्वरूप हूँ ? कि, नहीं ? यज्ञ दानादि रूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ ? पंडित हूँ? कि, अपंडित हूँ ? स्वामी हूँ ? कि, दास हूँ? स्थावर हूँ? कि जंगम हूँ ? बालक हूँ? कि, युवा हूँ ? वृद्ध हूँ ? वा बालकादि अवस्था रूप हूँ? वा नहीं ? सुन्दररूप हूँ ? कि, असुन्दर रूप हूँ, अंधकाररूप हूँ? कि, प्रकाशरूप हूँ ? सुख-दुःख रूपहूँ? कि तिन ते रहित हूँ ? लक्ष्यरूप हूँ ? कि, वाच्यरूप हूँ ? हेयोपादेयरूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ ? कर्मरूप हूँ ? कि, अकर्म रूप हूँ? सब जगत्का उपादान कारण अज्ञान वा मायारूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ? इत्यादि उक्त पदार्थोंके मध्यमें मैं कौन हूँ ? हे शांति-दायक कृपालो ! सर्वहितेच्छू सर्व शिष्योंके संताप नाशक करु-णानिधे ! हे अज्ञाननाशक दीनबंधो ! हे यथार्थदर्शी ! हे संशय-विध्वंसक सद्गुरो ! इस संशयरूपी समुद्रसे आप कृपा करके मुझको पार करो, क्योंकि, मैं तुम्हारी शरणको प्राप्त हूँ. इस

प्रकार श्रद्धावान् शिष्य मैत्रेयकी रस भरीहुई वाणी सुनके श्रीपराशर मुनिने सर्व प्रश्नोंका केवल एकही उत्तरसे समाधान किया कि-

हे मैत्रेय! पूर्वोक्त, जो तुमने देहसे लेकर अज्ञान पर्यंत सब पदार्थ कहे हैं, सो तू नहीं है. क्योंकि, अज्ञान और अज्ञानके कार्य जो सर्व पदार्थ हैं, वे परस्पर व्यभिचारी हैं, परस्पर अपेक्षावाले हैं, आपसमें कार्य कारण भाववाले हैं, चेतनके दृश्य हैं, देश, काल, वस्तु, परिच्छेदवाले हैं, षड्भाव विकारवाले हैं, अतिशयतादि दोषवालेहैं। भ्रम ज्ञानके विषयहैं, जड़हैं, वाचारंभणमात्रहैं, स्वप्नवत्प्रतीतिमात्रहैं, अविद्याके परिणामहैं, चेतनकेविवर्तहैं, और रज्जु सर्पकी न्यांई केवल मिथ्याही तुम्हारे स्वरूपमें कल्पितप्रतीतमात्र होतेहैं, स्वप्नदृश्यकी न्यांईहैं, वस्तुतः सत्य नहींहैं, हे मैत्रेय! वास्तवसे जो तुमने देहसे लेकर अज्ञानपर्यंत पूर्वपदार्थ कहेहैं, तथा अन्यभी अनेक पदार्थ हैं सो सर्व मनवाणीके गोचरहैं और तुम्हारा स्वरूप अवाङ्मनसगोचर है। सो साक्षात् कहनेको हमभी समर्थ नहीं; तैसेही तुमभी इसको साक्षात् दृश्यरूपता करके जाननेको समर्थ नहीं; काहेते सर्वजीव जिस विषयसुखको नित्य प्रति अनुभव करतेहैं, वह जो शब्दस्पर्शादिक विषयजन्य सुख है, तिसको भी जब साक्षात् दृश्यकी न्यांई; कहनेको तथा जाननेको कोईभी समर्थ नहीं होता, तो सर्वप्रकारसे अवाङ्मनसगोचर जो सर्वका आत्मस्वरूप सुखहै, तिसको साक्षात् किसी मिसविना विद्वान् कैसे कहेंगे और कैसे मुमुक्षु जानेंगे किंतु कहना और जानना कुछभी नहीं होगा, किसी एक मिससे इसका कहना और जानना दोनोंही होसक्ता है; जैसे मनकरके भी अचिंतनीय है रचना जिसकी, ऐसा जो यह जगत् है, तिस जगत्की उत्पत्ति पालना और संहाररूप व्यवहार जो करनेवाला है, सोई जगत्का स्वामी परमात्मा है। इस तटस्थ लक्षणकर जैसे परत्माका रूप जान-

नेमें आताहै तथा जैसे चित्रोंको देखकर चित्रेलेका होना अनुमान किया जाता है; तैसेही हे सुबुद्धिमान् मैत्रेय! सुख दुःखादि सर्वपदार्थ जिसेकरके सिद्ध होते हैं, वही तुम्हारा स्वरूप है। तथा—जो मनकेफुरनेते प्रथम स्वतः सिद्धहै, पुनःमनके शुभाशुभ फुरनेका जो साक्षीरूप करके निर्विकार स्थित है, पुनःमनके फुरणेके अभावका जो अवधिरूप करके स्थित है, सो तुम्हारा स्वरूप है। जैसे पट्प्रकारके रूपकी न्यून अधिकताको परिमाण करनेवाला चक्षु इंद्रिय रूपसे भिन्न, सर्वरूपके विकारोंसे रहित, रूपका उपचारक द्रष्टा है। तथा—जैसे शब्दके न्यून अधिकताको परिमाण करनेवाला श्रोत्र इंद्रिय शब्दसे भिन्नशब्दविकारोंसे रहित, शब्दका उपचारक ज्ञाता है। तथा-जैसे गंधके उत्तम मध्यम भावको तथा गंधकी उत्पत्ति नाशको परिमाण करनेवाला घ्राण इंद्रिय, गंधसे भिन्न, सर्व गंधके विकारोंसे रहित, गंधका उपचारक द्रष्टाहै। जैसे पट्प्रकारके रसके न्यून अधिकताको परिमाणकरनेवाला, रसनेंद्रिय; रससे भिन्न, सर्व रसके विकारोंसे रहित और रसका मुख्य ज्ञाता जो आत्मा, उसकी उपाधि होनेते गौणज्ञाता, रससे भिन्न है, जैसे—स्पर्श विषयके न्यून अधिक भावको परिमाण करनेवाला, स्पर्शके सर्व विकारोंसे रहित; स्पर्श विषयका उपचारक ज्ञाता, त्वचा इन्द्रिय स्पर्शते भिन्न है—काहेते रूपादिक पदार्थ भिन्न देशमें स्थित हैं और रूपादिकोंके परिमाण करनेवाले चक्षु आदिक उपचारक द्रष्टा भिन्न देशमें अर्थात् देहविषे स्थित हैं इसीते रूपादिकोंके गुणदोषको चक्षुआदिक इंद्रियरूप द्रष्टा स्पर्श नहीं करते; तथा रूपादिक पदार्थ, अपने द्रष्टा चक्षु आदिकोंको जानते भी नहीं तैसेही प्रत्यक् आत्माभी इस देहरूप संघात विषे मन, वाणीके कथन चिंतनते रहित; स्थित हुआभी, जिसकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, लज्जा, अलज्जा, धृति, भय, अभय,

शांति, अशांति, यथार्थज्ञान, अयथार्थज्ञान, स्मृति, अस्मृति, दंभ, अदंभ, मान, अमान, सर्व मनका शुभाशुभ स्फुरणा, हर्ष, शोक ध्यान, अध्यान, बंध, मोक्ष, ग्रहण, त्याग, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण मूर्च्छा, समाधि आदिक सारांश यह कि, दैवी आसुरी गुण वा मन सहित सर्व मनके धर्म जिसकर सिद्ध होते हैं. तात्पर्य्य यह कि, जिस करके पूर्वोक्त सर्व पदार्थ जाननेमें आतेहैं, सोई तुम्हारा स्वरूप है। दुःख सुखादि पदार्थोंको अंतर कडीवत् [तराजू] जो परिमाण करनेवाला है जिसका मनादिकोंकरके परिमाण कियाजासक्तानहींसो मनादिकोंका साक्षी, प्रकाशक, परमात्मासे अभिन्न, महाकाशसेअभिन्न घटाकाशकी न्यांई, प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। तथा प्राणादिकोंके क्षुधा पिपासादिक धर्मोंको जो जानता है, तथा प्राण अपानादिकके न्यून अधिक भावको जो जानता है, सो प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूप है जो शरीर तथा शरीरके शयनादिक सर्व धर्मोंको जानता है, बहिर्घट द्रष्टाकी न्यांई, तथा—चक्षुआदिक इंद्रियोंका और चक्षुआदिक इंद्रियोंके मंद बधिरत्वादिक सर्व धर्मोंकी न्यूनता अधिकताको, जो अंतर जाननेवाला है, सोई प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। जो शरीरात्मक पंचमहाभूतोंको तथा शरीरके अंतर रहनेवाले पंचमहाभूतोंके कार्यरूप क्रोधादिक पचीस वा सत्ताईस वा एकसोपच्चीस (१२५) प्रकृतियोंको, तथा भूत, भविष्यत् वर्तमान कालको जो सिद्धकरताहै तथा भूत भविष्यत् वर्तमानकालमें होनेवाले पदार्थोंका जो सिद्ध करनेवाला है, सो तुम्हारा स्वरूप है। जो मन बुद्धि अहंकार चित्तादिक अंतःकरणको तथा अंतःकरणकी सात्विकादिकवृत्तियोंको सिद्ध करनेवालाहै, सो तुम्हारास्वरूपहै। जो सगुण वा निर्गुण परमेश्वरके ध्यान अध्यानका अंतर साक्षी ज्ञाता है, और भाव अभावको तथा सर्व अस्तिनास्तिपदार्थोंको जो सिद्धकरताहै

सोई तुम्हारा स्वरूप है। जो सात्त्विकी वृत्तियोंकी उत्पत्ति अनुत्पत्तिको तथा राजसी वृत्तियोंकी अनुत्पत्ति उत्पत्तिको तथा तामसी वृत्तियोंकी उत्पत्ति अनुत्पत्तिको जानता है, सोई तुम्हारा प्रत्यक् स्वरूप है। जो सात्त्विकी वृत्ति अंतःकरणते उदय होकर नष्ट होगई, और जबतक राजसी वा तामसी वा पुनः सात्त्विकी वृत्ति उदय भई नहीं, तिस संधिमें स्थित होकर दीपकदेहली न्यायकर सात्त्विकी वृत्तियोंके अस्तभावको और दूसरी राजसी तामसी तथा सात्त्विकी वृत्तियोंके अनुदयको अपने स्वप्रकाशरूप करके, जो सिद्ध करताहै, सोई तुम्हारा स्वरूप है। तैसी जब राजसीवृत्ति उदय होकर नष्ट होगई और सात्त्विकी तामसी वा पुनःराजसी वृत्ति उदय नहीं भई, तैसेही जब तामसी वृत्ति उत्पन्न होकर पुनः नष्ट होगई और जबतक सात्त्विकी वा राजसी वा पुनःतामसी वृत्ति उत्पन्न हुई नहीं, तबलग तिसकालमें, जिस शांतरूप निर्विकल्प प्रकाश करके पूर्वोक्त व्यवहार सिद्ध होताहै, सोई सत्‌रूप तुम्हारा स्वरूप है। तात्पर्य यह कि, सर्व वृत्तियोंकी संधियोंमें स्थित हुआ दीपक देहली न्यायवत् सर्व वृत्तियोंके भाव अभावको जो सिद्ध करनेवाला है सो प्रत्यक् आत्मा तुम हो। जिसको मन मनन कभीभी नहीं कर सक्ता, जिसको बुद्धि निश्चय नहीं करसक्ती, और जिसको चित्त चिंतन नहीं करसक्ता और जिसको अहंकार अहंपना नहीं करसक्ता क्यों कि जाति गुण कियादि संबंधवाले पदार्थोंकोही, ये मनादिक चिंतन करसक्तेहैं और यह प्रत्यक् आत्मा जाति गुणक्रियादिसंबंधवान् दृश्यपदार्थोंसे रहित है, तिनका द्रष्टा है तथा यह नियम है कि, दृश्य द्रष्टाको प्रकाश नहीं करसक्ता उलटा द्रष्टाही दृश्यको प्रकाश करता है, सूर्य दीपकादिकोंमें यह प्रसिद्धदृष्टांतहै इसीलिये मन आदिकोंके साक्षी द्रष्टा आत्माको पूर्वोक्त मननादिक प्रकाश

नहीं करसकते। किन्तु मन बुद्धिआदिकोंके भावाभावको तथा उन्होंकेन्यून अधिकभावको तथा मनआदिकोंके शांति अशांति धृति अधृति आदिक धर्मोंको जो जानता है; सोई सत्य वस्तु तुम्हारा स्वरूप है। यह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त्यादि प्रपंच जिसकरके सिद्धहोते हैं, और जिसकरके पंच कोशोंका परिमाण होता है तथा जो पंचकोशोंसे अतीत, पंचकोशोंका साक्षी, प्रकाशक वा स्वामी है, सोई चैतन्य वस्तु तुम्हारा स्वरूप है।

हे शिष्य। सर्व पदार्थ व्यभिचारी हैं इसीसे मिथ्या हैं जो अव्यभिचारी वस्तु है सोई सत्य है; जैसे घटमें पट नहीं है और पटमें घट नहीं है किन्तु सर्व घट पटादिकोंमें मृत्तिका अनुस्यूत अव्यभिचारी है तैसे-अज्ञानसे लेकर देहपर्यंत सर्व पदार्थ परस्पर एक दूसरेमें नहीं हैं अर्थात् सबका सबमें अभावरूप व्यभिचार है; इसीसे मिथ्या हैं; परन्तु अस्ति, भाति, प्रियरूप, प्रत्यक् आत्मा, तिन सर्व पूर्वोक्त पदार्थोंमें अनुस्यूत अव्यभिचारी है, इसीसे वह सत्य है; जैसे-भूषण व्यभिचारी हैं अरु सुवर्ण अव्यभिचारी है। और भी अनेक दृष्टांतहैं सोई दिखलातेहैं, जैसे-वर्तमान जाग्रत्अवस्थाके सिद्धकर्ता, प्रत्यक् आत्माका, जाग्रत् अवस्थाके साथ अन्वय नाम अभेदहै और स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्छा, मरण, समाधि आदिक अवस्थाका जाग्रत् अवस्थासे व्यतिरेकनाम अभाव है। तथा जाग्रत् अवस्थाके सिद्धकर्ता आत्मासे भी इनका व्यतिरेक नाम अभाव है तैसेही-स्वप्नावस्थामें आत्माका स्वप्न अवस्थाके साथ अन्वय नाम अभेद है जाग्रत् सुषुप्ति, मरण, मूर्छा, समाधिका स्वप्न अवस्थाके साथ व्यतिरे‌क है तथा आत्माके साथभी व्यतिरेक है; तैसेही-सुषुप्ति अवस्थाके सिद्धकर्ता प्रत्यक् आत्मा सुषुप्तिसे अन्वय नाम मिला है औ‌र जाग्रत्, स्वप्न, मरण समाधि आदिक अवस्थाका सुषुप्ति अवस्थासे व्यतिरेक है अर्थात् भेद है तथा उक्त आत्मासे भी उनक

व्यतिरेक नाम भेद है । सारांश यह कि, जब जाग्रत् अवस्था है तब स्वप्नादिक अवस्थाका अभाव है, परंतु जाग्रत्के सिद्ध करनेवाले, केवल आत्मस्वरूपका अभाव कदाचित् नहीं; किंतु हाजिरहजूर है, उलटा स्वप्नादिकोंका अभाव और जाग्रत्का भाव प्रत्यक् आत्मा करकेही सिद्ध होता है, तैसेही जब स्वप्नकी अवस्था होती है तब जाग्रतादिक अवस्थाका अभाव होताहै परंतु स्वप्नके सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं, उलटा जाग्रतादिकोंके अभावको और स्वप्नके भावको सिद्धकर्ता यह प्रत्यक् आत्माही है । तैसेही-जिसकालमें सुषुप्ति होतीहै, तिसकालमें स्वप्नादिक अवस्थाका अभावहै परंतु सुषुप्तिके सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं, उलटा सुषुप्तिके भावको और स्वप्नादिकोंके अभावको तुम्हारा प्रत्यक् आत्मा स्वरूपही सिद्धकर्ता है। इसी रीतिसे जब समाधि नाम चित्तकी एकाग्र अवस्था होती है तब जाग्रतादिक अवस्थाका अभाव होता है सही, परंतु तिसकालमें जाग्रतादिक विक्षेप अवस्थाके अभावको, तथा समाधिरूप एकाग्रताके भावको, सिद्ध करनेवाला प्रत्यक् आत्माका अभाव नहीं है,यही रीति मरण आदिक अवस्थामें भी जानलेनी । तैसेही-घटादिक पदार्थोंका पटादिक पदार्थोंमें अभावहै तथा पटादिक पदार्थोंका घटादिक पदार्थोंमें अभाव है, परंतु जिस सच्चिदानंद शब्दोंके पर्य्यायरूप यह अस्ति भाति प्रियशब्दोंका अर्थरूप प्रत्यक्--आत्मा करकेही, घट पटादिकोंकी सिद्धि होतीहै, तिसका अभाव कदाचित् नहीं है । तैसेही--जब सत्त्वगुण होताहै तब रजोगुण और तमोगुण नहीं होते, परंतु सत्त्वगुणके भावको और रजोगुण तथा तमोगुणके अभावका जो सिद्धकर्ता, प्रत्यक्आत्मा है । तिसकाअभाव नहीं तैसेही-जब रजोगुण आताहै तब, सत्त्व और तमोगुणका अभाव होताहै, परंतु रजोगुणके भावको और सत्त्वतमगुणके अभा-

वका सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं है। तैसेही जब तमोगुण आता है तब सत्त्वगुण रजोगुणका अभाव होताहै, परंतु तमोगुणके भावको अरु रज तथा सत्त्वगुणके अभावको जो आत्मा सिद्धकर्ता है तिसका आभास नहीं। तैसेही--जब अज्ञान होताहै तब ज्ञान नहीं होता और जब ज्ञान होताहै तब अज्ञान नहीं होता; परंतु आत्मा, तिनको सिद्ध करनेवाला; हाजिर हजूर सदा सर्वदाही वर्तमान है। तैसेही-जब शुभ संकल्प चिंतन निश्चय और शुभ अहंपन होताहै, तब अशुभ संकल्प, अशुभ निश्चय, अशुभ चिंतन और अशुभ अहंपन नहीं होताहै। तैसे ही--जब अशुभ संकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपन होताहै, तब शुभ संकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपन नहीं होता परंतु तिनके सिद्धकर्ता आत्माका कदाचित्भी अभाव नहीं होता, सदा हाजिर हजूर है तैसेही--कामवृत्तिके उदय होनेसे क्रोधादिक वृत्तियोंका अभाव होता है और जब क्रोधवृत्ति उदय होतीहै तब कामादिक वृत्तियोंका अभाव होताहै परंतु तिनके सिद्ध करनेवाले आत्माका अभाव नहीं होता। इसी रीतिसे--सर्व पदार्थोंमें जानलेना। सारांश यह कि, जब सम्यक् विचार करे तो यही सिद्ध होता है कि, घट और भूषणादिक सब कल्पित पदार्थ, मृत्तिका सुवर्णादिक, अपने २ अधिष्ठानविषे हैं ही नहीं केवल सुवर्णादिक अधिष्ठानही हैं परंतु यह बात अलौकिक बुद्धिके नेत्रोंसे देखी जाती है, चर्म बुद्धिरूपी नेत्रोंसे यह देखी नहीं जाती ॥ हे मैत्रेय! जो पदार्थ किसी कालमें होवे और किसी कालमें नहीं होवे और तैसेही जो पदार्थ किसी देशमें होवे, किसीमें नहीं होवे तैसेही जो पदार्थ किसी वस्तुमें होवे और किसी वस्तुमें नहीं होवे, सो पदार्थ व्यभिचारी नाम मिथ्या होताहै और जो सर्व देशमें सर्वकालमें होवे और जो सर्व वस्तुमें होवे, सोई वस्तु अव्यभिचारी नाम सत्य होती है, जैसे--सर्प दंड माला लकीर वृक्षकी जड इत्यादिक पदार्थ

आपसमेंभी व्यभिचारी नाम भिन्न भिन्न हैं और रज्जुसेभी भिन्न हैं; तात्पर्य्य यह है कि, सर्प प्रतीति कालमें दंडकी प्रतीति होती नहीं; जब दंडकी प्रतीति होती है तब सर्पादिकोंकी प्रतीति होती नहीं; तैसेही--जब मालाकी प्रतीति होती है तब सर्प दंडादिकोंकी प्रतीति होती नहीं, परंतु रज्जुका अभाव किसी कालमें भी नहीं बरन इदंरूप रज्जुही सर्पादिकोंमें अनुस्यूत नाम व्यापक है। तैसेही—भूपणोंकाभी आपसमें व्यभिचार नाम भेद है क्योंकि वे आपसे भिन्न २ हैं, परंतु कल्पित भूपणोंको सिद्ध करनेवाले सुवर्णका भूपणोंमें व्यभिचार नाम अभाव नहीं, इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं इसलिये हे शिष्य! जो कल्पित तथा अव्यभिचारी जाग्रतादिक, सत्य असत्य सर्व पदार्थोंका सिद्धकर्ता परमात्मा महाकाशसे अभिन्न घटाकाशकी न्याँई, सर्वत्र व्यभिचारी, जो प्रत्यक्, आत्मवस्तु है सोई तुम्हारा स्वरूप है। जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके जाननेमें नहीं आता किंतु जिस करके प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध होते हैं और प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि त्रिपुटी जिसकी सत्तामात्रसे सिद्ध होती है, सोई चैतन्य तुम्हारा स्वरूप है, जो प्रत्यक्षादि पट् प्रमाणों करके जाननेमें आताहै सो मायातत्कार्य जगत्का रूप है तुम्हारा रूप नहीं। सर्व जगत्का उपादान कारण अज्ञान तथा सुपुप्ति कालका आवृत्तसुख सुपुप्तिमें जिसकी सत्तासे सिद्ध होताहै तथा जाग्रत्में भी भ्रम अभ्रम वा भूल अभूल वा स्मरण अस्मरण रूप ज्ञान अज्ञान जिसकरके सिद्ध होताहै, सोई तुम्हारा स्वरूप है।

हे शिष्य! मस्तक पर चंदन लगानेसे शीतलता होताहै तथा पाँवमें अग्निका स्पर्शहोनेसे वा पाँवमें कांटा लगनेसेजलन होतीहै सो मस्तककीशीतलता तथापांवमें जलन, जिसबुद्धिउपहितचैतन्य करके, एकहीकाल विषे जानी जाती है, सोई निराकार सच्चिदानंद

पूर्वोक्त शीतलादिक पदार्थोंके भावाभावको जाननेवाला, प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। हे शिष्य! यदि यह कहो कि, सर्व पदार्थोंको बुद्धि जानती है सो नहीं क्योंकि जो बुद्धिको प्रकाशता है, सोई सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है, किन्तु बुद्धि आदिक किसीकोभी नहीं प्रकाश करसक्ते। जैसे-बारियांवालेमंदिरमें वा छिद्रोंवाले घटमें, अँधेरीरात्रिमें दीपक धराहोवे तथा मंदिरकी बारियोंके वा घटके छिद्रोंके अग्रभागमें स्वाभाविकही, अनेक प्रकारोंके नीलपीतादिरंगवाले पदार्थभी धरेहोवें इसमें तुमको विचार करना चाहिये कि मंदिरकी बारियोंके वा घटके छिद्रोंके अग्रभाग धरे जो नील पीतादि रंगवाले पदार्थ हैं, सो किसकरके तिन पदार्थोंका प्रकाशहोताहै? बारियों करकेभी तिन बारियोंके अग्रभाग धरे पदार्थोंका प्रकाश नहिं होता, तथा मंदिरकी, दीवालोंसेभी तिन बारियोंके अग्रभागधरे पदार्थोंका वा मंदिरके अंतरधरे पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता तथा मंदिरके भीतरधरे जो पलंग बर्तनादि अनेक पदार्थ हैं, तिनसेभी बारियोंके अग्रधरेपदार्थोंका वा मंदिरका प्रकाश नहीं होता तथा तेलका आधारभूत जो मिट्टीरूप कांचकी गिलास है तिससेभी किसी पदार्थका प्रकाश नहीं होता। तथा गिलासके मध्यधरे तेलसे भी उस अपने आधारभूत परंपरा गिलासका तथा अन्य किसी पदार्थका प्रकाश नहीं होता। परंपरा करके पृथ्वीके कार्यभूत रुईकीवत्तीसे भी अपना साक्षात् वा परंपरा करके आधारभूत जो तेल गिलास तथा मंदिरादिक पदार्थोंका मंदिरकी दीवालोंका तथा बारियोंके अग्रभागमें धरे पदार्थोंका तथा मंदिर भीतर धरे अनेक पलंग आदिक पदार्थोंका किसी रीतिसेभी प्रकाश नहीं होता तथा बारियोंके अग्रभागमें धरे नील पीतादिक पदार्थोंसे किसीभी पदार्थका प्रकाश नहीं होता किंतु शेपरही जो चम्पेकी कलीकी नाँई अग्निरूप लाट ज्योति सोई, बारियोंके अग्रधरे नील पीतादि रंगोंवाले पदार्थोंको,

बारियोंको, दीवालोंको, मंदिरको, मंदिर भीतर धरे पलँग आदिक पदार्थोंको, गिलासको, तेलको तथा पूर्वोक्त बत्तीको, बत्तीपरआरूढ अग्निरूपी लाटही सर्वको प्रकाशकरताहै। पूर्वोक्तरीतिसेअन्य कोई पदार्थ प्रकाश करता नहीं, लाटकोअन्य लाटभी प्रकाशकरतानहीं यह दृष्टांत अपरोक्ष, सर्वके अनुभव सिद्ध है। तैसेही यहां पंचभूतोंका कार्य, जो देह मंदिररूप है और श्रोत्रादिइंद्रिय बारियांरूप हैं, शब्द स्पर्शादिक, श्रोत्रादिकइंद्रियोंकी विषय, बारीके अग्रभागधरे पदार्थोंकी न्यांई हैं, त्वचा दीवालरूप हैं, मांस चूना और गारेके तुल्य है, पृष्ठमें दीर्घ अस्थि शहतीर तुल्य है। छोटी अस्थियां वलिया (कडी) आदिक अनेक काष्ठरूप हैं। पचीस प्रकृतियाँ मंदिर भीतरधरे पलंग बर्तन आदिकके समान हैं। प्राण १ श्रद्धा २ सूक्ष्म आकाश, वायु, ज्योति, अप और पृथ्वी ७ दशइंद्रिय ८ मन, अन्न वीर्य्य ११ तप, मंत्र, कर्म्म लोक लोकोंके विषय १६ ये षोडश कला हैं. वा पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेंद्रिय, पंचप्राण, एक अंतःकरण गिननेते उन्नीस होते हैं इन। षोडशकला प्रधान सूक्ष्म शरीर गिलास तुल्य है; षोडश तत्त्व हुए; मन बुद्धि दो गिननेते सत्रह हुए। चार गिननेते तिनके मध्यमें प्राण रुधिरके तुल्य हैं; काहेते जैसे शरीरमें रुधिर व्यापक है तैसे प्राण भी शरीरमें व्यापक हैं, अन्तःकरण तेलतुल्य है, बुद्धि बातीतुल्य है, मंदिरमें आकाशके तुल्य अज्ञान है, जैसे बत्ती आरूढ अग्निही बत्तीसहित सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसेही बुद्धिपर आरूढ, प्रत्यक् चैतन्य आत्माही बुद्धिसहित देह आदि अज्ञान पर्य्यंत सर्व जड अनात्म पदार्थोंको प्रकाशता है; ताते बुद्धि आदि सर्व पदार्थोंके जाननेहारे, साक्षी आत्माको, तुम अपना स्वरूप जानो। हे शिष्य! सुख दुःख हर्ष शोक तथा धर्माधर्मका जो ज्ञाता है, जिस करके ग्रहण और त्याग दोनों सिद्ध होतेहैं तथा स्थूल-

सूक्ष्म, कारण, शरीर और तिन तीनों शरीरों के धर्मोका, जिस करके प्रकाश होताहै और जिसको कोईभी दृश्य पदार्थ प्रकाश नहीं करसकता सो प्रत्यक् चैतन्य स्वयंज्योति तुम्हारा स्वरूप है। तात्पर्य्य यह कि, बुद्धि, आकाश, काल, दिशा अतिसूक्ष्म अज्ञान आदिक सर्व अनात्म दृश्यपदार्थोंको, तथा पृथ्वी, अप, तेज, वायु और तिनके कार्य्य देह पर्वतादिक अति स्थूल पदार्थोंको आत्मा समही प्रकाशता है। जैसे-हमलोगोंकी दृष्टिसे परमाणु अतींद्रिय है और देह पर्वत आदिक अतिस्थूल है परंतु सूर्यकी दृष्टिसे परमाणु सूक्ष्म नहीं और देह पर्वतादिक स्थूल नहीं काहे कि, सूर्य परमाणु आदिक पदार्थको तथा पर्वतादिक पदार्थको तुल्यही प्रकाशता है-तैसे-पृथ्वी आदिक कार्य्योंकी अपेक्षा करके पृथ्वीआदि कार्योंके कारण अज्ञानको अनादि, अतुच्छ तथा सूक्ष्मपना है, चैतन्यकी तरफसे नहीं। तू अस्ति, भाति, प्रिय, समान, चैतन्य, स्वमहिमामें स्थितहुआ, अंतःकरण रूप अविद्या, मायादिक उपाधिके योगते-जीवत्व, ईश्वरत्वभाव, ब्रह्मभाव, सर्व दृश्यका साक्षिभाव, तथा सच्चिदानंदादिक विशेष रूप करके अंतःकरणमें तथा मायामें स्फुरण होताहै, परंतु समान विशेष भावमें तो चैतन्य स्वरूप सम है, उपाधि करके समान विशेष भाव है, वास्तव नहीं। जैसे-रूप मात्र, समान अग्नि, सर्व घट पटादिक पदर्थोंमें सूर्यकांतमणिमें तथा सूर्य्यमें सम है, परंतु सूर्य्य और सूर्य्यकांतमणिके संयोगरूप उपाधिके संबंधसे समान अग्निही, दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता; विशेष अग्निभावको प्राप्त होजातीहै, नहीं तो अग्नि निजस्वरूपसे समान विशेष भावमें सम है। तात्पर्य यह कि, जो बुद्धि आदिक सर्व अनात्म दृश्य पदार्थोंकी इयत्ता नाम परिमाण करनेवाला है और जिसकी किसी बुद्धि आदिक दृश्य अनात्म पदार्थोंसे इयत्ता नाम परिमाण करा

जाता नहीं, सोई तुम्हारा स्वरूप है। काहेते द्रष्टासेही दृश्यकी इयत्ता होतीहै, दृश्यसे द्रष्टाकी इयत्ता नहीं होतीहै । जैसे-चक्षु आदिक इंद्रियोंसेही रूपादिक दृश्य पदार्थोंकी इयत्ता होती है रूपादिक दृश्य पदार्थोंसे चक्षु अदिक इंद्रिय गौण द्रष्टाकी इयत्ता नहीं होती । जो सब देश काल वस्तुमें, अस्ति, भाति, प्रियस्वरूपसे, तिन देश कालादिकोंका अधिष्ठान, सर्वदा हाजिर हजूर है, जो हृदयदेशविषे, मन आदिकोंका साक्षी, चेतन्य पुरुष स्थित है, जो मनके चिंतनमें नहीं आता, जो मन आदिकोंको देखनेहारा है, तिसीको तुम अपना स्वरूप ब्रह्म जानो और जो मन वाणीके चिंतन कथनमें आताहै तिसको तुम अज्ञान, माया, तत्कार्य प्रपंच जानो, सो, तुम्हारा स्वरूप ब्रह्म नहीं, वह संसारी मायाका स्वरूप है ।

हे शिष्य! देह आदि माया पर्य्यंत सर्व दृश्य, अनात्म पदार्थ किसी कालमें होतेहैं और किसी कालमें नहीं होते तैसेही--सर्व पदार्थ किसी देशमें होतेहैं, किसी देशमें नहीं होते; तैसेही--सर्व अनात्म पदार्थ आपसमें एक दूसरेमें व्यभिचार स्वभाववाले हैं इसीसे सर्व पदार्थ मिथ्या, जड और अप्रकाश स्वरूप हैं, दुःख रूप तथा मायाके कार्य्यरूप हैं, उत्पत्ति विनाश और न्यून अधिक स्वभाव वाले हैं, तथा आपसमें विरोधी अविरोधी स्वभाववाले और तुच्छ रूप हैं--इसीसे मिथ्या हैं किंतु चैतन्य पूर्वोक्तसर्वपदार्थोंके स्वभाते अतीत है इसीसे सत्य है। यद्यपि पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंका उपादान कारण, माया अज्ञान अपने कार्यकी अपेक्षा करके, अनादि और अतुच्छ है तथा अव्यभिचारी है, सर्व देश काल वस्तुमें व्यापक है, अतीन्द्रिय और सूक्ष्म है; तथापि, जबलग हृदय देशमें प्रत्यक् आत्मासे अभिन्न, ब्रह्म वस्तुका, बोध नहीं हुआ तबतकही अज्ञान वा मायामें, अनादिपना आदिक पूर्वोक्त धर्म है । जैसे जबतक गुफामें वा ब्रह्मांडमें

दीपक वा सूर्य्य उदय नहीं हुआ तबलगही अंधकारमें अनादिपन आदिक धर्म हैं,-किन्तु जब दीपक वा सूर्य उदय हुआ तब गुफामें वा ब्रह्मांडमें, अंधकार खोजनेसे भी मिलता नहीं। तैसेही जब ज्ञानरूपी हृदयदेशमें सूर्य उदय हुआ तब अज्ञान वा मायाका अत्यंताभावहै--क्योंकि घटादिकोंकी न्यांई अज्ञानभी आत्मामें कल्पित है और यह नियम है कि, जो कल्पित होताहै सो मिथ्या होताही है इससे कार्य्यकारण रूप कल्पित प्रपंचको, आत्मा चैतन्यका, सत्ता और स्फूर्ति देना समानही धर्म है, न्यून अधिक नहीं। तैसेही–कल्पित पदार्थोंमें भी स्वअधिष्टानमें, कल्पितत्व धर्मभी समानही है, न्यून अधिक नहीं, अर्थात् कल्पित पदार्थोंमें कार्य कारण भाव नहीं होता स्वप्न पदार्थवत्। ताते–अज्ञानादि देहपर्य्यंत सर्व पदार्थ व्यभिचारी होनेते मिथ्या हैं और तू चैतन्य एकरस अव्यभिचारी आनंदस्वरूप है॥

हे शिष्य! तू साक्षी चैतन्य आत्माही अस्ति, भाति, प्रिय, समानरूप करके समान अग्निकी न्यांई, सर्व देशमें, सर्व कालमें तथा सर्व वस्तुमें हाजिर हजूर और अपरोक्ष स्थित है। यह बात विद्वान् लोक जानतेहैं। अस्ति, भाति, प्रिय, समानरूप तूही अंतःकरण नामक उपाधिके विषे, सच्चिदानंद, बुद्धि आदिकोंका साक्षीरूपकरके विशेष स्फुरण होता है--परंतु समानविशेषमें तुझ चैतन्यका भेद नहीं, जैसे--सर्वत्र व्यापक, रूप मात्र समान अग्निही, काष्ट मथनादि द्वारा दाहकता, उष्णता, प्रकाशता, विशेष रूपकरके स्थित होताहै, परन्तु अग्निका समान वा विशेष स्वरूपसे भेद नहीं--तैसे--सूर्यका प्रकाश सर्वमें एकरस व्यापक है, परंतु वही प्रकाश सूर्यकांतमणिके संबंधसे, विशेष रूपताको प्राप्त होता है। तैसेही–अस्ति, भाति, प्रिय, रूप सर्वत्रसामान्य चैतन्य आत्माही अपनी महिमामें स्थित, अंतःकरण रूप अविद्या मायादिक उपाधिके योगसे, जीवभाव, ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव, तथा सर्व दृश्य

प्रपंचका साक्षिभाव और सच्चिदानंद भाव इत्यादिक विशेष रूप करके अंतःकरणमें तथा मायामें स्फुरित होता है--परंतु समान विशेप भावोंमें सामान्य चैतन्यस्वरूपसे समही है क्योंकि, उपाधि करके समान विशेप भाव है वास्तव नहीं ॥

हे शिष्य ! तू अवाङ्मनसगोचर चैतन्य आनंदस्वरूपहै;तेरेही आनंदकी लेश लेकर सर्व प्रपंच आनंदमान होरहा है । तात्पर्य्य यह कि, यह जो असत, जड और दुःखरूप सर्व दृश्य जगत् है सो तुझ सच्चिदानंद स्वरूपहीसे सत् चित् और आनंदरूप होरहाहै हे साधो ! जैसे अन्नके बनेहुये मोदक, जलेबी आदि मधुरपदार्थ स्वयं मधुर रहित होके भी एक गुडके द्वाराही मधुर होतेहै,आपसमें कौचा कडाही आदि किसी अन्य साधन द्वारा मधुर नहींहोते और गुड किसी पदार्थसे मधुर नहीं होता, क्योंकि वह स्वरूपहीसे मधुर तैसेही देहादिक सर्वपदार्थ, तुझ चैतन्य आत्मा करके ही शोभायमान होरहे हैं और तुझ दृश्यके द्रष्टा आत्माको दृश्य पदार्थ कोई भी शोभायमान नहीं करसक्ते इसीसे--तुम्हारा स्वरूप प्रत्यक् आत्मा स्वयं प्रकाश रूप है, हे बुद्धिमान् शिष्य ! जैसे पंच महाभूत, अपने कार्यरूप भौतिक पदार्थमें, लौकिक दृष्टि करके प्रविष्टभी है तथा अप्रविष्टभी हैं। जैसे सुवर्ण अपने कार्य भूपणोंमें प्रविष्टभी है तथा अप्रविष्टभी है । जैसे--मृत्तिका अपने कार्यरूप सर्व घटोंमें प्रविष्टभी है तथा अप्रविष्टभी है। जैसे--रज्जु अपनेमें अध्यस्त सर्पादिकोंमें प्रविष्टभी है तथा अप्रविष्टभी है । जैसे--स्वप्नद्रष्टा अपने विवर्त स्वप्नपदार्थोंमें प्रविष्टभी है और अप्रविष्टभी है, ऐसेही और भी अनेक दृष्टांत हैं, तैसेही सर्व नामरूपात्मक जगतका विवर्त उपादानकारण सच्चिदानंद स्वरूप तुम्हारा आत्माभी, अपनेमें कल्पित नामरूप संबंध क्रियावान् सर्व पदार्थोंमें प्रविष्ट और अप्रविष्ट दोनों हैं प्रविष्टकैसे है सो सुनो नामरूप संबंध क्रियावान् जगतरूप भूपणोंका ऐसा

अवयव कोई नहीं जो अस्ति भाति प्रिय रूप प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मात्मारूप सुवर्णसे खाली होवे. तात्पर्य यह कि--तू अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा सुवर्ण है और नामरूपात्मक जगत्रूपी भूपणोंमें ऐसा व्यापक होरहाहै, मानो--नामरूपात्मक भूपणोंका स्वरूप, तुझ-आत्मा सुवर्णसे जुदा कुछहै ही नहीं । मानो आत्माने उनका अत्यंताभाव करदिया है, यह बात बुद्धिमान् जानते हैं जैसे--देख, अस्ति भाति प्रिय ब्रह्मरूप सुवर्णके बिना नामरूप भूपण कहीं खोजनेसे मिलते नहीं, किंतु--आत्मारूप सुवर्ण नाम रूप भूपणोंविपे व्यापक है; इसीलिये कहा गयाहै कि-अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्म सुवर्ण नाम रूप भूपणोंविपे प्रविष्ट हैं तैसेही अप्रविष्टभी है--क्योंकि, प्रविष्टपना एक वस्तु विपे दूसरी वस्तुका होता है किन्तु--अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्मरूपी सुवर्ण नामरूपात्मक भूपण पृथक् है नहीं, परन्तु अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्मरूपी सुवर्णका नामरूपात्मक जगत्रूपी भूपणों विपे प्रविष्टपना भी नहीं बन सक्ता; अज्ञजनोंको यद्यपि प्रविष्टपना तथा अप्रविष्टपना, दोनों विरुद्ध धर्म, एक अधिकरणमें नहीं बनसक्ते तथापि यहां मुमुक्षुके बोधवास्ते यह सब वर्णन है, क्योंकि नामरूप कल्पित पदार्थोंके अधिष्ठान आत्माकी तो उन कल्पित पदार्थोंमें, अव्यापकताकी प्रतीति होती है और कल्पित पदार्थोंकी प्रधानता प्रतीति होती है, इसवास्ते-कल्पित पदार्थोंमें अधिष्ठानकी अनुस्यूतता; असंगता; सत्यरूपता तथा मुख्य प्रतीयमानता वा प्रधानता और अद्वैतरूपताके बोधवास्तेही यह युक्ति वर्णन कीगई है । अथवा-अधिष्ठानके अज्ञानसे प्रतीत होता जो यह नामरूपात्मक कल्पित प्रपंच है तिसकी--तुच्छरूपता तथा अत्यंताभावरूपता बोधनके लिये या अधिष्ठानसे पृथक् अन्य पदार्थोंकी सत्ताके अभाव तथा, अधिष्ठानकी प्रतीति

पूर्वकही कल्पित पदार्थोंकी प्रतीति वा, अधिष्ठानकी ही प्राप्तिसे सर्व कल्पित पदार्थोंकी प्राप्ति, तथा अधिष्ठानके स्फुरणसेही कल्पित पदार्थोंकी स्फूर्ति अथवा, अधिष्ठानके श्रवण मनन निदिध्यासन और साक्षात्कारसे अधिष्ठानमें कल्पित सर्व पदार्थोंका श्रवण मनन निदिध्यासन और साक्षात्कार होताहे इत्यादि तत्त्व मुमुक्षुको बोध करनेवास्तेही प्रविष्ट अप्रविष्ट इत्यादि पूर्वोक्त श्रुतिका परिश्रमहे,वास्तवते प्रविष्टता अप्रविष्टता आत्मामें है नहीं दृष्टांत तथा दार्ष्टांतविषे यह अर्थ सर्व विद्वानोंको अनुभव सिद्ध हैं ताते--हे अधिकारी जनो । जो तुम ऐसा मानतेहो कि, हम आत्माको जानते हैं, तो--तुम नहीं जानते काहेते, जो जाननेमें आता है, सो दृश्य होताहै तथा जड अनित्य, किसीका कार्य्य मिथ्या व्यभिचारी तथा न्यूनाधिकाभाव आदि विशेषणोंवाला होता है । जो तुम आग्रहसे आत्माको ज्ञानका विषयही मानोगे तो वेदादिक सर्वशास्त्र और विद्वानोंके अनुभवसे विरोध होवेगा क्योंकि, किसी शास्त्र और विद्वानने आत्माको दृश्य नहीं माना है । अतएव, आत्मा ज्ञानका विषय है, यह विपरीत बुद्धि है यथार्थ नहीं ताते यही जानो कि, सर्व प्रकारसे आत्मा, तुम्हारा स्वरूप, अवाङ्मनसगोचर है। जो वस्तु मनादिकों करके जाननेमें न आवे, स्वयम् अपरोक्ष होवे और मन आदि जिसके द्वारा जानेजाँय अर्थात् उलटा मनादिकोंको प्रकाशे सो वस्तु स्वयंप्रकाश स्वरूप होतीहै । ऐसा लक्षण इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामें ही घटता है अन्य दृश्य वस्तुमें नहीं घटताहै ॥

हे शिष्य!तू चैतन्य आत्मास्वरूप,सुषुप्ति स्वप्न कालमेंभी सोवता नहीं,जो तू सोजावे तो तुझको सोनेका ज्ञान कैसे होवे । इसवास्ते तल और बत्ती बिना, इस देहरूप मंदिरमें, तू चैतन्य दीपक, सर्व काल अखंडज्योतिहै। हे साधुस्वभाववाले अधिकारीजनो! जैसे

कोई उदासीन पुरुष अटारीके चौथे अंबाले पर ऊंची जगहमें स्थित हों तिसके नीचे चारों ओरसे चौरस्ता चलता हो और तिन चौरस्तोंमें आप अपनी कामनाके अनुसार कोई तो जर, जोरू, जमीनके ग्रहण वास्ते, अथवा मोक्षवास्ते, अनेक प्रकारकी स्त्रीपुरुष राजा, साधु, पंडित, वेश्या, हस्ती, घोड़ा, रथ, भंगी आदि इधर उधर जाते, आते हों तथा-शांतिमान्, अशान्तिमान्, क्रोधी, आलसी, अभिमानी, दंभी अर्थात् अशुभ गुणवान् और शुभगुणवान् स्त्री, पुरुष जाते आते हों तथा अनेक विधिके नाटककरनेवाले जाते आते हों तथा बाजा बजानेवाले चलेजाते आते हों। सारांश यह है कि, राजसी, तामसी, सात्त्विकी पदार्थों सहित पुरुष और स्त्री इधरउधर जाते आते हों तथा अनेक विधिके इंद्रजालिक लोक, अपने गुण दोषों सहित आते जाते हों तथा उन्हीं रस्तोंमें अनेक शुद्ध अशुद्ध आदिक दोषवाले पदार्थ भी पड़े हों अनेक विधिके विवाद भी होते रहते हों, परंतु--तिन गुण दोष सहित स्त्री पुरुषादिक पदार्थोंका शुद्धि अशुद्धि सहित रस्तोंका नित्य स्थितऊंचे मंदिरके गुण दोषोंका, रस्तोंके भी गुण दोषोंका ऊंचे स्थित द्रष्टा पुरुषकूं स्पर्शभी नहीं होता। तैसेंही--अन्य देहोंकी दृष्टिसे, यह, पांचभौतिक मनुष्यशरीर, ऊंचे मंदिर स्थानापन्न समझो, पंच ज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मेन्द्रियोंके छिद्र रस्तोंके समान हैं, वा ज्ञानेन्द्रियोंके विषय--शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध, और कर्मेन्द्रियोंके विषय शब्द उच्चारण, ग्रहण, त्याग, गमनागमन, मलमूत्रका त्याग इत्यादि तथा मनादिकोंके विषय रस्तोंके समान हैं। वा सात्त्विकी राजसी, तामसी स्वभावके लियेही सर्व देहइंद्रिय मनादिकोंकी प्रवृत्ति निवृत्ति होती है इसलिये-सत्त्व रज तमगुणही रस्ता (मार्ग) के समान है देहरूप मंदिरके पंचभूतोंको चूना पत्थरकी च्याई जानो, माया वा अज्ञानको भूमिरूप जानो तथा

स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरके अभिमानी जो विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर वा स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोंके अभिमानी जो विश्व, तैजस प्राज्ञहैं वही मंदिरके अभिमानी पुरुषोंके समान हैं। समष्टि वा व्यष्टिस्फुरणात्मक आप अपने२मतोंके अनुसार, जीवकी वा ईश्वरकी फुरणाही मंदिरके बनानेवाले चेतारे (राज) के समान है तथा दश इंद्रियप्राण अपान;समान उदान व्यान ये पञ्चप्राण और नाग,कूर्म कृकल,देवदत्त,धनंजय,ये पंच उपप्राण; चतुष्टय अंतःकरण तथापचीस वा एकसौ पचीस वा सत्ताईस२७ जो प्रकृतिहैं;वही भिन्न भिन्न आने जानेवाले लोगोंके समान हैं. चक्षुआदिक इंद्रियोंकी तथा चक्षु आदिक इन्द्रियोंके सूर्य्यादिकदेवताओंकी जो अपने २ विषयोंमें स्वतंत्रप्रवृत्ति और निवृत्ति है, वही आप अपनी कामनाके समान हैं। सुखदुःख, हर्ष शोक, मान अपमान बंध मोक्षादिक पदार्थहीको सांसारिक पदार्थ (जरजोरूजमीन) के समान जानना। तथा पुण्य पाप रस्तोंकी शुद्धि अशुद्धिके तुल्य है, तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिकी अपेक्षा जो तुरीय नाम चतुर्थी अवस्था है सो चौथे अंबालके समान जाननी पूर्वोक्त सर्व दृश्यके न्यून अधिक भावको जाननेवाला, तथा पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंके भावाभावको तथा तिनके सर्व धर्मोंको जाननेवाला जो "सच्चिदानंद, साक्षी, स्वप्रकाश, निर्विकार, निर्विकल्प, आत्मा है सोई उदासीन पुरुषकी न्याई स्थित तेरा स्वरूप है अर्थात् सो तूही" है। हे शिष्य! तू चैतन्य आत्मा सर्व पदार्थोंमें स्थितभी, निर्विकार, स्थित, है। जैसे आकाश कज्जलकी कोठडीमें स्थितभी निर्विकार और अचल स्थित है।

हे शिष्य! जैसे आकाशमें सप्तऋषियोंसे आदि लेके सर्व चंद्र, सूर्य्यादिक नक्षत्र, तारामंडलका चक्र दिनरात फिरता रहताहै. क्योंकि रात्रिके आदिकालमें, जिस स्थानमें जो नक्षत्र देखनेमें आतेहैं,

रात्रिके मध्यमें अन्य स्थानमें तथा रात्रिके अंत भागमें; वही नक्षत्र अन्य स्थानमें देखनेमें आतेहैं इससे जाना जाताहै कि तारोंका चक्र फिरता रहता है,परंतु ध्रुव तारा अचल एकरस रहताहै, जो अन्य ताराओंकी न्यांई ध्रुवभी चल होवे तो, तिसका नाम ध्रुव नहीं किन्तु अध्रुव है १ तैसे-माया वा, अज्ञान रूप आकाशमें; नक्षत्र ताराके समान देहादिक पदार्थोंका चक्र निरंतर फिरता रहता है कैसे सो सुनो-जैसे अनेक बार जाग्रत्स्वप्न सुषुप्ति अवस्था होती हैं; पुनः मिटजाती हैं, पुनः होतीहैं, पुनःमिट जाती हैं, तैसेही बालक युवा वृद्धअवस्था अनेक शरीरोंमें अनेक बार प्राप्त हुई तथा मिटगई। तैसेही कभी भविष्यत् काल वर्तमान काल होजाताहै वही वर्तमान काल भूतकाल हो जाता है और पुनः पुनः भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल होता रहताहै, तैसेही सत्त्वादिक गुणोंका भी अदल बदल होता रहता है। जो जाग्रतादिक अवस्थाके अदल बदलसे जाग्रतादिक अवस्थाके अंतरभूत स्थूल, सूक्ष्म, कारण, शरीर तथा तिनके अभिमानी विश्व,तैजस,प्राज्ञ तैसे ही पंचकोशोंकाभी अदल बदल जानलेना। तैसेही वैखरी मध्यमा पश्यन्ती परा नाम वाणीका, तैसेही ग्रहण, त्याग,दिन, रात, ज्ञान अज्ञान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, शांति आदिकोंका अदल बदल जानलेना। तात्पर्य यह कि, कभी दैवी गुण; कभी आसुरी गुणोंका चक्र निरंतर फिरता रहताहै, कभी संयोग कभी वियोग होजाताहै, संयोगका वियोग होजाताहै,वियोगका संयोग होजाताहै। तैसेही–मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारका चक्रभी फिरता रहता है, इसीसे पूर्वोक्त सर्व चक्र मिथ्या हैं, परंतु जिसकरके पूर्वोक्त सर्व चक्र फिरते सिद्ध होते हैं वा अदल बदल होते सिद्ध होतेहैं "सोई चैतन्य निर्विकार, निर्विकल्प, अचल, असंग, तुम्हरा स्वरूप

है" जो प्रत्यक् आत्माभी पूर्वोक्त चक्रवत् चलायमान होगा तो अनित्य होजावेगा ॥

इति पक्षपातरहितानुभवप्रशस्काय प्रथमसर्गः ॥ १ ॥

ॐ

द्वितीयसर्ग २.

हे मैत्रेय ! इसी प्रसंग ऊपर एक इतिहास कहता हूँ सो अमृत समान है, जब बुद्धिरूपी श्रोत्रीसे श्रवण करेगा और विचाररूपी पात्रसे पीवेगा, तब तू अमृत रूप होकर अमृत भावको प्राप्त होवेगा पर ऐसा न हो कि, एक कानसे सुने और दूसरे कानसे निकास देवे, इससे प्रयोजन तेरा सिद्ध न होगा ।

अथ ध्रुवाख्यान ।

स्वायंभुव मनुके कुलमें, उत्तानपाद और प्रियव्रत नाम दो भाई चक्रवर्ती राजा हुए। उत्तानपादकी दो स्त्रियां, थीं, एकका नाम सुरुचि और दूसरीका नाम सुनीति था जिनमेंसे सुरुचि राजाको अत्यन्त प्यारी थी, पहिली स्त्री सुनीतिसे, ध्रुवनाम, पुत्र हुआ, वह पिताका अति प्रिय था,. एक दिन जब कि राजा सिंहासन पर बैठा था तब ध्रुव आकर राजाकी गोदमें बैठ गया, तिस काल-में सुरुचि भी राजाके पास बैठी थी। सुरुचिके मनमें यह बात सहन न हुई क्रोधसे ध्रुवसे बोली—अरे ! तू राजाकी गोदसे निकस जा, नहीं तो तेरे प्राण चले जायँगे, जो तेरी इच्छा राजाकी गोदमें बैठनेकी थी तो मेरे उदर विषे आकर जन्म लेता । जब ध्रुव इत-नेसेभी गोदसे न उतरा तब तो बहुत क्रोधमें आके, सुरुचिने एक हाथसे ध्रुवके मुखपर ऐसी चपेट मारी कि ध्रुव मूर्च्छा खाकर धरतीपर गिरपडा । सचेत होने पीछे, बहुत रुदन करता२ अपनी माताके पास आया, ध्रुवको व्याकुल देखके माता बोली कि, हे पुत्र ! किस कारण व्याकुल हुआहै? तब ध्रुवने सब हाल कह सुनाया तब माताने कहा हे पुत्र ! सुरुचिने सत्य कहा है क्योंकि, जब

तेरे जन्मके ग्रह नीचे थे, तभी मेरे उदर विषे आया, नहीं तो उसीके उदर विषे आता। सुन! अब क्रोध किये क्या होताहै? हे पुत्र! राज्य और यश आदि ऐश्वर्य तिसीको प्राप्त होताहै जो तप करता है. ताते राज्यादिक पदार्थोंके भोगनेकी जो तेरी इच्छा होवे, तो गोविंदका भजन कर, जो पूर्णकाम होवे। जो तू पूछे कि, भजन कैसे करूं? तो सुन "अपने आत्मा सहित सर्व पदार्थोंका गोविंदस्वरूप जान"॥

इसप्रकार माताका वचन सुनके ध्रुव वनको चला। आगे सप्त ऋषि ब्रह्माके पुत्र बैठे थे, तिनको देखकर ध्रुवने नमस्कार किया और उन्होंने जब पूछा तो अपना वृत्तांत सबकह सुनाया और प्रश्न किया, हे भगवन्! मुझको गोविंदके भजनका उपदेश करो। ऋषियोंने कहा कि, अरे ध्रुव! अभी तू बालक है और इसी कारण तुझको वैराग्य हुवा है, शीतोष्णादि द्वंद्व तैंने अभी सहन नहीं कियाहै, और संसारका सुखभी तूने भोगा नहींइससे तू उपदेशके योग्य नहीं है। तब ध्रुवने आग्रहसे कहा कि, जो आप मुझको उपदेश नहीं करोगे तो मैं प्राणोंका त्याग करूंगा। तब ऋषियोंने दृढ निश्चय देखके आश्चर्य माना और मनहीमनमें कहने लगे, यह ध्रुव नारायणको जरूर मिलेगा। ऋषि बोले कि, हे ध्रुव! तेरा क्या प्रयोजन है? तब ध्रुवने कहा कि, हे भगवन्! मैं माता-पितासहित ऐसी पदवीको पाऊं जहां आगे कोई मनुष्य न पहुँचा हो। तब ऋषि बोले हे ध्रुव! जो तू आपा त्यागकर गोविंदकी शरण प्राप्त होवे तो तेरी वांछा पूर्ण होवे। अत्रिने कहा हे ध्रुव! जो सर्व दृश्यते अतीत है तथा सर्वमें व्यापक है तिसको अपने मन विषे ऐसा जान कि, सर्व वही है। इस निश्चय करकेही तू वांछित पद पावेगा। पुनः अन्य ऋषियोंने कहा हे ध्रुव! सर्व जगत् जिसकी शरणागत है, तिसीको तू एकाग्रचित्त करके स्मरण कर, जिससे परमद पावे। हे ध्रुव! सर्व कामानाते रहित

होकर "सर्व जगत् विष्णुमय ज्ञान" जो संसारसे निराश होकर प्रेमसंयुक्त, निष्काम होकर तिस जनार्दनका ध्यान करता है, सो मनवांछित फलको पाताहै। तिससे तू भी जगत्की दृष्टि उठाकर, जो सगुण वा निर्गुण जनार्दनमें मनको जोडेगा तो तेरा कार्य्य सिद्ध होवेगा।

इस प्रकार मुनियोंने अनेक प्रकारके उपदेश सहित मंत्रभी उपदेश किया, सो मंत्र यह है "ॐनमो नारायणाय"। अब ध्रुव दृढ निश्चयको धार कर, तपका आरंभ करने लगा. जब ध्रुवका सब हाल उसके पिता राजाने सुना, तब अपना एक अनुचर भेजा और उसके द्वारा कहवाया कि, हे ध्रुव! तू चतुर्थांश राज्य ले और इस निश्चयका त्याग कर। परन्तु ध्रुवने नहीं माना। पुनः कहा कि, अर्ध राज्य ले और इस प्रणका त्याग कर, तब भी ध्रुवने नहीं माना। पुनः कहा कि, सर्व राज्य ले तब भी नहीं माना, बरन् अपने मनमें विचारने लगा कि, देखो एक पाँव संसारसे निराश होकर हरिकी तरफ रखनेसे, मुझे अब सर्व राज्य मिलता है, तो जो मैं सम्यक् हरिका चिंतन करूंगा तो अवश्यही अनंत फल पाऊंगा इसीवास्ते अत्यंत दृढ निश्चय धरकर कठिन तप करने लगा। यहांतक कि, एक अंगुष्ठके ऊपर सर्व शरीरका भार रखदिया। तब यह सर्व हकीकत इंद्रादिदेवता सुनकर आश्चर्यवान् हुए और भयको भी प्राप्तहुये कि, यह बालक हमारा स्वर्ग छीनलेगा। तब इंद्रादिक देवताओंने अनेक प्रकारसे ध्रुवके तपको नष्ट करनेके वास्ते राक्षस, अग्नि, वायु, अप्सरा, कामदेवसे आदि अनेक विघ्न भेजे, परंतु ध्रुव उनके विघ्नोंसे चलायमान न हुआ। क्योंकि तिस कालमें ध्रुव अपने बीच न था, यह जानता था कि, गुप्त और प्रगट सर्वत्र एक नारायणही है। जब सर्व नारायण है तो भय किसते होवे. भय दूसरेसे होताहै--जैसे-जहाँ सर्व अग्निही अग्नि हो, दूसरी काष्ठादि वस्तु न होवे, तब

अग्नि किसको जलावे, अग्नि अग्निको तो दाह करताही नहीं, तैसेही--जहां सर्व वायुही है दूसरी वस्तु नहीं, तो वायु किसको शोषणकरे--तैसेही--जहां जलही जल है, अन्य वस्तु नहीं, तो जल किसको गाले, जल जलको गालही नहीं सक्ता--ताते महात्मा ध्रुव सूक्ष्म और स्थूल परिच्छिन्न अहंकारको त्यागकर "अपने सहित सर्वनारायणहै" इसी दृढ भावनाके कारण "अग्नि आदि सर्व जगत् नारायणहीहै" ऐसा देखने लगा अब उसको भय, मोह कहांसे होवे, पुनः उसी समयमें ध्रुवकी माताभी आकर बहुत विलाप करके कहने लगी--हे पुत्र! मैंने सारे संसारमें एक तुझीको पाया है तू इस कठिन तपको छोड और मुझको सुख दे, क्यों अपना देह सुखाता है। इस प्रकार-अनेक प्रकारका, माताका शब्द सुनकर भी मोहको न प्राप्त हुआ। पुनः राक्षसादिक क्या देखत हैं कि, ध्रुव नहीं, मानो भगवान् विष्णु बैठाहै। विष्णुको देखकर उलटा राक्षसादि भयको प्राप्त हुये। तिसके पश्चात् इंद्रादिदेवता, विष्णुके पास जाके ध्रुवका सब हाल तथा अपना वृत्तांतभी कहते भये। तब विष्णुने यह बात सुनकर, देवताओंको तो बिदा किया और स्वयं देवताओंकी प्रेरणा तथा ध्रुवके ध्यानरूपी डोरीसेभी खिंचा हुआ, जहां ध्रुव तप करता था तहां आये वहां देखा कि, ध्रुव नहीं साक्षात् नारायण बैठा है। इस प्रकार ध्यानकी प्रबलताको देखके विष्णुने प्रसन्न होकर कहा कि, हे पुत्र! तू धन्य है जो दृश्यमान पदार्थोंसे दृष्टि उठाके मुझमें मनको जोडा है. इस हेतु जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग। यह बात सुनकर ध्रुवने नेत्र खोला और देखा कि, मैं भीतर जिसका ध्यान करता हूँ वही रूप बाहर खडा है। देखतेही रोमांच खड़े होगये, प्रेम करके मतवालासा होगया, मन करके प्रभुकी शरण पडा और प्रार्थना

करने लगा. हे प्रभु ! मैं बालक हूँ, कुछ वेद पुराण पढा नहीं हूँ, कैसे तुम्हारी स्तुति करूं पर स्तुति आपकी यही है जो मैं ध्रुव नहीं आपही हो । हे भगवन् ! आपही सर्व जगत्‌के अधिष्ठान हो, आवागमनका आप विषे मार्ग नहीं, आप व्यापक सर्वके अंतर्यामी हो, योगियोंके ध्यानविषे आप विराजमान रहते हो, भ्रम करके हे भगवन् ! मैं मूर्ख आपको बाहर खोजता था, ऐसे नहीं जानता था कि, आप मनमेंही छिपे हुयेहो । द्वैताद्वैत सर्व आपही हो आपही सर्व जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले हो, परन्तु निर्विकार हो । यह बहुत आनंद हुआ है कि आप योगियोंको दुर्लभ होकेभी, मेरे नेत्रोंके सन्मुख हुएहो ।

इस प्रकार ध्रुवकी स्तुति सुनकर विष्णुने कहा हे ध्रुव ! जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग । ध्रुवने कहा--आदि अंत आपही हो आप अंतर्यामी सब हाल जानते हो, तथापि हे भगवन् ! मुझको माता पिता संयुक्त, ऐसा ठौर देओ जो सबसे ऊंची पदवी होवे और जहां जाके फिर कल्प पर्यंत गिरूं नहीं । विष्णुने कहा-- तथास्तु । हे ध्रुव ! तुझको देह त्याग अनंतर वह अटल पदवी मिलैगी जो यावत् चन्द्र सूर्य गतिमान् हैं तावत् स्थिर रहेगी । वरदान पानेपर एक वेर तो ध्रुवको कुछ अहंकार हुआ कि, मैं सबसे ऊंचा हूँ परन्तु उसी समय तपके प्रतापसे तथा प्रभुके दर्शनके प्रतापसे, निरहंकार और शुद्ध हुआहै अंतःकरण जिसका ऐसा जो ध्रुव, सो प्रभुके आगे प्रश्न करने लगा । हे स्वामी ! मैं कौन हूँ अटल पदवी लेनेवाला, आप कौनहो अटल पदवी देनेवाले और अटल पदवीका क्या स्वरूप है तथा जगत्‌का क्या रूप है ? हे यथार्थवक्ता ! यथार्थ कहो कि, मैं कौन हूं ? यह मेरा संदेह दूर करो । विष्णुने कहा हे ध्रुव ! तुझको इन बातोंसे क्या प्रयोजन है इस प्रश्नके उत्तर देनेसे न तू रहताहै, न मैं रहता

हूँ न यह जगत् रह सकताहै, न अटल पदवी रहती है, तिससे यह बात मत पूछ। अन्य प्रसंग पूछ। तब ध्रुवने कहा जो हो सो हो, पर प्रश्नका उत्तर मुझको यथार्थ कहो। तब विष्णुने कहा कि, हे ध्रुव ! वास्तवते; न तू, न मैं, न जगत्, यह सब भ्रम मात्र है, सत्य नहीं, सत्यएक अवाङ्मनसगोचर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का जो साक्षी स्वरूप है-सोई है, तिससे व्यतिरेक वाणीका विलास मात्र है। जैसे--रज्जुमें मिथ्या, रज्जुसे भिन्न, सर्पादिक वाणीके विलास मात्र हैं। इसीकारणसे हे ध्रुव ! मैं अद्वैत हूं। तब ध्रुवने कहा, मेरी कामना पूर्ण न हुई, व्यर्थही भ्रम कर यह निश्चय किया है कि, विष्णुने मुझको अटल पदवी दीहै। जैसे-स्वप्नद्रष्टामें कल्पित जो स्वप्नके नर तिनको स्वप्नद्रष्टा अटल पदवी देवे और स्वप्न नर अटल पदवी लेवे सो भ्रम मात्र है। विष्णुने कहा, हे ध्रुव ! अटल पदवीको मत त्याग। काहेते? ज्ञानीको जैसे पदार्थ प्रारब्ध करके प्राप्त होवें तिन्हींसे प्रसन्न रहताहै। ध्रुवने कहा, जो सर्व तूही है तो, फिर ज्ञानी-अज्ञानी जुदे कहां हैं, पर कहो मेरा स्वरूप क्या है। विष्णुने कहा बडा आश्चर्य्य है, जो स्वप्नतर स्वप्नद्रष्टासे कहै कि, हे स्वप्नद्रष्टा मेरा स्वरूप क्या है--जैसे--सर्प रज्जुसे पूछे मेरा रूप क्या है--जैसे भूषण सुवर्णसे पूछे मेरा रूप क्या है। पर स्वप्नके नर भूषण सर्पादिक जानते नहीं (जड होनेते) कि, हम सर्वथा स्वप्न द्रष्टादिक रूप हैं-हे ध्रुव! यदिस्वप्नके नरादिक ऊंची भुजा करके पुकारें कि, हमस्वप्नद्रष्टा रूप नहीं किन्तु, स्वप्नद्रष्टाते भिन्न है स्वतंत्र हमारी सत्ताहै, तो यह बात तिनकी सुनके विद्वान् लोग हँसेंगे और कहेंगे कि, ये वृथा प्रलाप करते हैं। जैसे कल्पित नाम रूप कहै, कि अस्ति, भाति प्रियरूप जो अधिष्ठान सो रूप हम नहीं सो तिनका कहना हाँसीका आस्पदहै। हे ध्रुव। तैसे तू मुझसे पूछता है मैं कौन हूँ- यह भी हास्यका विषय है। हे !

अहंभाव त्वंभावका मुझमें मार्ग नहीं. केवल स्वयंप्रकाशस्वरूप अद्वितीय मैं हूं । ध्रुवने कहा, तब तो मैंने व्यर्थ देहको कष्ट दिया है, काहेसे कि, जब आप अद्वितीय हो, तो मैं नहीं हूँ, जब मैं ही नहीं, तब अटलपदवीसे, आपसे भजनसे तथा इस लोक परलोकसे क्या प्रयोजन है? विष्णुने कहा, हे ध्रुव! बालकोंकीन्यांई विलाप मतकर, अविद्या करके जो काम हुआ. सो हुआ इसका क्या पश्चात्ताप है, जो तैंने किया है। सो अपनी वासना करके ही किया है, मैंने तेरेको कछु दिया नहीं । ध्रुवने कहा आश्चर्य है कि, मुझ मूर्ख ज्ञाननेत्रोंसे अंधको अंधे कूपमें आपने डाला, क्योंकि, आप चैतन्यसे पृथक् यह अटलपदवीसहित संपूर्ण जगत् अंधकूपरूप है, तथा मिथ्या है ताते हे प्रभु! अब सोई उपाय कहो जिससे इस अंधकूपते निकसें। विष्णुने कहा उपाय निकसनेका यही है कि अपने सहित तथा अटलपदवीसहित सर्व जगत्को गोविंद जान और पश्चात्तापका त्याग कर हे ध्रुव ।जबतक निद्रा दूर नहीं होती तबतक स्वप्ननरको स्वप्नके स्थानोंमें कहीं न कहीं यात्रा करनीही होगी और स्वप्न स्थानोंमें बुद्धिमानोंको न्यूनाधिक भाव है नहीं। हे ध्रुव। "सर्व शरीरसहित स्वप्न जगत् मिथ्या है और स्वप्नद्रष्टा ही सत्य है" यह जाननाही संसाररूपी अन्धकूपसे निकसनाहै। तब ध्रुवने कहा-कुछ चिंता नहींजब सर्व गोविंदहै तो पश्चात्तापभी गोविंदहै और न पश्चात्तापभी गोविंद है विष्णुने कहा अब हम जाते हैं तुम्हारा कल्याण हो और संत तुझको मिलेंगे।

ऐसे कहकर विष्णु अंतर्धान हुये और ध्रुव किसी वनमें विचरने लगा। ध्रुव अपने मनमें विचार करनेलगा कि, संत अचाह होते हैं, मुझ सचाहको संत कैसे मिलेंगे, सचाह पुरुषसे वृक्षभी भयपाते हैं ताते मैंसचाहसे अचाह होऊँ, तव संतसंग हो। पुनः यही निश्चय

किया कि, सर्व नारायण है, जब सर्व नारायण है तो लोक पर-
लोकसे क्या प्रयोजन है ?

हे मैत्रेय! ध्रुव ऐसाही विचार कर रहा था कि, वामदेवादि संत
आगये कैसे संत थे कि, देह अभिमान रूपी पहरावेते नग्न थे और
यही कहतेथे कि, हम अवाङ्मनसगोचरभी सर्वरूप हैं तथा
सर्वरूप हुये भी हम द्रष्टा असर्वरूपहैं जैसे स्वप्न द्रष्टा स्वप्न प्रपं-
चसे अवाङ्मनसगोचर हुआभी स्वप्नमें सर्वरूप है, तथा
सर्वरूप होकर भी असर्वरूपहै--और सर्वभोक्ताभी हम अभोक्ता
हैं। अभोक्ताभी हम भोक्ताहैं, विकल्पसहितभी हम निर्विकल्प
हैं। नीच, ऊँच, ग्रहण त्यागादिक सर्वरूप हमही हैं। यह संपूर्ण
नामरूप प्रपंच हमारे स्वरूपभूत सूर्य, तथा लाल किरणोंकी
दमका है। सविकार सहित, स्वमाया कर प्रतीत होते हुयेभी
हम निर्विकार है, चलतेभी हम अचलते हैं और अचलते भी
हम चलते हैं। उपाधिद्वारा करतेभी हम अकरते हैं; अकर्ताभी
हम कर्ता है निद्रा सहितभी निद्रारहित है, निद्रा रहितभी सनिद्र
हैं। इस रीतिसे परस्पर सर्व पदार्थोंको उलट पलट कर लेना;
शरीरसहितभी अशरीर हैं, माया अविद्या सहितभी, माया
अविद्या रहित हैं, निर्गुणरूप हुयेभी हम स्वमायाकर सगुणरूपहैं,
मन वाणीके अविषय हुये भी सर्व मन वाणीके विषयरूपभी
हमही हैं। अरूपभी स्वरूप है, अरस भी हम सरस हैं,
सशब्दभी अशब्दरूप हैं, अशब्द भी सशब्दरूप हैं, अस्पर्श
भी सस्पर्श रूप हैं, सस्पर्शभी अस्पर्श रूप है, सगंधभी निर्गंध
रूप हैं, निर्गंधभी सगंधरूपहै, जैसे स्वप्नद्रष्टा निद्रा कर स्वप्नमें
सर्वरूपप्रतीत होता हुआ भी, वास्तवते शुद्ध, निर्विकार, निर्विकल्प
अद्वितीय, असर्वरूप है। पंचकोशोंते रहितभी हम चैतन्य पंचको-
शरूप हैं, अपंचकोश हुयेभी पंचकोश रूप हैं, षड्भावविकारोंते

रहितभी हम चैतन्य षट्भावविकार रूप हैं, षट्भाव विकार हुये भी षट्भाव विकारोंते रहित है।

सत, रज, तम गुणोंते तथा तिन गुणोंके कार्य जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर तथा इन्द्रिय, तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा प्राण और प्रकृतियोंते असंगीभी संगी हैं, तथा संगीभी असंगी हैं। तात्पर्य यह कि सर्व नाम रूप स्वरूपभी हम नामरूपते रहित हैं और सर्वनामरूपते रहित भी हम चैतन्य नाम रूप स्वरूपहैं। सर्व शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, तथा पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व तथा प्रकृतिरूपभी हम चैतन्यही हैं। और इनते रहितभी हमही चैतन्य हैं। काम क्रोधादिरूप भी हमही स्वप्न द्रष्टारूप हैं, तथा तिनते रहित तिनका साक्षीरूपभी हमही हैं। अमानित्वादिक दैवी गुण तथा दम्भादिक आसुरी गुणरूपभी हमही हैं तथा तिनते रहित तिनका साक्षीरूप असंगी हमही चैतन्य हैं। ज्ञान, अज्ञान, शुभ, अशुभादि सर्व द्वंद्वरूप स्वप्नभी हमही हैं, तथा तिनते रहित तिनका द्रष्टारूपभी हमही स्वप्नद्रष्टा हैं, स्वप्नमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि मूर्तिरूप हुये भी, हम स्वप्नद्रष्टा असंग, निर्विकार, तिनके प्रकाशक, चैतन्य, साक्षीभूत हैं। षट्ऊर्मी रूपभी हम षट्ऊर्मी रहित हैं।

जीव ईश्वर रूपभी, हम चैतन्य, जीव ईश्वर भावते रहित हैं। आत्मानात्मा भेद सहितभी हम चैतन्य, तिस भेदसे रहित हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक, सर्वचेष्टा करतेभी हम चैतन्य अकर्ता हैं। फुरणारूपभी हम चैतन्य वास्तवते अस्फुररूप हैं। माया कर महाकर्ता, महाभोक्ता, महात्यागी, हम चैतन्य आत्मा, वास्तवसे अकर्ता अभोक्ता, अत्यागी हैं। सर्व देश, काल, वस्तुरूपभी हम पूर्ण

चैतन्य आत्मा वास्तवते, देश काल वस्तुते तथा तिनके भेदते रहितहैं। धर्माधर्म रूपभी, हम चैतन्य वास्तवते धर्माधर्मतेरहितहैं सुख, दुःखरूपभी, हम अनंतात्मा वास्तवते, सुख दुःखते रहित हैं। माया अविद्यामें, हम चैतन्य सूर्य्यका वा आकाशका आभासपडताहै तिसीको जीव ईश्वर कहतेहैं और तिन आभासोंमेंही सर्वज्ञतादिकधर्म्महैं समुद्र तथा तलावडीमें सूर्य्य वा आकाशके आभासवत् जैसे-सूर्य्य वा आकाशरूप-बिम्ब समुद्र वा तलावडीके आभास सहित तिनकी सर्वचेष्टाते निर्लेप असंग शुद्ध निर्विकार है-तैसे हम बिम्बभूत चैतन्य माया अविद्या सहित जीव ईश्वर आभासोंकी सबचेष्टाते रहित निर्विकार निर्विकल्प हैं, हम चैतन्यही इस नाम रूप जगत्की स्वमाया कर उत्पत्ति पालन संहार करतेहुयेभी वास्तवते निर्विकार हैं-स्वप्नद्रष्टावत्। हम नित्य सुख चिद्रूपही सर्व जगत्करपूज्यहैं-जैसे-स्वप्नजगत्करस्वप्नद्रष्टाहीपूज्यहोताहै।

हम चैतन्यही इस मनआदिक जड जगत्की चेष्टा करातेहैं जैसे तंत्री पुरुष जड पुतलियोंकी चेष्टाकराते हैं। हम चैतन्य आधार रहितभी सर्वके आधारहैं। हम चैतन्यही सर्व मन आदिक नामरूप जगत् के प्रकाशक द्रष्टा अधिष्ठान हैं। हम चैतन्यका प्रकाशक द्रष्टा अधिष्ठान अन्य नहीं इसीसे-हम चैतन्य स्वयंप्रकाश रूपहैं। भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालोंके तथा तीनों कालोंमें वर्तने वाले पदार्थोंके हम चैतन्यही सिद्धकर्ता हैं हमारा कोई सिद्धकर्ता नहीं। हमारे चैतन्य स्वरूपमें ज्ञान अज्ञान नहीं जैसे-सूर्य्यमें दिन राति नहीं उलटा सूर्य करही दिनरात्रिकी सिद्धि होती है तैसे ज्ञान अज्ञानकी हम चैतन्य करही सिद्धि होती है। सुख दुःखादिकोंके साक्षी हम चैतन्य आत्माको सुख दुःखकी प्राप्ति निवृत्ति वास्ते किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं

जैसे-दो पुरुषोंके झगडेमें, साक्षीपुरुषको, तिनकी हानिलाभमें किंचित्भी कर्तव्य नहीं—काहेते-अकर्तव्यमें कर्तव्यबुद्धिही भ्रांति है ।

भ्रांतिकी निवृत्ति करने वास्ते वेदांत शास्त्रका विचाररूपचिंतनही मुख्यसाधन है अन्य जप, तपादि साधन नहीं—जैसे--अंधकारके दूरकरनेका साधन, केवल दीपकका चसाना (जगाना) है अन्य नहीं । प्रारब्ध करके प्राप्त हुआ जो सुख दुःख तथा सुख दुःखके साधन, स्त्री पुत्र इष्ट पदार्थ तथा ज्वरादिक अनिष्ट पदार्थहैं तिनको अनुभव करते हुयेभी, हम चैतन्य सम हैं । इसी समता रूप पुष्पों कर, नित्य निजात्मा देवका, यत्न बिना पूजन होता है । अपने स्वरूपका सम्यक्, अपरोक्ष जानना रूप पुष्पों करही सम्यक् देवका पूजन होताहै । अथवा शम, दमादिक दैवी गुणही आत्मदेवकी प्रसन्नता वास्ते पुष्प हैं । जन्मना, मरना, हर्ष, शोक, पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, बन्ध, मोक्ष, श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि सर्व, देवके आगे पुष्प हैं । हेयोपादेय बुद्धि रहित, प्रारब्धयोग कर, जो प्राप्त होवे, सोई आत्मा देवको भोग लगावे तथा आपा परिच्छिन्न अहंकारको देवके आगे अर्पण करना यही देवकी पूजा है । मानो हम चैतन्य मनके पास बैठे हुये, निरंतर मन-रूप पुजारीकी पूजाके द्रष्टाहैं तथा मनरूप पुजारीके भी द्रष्टा हैं ।

हे संतो । पूर्वोक्त जितना विचार कथन चिंतन कराहै, सो सर्व मायारूप मनका धर्म है हम चैतन्य इस कथन चिंतनसे रहितहैं देहरूपघटकाही गमनागमनहै, टूटना फूटना है तथा घटमें जलका शुद्ध मलिनपनाहै स्थिरचलनपनाहै वास्तवते जलमें प्रतिबिम्बका भी नहीं है, तो मुझघटाकाश रूप असंग चैतन्य बिंबका, पूर्वोक्त कोईभी धर्म कैसे होगा अर्थात् नहीं है, ताते हमारीहमकोनमस्कार है, हमकोही सर्व दृश्य नमस्कार करताहै हमारीही जय है ।

जैसे-स्वप्नद्रष्टाकोही स्वप्न सृष्टि नमस्कार करती है, स्वप्नद्रष्टा विना स्वप्नसृष्टि सिद्धही नहीं होती, यही नमस्कार है तद्वत् इस मिथ्या नामरूप प्रपंचके हमही पूज्य हैं, इस पंचभूत रूप संघात देवलमें, हम साक्षी चैतन्यही लिंगरहित शिवलिंग हैं। कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीनों कांडोंकर हमहीं (नित्य सुख चिद् रूप आत्माही) मुमुक्षुओंको प्राप्त होनेयोग्य हैं-जैसे फल, पत्र और पुष्पोंकी उत्पत्ति नाशमें वृक्ष ज्योंका त्यों है; तैसे यह देह इंद्रिय, सुखदुःखादिक, सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें अभाव होनेसे, जाग्रतादि अवस्थाओंमें उत्पत्ति होनेसे, तथा जाग्रतादिकोंकी उत्पत्ति नाश होनेसे भी हम आत्मा ज्योंके त्यों हैं।

हे मैत्रेय ! इस प्रकार, उत्तम उदार अमृतरूप वाणी ध्रुव सुनकर आश्चर्यवान् हुआ और उसके रोम खडे हो आये, शास्त्ररीति अनुसार विनयपूर्वक उन महान्पुरुषोंको प्राप्त हुआ।

पराशरने कहा, हे मैत्रेय ! ध्रुव माताका वचन सुनके, वैराग्यको प्राप्त हुआ पर तुझको मैंने अनेक वचन वैराग्यके कहेहैं तौ भी तुझको वैराग्य नहीं हुआ। मैत्रेयने कहा-मुझको ध्रुवकी न्याई किसीने दुःख नहीं दिया जो वैराग्य होवेपर कथा ध्रुवकी कहो। पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! कथा ध्रुवकी यही है, जो अपने सहित सर्वको वासुदेव (निश्चय कर) जाने। मैत्रेयने कहा-जाननेसे सर्व वासुदेव होता नहीं स्वतः सिद्धही सर्व वासुदेव है, जाननेसे क्या प्रयोजन है। जो कृत्रिम है सो नाशी है और जो अकृत्रिम है सो अविनाशी है। मैं आत्मा, सापेक्षक शब्दोंते तथा शब्दोंके अर्थते रहित हूं मुझ विषे जानने न जाननेका मार्ग नहीं। पराशरने कहा-देह अभिमान रूपी कपटकी कफनी पहरे हुये, खान पानादिक विषयोंमें बँधा है और कहता है सर्व मैंही वासुदेव हूं, यह कपट है। मैत्रेयने कहा-सर्वव्यापक

इसीकारण हूँ जो कामनामें तथा सर्व विषयोंमें, चाहना अचाह-नामें, कपटमें खानपानमें,कपट करनेवाले इत्यादि सबमें व्यापक।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय। जबलग जीवता न मरे और मरकर न जीवे तबलग अमृत (निश्चयका) न पावेगा--मरन नाम देह अभिमानका सांगोपांग त्यागना है । त्रिकालाबाध्यस्व-रूप शिवसाक्षी रूप आत्मा मैं हूँ; कदाचित् भी देहादिक संघात मैं नहीं इसी दृढ निश्चयका नाम जीवनाहै। हे मैत्रेय। जो पुरुष चाहनामें बँधाहै सो नारायणसाक्षी निज आत्माकी पहिचान नहीं करसक्ता। अज्ञानी कहताहै कि मैंने सारे रातदिन भजन गोविं-दका किया पर दर्शन न हुआ। हे मूर्ख ! विचारनेत्रोंसे अंध। गोविंद आत्मा तुझको कैसे प्राप्त होवे, काहेते; गोविंदको प्राप्त होनेवालेका गोविंद निज रूप है, तिसका तू अभ्यास करता नहीं, वरन् उससे उलटा इंद्रियोंके विषयसुखकी प्राप्तिका अभ्यास कर-ताहै, माता पितादिक संबंधी मरे तैंने अग्निमें जलाये परन्तु यह न समझा कि मेरी अवस्थाभी यही होगी, उलटा माता पितादिक संबंधियोंसेही अहंता ममता अधिक बढाई। ताते शरीरको नाशी और आपको अविनाशी जानकर, बंध मोक्षके कर्तव्यसे रहित हो, पर तैंने तो मानाहै कि, मैंपरमऋषि हूँ, पंडित हूँ, परमहंस हूँ, तब जिसमें मन वाणीका मार्ग नहीं, तिसको तू देह अभिमानी कैसे जानेगा ? हे मैत्रेय। जिस अवाङ्मनसगोचर पदविषे संत स्थितहैं तिस पदको वेदभी लज्जमान होकर कथन करताहै। हे मैत्रेय। जिनने निजस्वरूप जानाहै कहना तिनका चुप है वे अपने स्वरूपके पहिचानने विषे लज्जाते रहित हुये हैं, इस झूठे देह रूप पहरावेते नग्न और निजस्वरूपमेंही मग्न हुये हैं। मैत्रेयने कहा--कथा ध्रुवकी कहो. पराशरने कहा कथा ध्रुवकी यही है कि, जाने सर्व हरि है। हे मैत्रेय। ध्रुव

माता पितादिक सर्व जगत्की लज्जाको त्यागकर गोविन्दस्वरूप होगया, पर तेरी क्या शक्ति है कि, उसकेजैसाहोवे मैत्रेयने कहा-मैं उस जैसा नहीं होता पर कथा उसकी कहो। पराशरने कहा-उस जैसा नहीं होता तो कथा उसकी सुननेसे क्या प्रयोजन है? मैत्रेयनेकहा-तुम मेरे गुरु हो उस जैसा करो। पराशरने कहा-श्रद्धा तेरी जगत्के पदार्थों में है मेरे में नहीं, इससे कैसे करूं?

मैत्रेयने कहा-हेगुरो! मुझको अतीत करो अपना शिष्य करके मंत्र उपदेश करो, शिखा सूत्रको लेकर परमहंस बनाओ, भेपका भगवॉ वस्तर देओ और कंठी बाँधो। पराशरने कहा मेरे करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं क्योंकि, एक पैसेकी गेरी लेकर कपडेरंगले शिखासहित रोम मूछ नाईसे दूर करवादे, यज्ञोपवीत आप उतारदे। बहुत भेपधारी हैं उन्होंका चेला होजा, एक पैसेकी दशकंठी मिलती है सोलेकर बांधले, मंत्र उन्हीं अतीतों भेपधारियोंसे सुनले। हे मैत्रेय! इन देह इंद्रियादिकोंके बाहरके व्यवहारके त्यागनेसे अतीतनहीं होता-काहेसे कि, देह इंद्रियादि संघातहीकर्म हैं, संघात संघातसे अतीत नहीं होसक्ता। जो देहके कर्त्तव्योंके त्यागसे अतीत होता होवे, तो आलसी, दरिद्री, रोगी, चिंतातुर, मूर्च्छित, इत्यादि मनुष्यभी(देहके कर्तव्योंके त्यागसे)अतीतहोवें परन्तु अतीत होनेका फल, जो जन्ममरणादिकोंकी निवृत्ति है सो तिनको नहीं होती; ताते कायिक वाचिक, मानसिक, चेष्टामें परिच्छिन्न अहंकारका त्याग कर, जो ठीकठीक अतीत होवे। क्योंकि प्रथम अहं होता है, पश्चात् त्वं मम होता है जब अहंही; नहीं तब त्वं मम और ममताके विषय, देह पुत्रादि पदार्थ, कैसे होवेंगे किंतु नहीं होवेंगे-ताते त्यागके अहंकारपनका भी त्याग कर। हे मैत्रेय! अज्ञान आदि देह पर्यंत कार्य्य कारण प्रपंचके पहरावेसे जो नग्न है सोई अतीतहै। तात्पर्य्यहकि, जैसे आकाश

सबमें स्थित भी सबसे नग्न अतीतहै; जैसे-रज्जूमें सर्पादिकोंकी प्रतीति होते भी रज्जु सर्पादिकों ते अतीत नाम नग्न हैं । तैसे-तू चैतन्य आत्माही इन देहादि प्रपंचते नग्न है, अन्य कोई अतीत नहीं । मैत्रेयने कहा-मैंजलता हूँ दुःखसे छूट जाऊँगा और सुखको पाऊँगा, अतीत नहीं होता परंतुदेहको जलाता हूँ । पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! इस अनादि संसारमें लाखों बार,तेरी और सब लोगोंकी देह उत्पन्न होकर जलती खाकहोती, पृथ्वीमें मिलती आई हैं परंतु दुःख न मिटे, ताते जड़देहके जलानेसे दुःख नहीं मिटता। हे मैत्रेय! बंबीके मारने जलाने गालनेसे सर्पनहीं मरता, विष सर्पमें है, बंबीमें नहीं । तैसे-देहरूप बंबीमें, स्थित अहंकार रूप सर्पमें, जन्म, मरण, बंध, मोक्ष, अहं, त्वं, हर्ष, शोक, सुख दुःखादिक विष हैं,देह रूप बंबीमें नहीं।जब तू अहंकाररूप सर्पको ज्ञानाग्नि करके राख करेगा, तब अहंकार रूप सर्पसहित पञ्चभूत देहरूप बंबी भस्मीभूत हो जावेगी ।अहंकार रूप कारणके नाशसे नाम, रूप, जगत् कार्य यत्न बिना आपसेही नाश होगा । जैसे-दीपकके प्रकाशकरनेसे यत्न बिना अंधकार नाश होता है।प्रकाशके होनेसे अंधकार जातानहीं दीखता कि, कहां गया ताते, हे मैत्रेय । सर्व अनर्थोंका देनेवाला जो देहादिकोंविषे अहंकार है, तिसको जब तू जलावेगा (राख करेगा) तब शेष जो पद रहाहै जिसमें मनवाणीका मार्ग नहीं।जो मैंवर्णन करूं और तू सुनेपरंतु देहके जलानेसे सुख होता नहीं।देहके जलानेसे सुख हो तो सतीको भी सुख होवेगा सो होता नहीं क्योंकि, आवागमनसे छूटनेका नाम सुख है इसलिये तुझे भी जन्म मरणादि अहंकारके जलानेसेही सुख होगा।मैत्रेयने कहा, अहंकार मुझ चैतन्यस्वरूप विषे है नहीं और बिना हुये वस्तुका त्याग करना लज्जाका कामहै।जबअहंकार

मुझमें है नहीं तब क्या त्यागूँ और क्या ग्रहण करूं। जैसे—आकाशको भूत भौतिक पदार्थोंका ग्रहण त्याग नहीं बनता। हे गुरो! जैसे--मल स्पर्श बिना मलके दूर करनेका उपाय करना मूर्खता है। ग्रहण त्यागते रहित यत्न विनाही, निर्विकल्प निर्विकार मुझ चैतन्यमें स्वतःही अहंकारका अत्यंताभाव है, लाखों तहरके अहंकार अरु कोटानकोटितरहके संकल्प, कोटानकोटि तरहके निश्चय हजारों तहरके चिंतन,हजारों तहरके शोक मोहादिक,हजारों तरहके खानपान और शयनादिक तथा अनेक प्रकारके चक्षु आदिक इंद्रियोंके रूपदर्शनादिक व्यवहार। सारांश यह कि,मनादिक धर्मी और तिन अनात्म मनादिकोंके संकल्पादिक धर्म, मुझ अवाङ्मनसगोचर; चैतन्य पूर्ण आकाश विषे बिजलीमेघादिवत् हजारों दफा होकर मिट जातेहैं और उत्पन्न होते हैं, परंतु मुझ चैतन्य आकाशका रोम मात्रभी छेदन नहीं होता। जैसे—भूताकाशमें मेघ, बिजली, वर्षा, अंधेरी, अंधकार, प्रकाश, सूर्य्य, चांद, तारामंडल, स्वर्ग, नरक, मलिन, और शुद्ध पदार्थ इत्यादिक अनेक पदार्थ होतेहैं, पुनः मिटजातेहैं; परंतु आकाश ज्योंकात्यों है। जैसेसमुद्रमें तरंग, बुदबुदा, फेन,उत्पन्न होकर मिटजाते हैं परंतु समुद्र ज्योंकात्यों है। तैसे—मुझे चैतन्य समुद्रविषे, अनंत ब्रह्मांड रूपी तरंग उत्पन्न होकर मिट जातेहैं परन्तु मैं चैतन्य ज्योंकात्यों हूँ पराशरने कहा—हे मैत्रेय! बडा आश्चर्य्यहै,अहंकार विना,वा अंतःकरण बिना, "मुझनिर्विकल्प चैतन्यविषे अहंकार है नहीं औरजगत् रूप तरंग होने मिटनेसे हानि लाभका मुझमें अभावहै" यह वृत्तांत तुझनिर्विकल्प चैतन्यको कैसे मालूम हुआहै। हे मैत्रेय! "मुझ चैतन्यमें अहंकार नहीं, यह जाननाही अहंकारहै। इसीसे कहताहूँ, तू अवाङ्मनसगोचर निजस्वरूप विषे, यह जानना रूप अन होता अहँकारका त्याग कर" जो सुखी होवे। मैत्रेयने कहा,मैं सुखी नहीं

होता क्योंकि सुखी होना न होनाभी अहंकारही है, पराशरनेकहा यही समझ संतोंकी है परंतु तैंने तो निर्विकल्पको सविकल्प जाना है और सविकल्पको निर्विकल्पजानाहै। हे मैत्रेय! तू सम्यग्दर्शी हो जो संत पदवीपावे। मैत्रयने कहा-जबमैंही नहींतो संत पदवीकहां है और संत कहां हैं पराशरने कहा--हे मैत्रेय! जब तू नहीं तब यह अपना अभाव तैंने जानाकैसे? जैसे-वंध्यापुत्रशशशृंगअपनेअभावको जानते नहीं परंतु तू चैतन्यभावरूप नाम सत्यरूपहै। परंतु तुझ चैतन्यमें जाननेका मार्ग नहीं. काहेते, तुझ सच्चिदानंद स्वरूपतेभिन्न असत् जड दुःखरूप सर्व कल्पित पदार्थ हैं और सर्वत्र कल्पित पदार्थ अधिष्ठानको जानतेही नहीं केवल चैतन्य अधिष्ठान ही अपनेमें कल्पित पदार्थोंको जानताहै बुद्धिद्वारा अद्वैत होनेते जानताभी नहीं. काहेते, मनकी कल्पनारूपविकारसे आत्मानिर्विकल्प है, जाने तो निर्विकल्प नहीं इस्से जानता हुआभी आत्मा निर्विकल्पहै स्वप्नद्रष्टावत्। जैसे-रज्जु शुक्तिमें कल्पित सर्पदंडमाला रजतादिक अपने अधिष्ठान शुक्ति रज्जुको जानते नहींतथा जैसे स्वप्ननर स्वप्नद्रष्टाको जानतेही नहीं, स्वप्नद्रष्टा चैतन्यही जानताहै जैसे--स्वप्न नर स्वाधिष्ठानको जानतेही नहीं, कि हमारा कोई स्वामी है वा नहीं, रूपवान् है वा नहीं, महानहै वा तुच्छहै, सत्य वा असत्यहै, इत्यादि। तैसेही--अधिष्ठान रज्जुशुक्ति सुवर्णादिकभी अपनेमें कल्पित--सर्प, दंड, माला, रजत भूषणादि पदार्थोंको जानतेही नहीं। जैसे--स्वप्नद्रष्टा अपनेमें कल्पित स्वप्ननर घट, पट, सर्पादि नाम रूपको जानताही नहीं कि, स्त्रीपुरुष घटपट सर्पादिक हैं वा नहीं, रूपवान है वा नहीं, किसी दूसरेने हममें कल्पना किया है वा नहीं, दीर्घ कालके प्रतीतिमान् हैं वा अल्प कालके प्रतीतिमान् हैं; उत्पन्न

होकर नष्ट होतेहैं वा नहीं, सुखरूपहैं वा दुःखरूपहैं, व्यावहारिक सत्तावालेहैं वा प्रातीतिक सत्तावालेहैं, सत्यरूपहैं वा असत्य रूप हैं, अनादिहैं वा सादिहैं, सोते जागते मूर्च्छा पातेहैं वा नहीं बन्ध मोक्षवान्हैं वा नहीं, माया अज्ञानके कार्य्यहैं वा नहीं, दृश्यरूपहैं वा नहीं, हर्ष शोकके देनेवालेहैं वा नहीं, क्रियावान्हैं वा नहीं, विकार-वान्हैं वा नहीं, आपसमें कार्यकारण भाववालेहैं वा नहीं, इत्यादिक उपरोक्त अनेक विकल्पोंको स्वप्नद्रष्टा अधिष्ठान जानताही नहीं अथवा उपाधिसे जानताभी है तो वास्तवते नहीं, अद्वितीय निर्विकार होनेते, क्योंकि जानना द्वैतमें होताहै। स्वप्नकल्पित पदार्थोंकी अधिष्ठानते;पृथक् सत्ता होती नहीं किंतु तिस स्थलमें स्वप्नद्रष्टा ही है;स्वप्ननर, घट, पट, रज्जु, सर्पादिकोंका अत्यंताभाव है बल्कि स्वप्नद्रष्टा आपको भी नहीं जानता आत्माश्रय दोष होनेते। जानना जुदा पदार्थहै जिसको जानता है वह जुदा पदार्थ है और जाननेवाला जुदा पदार्थहै। जानना अहंकार त्रिपुटी बिना होता नहीं और आत्मामें अहंकार है नहीं तो हे मैत्रेय! तू चेतन्य अधिष्ठान कैसे जानता है कि; कल्पित अहंकारादिक मुझमें है ही नहीं। मधुरता शीतलता द्रवतारूप जल, अपनेमें अन्यकर कल्पित तरंगोंको जानताही नहीं, तैसेही अस्ति भाति प्रियरूप, तुझ आत्मामें, अन्यकर कल्पना स्वरूप जगत्को तू कैसे जानता है। जैसे--मंदिरमेंका दीपक, मंदिर और मन्दिरमें स्थित पदार्थोंको जानताही नहीं, अपनी महिमामेंही स्थित हैं, तैसेही मंदिरमें स्थित पदार्थभी, अपने प्रकाशक दीपककोभी नहीं जानते और अपनेकोभी नहीं जानते। मैत्रेयने कहा—ठीक है वह रज्ज्वादिक अधिष्ठान तथा दीपकादिक जड़ पदार्थ हैं परन्तु मैं चेतन्य हूँइसी कारणसे दृष्टांत विषे, रज्जु आदिकोंके और मुझ चैतन्यके विवर्त; स्वप्नके पदार्थ अपने अधिष्ठान स्वप्नद्रष्टा को ठीक ठीक

जानते कि हमारा कल्पक स्वामी कौन है ? परन्तु स्वप्न पदार्थोंके अधिष्ठान चैतन्य स्वप्नद्रष्टाकरही कल्पित स्वप्न पदार्थोंकी सिद्धि होतीहै, अन्य कर नहीं । जो मैं स्वप्नद्रष्टा स्वप्न पदार्थोंको न प्रकाशूँ तो स्वप्न पदार्थोंको ज्ञानही नहीं हुआ चाहिये. क्योंकि, अविद्यामें वा अन्तःकरणमें चैतन्यके आभाससे भी, स्वप्न कल्पित पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता क्योंकि, अविद्या बुद्धिकी न्याईं आभासभी जड़ कल्पित होनेसे कल्पितका प्रकाशक नहीं होता और अन्य कोई स्वप्नका प्रकाशक है नहीं; इससे शेष मुझ चैतन्य; स्वप्नद्रष्टाकरही स्वप्नके अहंकारादिक पदार्थ सिद्ध होतेहैं। तैसेही-सुषुप्ति समाधिआदिक अवस्थामेंभी-अज्ञान औरसमाधि सुख, मुझचैतन्यकरहीसिद्ध होताहै। यद्यपिजाग्रत्की मुवाफिक सुषुप्ति समाधि अवस्थामें कहना सुनना, चिंतनकरना, आपको द्रष्टा, साक्षी, प्रकाशक, निर्विकार निर्विकल्प; सत्‌चित् आनन्दस्वरूप, ज्ञानी, अज्ञानी इत्यादिक विशेषणों संयुक्त मानना औरदृश्यको असत्, जड़दुःखरूप, कल्पित मानना नहींहै, क्योकि कहने चिंतन करनेके साधन वाकमनादिकोंकी अपने उपादान कारण अज्ञानमें लीनताहै, तथापि सुषुप्तिमें अज्ञानके अनुभव और आवृत सुखका तथा समाधिमें निरावरणसुखके अनुभवका बाध नहीं होता बरन् अनुभवपूर्वकही स्मृति होती है। जो कल्पित पदार्थोंका ज्ञाता प्रकाश चैतन्य नहीं मानोगे तो स्वप्नपदार्थोंके न्यूनअधिकताके वृत्तांतका ज्ञान, सुषुप्तिके अज्ञानका ज्ञान, समाधिके सुखका ज्ञान आदि सर्वके अनुभव सिद्धकथाका विरोध होवेगा ताते मुझनिर्विकार चैतन्यकरकेही कल्पित अहंकारादिकोंके भावाभावकी सिद्धि होतीहै, अन्यकर नहीं । पराशरनेकहा-हेमैत्रेय । अवाङ्मनसगोचर जोतुम्हारा हमारा तथा सर्वकल्पितजगत्कास्वरूपहै, सोउसकाउपाधिविनाप्रकाश्यप्रका-

शकभाव नहीं बन सकता क्योंकि,सुपुप्तिमें यद्यपि अंतःकरण जातकी न्याईं नहीं भी है तथापि अज्ञानमें संस्कार रूप करके स्थित है और तिसकालमें अज्ञानही उपाधि है। तैसेही-विद्वानपुरुपको समाधि अवस्थांमें भी, अंतःकरण यद्यपि जाग्रतकी न्याईं स्पष्ट नहीं भी है तथा स्वरूप अज्ञात अवस्थाकी न्याईं अज्ञानभी नहीं है तथापि प्रारब्ध क्षय पर्य्यंत ज्ञानाग्नि कर, बाध रूप दग्ध अज्ञान तिस समाधि कालमेंभी है, सोई तिस कालमें उपाधि है, तिसी को लेसा विद्या भी बोलते हैं। जैसे-अश्वत्थामाके बाणकरके दग्ध अर्जुनका रथ कृष्णरूप प्रतिबंधकसे,पूर्वकी समानही सर्वको प्रतीत होता रहा, तैसेही ज्ञानाग्नि कर दग्ध, कार्य कारण संघातभी, प्रारब्धरूपी कृष्ण प्रतिबंधकके विद्यमान होनेसेही प्रतीत होताहै यही कार्य्य कारण संघातकी प्रतीतिही उपाधि है। हे मैत्रेय! प्रारब्धरूपी उपाधिके क्षय हुये तात्पर्य्य यह कि, उपाधि निर्मुक्त विदेह कैवल्यमें पूर्वोक्तव्यवहार नहीं। हे मैत्रेय! तिस अवस्थाका कोई दृष्टांत है नहीं क्योंकि, समाधि सुपुप्तिमें भी उपाधि पूर्व कथन करि आये हैं, ताते-हे मैत्रेय! तू श्रवण करता हुआ स्पर्श करता हुआ देखता हुआ रस लेताहुआ सूंघता हुआ वास्तवते आपको निर्विकार निर्विकल्प जाना हेमैत्रेय! कल्पित उपाधिको अंगीकार करके उपाधि संयुक्त विशेप अग्निही काष्ठादिकोंका दाहक उष्ण प्रकाशादि व्यवहार करता है. उपाधि रहित समान अग्नि दाह उष्ण प्रकाशादि व्यवहार नहीं करताहै इसलिये कल्पित अहंकारादिकोंके भावाभावको अनुभव करनाभी उपाधिसे ही है उपाधि विनां नहीं जैसे--उपाधि सहित और उपाधि रहित अग्निमें भेद नहीं व्यवहारामें भेद है। जैसे-वायु चलने ठहरने में आप एकसरीखी है परन्तु चलनेमें भासती है और अचलनेमें नहीं भासती। जैसे--आकाश घटादिक उपाधि सहितमें भी और घटादिक उपाधि रहितमें भी आपको एक रस जानता है; तसे

हे मैत्रेय ! "तू अपने निजात्मा स्वरूपको माया अहंकारादिक कल्पित उपाधि सहितमें भी और कल्पितमाया अंतःकरणादिक उपाधि रहितमें भी निर्विकल्प निर्विकार जान" (यही संतजनोंका निश्चय है)।

मैत्रेयने कहा-कथा ध्रुवकी कहो कि संत और ध्रुवकी आपसमें क्या चर्चा हुई। पराशरने कहा-कथा ध्रुवकी यहीहै जो जान "आप सहित सर्व हरिहैं"। हे मैत्रेय। चाहसे अचाहहो ग्रहण त्यागका त्याग कर देह अभिमानरूपी वस्त्रते नग्न हो "मैं निर्विकल्प निर्विकार चैतन्यमात्र हूं मुझ चैतन्यको बंध मोक्षकी निवृत्तिप्राप्तिवास्ते किंचित्मात्रभी कर्तव्यनहीं" (क्योंकि;बंध मोक्षादि व्यवहार भ्रम मात्रहैं इस निश्चयरूप कफणीकोपहन और सूक्ष्म अहंकारको जला।मैत्रेयने कहा-मैंही नहींतो,अहंकारको कौन जलावे।पराशरने कहा--"यही अहंकारका जलाना है कि मैं नहीं" जब मैं नहीं तो अहंकार कहाँ हैं, शेप जो पद है उसमें मन वाणीकी गम नहीं। हे मैत्रेय। जैसे आकाश, सर्व प्रकारसे सर्व पदार्थोंते अतीत है; तैसे—तूभी अतीतहो। जो कहता है कि मैं शिवको जानता हूँ वही गृहस्थ है क्योंकि, शिवमें जाननेका मार्ग नहीं; शिवको ज्ञानका विषे जाननाही गृहस्थपना है और ऐसा जाननेवालाही गृहस्थ है--क्योंकि उसने निज स्वरूप शिवको ज्ञानका विषय, दृश्य मिथ्या, जाना है। हे मैत्रेय। जहाँ ग्रहण त्यागकी इच्छा नहीं,तहाँ आपसे आप है। नग्न वही है जो, शरीर होते इस लोक परलोककी चाहनाते रहित है। हे मैत्रेय। इतने कहनेका प्रयोजन मेरा यहीहै जो, तू अपने स्वरूपको जाने और मनुष्य देहको दुर्लभ जानके भजन गोविंदका करे जो तू पूछे कि, भजन गोविंदका क्या है? तो आप सहित सर्व गोविंद हैं "गोविंदते व्यतिरेक कछु नहीं" यही भजन है। जब सर्व गोविंद हैं तो खाना, पीना, देना, लेना, सोना, जागना, बैठना, चलना, ध्यान करना,

न करना इत्यादिक सर्व भजनहीहैं । हे मैत्रेय ! जो तुझको नम्र होनेकी इच्छा है तो सूक्ष्म अहंकारका त्यागकर और जान की;न मैं हूँ न मेरा कोई है, क्योंकि जन्म मरण सूक्ष्म अहंकारसेही है। जो पूछे सूक्ष्म अहंकार क्या है तो अस्ति भाति प्रिय रूप जो अपना वास्तव स्वरूप है तिससे दृश्यको भिन्न जाननाही सूक्ष्म अहंकार है और उसका त्यागहै सोई त्यागहै । हे मैत्रेय ! चाहिये कि, भ्रम और प्रीति (शरीरकी) त्याग कर और गोविंदसे मिल रह । जैसे-घटाकाश-भ्रमसिद्ध परिच्छिन्न घटाकाश पनेको त्यागे तो, महाकाशको मिलता है अर्थात् अभेद रूप होनेपर भी पुनःअभेदरूप होता है ।

मैत्रेयने कहा, कथा ध्रुवकी कहो । पराशरने कहा, तुझेध्रुवकी कथासे क्याप्रयोजनहै; आप तो शरीरके भ्रममें बँधा चाहता है कि; ध्रुवजैसा होउँपर इस्से शांति न होवेगी । जब देह अभिमान रूप भ्रमका त्याग करे तब तूही ध्रुव होवे ताते, दृश्य अहंकारते अतीत हो जिस्से निर्वाणपदको पावे। मैत्रेयने कहा-जब सर्व मैंहीहूँ तब निर्वाणपदकी प्राप्ति तथा अनिर्वाण रूप बंधभ्रमभीमैंहीहूँत्या-गूंक्या और ग्रहण क्या करूँ!वा बाणरूप संघाततेरहित; मैं आपही निर्वाणहूँ!निर्वाणपद पाऊँकैसे!पर भ्रमके त्यागका उपाय कहो। पराशरने कहा-जैसे अँधेरा दूर करनेकाउपायदीपककाचसानाहै, तैसे-दृश्य अहंकारते अतीत होनाही भ्रमके त्यागका उपाय है। मैत्रेयने कहा-क्यों ढील करते हो;जो कछु कहो सो करता हूँ; पराशरने कहा-मेरे हाथमें दंडकमंडलु नहीं नमैं संन्यासी हूँ, न मैं वैरागी हूँ, न मैं लौकिक अतीत हूँ, तुझको अतीत कैसे करूँ? मैत्रेयने कहा-मैं क्या करूँ ? और कहां जाऊँ? पराशरने कहा-कछु कर नहीं,अलौकिक अतीत हो। हे मैत्रेय!दाढी शीशतेरा मुण्डित करता हूँ तो रोम फेर उपज आवेंगे क्योंकि, नख केश सदा स्वाभाविक

आपसे आप बढते रहते हैं और मैं मंत्र नहीं पढा जो तुझको सिखाऊँ, मैत्रेयने कहा—मैं रोता हूँ। पराशरने कहा--द्रष्टा का दुःख रूप दृश्यको अपनारूप जाननाही रोनाहै, द्रष्टाको दृश्यसे मिला-न जाननाही हँसना है। पूर्णको अपूर्ण, असंगको संगी, सत् चित् सुख रूपको असत् जड दुःख रूप जाननाही रोनाहै-ताते तू इस रोनेसे अतीत हो। मैत्रेयने कहा--बडाआश्चर्य है जो अतीत होताहूँ तो करते नहीं और कहते हो; अतीत हो। क्या करूँ ? मैंने समझा था कि गृहकी सब सामग्री मैंने त्यागीहै, ईश्वर कृपाकरेगा तो मैं परमशांत होऊँगा। मुझको इन अटलादि पदवियोंकी भी चाहना नहीं जगत् सुखोंसे अचाह हूँ केवल यही चाहना है कि, स्वरूपको पाऊँ। पराशरने कहा—विलाप मतकर, ध्रुवकी न्याई निश्चय कर, मूलको खोज, जो स्वराज स्थित होवे, पर स्वरूपको पावना.निर्लज्जोंका कामहै क्योंकि, काय कारण संघातरूपी वस्त्रते रहित होनाहीनग्न होना है और यह निर्लज्जोंका काम है। मैं पंडित नहींहूँ जो तुझेको अनेक प्रकारका सिद्धांत तथा कथा सुनाऊँ पर सिद्धांत यही यही है कि, "सर्व तूही है कोई और नहीं"

मैत्रेयने कहा-मुझको ब्रह्मचारी करो। पराशरने कहा-जो ब्रह्मको अपना रूप जानताहै सोई ब्रह्मचारी है, जैसे-घटकाश,महाकाशको अपनास्वरूप जाने अन्य नहीं। जो सर्व ब्रह्मही है तो ब्रह्मविपेचारी पना क्या ? मैत्रेयने कहा—कछु उपदेश करो। पराशरने कहा—मैं श्रोताको नहीं देखता; आपही आप हूँ किसको उपदेश कहूं। मैत्रेयने कहा--मुझको तुमसे भय हुआहै अब प्रश्न करूँगा तो, दिनता पूर्वक करूँगा। पराशरने कहा—हां ऐसी शक्ति रखता हूँ कि सर्वको भस्मीभूत करडालूँ परंतु कपटियोंकी न्याईं भय मतकर,ऐसा भय कर जिस्से जीव,ईश्वर, ब्रह्म माया,जगत्, इत्यादि भेदका त्यगा

होवे और द्वैतभय रहित अभय रूप, स्थितिको पावे। मैत्रेमने कहा-यह काम मुझसे नहीं हो सक्ता। परांशरने कहा--तुझसे नहीं होताता तुझ चैतन्यसे व्यतिरिक्त कौन है जिससे होवेगा। मैत्रेयने कहा--जीव, ईश्वर, दोनों शास्त्र प्रमाण सिद्धकर हैं कैसे त्यागूँ। पराशरने कहा--जीव, ईश्वर, सहित सर्व जगत् तेरी अविद्यासे प्रतीत होते तो नहीं जीव ईश्वर कहां हैं? यदि जीव ईश्वरकी एकता भी श्रुतिसिद्ध है अप्रमाण नहीं, परंतु तुझ चैतन्यविषे तो जीव ईश्वर भाव हैही नहीं तो सत्य जाने तो तू ही चैतन्य, अविद्या कर, जीव संज्ञाको प्राप्त हुआ है और माया कर ईश्वर संज्ञाको प्राप्त होता है। जैसे--एकही आकाश घट उपाधि कर घटाकाश संज्ञाको पाता है, मठ उपाधि का मठाकाश संज्ञाको पाता है, वास्तवसे नहीं। हे मैत्रेय! जब तू अपने चैतन्य स्वरूपको सम्यक् जानेगा तो जीव ईशादि संज्ञा कहीं खोजेभी न मिलैगी। मैत्रेयने कहा--जब जीव ईश अपनी अविद्यासे उपजें है तो, मेरा क्या घाटा है? जैसे--स्वप्नमें जीव ईश्वरके निद्रा दोषकर प्रतीत होनेसे, स्वप्न-द्रष्टाका एकरोम भी छेदन नहीं होता। पराशरने कहा-ठीक ऐसेही है परंतु स्वप्न और जाग्रत कालमें भी यद्यपि वास्तव स्वप्न पदार्थ स्वप्नद्रष्टाको स्पर्श नहीं करते तथापि निजस्वरूपके अज्ञानसेही भ्रमकर, आप निर्विकार, निर्विकल्पहोतेहुये भी, सविकार सविकल्प मानता है, महानभी आपको तुच्छमानताहै और भ्रमके निवृत्त हुए ज्योंकात्यों आपको मानता है हर्ष शोक भी नहीं करता। हे मैत्रेय! और कुछ कर्तव्य मतकर, भ्रमकी निवृत्ति-वास्ते, ज्ञानरूपी दीपकको जगा। मैत्रेयने कहा--आपको कहनेसे जानता हूँ कि. भ्रमको त्यागूँ और अभ्रमको ग्रहण करके कुछ बनूँ परंतु यथार्थमें तो स्वयंप्रकाश अद्वितीय हूँ, मुझमें ग्रहण त्यागका मार्ग नहीं।

मैत्रेयने कहा--प्रथम मैंने आपसे प्रश्न किया था कि मोक्षका उपाय कहो, तो आपने कहा था कि, तू आपही आप स्वयंप्रकाश स्वरूप है, तेरेको बंध मोक्ष रूप अंधकारकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं, अब कहते हो कुछकर जो कुछ होवे ? पराशरने कहा--यही कर कि, न मैं हूँ, न जगत्, न जीव न ब्रह्म, एक अद्वितीय नारायण है मैत्रेयने कहा--जब मैं परिच्छिन्न अहंकार रूप जीव नहीं तो नारायणसे क्या प्रयोजनहै परंतु मैं तो जीवत्वके अहंकारमें बँधा हूँ कैसे कहूँ "जीव ब्रह्म है" । पराशरने कहा--जीव ब्रह्मका रूप क्या है ? मैत्रेयने कहा--मैंने जीव ब्रह्मका रूप नहीं देखा । पराशरने कहा-जब रूप नहीं देखा तो नाम कैसे धरा । मैत्रेयने कहा--सुनकर कहता हूँ। पराशरने कहा--जिससे तूने सुनाहै तिसीसे जीव ब्रह्मका रूप पूछ । मैत्रेयने कहा--उसनेभी सुनकर कहा है । पराशरने कहा--सब सुनकर कहते हैं पर मूल नहीं खोजते । हे मूर्ख ! जैसे--सुनकरही जीव ब्रह्मका निश्चय कियाहै, वैसेही--मुझसे भी सुन करके जीव, ब्रह्मरूप है ऐसा निश्चय कर और जो तुझको इच्छा देखनेकी हो तो अतीत हो ।

मैत्रेयने कहा--मुझे वैराग्य हुआहै, चाहता हूँ कि गृहस्थसे उदासीन होऊँ । पराशरने कहा--जो भूत; मृग बनचर आदि *अनेक जीव बनोंमें फिरते हैं, तूभी तिनकी पंक्तिमें प्रवेश कर ।* हे मैत्रेय ! लोगोंने जो पुत्र, स्त्री, धन, गृहादिकको गृहस्थ समझा है सो झूठ है क्योंकि; गृह शरीरको कहतेहैं, जो शरीरके अहंकारमें बंधेहैं सोई गृहस्थहैं और जोइस अहंकारसे मुक्तहैं सोई वैरागीहैं । हे मैत्रेय ! एक आश्रमको त्यागना दूसरे आश्रम को ग्रहण करना,तैसेही--एक नाम त्यागके दूसरा नाम रखना, तथा--सफेदरंगके वस्त्रोंको छोडके दूसरे रंगके वस्त्र पहरना, यज्ञोपवीत तोडके, कंठी आदिक अनेक पदार्थ बांधना, शास्त्र प्रतिपाद्य संबंधियोंसे प्रीति त्यागके अशास्त्रोक्त संबंधी

बनाकर प्रीति करना,सर्वको अपना आत्मा जानकर प्रीति न करना,किन्तु रागपूर्वक प्रीति करना, ये व्यवहार विद्वानोंको हँसने योग्यहैं। हे मैत्रेय ! अतीत वही है जो, "अपने सहित सर्वको आत्मारूप जानताहै"जो शरीरके अहंकारमें बंधा हैऔर चाहसे अचाह नहीं हुआ सो,मेरे वचनों को सुनकर प्रसन्न नहीं होता और जो नाम रूप बंधनते छूटाहैं सो आपही आप सुखरूप है। जब भेद नाम रूपका मिटता है तब जीवना मरना भ्रम हो जाताहै क्योंकि, नाम रूप स्वप्रकाश नहीं, परप्रकाशहैं, तुझसेही प्रकाश राखतेहैं, ताते इस नामरूपात्मक देहादिकोंके अहंकारको त्याग,यही अहंकार चौरासीमें झुलाताहै। हे मैत्रेय ! आदि, मध्य, अन्त अपने सहित सर्वको नारायण जान। जब अ ि त, भाति, प्रिय, रूप अधिष्ठान, सर्व नारायण है तब कल्पितरूप अहंकार जुदा कहा रहेगा किंतु; अहंकारभी नारायण है, यही अहंकारका त्याग है। जैसे–नाम रूप कल्पित भूषण सुवर्णरूप है वा सुवर्णमें भूषण हैं ही नहीं; केवल सुवर्णही, अपनी महिमामें स्थित है, यही जानना भूषणोंका त्याग है। हे मैत्रेय ! जैसे घट पटादिक पदार्थ मृत्तिकारूप जानना वा मृत्तिका विषे तिन घट पटादिकोंका अत्यंताभाव जानना; यही घट पटादिकोंका त्यागहै। जैसे-स्वप्नद्रष्टामें कल्पित स्वप्नपदार्थ स्वप्नद्रष्टारूप हैं वा स्वप्नद्रष्टामें स्वप्नपदार्थ हैंही नहीं क्योंकि अधिष्ठानमें कल्पित पदार्थ प्रतीति मात्रही हैं, स्वरूपते पृथक् सत्तावले नहीं क्योंकि, जागनेसे स्वप्नपदार्थोंकी प्रतीतिका अत्यंताभाव होता है यदि पदार्थ होते तो जागेपर दूर न होते।

हे मैत्रेय ! कल्पित पदार्थोंके त्यागमें शारीरिक वा मानसिक कर्तव्य नहीं चाहिये किंतु, निजात्म अधिष्ठानके जाननेमात्रसेही कल्पितकी निवृत्ति होती है। इसीसे बन्ध मोक्षकी निवृत्ति,प्राप्ति वास्ते शारीरिक कर्तव्य कुछ नहीं,केवल बोधरूप आत्माका जान-

नाही कर्तव्य है। हे मैत्रेय! "कल्पित पदार्थ मुझको प्रतीतही न
होवें; जब कल्पित पदार्थोंका नाश होवेगा तबही ज्ञानी होऊंगा"
ऐसे नहीं जानना किंतु कल्पित पदार्थोंकी प्रतीति होतेभी, तिनकं
अधिष्ठानरूप जानना वा तिनका मिथ्यात्व (अभाव) जानना,
यही कल्पित पदार्थोंका नाश त्याग है, यही ज्ञानीपना है
हे मैत्रेय! कोई ऐसा मानतें हैं, "जो खाता, पीता; देता, लेता है
सर्व व्यवहार करता है, भले बुरेको भला बुरा जानता है, स्त्रीको स्त्री
जानता है, पुरुषको पुरुष जानता है सो ज्ञानी नहीं अथवा जिसको
शीत उष्ण होते हैं, जिसको षट्रस प्रतीत होते हैं; जिसको खान
पानादिकोंकी इच्छा होती है सो ज्ञानी नहीं। जिनको ज्ञान हुआ
है वे जंगलोंमेंही रहतेहैं, उनको किसीसे बोलनेका क्या प्रयोजन
है, सुगन्धि दुर्गंधि उनको आतीही नहीं। तात्पर्य्य यह कि मन
चक्षुआदिइंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार तिनको होताही नहीं,
इत्यादि अनेक विकल्प तर्क उठाते हैं।ऐसे अनुमान करने अथवाक-
हनेवाले;शास्त्रके सिद्धांतको नहींजानते,बरन्ज्ञानको तिनोंनेबीमा-
री समझाहै-अर्थात् जैसे-बीमार पुरुष चेष्टारहित जड़साहोजाताहै,
तैसेही ज्ञानरूपी बीमारी करके विवेकी जड होजाता है। अज्ञानि-
योंका ऐसा समझना शास्त्र अनुभव विरुद्ध है, ताते हे मैत्रेय! सर्वप्र-
कार करके कायिक,वाचिक,मानसिक सर्व देह चक्षुरादि इंद्रियोंके
दर्शनादि व्यवहार ज्ञानी अज्ञानीके समही हैं, केवल दृष्टिमात्रका
भेद है, अन्य भेद नहीं। जैसे-धर्मात्मा, अधर्मात्माके देह चक्षु
आदि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारमें भेद नहीं किन्तु, दृष्टिका
भेद है जैसे-धर्मात्मा रूपको धर्मपूर्वक चक्षु इंद्रियसे देखताहै और
अधार्मात्मा अधर्मपूर्वक देखता है रूपका देखना दोनोंका तुल्य है,
केवल दृष्टिकाभेद है। जैसे-नील पीतादि रूपवान् हीरेके देखनेमें
जौहरीअजौहरी समहीहैं परंतु अजौहरीजौहरीकी दृष्टिरूपविचारमें
भेदहै देखनेमेंभेद नहीं। जैसे-भ्रमस्थलमें सर्व पुरुषोंके चक्षुका रज्जु

आदिक पदार्थोंसे संबंध तुल्यहीहै परंतु सदोप चक्षुवान्‌को रज्जुमें सर्प भान होताहै और निर्दोप चक्षुवान्‌को रज्जुही भान होतीहै। तैसेही-ज्ञानी अज्ञानीकी दृष्टिमें विवेकका भेद है, देहचक्षुरादि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारका भेद नहीं। अथवा ज्ञानीके शिरमें शृङ्गादियोंकी विलक्षणता नहीं होजाती। कोई देह इंद्रियादिकोंके रोग विना दर्शनादि व्यवहारकी बाधा नहीं हो सक्ती। हे मैत्रेय! देह इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारकी बाधा मानोगे तो-पूर्व दत्तात्रेय, वामदेवादिक परमहंसोंके,वसिष्ठादिक ब्रह्मऋपियोंके, जनकादिक राजऋपियोंके, देह चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार, वर्तमान विद्वान् पुरुषोंके समानही सुननेमें आताहै अन्यथा नहीं, बरन् ब्रह्मा, विष्णु शिवादिकोंकेभी देहचक्षुरादिकइंद्रियोंके दर्शनादिकव्यवहार अस्मदादिक जीवोंके समानही सुननेमें आते हैं विलक्षण नहीं। काहेते--आदि ईश्वरकी नियति ऐसेही हुई है कि देह इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहार ब्रह्मासे लेकर चीटी पर्य्यंत ज्ञानी अज्ञानी सर्व जीवोंका समही होगा। इस ईश्वर संकेतको-अवतक कोईभी उल्लंघन नहीं कर सक्ता।

हे मैत्रेय! अपने २वर्णाश्रमके अनुसार-सर्व जीवोंके देह चक्षुरादि इंद्रियोंके धर्मपूर्वक दर्शनादि व्यवहारका किसीशास्त्रमें तथा किसी विद्वानने निपेध नहीं किया तथा अनुभव सिद्ध वस्तुका निपेध भी नहींहो सक्ता किंतु अधर्मपूर्वक देह चक्षुरादि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारकाही निपेध है ताते-धर्मपूर्वक-अपने स्वरूप आत्माको सम्यक् जानकर.देख: सुन, स्पर्शकर, रसले, गंध सूँघ ग्रहण त्याग कर, बोल चाल, तात्पर्य्य यह कि कायिक वाचिक मानसिक सर्वव्यहार कर, आकाशकीन्यांईतुझकोबाधा न होगी हे मैत्रेय! भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षादिक पदार्थ हैं सो तुझे प्रत्येक आत्मामें वास्तवते हैं नहीं इसीसे-तुझको बंधरूप दुःखकी निवृत्ति

वास्ते तथा मोक्षरूप सुखकी प्राप्ति वास्ते, किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं । जैसे--निद्रादोष करके प्रतीत हुये जो--स्वप्नमें बंध मोक्षादिक अनेक पदार्थ,तिनकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते स्वप्नद्रष्टाको किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं । क्योंकि, स्वप्नद्रष्टा स्वरूपसेही बंध मोक्षसे रहित है परंतु भ्रमकरकेबंध मोक्षवान् आपको मानता है । इसलिये, हे मैत्रेय ! तू सम्यक्दर्शी हो, असम्यक्दर्शी मत हो, काहेते--सम्यक्दर्शी जैसा पदार्थ होता है तैसाही जानता है और असम्यक्दर्शी औरका और जानताहै ।

मैत्रेयने कहा धर्मपूर्वक, सर्व विषयोंकी प्राप्तिहुये भी पूर्व और अब महात्मा क्यों त्यागते हैं । पराशरने कहा--हे मैत्रेय । ज्ञानके विरोधी विषयोंका, पूर्व और अब भी महात्मा पुरुष त्याग करते हैं, और योग्य भी हैं, परंतु चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार तो नहीं त्यागा जाता।काहेते-जहांइंद्रियादि धर्मी हैं, वहाँ चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि धर्म भी होगा, धर्मीके होते धर्मका अभाव नहीं होता।केवल धर्मपूर्वक,चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार ज्ञानका विरोधी भी नहीं अधर्महीं विरोधी है (ज्ञानका) धर्मपूर्वक दर्शनादि व्यवहार उलटा ज्ञानका साधक है । जो धर्मपूर्वक चक्षु आदिक इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहार करते अस्मदादिकोंकी दुर्गति होती है तो,होने दे । काहेते--इसकी निवृत्तिका उपाय कोईभी नहीं शरीर नाश विना । जैसे--किसी वैश्यने कहा है--दाल रोटी खानेसे घाटा पड़ता है तो, पड़नेदे. इससे नीचे दरजा न होने ते--

हे मैत्रेय । गुप्तकी बातें मैं तुझपर प्रगट करता हूँ कि, न तू मैत्रेय,न मैं पराशर. न कोई और एक नारायणही है-ऐसा जिसको निश्चय है वही अतीत है ताते तू अतीत हो । मैत्रेयने कहा-आप ऐसा कहतेहो, जिसमें अतीत और गृहस्थ दोनों नहीं बनते, पुनः

कहते हो अतीतहो। पराशरनेकहा-यही अतीतहै जो आप सहित जानेकि सर्व गोविंदहै। आप सहित सर्व गोविंद जाननाभी मनका चिंतन है, इससे भी तू अतीत नाम निर्विकल्पहै। जब तूने ऐसा जाना तब अतीत गृहस्थ कहां हैं गोविंदहीहै। मैत्रेयने कहा-जब मैंही नहीं तो नारायणको कौन जाने कि, सर्व गोविंद निर्विकल्प नारायणहै क्योंकि, जानना,-ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय-त्रिपुटी विना होता नहीं और स्वरूपमें त्रिपुटी है ही नहीं जानना कैसो होवे। पराशरने कहा-जब सर्व तूही है तो, त्रिपुटी भी तूही है, जैसे-स्वप्नमें ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, त्रिपुटी, भानपूर्वक सर्व पदार्थोंकी प्रतीत होतीहै परंतु स्वप्नका द्रष्टा सर्व त्रिपुटीरूप;निद्रा दोषकर प्रतीत होताहै,वास्तवते त्रिपुटीरूप; हुआ नहीं, अपनी महिमामेंही स्थित है। ताते-हे मैत्रेय! जैसे स्वप्नदृश्य पदार्थोंसे स्वप्नद्रष्टा अतीत नाम भिन्नहै तैसे:ज्ञाता,ज्ञान,ज्ञेय रूप त्रिपुटी तथा इस कार्य कारण संघातते, अतीत अर्थात्-भिन्न, तू आपको साक्षी द्रष्टा जान;यही अतीतहोना है। जब तू अतीत न होगा काल तुझको दुःखदेवेगा। मैत्रेयने कहा कालका भय मुझको नहीं रहा क्योंकि नामरूप मुझ अधिष्ठानमें कल्पित हैं, तीन कालमें सत्ता नहीं। काल भी नामरूप स्वरूपहै कल्पित नामरूप काल, मुझ अधिष्ठानकोदुःख नहीं देता, उलटा अधिष्ठान करकेही नामरूप कंपायमान होतेहैं अर्थात् तिस नाम-रूप कालकी मुझ अधिष्ठानसेही सिद्धि होती है। जैसे-रज्जुमें कल्पित सर्पादिक रज्जुको दुःख देते नहीं, कल्पित सर्पादिकोंके गुण दोष रज्जुको स्पर्श करते नहीं,उलटा रज्जु करके ही सर्पादि-कोंकी सिद्धि होती है, तैसे-कल्पित काल मुझ अधिष्ठान चैतन्यको कैसे दुःख देवेगा किंतु नहीं देवेगा, वा-सर्व नामरूप नारायण है तो कालभी नामरूप स्वरूप है, जब कालभी नारायण हुआतो

नारायण नारायणको तो दुःख देता नहीं । जैसे-सर्वनामरूप भूषण सुवर्णस्वरूप है और सुवर्ण सुवर्णको दुःख नहीं देता ॥

पराशरने कहा-अब तू ध्रुव हुवा कथा ध्रुवकी सुन । मैत्रेयने कहा-मैं अतीत होता हूँ,मुझको अपना भेप कृपा करके दो । पराशरने कहा--अतीतमें भेप अभेप नहीं, मायामें भेप अभेपहै । हे मैत्रेय ! जो मायारूप भेपते अतीतहै, वही अतीतहै । मैत्रेयने कहा, कथा कहो। पराशरने कहा तुझको निश्चय नहीं इससे तुझको भस्म करना योग्यहै । मैत्रेयने कहा मैंतो हैही नहीं ईश्वरहीहै ईश्वरको भस्मकरो ।पराशरने कहा-इस परिच्छिन्न रूप सूक्ष्म अहंकार रूपी, काष्ठकोही भस्म करना था, कोई देहादिक संघातके भस्म करनेमें मेरा तात्पर्य्य नहीं; भलाहुआ, कि तू भस्मीभूत हुआ. हे मैत्रेय! आपते काम अचाहि खुदमस्ती कर मस्त स्वाभाविक विचरते हुये संत ध्रुवको मिले, कुछ राजपुत्र ध्रुवके मिलने की कामनावास्ते नहीं। इसी निष्कामनाके ऊपर एक इतिहास सुन ।

जड़भरतका उपाख्यान ॥

एक कालमें महात्मा जड़भरतने देवराज इंद्रकी शास्त्रोक्त तपश्चर्या किया । तीन मास बीतनेपर इंद्रने दर्शन दिया-और कहा जो इच्छा हो सो वर माँग । जडभरत सुनकर हँसा और कहा-हे इन्द्र ! जो तुम दयालु हुये हो तो, कहो मुझ वर लेनेवालेका क्या स्वरूप है ? और तुम वर देनेवाले का क्या स्वरूप है वर कहां से दोगे ? और किसके वलसे वर दोगे ? तुम्हारी हमारी आकृति तो समानहीहै तुम उपास्य वर देने वाले, हम उपासक वर लेनेवालेयह विलक्षणता कैसेहै?इंद्रनेकहा हे जडभरत!मेरे निमित्त तूने कठिनतप किया है;अब तू पूछता है तू कौनहै-परंतु-मैंने सुनाथा कि जडभरत परमहंस है पर देखातो परमहंस और भरत छोडकर जड देखा।

क्योंकि, जड़पदार्थ न आपको जानता है न परको। हे जडभरत ! "मैं बर लेनेवाला कौनहूँ, तू बर देनेवाला कौनहै" यहस्फूर्ति अंतरजिसकरके सिद्ध होती है सोई, तेरा मेरा स्वरूप है तिसस्वरूपको मैं जाननेकी न्यांई जानताहूँ, तू नहीं जानता, इसीसे-तूउपासक बर लेनेवालाहै और मैं बर देनेवाला उपास्यसामर्थ्यहूँ।हेजडभरत। तेरा पूछना ऐसाहै-जैसे-घटाकाशसे घटाकाश पूछै, जैसे-समुद्रके तरंगसे तरंग पूछे, जैसे-अग्निका चिनगारा अग्निके चिनगारेसेपूछे और जैसे-स्वप्न नर स्वप्न नरसे पूछे, सो सब अयोग्य है, काहेते सर्व प्रकार करके पूछनेवालेका तथा जिससे पूछता है तिन दोनोंका एकही स्वरूप है उपाधि दृष्टिसेभी और उपहित नाम उपाधिवाले आत्माकी दृष्टिसेभी। "तू कौन है मैं कौन हूं ?" ऐसा पूछना वहां होता है, जहाँ विलक्षणता होती है, विलक्षणता विना इस प्रश्नका पूछना मूर्खता है।आपको तूने क्या पंचभूतरूपजाना है वा चैतन्य रूप जानाहै, दृश्य वा द्रष्टारूप, सत्य वा असत्यरूप कार्य वा कारणरूप जानाहै वा कल्पित वा अधिष्ठानरूप जानाहै अथवा-अन्यकोतूने पंचभूतसेविना जानाहै वा चैतन्यसे बिनाजानाहै वा दृश्यद्रष्टासे विनावा कल्पित वा अधिष्ठानसे विनावाकार्य कारणसे बिना वा सत्यअसत्यसे बिना देखाहैजो, पूछताहैमैं कौनहूँ तथा तू कौनहै?हेबुद्धिखोये! जान जो मैंही हूँ, सर्व रीतिसे सर्व सृष्टि मेरीहीस्वरूपहैअन्यथा नहीं, पूर्व कहे जलतरंगादिकदृष्टांतकीन्यांई हेजडभरत!संतोंका संगकर जो अपने स्वरूपको जाने।जडभरतनेकहा, उपदेश करो। इंद्रनेकहा-उपदेश यहीहै कि, कल्पित नाम रूप त्यागके अपनेसहित सर्वनारायण जान।जैसे-समुद्रके तरंगका उपदेश यहीहैकि, नामरूप त्यागके, आप सहितसर्वतरंगोंको जल रूप जाने, जैसे-चीनीके बनाये जडभरतको, स्वरूपकी प्राप्तिका,

उपदेश यही है कि, आपसहित सर्वखांडके खिलौनोंको चीनीरूप जानो इतना सुनकर जडभरत तूष्णीं भया।

तिसी कालमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवतों सहित वहांआये। ब्रह्माने कहा-हेजडभरत! कुछ आत्मनिरूपण कर, तूष्णीं मत हो। जडभरतनेकहा-आत्मनिरूपण, त्रिपुट भ्रम बिना होतानहीं, मुझ अद्वैत आत्मामें त्रिपुटी भ्रमहै नहीं तोकैसे निरूपण करूं ब्रह्मानेकहा-तुझ चैतन्य आत्मा अधिष्ठानमें-यह कल्पित त्रिपुटी नहीं तो, किसमें है अधिष्ठान बिना कलिपतकी प्रतीति होतीनहीं इसलिये इसकलिपत नाम रूप जगत्का तूही, चैतन्य आधिष्ठान है, तुझ चैतन्यते पृथक्, इस कलिपतका अधिष्ठान नहीं। जैसे-कलिपत मनादिभूपणोंका अधिष्ठान सुवर्ण आत्माहीहै, अन्य नहीं, हेसाधु! दृष्टिकरके देख, तुझ चैतन्य अधिष्ठान विषे, इस कलिपत नामरूप, संसारकी प्रतीति होते हुयेभी तुझ चतन्य अधिष्ठानका बिगाड़ कुछ नहीं जैसे सदोप नेत्रवाले पुरुपके रज्जुमेंसर्प कल्पना करनेसे, रज्जु विष सहित नहीं हुई निर्विकार ज्योंकी त्योंहै. क्यों, कि वास्तवसे रज्जु में सर्पका अभावहै, जैसे-स्वप्न प्रपंचकी प्रतीति होतेभी स्वप्नद्रष्टाको बोझ नहीं है काहेते-जिस मनने नामरूप कल्पाहै, उसीमनको प्रतीति होतीहै, अन्यको नहीं। अधिष्ठानने नाम रूप प्रपंच कल्पा नहीं तिस अधिष्ठानको नाम रूप प्रपंचकी प्रतीतिभी नहीं होती परंतु, नाम रूप पदार्थोंके कल्पनाका अधिष्ठान स्वप्नद्रष्टाही होगा, अन्य नहीं। ताते-हे जड़भरत। आत्मनिरूपण करनेसे तुझ चैतन्य आत्माकी टांगडी नहीं टूटती भय मत कर। हेजड़भरत! जैसे-किसीने मानसिक कल्पना करके तेरे शीशपर पर्वत रक्खा परंतु कहो तुझको उस पर्वतका बोझ लगेगा कि नहीं लगेगा जो, तू परकी कल्पनाके पर्वतका शीशपर बोझ माने तो, तेरी बुद्धि हसने योग्य है। तैसेही आत्मनिरूपण करने

वाला और तिस निरूपणमें गुण दोषविचारनेवाला और है, श्रवण करनेवाला-श्रोत्रेंद्रियहै देखनेवाला और है,इत्यादि,संघातमें सर्व इंद्रियोंके व्यवहारकी,भिन्नभिन्न,कल्पना होनेसे तुझ असंगनिर्विकार,निर्विकल्प स्वमहिमामें स्थितको क्या पीडा है?उलटाआत्म निरूपण करना न करना तेरे आगे मनादिक नटोंका नाटक है हे जडभरत! तू इन मनादिक नटोंके नाटकका तमासा देखनेवाला आपको जान आप नाटकमें नटरूप मत हो नाटकका कर्ताभी आपको मत मान तथा नाटकरूपभी आपको मतमान हे जडभरत यह मनादिक आप अपने व्यवहारमें प्रवृत्त होतेहैं और इन व्यवहारोंमें हानिलाभभी इनहीको होतीहै, तुझ विकार रहित साक्षी आत्माका यह मनादिक गरीब कछु हानि नहीं करते तू नाहक इनसे राग द्वेष मतकर। तू अपने महत्त्वको देख इनको संताप मतकर तेरे लाखों यत्नोंसे भी इनके व्यवहारकी निवृत्ति नहीं होगी हे जडभरत! संतापभी देनेवाला मनही है और लेनेवाला मनही है "संतापके देनेलेनेवालोंका साक्षीभूत जो मैं चैतन्य आत्मा हूँ मेरा क्या अपराध है" ऐसे निश्चय कर। जैसे--

अंगरेजी सरकारने इस हिंदुस्थानके बंदोबस्तवास्ते,चार हातोंका संकेत कल्पना कियाहै तिन चार हातोंके अभिमानी मर्यादाके पालक चारलाट मुकर्रर कियेहैं प्रजा सहित तिन चारोंछोटे लाटोंके के ऊपर सत्यवादी न्यायकारी निर्लोभ धर्मात्मा धर्मपालक अलौकिक बलवान् एक बडा लाट मुकर्रर कियाहै चार लाटों सहित सर्वप्रजा जिसकी आज्ञामें स्थित है परंतु सर्वप्रजा भिन्नभिन्न आप अपने नीचऊँच व्यवहारमें निरंतरसंस्कारोंके लिये बलात्कार ते स्थितहै, आप अपने संस्कारके अनुसारही तिन सर्व प्रजाकी हानि, लाभ, सुख, दुःख तथा अपने अपने व्यवहारमें राग द्वेष

स्वाभाविक हुआकरताहै। प्रजाके दुःखकी निवृत्ति व सुखकी प्राप्तिवास्ते,कायदा शास्त्र अनुसार,बनादियाहै,तिसको धारण करनेवालेको लौकिक व्यवहारमें सुख होताहै;न करनेवालेको दुःखहोता है परंतु बलात्कारसे (बडे लाट) अर्थात् गवर्नमेंट सरकार प्रजाको यह नहींकहतीकि,तुम यह व्यवहार करो वा न करो,इस व्यवहारमें राग द्वेष करो वा ना करो,इसमेंतुमको,हानिलाभ होगी वा नहोगी सुख दुःखइसव्यवहारमेंतुमकोहोगावानहोगाइत्यादि। पूर्वोक्तलाट वा सर्कार अपने स्वस्थानमें सुखपूर्वकस्थितहैं यदि बडे लाट (वा सर्कार)गरीवप्रजाके साथ लडाई भिडाई करेंगे तो सर्वके अधिपतिपनेका सुख(आरामदारी)महत्त्वपना,जाते हुयेकी न्याईं,जाता रहेगा तथा तुच्छपना सिद्धहोगा प्रजाके भिन्न भिन्न व्यवहारके दूर करनेका तथा एकत्व करनेका यत्न करनेसेभी,सर्व प्रजाके भिन्न भिन्न, स्वस्व व्यापारमें, प्रवृत्ति निवृत्तिकी बाधा नहोगी ईश्वरकी नियति आदि ऐसेही हुईहै परंतु,गवर्नमेंटकी हुकूमत तो सब प्रजापरहै, हुकूमतको अन्यथा कोई कर सक्ता नहीं फिर, गरीबोंसे राग द्वेषकर निजमहत्वता रूप इज्जत क्यों खोवे निष्कारण क्यों सतावे तैसे-पंचभूतोंका कार्यरूप जो यह मनुष्यदेहहै, सो हिंदुस्तानके समानहै,जाग्रत् स्वप्न,सुषुप्ति,तुरीय अवस्था चार हातोंके समानहै समष्टि, व्यष्टि,स्थूल,सूक्ष्म, करणमहाकारणशरीर अथवा-उनकी जाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्ति;तुरीया चारों अवस्था चारों हातोंके समानहैं। अथवा सबजगत्रूप ओंकारके अकार,उकार,मकार,अर्द्धमात्रारूप चार मात्राहैं। सोई चार हातेरूपहैं। पूर्वोक्त जाग्रतादिअवस्थाके अभिमानी,विश्व,तैजस,प्राज्ञप्रत्यगात्माचार छोटे लाटहैं वा जाग्रतादिक अवस्थाके व्यष्टि अभिमानी विश्वादिकोंसे अभिन्न,वैराट हिरण्यगर्भ,ईश्वर और ईश्वर साक्षी,समष्टि अभिमानी,चारों छोटे

लाटोंके समान हैं। दश इन्द्रियें, पंच प्राण, पंच उपप्राण, चतुष्टय अंतःकरण, वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती परा चार प्रकारकी वाणी, पचीस वा एकसौ पचीस वा सत्ताईस आदि प्रकृति, सत, रज, तम गुणादि प्रजारूप माया अज्ञान प्रकृति, प्रधान, अविद्या इत्यादि नामवाली माया, हिंदुस्थानकी पृथ्वीरूप है। गवर्नमेंट लाट स्थानी केवल चैतन्य मात्र तू है। तुझे निर्विकल्प निर्विकार चैतन्य लाटकी सत्ता स्फूर्तिसे ही, मनादिक सर्व प्रजाका व्यवहार सिद्ध होता है यह कायदा है वा--ऐसे जान।

जाग्रतादि चार अवस्था चार होते हैं, तदभिमानी चार चीफकमिश्नर हैं, शब्दादि विषय चौकीदार हैं, २५ प्रकृति प्रजा हैं, इन्द्रिय तहसीलदार हैं तदभिमानी सूर्य्यादिदेवता डिपुटी कमिश्नरहैं, चतुष्टय अन्तःकरण कमिश्नरहैं, तदभिमानी चन्द्रमादि देवता सेक्रेटरीहैं, प्राण डाकहै, शबलब्रह्म मुल्की लाटहै, वेद कायदा है और शुद्धब्रह्म मलका विक्टोरिया है, सो तू है। सर्व चक्षु मनादिक प्रजाका तथा तिनके तिनके रूप दर्शनादिक, संकल्प विकल्पादिक, समाधि विक्षेपादिक सर्व धर्मोंका, स्वमहिमामें स्थित तुझ शुद्ध चैतन्य मलकाको स्पर्श भी नहीं होता। हे जडभरत। तू चैतन्य मलका, नाहक मन चक्षुआदिक प्रजाके साथ, क्यों रागद्वेष करताहै। मन विक्षेपवान न होवे, एकाग्र होवे, यह बुद्धि भला निश्चय करे बुरा निश्चय न करे चित्त परमेश्वरकाही चितवन करे अन्य न करे, मिथ्याहंकार नहोवे, सत अहंकार होवे, चक्षु अच्छे रूपको देखें, बुरे रूपको न देखें इत्यादि अन्य इंद्रियादि प्रजाके धर्मनको भी जानलेना। तू निश्चय सतन्याय पूर्वकसोच देख, भ्रमविना तुझे चैतन्यकातो, बुरा भला शुभअशुभ संकल्पविकल्पादि स्वभाव वह हुआ, प्रजाकाही हुआ। यदि आदिक भले पदार्थोंका निश्चय करे वा समाधि करे, बुरे

निश्चयादिक तथा विक्षेपादिक न करे तो बुरे पदार्थोंका निश्चय वाविक्षेपादिक बुद्धिबिना,कौन करे सो कह।तुझ आत्माका भी संकल्पादिकधर्म नहीं,तथा अन्य इंद्रियादिकोंका भी, धर्म नहीं तो मनादि बिना विक्षेपादि निश्चय व्यवहार कैसे होगा किंतु नहीं होगा। तैसे--चक्षु आदिक भलेहीरूपादिकोंको देखें तो बुरे रूपादिकोंको कौन देखे चक्षुआदिकोंबिना सो कह? काहेते दर्शनादि व्यवहार चक्षुबिना? अन्यका है नहीं।यद्यापि हे जड़भरत! तुझ चैतन्य निर्विकार साक्षी, आत्मानेही कल्पित मनादिकप्रजाका हर्षशोकादिक भिन्न भिन्न यथायोग्य स्वभाव रचा है तथापि, मनादिक प्रजाकेवर्तमान होते,तिनके धर्मोंका अभाव वा अन्यथा तुझ(रचक) से भी नहीं होगा। जैसे-स्वप्नके मन चक्षु आदिक इन्द्रिय भी तथा तिन मनचक्षु आदिक इन्द्रियोंके,धर्मरूपादिक विपय भी स्वप्नद्रष्टानेही यथा योग्य भिन्न भिन्न कल्पना कियाहै परंतु स्वप्नपदार्थरचक, स्वप्नद्रष्टासेभी,स्वप्नपदार्थोंका वा तिनके स्वभावका स्वप्न कालमें अन्यथा वा अभाव, कदाचित्भी नहीं होसक्ता यदिअन्यथावत्अन्यथा करेगा तो एकअपनेसंकेतका आपही भंग दोप, दूसरा सर्व पदार्थोंके व्यवस्थाका भंग दोप, तीसरा अपनी प्रतिज्ञाका भंग दोष अर्थात् सतवादितादिक भंग दोपतथा अपनेमें भ्रम विप्रलिप्सादि दोपकीभी प्राप्तिहोगी।यह भी नहीं है कि, मनादिक दृश्य स्वप्न पदार्थोंके पूर्व स्वभाव वर्तनेसे,स्वप्नद्रष्टाकी हानिहै और मनादिकोंके अन्यथा स्वभाव करनेसे स्वप्नद्रष्टाको लाभ है, ताते स्वप्नद्रष्टाको उनके अन्यथा स्वभाव करनेमें, अर्थात् विपयोंमें लंपट मन इन्द्रियोंके स्वभावोंको उलटायके सज्जनोंवत् अतिमनकी वृत्तिको, अंतर्मुख स्वरूपाकार करनेमें यत्नकरना क्योंकि स्वप्नद्रष्टाकी सर्वप्रकार करके मनादिक दृश्य स्वप्न पदार्थ, किंचि-

न्मात्रभी हानि लाभ नहीं कर सक्के।तैसेही,स्वप्नद्रष्टाकी न्याईं, तुझ चैतन्य साक्षी आत्माकी, यह मनादिक जाग्रतादिकमें वर्तनेवाले पदार्थ, किसी प्रकार करके किंचित् मात्रभी हानि लाभ नहीं कर सक्के। जैसे अनेक प्रकारके अंधकार आदिक पदार्थ होने तथा मिटनेसे, आकाश की हानि लाभ नहीं करसक्के। इसी प्रकार हे जडभरत! बुद्धि आदिकोंके, आत्मनिरूपण करनेसे, तुझ चैतन्य आकाश का क्या बिगडता है? अर्थात् कुछ नहीं बिगडता, जो बिगडता माने तो यही भ्रम है। इससे निःसंग होकर, आत्म-निरूपण कर।

जडभरतने कहा-हे ब्रह्मा! तू कोन है? जगत्की उत्पत्ति कैसे करता है? ब्रह्माने कहा-साक्षात् माया के कार्य्यभूत, पंचभूतोंका कार्य्यरूप यह संघात मैं नहीं किन्तु जिससे इस संघात की तथा संघातके व्यवहारकी सत्ता स्फूर्ति होती है, सो चैतन्य आत्मा मैं हूँ, अन्य नहीं। हे जडभरत! जैसे तू स्वप्नमें स्वप्न पदार्थोंमें मट्टी, गारा, पत्थर आदि कहींसे लेकर तथा अस्थि, मांस, रुधिर, मेदा, मज्जा-वीर्य्यादि सप्तधातु कहींसे लेकर तथा कहींसे पृथिवी आदि पंच-भूतोंको लेकर वा स्त्री पुरुषके संयोगकर, नहीं रचता। सूक्ष्म स्वप्न नाडीमें, स्वप्न पदार्थोंके योग्य अन्य देश काल वस्तु, कारण भी नहीं हो सक्के, तात्पर्य्य यह कि और किसी रीतिसे भी तू स्वप्नमें स्वप्न पदार्थोंको नहीं रचसक्ता. निद्रा दोष संयुक्त केवल फुरनेसे ही रचता है। तैसेही-मैं चैतन्य, मनादिकोंका साक्षी आत्मा, कोई मट्टी, गारा, पत्थरादिक कहींसे अन्य सामग्री लेके, इस जगत्को नहीं रचता, किन्तु-केवल मायारूप स्फुरनसे ही, इस नामरूप जगत् को मैं रचता हूँ। फुरनेसे इसकी उत्पत्ति होनेके कारण, यह जगत् मिथ्या है। यद्यपि-वर्तमान कालमें, स्त्री पुरुष के संयोगसे पुत्रकी उत्पत्ति; बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति इत्यादि यथायोग्य कार-

णोंते कारजकी उत्पत्ति प्रतीत होती है, केवल फुरने करके इस नाम रूप जगत् की उत्पत्ति प्रतीत होती नहीं; तथापि निद्राके प्राप्त होतेही स्वप्नमें झटसे ही, एक क्षणमें पुत्र पौत्र सहित आपको देखता है, तथा-बाग, बगीचे, पर्वत, नदियां, देश, काल, देखता है-सो तीस वा चालीस वर्षमें होने वाले पुत्र पौत्र एक क्षण में किस स्त्रीते उत्पन्न होते हैं तथा किस बीजसे वृक्ष पर्वतादि उत्पन्न होते हैं तथा किस स्त्री पुरुषके संयोगसे पुत्र पौत्र उत्पन्न होते हैं, सो कह किन्तु निद्रा रूप अविद्या, स्त्रीबीजादि करके ही, पूर्वोक्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं; अन्य किसी कारणसे नहीं उत्पन्न होते। पश्चात् जागनेपर निद्रारूप अविद्यामें तिन पदार्थोंकी लीनता होती है, ताते निद्रारूप अविद्या द्वारा,स्वप्नद्रष्टा चैतन्यही,दृढ फुरणे करके कार्य कारणरूप प्रतीत होता है, वास्तवसे स्वप्न प्रपंच आदिमें भी नहीं तथा जागने पर अंतमें भी नहीं रहता। मध्यमें अविद्यासे अनेक प्रकारकी प्रतीति होते हुये भी, आदि अंतकी न्याइं, मध्यमें भी अत्यंत अभावही स्वप्न प्रपंचका जानना, तैसेही-जाग्रत् प्रपंचभी जानना बल्कि स्वप्नप्रपंचतेभी, जाग्रत् प्रपञ्च, अति तुच्छ है, काहेते-स्वप्न प्रञ्चचके, यत् किंचित् निद्रारूप अविद्या सहित देशकालादिक कारण पाये जातेभी हैं परंतु देशकालादिक भेदरहित केवल सच्चिदानंद निजात्माके अज्ञानसे इस जाग्रत् जगत् की प्रतीति होती है, रज्जुके अज्ञानते सर्प प्रतीतिवत् ताते अति तुच्छ है। सिद्धांत यह है कि--अस्ति भाति प्रियरूप आत्माते भिन्न जो, नामरूप जगत्की प्रतीति है, सोई स्वप्न है, सोई मिथ्या दृष्टि है, सोई माया है, जैसे-मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप जल से भिन्न जो फेन, बुदबुदा, तरंगादिक नाम रूप की प्रतीति है, सो यथार्थ दृष्टी नहीं किंतु मिथ्यादृष्टि है, जब मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप जलकी दृष्टी होती है, तब तरंगादिक नाम रूपकी अत्यंताभाव प्रतीति होतीहै, शेष केवल जल ही प्रतीत होताहै, सोई

यथार्थ दृष्टी है। तैसेही-जब अस्ति, भाति प्रियरूप निजात्माकी दृष्टि होतीहै तब पृथिवी आदिक कल्पित नामरूप जगत्का अत्यताभाव प्रतीत होताहै,शेप अस्ति भाति प्रिय निजात्माही भासताहै सोईयथार्थ दृष्टि है।जाग्रत् स्वप्नका तथा व्यावहारिकप्रातिभासिक पदार्थोंका भेद करना तथा कथन करना यहाँ सिद्धांत नहीं किंतु यह कथन चिन्तन-पूर्वोक्त सिद्धांतका उपयोगी है। हे साधो जैसे स्वप्नमेंही रज्जु आदिकों विषे सर्पादिक प्रातिभासिक प्रतीत होतेहैं तथा घटादि व्यवहार प्रतीत होतेहैं इसी प्रकार-स्वप्नमेंही जाग्रत् स्वप्न सुपुप्ति मरण समाधि विक्षेपादिक बुद्धिकी अवस्था भी प्रतीत होती है, तथा बंध-मोक्ष शास्त्र गुरु समुद्र नदियां पर्वत हस्ती घोडा घटपटादि देश कालादि कार्य कारण भाव तथा अनेक प्रकारके पदार्थ अनादि जाग्रतवत् प्रतीत होतेहैं परंतु स्वप्नमें स्वप्नांतरके पदार्थोंको तथा रज्जु आदिकोंमें कल्पित सर्पाकोंको मिथ्या नाम प्रातिभासिक जानताहै अर्थात् प्रतीत होतेहैं और घटपटादिकव्यवहारक नाम सतरूप करके व्यवहारक सत् प्रतीत होतेहैं।तथादेश कालादिक सर्व पदार्थोंके कारणरूप करके प्रतीत होते हैं और सर्व पदार्थ कार्यरूप करके प्रतीत होते हैं गुरु शास्त्र, बंधकी निवृत्ति, मोक्षकी प्राप्ति करनेवाले दीखते हैं, तथा आपको-अकृतार्थ जानता है, कोई पदार्थ अनादि कोई सादि प्रतीत होतेहैं, तथा-राजा, रंक, ज्ञानी, अज्ञानी, जीव, ईश्वर जाग्रतवत् प्रतीत होते हैं। परंतु--अविद्याके परिणाम, चैतन्यके विवर्त निद्रा दोपसे एकक्षणमात्रमें सर्वकी प्रतिभा प्रतीत होनेसे तिन स्वप्न पदर्थोंमें, कार्य कारण भाव तथा प्रातिभासिक व्यवहारक नाम सत् असत् विभाग (भेद) नहीं परंतु-किसी पदार्थमें सत्पना किसीमें असत्पना, किसीमें कारणपना, किसीमें कार्यपना, किसीमें अनादिपना, किसीमें सादिपना इत्यादि प्रतीत होते हैं; जे

ण्गोंते कारजकी उत्पत्ति प्रतीत होती है, केवल फुरने करके
रूप जगत् की उत्पत्ति प्रतीत होती नहीं; तथापि निद्र
होतेही स्वप्नमें झटसे ही, एक क्षणमें पुत्र पौत्र सहित आपको
है, तथा-बाग, बगीचे, पर्वत, नदियां, देश, काल, देखत
तीस वा चालीस वर्षमें होने वाले पुत्र पौत्र एक क्षण में
स्त्रीते उत्पन्न होते है तथा किस बीजसे वृक्ष पर्वतादि उत्पन्न
तथा किस स्त्री पुरुषके संयोगसे पुत्र पौत्र उत्पन्न होते है,
किन्तु निद्रा रूप अविद्या, स्त्रीबीजादि करके ही, पूर्वोक्त
उत्पन्न होते है; अन्य किसी कारणसे नहीं उत्पन्न होते। पश्च
गनेपर निद्रारूप अविद्यामें तिन पदार्थोंकी लीनता होती
निद्रारूप अविद्या द्वारा,स्वप्नद्रष्टा चैतन्यही,दृढ फुरणे कर
कारणरूप प्रतीत होता है, वास्तवसे स्वप्न प्रपंच आदिमें
तथा जागने पर अंतमें भी नहीं रहता। मध्यमें अविद्या
प्रकारकी प्रतीति होते हुये भी, आदि अंतकी न्याईं,
अत्यंत अभावही स्वप्न प्रपंचका जानना, तैसेही-
जानना बल्कि स्वप्नप्रपंचतेभी, जाग्रत् प्रपञ्च, अ
काहेते-स्वप्न प्रञ्चचके, यत् किंचित् निद्रारूप
देशकालादिक कारण पाये जातेभी हैं परंतु दे
केवल सच्चिदानंद निजात्माके अज्ञानसे इस
प्रतीति होती है, रज्जुके अज्ञानते सर्प प्रतीतिवत्
है। सिद्धांत यह है कि-अस्ति भाति प्रियरूप
जो, नामरूप जगत्की प्रतीति है, सोई स्वप्न
दृष्टि है, सोई माया है, जैसे-मधुरता, द्रवता,
से भिन्न जो फेन, बुदबुदा, तरंगादिक नाम
सो यथार्थ दृष्टी नहीं किंतु मिथ्यादृष्टि है,
शीतलता रूप जलकी दृष्टी होती है, तब
अत्यंताभाव प्रतीति होतीहै, शेप केवल

यह नाम रूपात्मक जगत् फुरणेमात्रसे ही प्रतीत होता है, अन्य इसका स्वरूप नहीं। सारांश यह कि, तू चैतन्य, सूर्य वा लालही अपनी महिमामें स्थित है, फुरणारूप जगत् तुझ ते भिन्न नहीं। जैसे—सूर्यकी किरणें सूर्यते भिन्न नहीं, लालकी दमक लालते भिन्न नहीं। जो ईश्वरादि सत सामग्रीसे, संसार सत मानोगे तो "सत्की प्राप्तिकी इच्छा मात्रसे संसारको त्यागे" यह वेदका कहना निष्फल होगा। दूसरा—सतकी प्राप्ति वास्ते यत्न निष्फल होगा। काहेते—सत संसार सदा जीवोंको अपरोक्ष (यत्न बिना) प्राप्त है, तिसकी प्राप्ति वास्ते यत्न निष्फल है और सतकी निवृत्तिभी नहीं होती।

ब्रह्माने कहा—हे जड़भरत। तेरा स्वरूप क्या है? जडभरतने कहा—ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक नामरूप जिसकर सिद्ध होते हैं, सोई मेरा स्वरूप है। विष्णुने कहा—मैं सर्व नामरूप जगत् में व्यापक हूँ, जैसे—सर्व नामरूप भूषणोंमें सुवर्ण व्यापक होता है। जडभरतने कहा—मुझ चैतन्यके प्रकाशसे ही, तुम ब्रह्मा विष्णु शिवादिक सर्व नामरूप प्रकाश राखते हो, तुम केवल वृथा ही अभिमान करते हो कि हम इस जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार करते हैं, जैसे—रज्जु अधिष्ठानके ज्ञान अज्ञानसे ही सर्प, दण्ड मालादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति, पालना, संहार होते हैं सो ज्ञान, अज्ञान, तम प्रकाश मुझ चैतन्य सूर्यमें नहीं है, इस लिये भ्रम है। तैसे तुम सहित भ्रमरूप इस संसारकी मुझ चैतन्य अधिष्ठानके ज्ञान अज्ञानते ही, प्रवृत्ति निवृत्ति होती हैं, ताते तुमको भ्रम हुआ है कि, "हम शरीर करके जगत् की उत्पत्ति आदि करते हैं।" शिवने कहा—हे जडभरत। तुझको जडभरत क्यों कहते हैं? जड-भरतने कहा—जड़वस्तु फुर्णे रहित होती है इस लिये फुर्णेते रहित होनेसे, मुझ चैतन्यको जड कहते हैं, सर्व नामरूप जगत् को, अपने अस्ति, भाति, प्रिय, सच्चिदानन्द रूप करके भर रहा हूँ इस

यह सर्व अविद्याकी महिमा है, पदार्थोंमें भेद नहीं तैसेही-दार्ष्टांत जाग्रत्में भी जोडलेना । हे साधो! यहां जाग्रत् स्वप्नका भेद नहीं तात्पर्य्य यह कि, असम्यक् दर्शनकानाम स्वप्न है, सम्यक् दर्शन का नाम जाग्रत् है । हे साधो ! स्वप्नकी अपेक्षासे यह जाग्रत् है इस जाग्रत्की अपेक्षासे वह स्वप्नहै, तुमहीं कहो, जाग्रत् कौन हुवा और स्वप्न कौन हुआ-तात्पर्य यह कि, न कोई जाग्रत् है, न कोई स्वप्न है, किन्तु आप अपने वर्तमानमें दोनों जाग्रत् हैं, पर कालमें दोनों स्वप्न हैं, यदि जाग्रतादिकोंका स्वरूप कहैं भी तो, बहिर फुरनेका नामजाग्रतहै और अंतरफुरनेकानाम स्वप्नहै तथा दोनोंसे रहित निजकारणमें लीन वृत्तिका नाम सुषुप्ति और तीनों वृत्तिके साक्षीका नाम तुरीयहै । ताते-हेबुद्धिमान् जडभरत ! यष्टि जीव वा समष्टि ईश्वरके फुरने मात्र करकेही इस नामरूप जगत्की उत्पत्ति है, कोई मट्टीगारेसे, ईश्वर वा जीवने बनाया नहीं, इसीसे मिथ्या है । जैसे-कामधेनु तथा कल्पतरु आदिकोंके नीचे खान पान पुत्र, स्त्री आदिक सर्वप्रकारके पदार्थोंकी, पुरुषको सकल्प मात्रसेही प्राप्ति होतीहै सो-तू विचार देख कि, अपरोक्ष कामधेनु और कल्पतरुके पास, खान पानादिकोंके योग्य प्रत्यक्ष पदार्थ धरे भी नहीं हैं तथा न कहींसे ले आतेहैं अपने शरीरसे भी निकास कर नहीं देते । तात्पर्य यह कि तिन सब पदार्थोंका और कोई कारण मालूम नहीं देता । ताते--यह सिद्ध हुआ कि, सत् संकल्प चैतन्य पुरुष ईश्वरने आदि यही संकल्प किया है कि पुरुष कर्म्मवशसे कामधेनु वा कल्पतरुके नीचे स्थित होकर, जिन पदार्थोंका संकल्प करे सोई पदार्थ तिस पुरुषको अपरोक्ष प्राप्त होवें, यह फुरणाही कारण है । तपस्वी पुरुषोंके वर शापकी सिद्ध पुरुषोंके संकल्प सिद्ध पदार्थोंकी और मायावी पुरुषोंकीभी यही रीति जान लेनी । ताते-हे साधो !

यह नाम रूपात्मक जगत् फुरणेमात्रसे ही प्रतीत होता है, अन्य इसका स्वरूप नहीं। सारांश यह कि, तू चैतन्य, सूर्य वा लालही अपनी महिमामें स्थित है, फुरणारूप जगत् तुझ ते भिन्न नहीं। जैसे-सूर्यकी किरणें सूर्यते भिन्न नहीं, लालकी दमक लालते भिन्न नहीं। जो ईश्वरादि सत सामग्रीसे, संसार सत मानोगे तो "सत्की प्राप्तिकी इच्छा मात्रसे संसारको त्यागे" यह वेदका कहना निष्फल होगा। दूसरा-सतकी प्राप्ति वास्ते यत्न निष्फल होगा। काहेते-सत संसार सदा जीवोंको अपरोक्ष (यत्न बिना) प्राप्त है, तिसकी प्राप्ति वास्ते यत्न निष्फल है और सतकी निवृत्तिभी नहीं होती।

ब्रह्माने कहा-हे जड़भरत! तेरा स्वरूप क्या है? जडभरतने कहा-ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक नामरूप जिसकर सिद्ध होते हैं, सोई मेरा स्वरूप है। विष्णुने कहा-मैं सर्व नामरूप जगत् में व्यापक हूँ, जैसे-सर्व नामरूप भूषणोंमें सुवर्ण व्यापक होता है। जडभरतने कहा-मुझ चैतन्यके प्रकाशसे ही, तुम ब्रह्मा विष्णु शिवादिक सर्व नामरूप प्रकाश राखते हो, तुम केवल वृथा ही अभिमान करते हो कि हम इस जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार करते हैं, जैसे-रज्जु अधिष्ठानके ज्ञान अज्ञानसे ही सर्प, दण्ड मालादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति, पालना, संहार होते हैं सो ज्ञान, अज्ञान, तम प्रकाश मुझ चैतन्य सूर्यमें नहीं है, इस लिये भ्रम है। तैसे तुम सहित भ्रमरूप इस संसारकी मुझ चैतन्य अधिष्ठानके ज्ञान अज्ञानते ही, प्रवृत्ति निवृत्ति होती है, ताते तुमको भ्रम हुआ है कि, "हम शरीर करके जगत् की उत्पत्ति आदि करते हैं।" शिवने कहा-हे जडभरत! तुझको जडभरत क्यों कहते हैं? जड-भरतने कहा-जड़वस्तु फुर्ण रहित होती है इस लिये फुर्णते रहित होनेसे, मुझ चैतन्यको जड कहते हैं, सर्व नामरूप जगत् को, अपने अस्ति, भाति, प्रिय, सच्चिदानन्द रूप करके भर रहा हूँ इस

से मुझ चैतन्यको भरत कहते हैं। जैसे-अपनी मधुरता, शीतलता द्रवतारूपसे जल, सर्व नामरूप फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंमें भररहाहै।

जडभरतने कहा--हे ब्रह्मा विष्णु शिवादिको ! तुम्हारा क्या स्वरूप है ? शिवने कहा--यह जो गङ्गाधार, अर्धांगी, गौरजा सहित तथा सर्प रुण्डमाला सहित, त्रिनेत्र नीलकंठ, भूत पिशाच सेना सहित, सगुण उपासक भक्तजनोंको, अतिप्रिय, शांति और मङ्गलकी देनेवाली कोटि कामदेवसे भी अति सुन्दर दूधके फेन तुल्य गौर, यह मेरी मूर्ति, जगत् सहित नामरूप मायामात्र है वा पंचभूतरूप है; मुझ कल्याण स्वरूप चैतन्य व्यापकका, यह नाम रूप मूर्ति स्वरूप संघात वास्तव स्वरूप नहीं। किंतु,--जैसे--मैं चैतन्य, इस असत्, जड दुःखरूप (मूर्ति) संघात विषे, सच्चिदानन्द स्वरूपसे, संघातके सर्व व्यवहारका साक्षी, द्रष्टाप्रकाशक, असंग, आत्मा, प्रेरक, निर्विकार, निर्विकल्परूपसे, स्थित हूँ। तैसेही--सर्व नामरूप संघातोंमें पूर्वोक्त मैं चैतन्यसाक्षी आत्मा एक रूप करके स्थित हूँ वा सर्व नामरूपकल्पित जगत् ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यन्त विषे,मैं अधिष्ठानही स्वमहिमामें स्थितहूँ,द्वैत नहीं। तात्पर्य यह कि, निर्विकल्प, निर्विकार, साक्षी, असङ्ग, सच्चिदानंदादिक, अधिष्ठानके विशेषण तथा कल्पित नामरूपके विशेषण-दृश्य मिथ्यात्वादिक तथा सत्यत्वादिक मुमुक्षुके बोधवास्ते, वाचारंभण मात्र, प्रतीत होते हैं, वास्तवसे मुझ,अस्ति, भाति, प्रिय रूप आत्मामें नहीं। जैसे-सुवर्ण और भूषणोंका भिन्न भिन्न स्वरूप कहना, पुनः सुवर्ण भूषणोंकी एकरूपता कहनी सो केवल बालकोंके (स्वमहिमा स्थित सुवर्णके) बोधवास्ते वाचारंभण मात्र है, वास्तवसे नहीं। ऐसी अमृतरूपी, पक्षपातसे रहित, यथार्थ, महादेवकी गम्भीर वाणीको सुनकर, सर्व अपने स्वरूपमें स्थित हुये ब्रह्मा विष्णु आदिक भी श्लाघा करने लगे।

पुनः विष्णु यही कहने लगे--हे साधो! शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी सहित; सर्व भूषणोंसे भूषित मोर मुकुटवाली, चतुर्भुज, श्यामसुंदर मूर्ति, मेरा स्वरूप नहीं। किंतु--मैं-साक्षी चैतन्यव्यापक सर्वात्मा हूं तैसेही-ब्रह्मानेभी कहा कि, दृश्यमान मूर्ति मैं नहीं, किंतु इस संघातका मैं साक्षी चैतन्य आत्माहूँ। इसी प्रकार--तिससभामें यही निश्चय हुआ कि, देहादिक संघात हमारा स्वरूप नहीं किंतु यह देहादि संघात, मायाका कार्य होनेते मिथ्याहै तथा दृश्य है और हम इस संघातके साक्षी द्रष्टा चैतन्य आत्मा सत्तहैं। हे मैत्रेय! तूभी यही निश्चय कर कि, मैं यह पंचभौतिक देहादि संघातनहीं। किंतु देहादिकोंका--साक्षी, चैतन्य, निर्विकार, निर्विकल्प रूप, -स्वतः-सिद्ध अकृत्रिमदेव, ज्ञानस्वरूप हूँ। हे मैत्रेय! वहसंतजोध्रुवके पासगये थे सो अपना स्वरूपही जानकर गये थे। मैत्रेयने कहा--स्वरूप तो एक है, एकविषे आना जाना कैसे होता है पराशरंने कहा--आना जाना भी स्वरूप विषेही होता है। इसीपर एक कथा सुन--

पराशर तथा वामदेवका संवाद।

एक समय वामदेव, स्वाभाविक वनविषे एक हाथमें दंड और एक हाथमें कमंडलु लिये, विचरता था। मैंदेखकर हँसा और पूछा हे रूप मेरे! तुझे किसीसे राग द्वेष तो है नहीं; दंड क्यों हाथमेंलिया है? वामदेवने कहा-सच्चिदानंदस्वरूप आत्मातेपृथक्जानने वाली विपरीत बुद्धिरूपी राक्षसीके दूर करनेवास्ते दंड लियाहै; वा अधर्म विषे प्रवृत्त जो अशुद्ध मन है, तिसको, अंतर शुद्धमनरूपदंडकर, वेदरीति अनुसार, अधर्मसे हटाकर धर्ममें जोडताहूं जिससेमनका उपशम वे अंतर उपरोक्त दंड हैं. बाहिरदंड तो तिस अंतर दंडका लखायकहै तथा तेरे नाशवास्तेहैक्योंकि, हे सर्वशिव परंतुराग द्वेष

तथा दंडता शिवमें तू कल्पता है, तेरी विपरीतबुद्धि होनेसे, तुझकूं दंड देना योग्य है ।जैसे-धर्मात्माको कोई विपरीतबुद्धिवालाकलंक लगावे, तिसको दंड देना योग्यहै ।तैसे--मन,वाणी अगोचरबुद्धि आदिकोंके साक्षी द्रष्टा, आत्मामें, तू द्वैत कल्पताहै इस्से तुझको दंडदेना योग्यहै ।मैंने कहा--कर्तव्यविना यह आत्मा शिवकैसेहोता है ? वामदेवने कहा--हे पराशर ! शिव नाम कल्याणकाहै, नामरूप अकल्याणका साक्षी, यह आत्मा; स्वतःसिद्ध शिवरूपहै, कर्तव्यसे शिवरूप नहीं होता ।जैसे घटादिकोंके व्यवहाररूपी अकल्याणसे रहित,घटकाश स्वतःसिद्धमहाकाशस्वरूपहै । जो कुछकर्तव्यकरके प्राप्त होतेहैं सो अशिव होतेहैं, उनका कालांतर करके नाश होता है सत्त नहींहोते। जैसे--रसायनद्वारा लोहा सुवर्ण होताहै परंतु कालांतर करके पुनःलोहेका लोहा हो जाताहै ।मैंने कहा--कमंडलु क्यों लिया है ? वामदेवने कहा--भ्रांतिसिद्धआत्मामें बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिवास्ते जो कर्तव्य, तिसको तथा गोविंदव्यतिरेक जो मनपर निश्चय है तिसको धोताहूं अथवा करनाम हस्तोंकाहै, जैसे हस्तोंका मंडल महान मंडलकी अपेक्षासे तुच्छ है तथा अपरोक्षहै तैसे-संसाररूप मंडलका अपने स्वरूपकी अपेक्षा, अपरोक्ष अत्यंताभावहै तात्पर्य यह मैं चैतन्य आत्मा निष्कर्तव्यहूँ यही कमंडलुका अर्थ है। मैंने कहा--जब सर्व शिव है तो शिवको धोता है क्यों ? वामदेवने कहा--जब सर्व शिव है तो धोवना अधोवनाभी शिवहै--जैसे--हस्तीके पगमें सर्व पग समाते हैं, तैसे;शिव पदमें सर्व अर्थ समाते हैं। मैंने कहा--हे वामदेव ! तुम कहाँसे आयेहो ? और कहां जाओगे ? वामदेवने कहा--न किसी दिशासे आया हूँ न कहीं जाऊँगा क्योंकि,आकाशके समान पूर्ण हूँ पूर्णमें आनाजाना नहीं अपूर्णमेंही आनाजाना होता है । मैंने कहा--प्रत्यक्ष आनाजाना

देखपडता है कैसे कहतेहो "मुझमें आनाजाना नहीं"। वामदेवने कहा-आनाजाना,तपस्याकरनी तथा खान पानादिक सर्व आत्मा हीहै, द्वैत नहीं। जैसे पंचभूतोंके कार्यरूप इस देहविषे आना जाना,सोना,जागना,खाना,पीना,लेना, देना, सारांश यह कि सुख दुःख रूप भोगका भोगना प्रत्यक्ष देख पडता भीहै,परंतु विचार कर देखे जब सर्व दृश्य पदार्थ पंचभूत रूप उससेहैं तो आनाजाना-दिक (दृश्य) से भिन्न कैसे होताहै? अर्थात् आना जानादिकभी पंचभूतरूपही है इससे आना जाना भी स्वरूपहीहै। जैसे स्वप्न नरोंका आनाजाना स्वप्नद्रष्टासे भिन्न मिथ्याप्रतीति मात्र है। यथार्थमें तो स्वप्ननरों सहित तिनकी सर्व चेष्टा स्वप्नद्रष्टारूपहै। जैसे-तरंगादिकों सहित तरंगादिकोंकी सर्व चेष्टा जलरूप है। हे मैत्रेय! अब ध्रुवका वृत्तांत सुन। तिन संतोंमें एक मैं था एक दत्तात्रेय एक वामदेव तथा औरभी अनेक संत थे। जब ध्रुवने संतोंको आकर दंडवत किया तब मैंने कहा -हे ध्रुव! तूने जो जानाहै कि ये संतहैं सो हम संत नहीं,जो हम संतहोते तोतेरेसमान अटलपदवी मांगते। हे ध्रुव! जो देहादिक प्रपंच चलरूपहै सो, निश्चयकर अचल नहीं होता और जो अचलरूप आत्माहै सो,चल रूप नहीं होता। इस्से तू सोचदेख दोनों रीतिसे अटल पदवी मांगना निष्प्रयोजनहै प्रत्येक निजस्वरूप आत्मा,चल रूप देहा-दिक,जगतमें,स्थित भी सदा अचल रूपहै और यह नाम रूप अटल पदवी सहित प्रपंच सदा चलरूपहै यह अबाध्य अर्थ है। ध्रुवने कहा तुम महान संतहो।अवधूतने कहा हमारेस्वरूपमें महा-नता अमहानता तथा संत असंतपना है नहीं,ध्रुवने कहा तू कौनहै अवधूतने कहा जो तू है। ध्रुवने कहा मैं कौनहूँ? अवधूतने मैं हूँ। ध्रुवने कहा रूप तेरा क्या है? अवधूतने कहा, जो

तेराहै । ध्रुवयहवचन सुनकरआश्चर्यवान्होकर तूष्णींहुवाअवधूतने कहा तूष्णीं मतहो,तूष्णीं अतूष्णीं होना मन और वाक्का धर्महै। ध्रुवने कहा-क्या करूं वचनचलता नहीं। अवधूतने कहा-इसी कारणसे तूने अटलपदवी चाहीथी कि,मैं बहुत कालतक अटल रहूँगा । हेध्रुव!तू आप अटल अरु अटल पदवी चाही,क्या तुझको लज्जा न आई!हे मूर्ख!कभी तूने सुनाहै कि, आत्मा नाश होता है अर्थात् आत्माका कभी भी नाश नहीं होता । जैसे घटाकाश घटादिकोंके नाश अचल विषे आपको अचल होनेकी इच्छाकरे सोभ्रमहै अथवा घटाकाश घटादिकोंकेअचल होनेकीइच्छा करे सोभी भ्रमहै । जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नपदार्थोंविषे आपअचल होनेकी इच्छा करे सो भी भ्रमहै।जैसे-वृक्ष अपने होनेवाले फल फूल पत्तोंके अचल होनेकी इच्छाकरे सो असम्भवहै।यह देह अटल होनेकीनहीं कल्पपर्य्यंत यदि देह रहेभी अंतमें नाशहै । हे ध्रुव ! सामान्यपुरुष भी मलिनादि स्थानको शीघ्रही त्यागना चाहतेहैं क्योंकि,बीमारीका मलीन स्थान कारणहै परन्तु इसके उलटा मल मूत्र रूपजो यह देह नरकरूप,अतिमलीन स्थानहै,तिसविषे तूने बहुत काल रहनेके वास्ते तप कियाहै । हे ध्रुव ! महात्मा इस दुःखरूपदेहके त्याग अनंतर,किसीभीदेहके धारणकी इच्छा नहीं करते परंतुतूने की है;इस्से तूधन्य है;तेरी बुद्धि हँसने योग्य है । अब तुझको अनात्म देहमें आत्मबुद्धि और अशुचिदेहमेंशुचिबुद्धि और दुःखमें सुखबुद्धि,चल देहविषे अचल बुद्धि इत्यादि विपर्यय बुद्धिकोतथा मैं सर्वसे बडा हूँ,इसअहंकारकी बीमारी होगी;तिसी बीमारीसे अनंतकल्प पर्यन्त(तू)दुःखको पावेगा । हे ध्रुव ! मैं नहीं चाहताकि यह देह मेरा सदा रहै वा न रहै क्योंकि, मैं अविनाशी चैतन्यरूप हूँ,मुझ में कर्तव्य नहीं तथा मेरा नाश नहीं,मैं देहके रहने न रह-

नेमें एकरस हूँ। जैसे-घटाकाश घटके रहने न रहनेमें एकरसहै। हे ध्रुव! अपनेसे कल्पित दृश्य पदार्थोंसे अधिष्ठान स्वतःसिद्ध वडा होताहै, जैसे-स्वप्नद्रष्टा स्वप्न पदार्थोंसे, यत्न बिना स्वतःसिद्ध वडा सत और अचल है, तिसको अचल वडाई वास्ते तप करना भ्रमहै तू सच्चिदानंद द्रष्टा चैतन्य,सत्य,अचल, पुरुप इस नाम रूपकल्पित असत् जड दुःखरूप, दृश्यप्रपंचसे स्वतः सिद्ध वडा तथा सच्चिदानन्दहै,कर्तव्यसे नहीं।हे ध्रुव।जब ईश्वर तुझपर दयालु हुआ तो;तूने क्या मांगा, विचार न किया कि, यह अटलपदवी तो ऐसी है जैसे किसी देशमें वडा ऊंचा निर्जन पर्वत होवे, तिसके शिखरपर एक मंदिर बना होवे तिस मंदिरमें पुरुप बैठाहै-तैसे यह अटलपदवी है इसमें क्या विशेपता है ?हे ध्रुव ! तू सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा, देश,काल, वस्तु परिच्छेद रहित, पूर्ण है क्या तू अटल पदवी विपे नहीं था? जो अटल पदवीकी चाहना करी। जैसे आकाश किसी ऊंचे पर्वत स्थित मंदिरमें बैठनेकी इच्छा करे सो भ्रमहै,क्योंकि आकाश सब नीची ऊंचीठौरमें व्यापक(स्वभावसेही) है , यत्न करके नहीं । हे ध्रुव ! जैसे इस लोकमें अज्ञानी सर्व जीवोंको, दुःख देनेवाले श्रोत्रादिक इंद्रिय, मन और शब्दादिक पंच विपय शत्रु हैं तथा पट् ऊर्मी हैं, पट्भाव विकारहैं, अध्यात्मादि तापहैं,कालकेभयादिहैं। इन विपयइंद्रियके संयोगवियोगसे सुखदुःख होता है । अनिष्ट विपय इंद्रियके संयोगसे दुःख होताहै इष्ट विपय इंद्रियके संयोगसे सुख होता है । जैसे-न्यूनाधिकादि भावसंयुक्त पंचभूतक सृष्टिहै, तैसेही सो अटलपदवी विपेभी, शरीर के होते, यह शत्रु तेरेसंगही रहेंगे अन्यथा नहीं होंगे,इससे अटलपदवी विपे क्या विशेपता हुई,सो कहो? नामरूप प्रपंच यहाँभी हैऔर तेरे अटलपदवीमेंभी है तो विशेपता क्या हुई। जो वैकुंठादिलोकअटल पदवीमें, पूर्वोक्तनामरूप जगत्नहीं होता तो अटलपदवीकी

इच्छा करनी भी ठीक थी परंतु नामरूप वास्ते, व्यर्थ अटल पदवीकी इच्छा तैने की । हे ध्रुव ! सर्व दुःखोंसे रहित तू चैतन्य आत्माही अटल पदवीहै, तुझ चैतन्यसे भिन्न अलटपदवी कोई नहीं, सर्व चल पदवी है । जैसे-स्वप्नमें चल अचल पदवी प्रतीत होती है । तात्पर्य्य यह कि, किसी पदार्थकी बहुत काल स्थिति मालूम देतीहै, किसी पदार्थकी अल्प काल स्थिति मालूम होतीहै परंतु सर्व स्वप्नके पदार्थ क्षणमात्रमें होनेवाले होनेसे तथा समान कल्पित होनेसे तुच्छही हैं । एक स्वप्नद्रष्टाही केवल अटल पदवी रूप है, अन्य नहीं । तैसे-चलरूप घटपटादिकोंकी अपेक्षा कर, विष्णुकरके दिया स्थान, अटल पदवी है, तुझ अनादि अनंत चिद्धनकी अपेक्षासे नहीं तथा मायाकी अपेक्षासे भी नहीं, क्योंकि तेरी अटल पदवी मायाका कार्य है । ध्रुवने कहा अब स्वरूपको कैसे पाऊँ ? दत्तात्रेयने कहा-जिस मार्गमें तूने अटल पदवी पाई है उसी मार्गमें अपने स्वरूपको ढूँढ़ । ध्रुवने कहा--मार्ग बतावो वामदेवने कहा मार्ग स्वरूपके पावनेका यहीहै कि, आप सहित सर्व गोविंद जान । ध्रुवने कहा--मुझको वैराग उपदेश करो । हे मैत्रेय ! मैंने कहा यही वैरागहै कि जान मैं संघातरूप परिच्छिन्न ध्रुव नहीं तब तू नहीं तो परम वैरागका वैराग है । हे ध्रुव! परिच्छिन्न अहंकारके अभाव हुये जो शेषपद रहताहै, तिसमें मन वाणीकी गम नहीं जो मैं कहूँ । ध्रुवने कहा-मैं नहीं हूँ तो कौन है ? मैंने कहा मैं हूँ ध्रुवने कहा--जो तू है तो मैं कैसे नहीं हूँ मैंने कहा परमात्मा एकहै । दो नहीं, इससे मैं अहं त्वंसे रहित अद्वितीय हूँ । ध्रुवने कहा-- जो तू अद्वितीय है तो मैंभी अद्वितीय हूँ । मैंने कहा--हे ध्रुव ! जब तू अद्वितीय है तो, अब कहो, अटलपदवी कैसे है ? ध्रुवने कहा--कहनेमात्र है ।' मैंने कहा--तब अटलपदवीकी क्यों तैंने चाहना की ? ध्रुवने कहा--जो हुआ सो हुआ,

मुझको मुक्तिकी इच्छा है उपदेश करो। मैंने कहा उपदेश यही है कि आप सहित जान, सर्व हरि हैं, परन्तु हे ध्रुव! वासना का त्याग कर। ध्रुवने कहा वासना कैसे त्यागूँ? पिशाचके समान मनको लगी है। मैंने कहा ऐसा वैराग कर कि, मैं नहीं हूँ। जब तूही नहीं तो वासना कहां है? वा-जान "सर्व मैंही हूँ" जब सर्व तूही है वासना कहां है जो त्याग वा अंतःकरण सहित अंतःकरणके धर्म रूप वासनाका भी, मैं द्रष्टा प्रकाशक आत्मा हूँ ऐसे जान। हे ध्रुव! जब तंत्री का बजानेवाला होता है तब तंत्रीमें शब्द होता है, जब तन्त्री का बजानेवाला नहीं होता तब तंत्रीमें शब्द नहीं होता। तैसे-जब तू मायाके गुणोंके साथ मिलके कुछ बनता है, तब वासना भी होती है, जब तेरी बनावट छूटी तब वासना कहां है, जैसे—जो माल लादेगा सोई जगात भरेगा, जो नहीं माल लादेगा सो जगात भी नहीं भरेगा। माल पर जगात है बिना माल नहीं। हे ध्रुव! सच्चिदानन्द शब्दोंका पर्याय जो, अस्ति भांति प्रियरूप निजात्मतत्त्व है, उससे भिन्नजो कुछ प्रतीत होता है, सो माया का स्वरूपहै तत्व नहीं। जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप जलसे भिन्न जो कुछ तरंगादिकोंकी प्रतीति है सो मिथ्या है, जलका स्वरूप नहीं। अन्तर बाहर जो नाम रूपप्रपंच है सो, तुझ चैतन्यदेवसे ही प्रकाश रखता है।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय! ध्रुवने देहादिकोंविषे अहंमम अभिमान को त्यागके पुनः तिस त्यागका भी त्याग किया, परंतु तूने कभीभी अहंकारका त्याग न किया। मैत्रेयने कहा-जो मुझको अहंकार होवे, तो मैं त्यागूँ, अहंकार पंचभूतोंका है, मैं कैसे त्यागूँ? पंचभूत अहकार त्यागो ना त्यागो, मुझ उससे क्या? और मुझको दूसरेकी वस्तुके त्यागनेका अधिकार भी नहीं क्योंकि, सब जीव आप अपनी वस्तुके त्यागग्रहणमें मालिक हैं। दूसरेकी वस्तुके त्य-

करनेमें दूसरा मालिक नहीं होता। पराशरने कहा-अहंकारको न त्यागेगा तो काल तुझको दुःख देवेगा मैत्रेयने कहा-अहंकार जिस को हो उसको काल दुःखदेवे वा न देवे। दूसरेकी पंचायतसे मुझ चैतन्यको क्या मतलबहै।सूर्यमें अँधेरा हो और सूर्यको अन्धेरा दुःख देता हो तब सूर्य अँधेराको त्याग करनेका वा नाश करनेका उद्यम करे परंतु सूर्यमें अँधेरा है ही नहीं तो अँधेरेके दूर करनेका उद्यम सूर्यको निष्फल है, नाहक उलूकोंके साथ सूर्य पंचायत क्यों करे; तुम मुझमें अँधेरा नाहक कल्पना क्यों करते हो जो तिन उलूकोंसे सूर्य लड़ाई भिड़ाई करेगा तो, विद्वानों-करके सूर्य हांसीका आस्पद होगा। तैसेही-मुझ निर्विकल्प चैतन्य साक्षी आत्मामें अहंकार है ही नहीं, अनहुये अहंकारके त्यागनेका आरंभ मुझ चैतन्यको निष्फल है, हांसीका आस्पद है। पराशरने कहा-हे मैत्रेय।अहंकार का क्या रूप है ? मैत्रेयने कहा-मुझ चैतन्यको क्या मालूम है, अहंकारवालोंसे अहंकारके रूपकी खबर मालूम होगी उनसे पूछो राजासे तेल मूलीका हाल पूछना नादानी है। पराशरने कहा-तू कौन है मैत्रेयने कहा-बडा आश्चर्य्य है जो, आप पूछता है तू कौन है। जैसे-घटाकाश घटाकाशसे पूछे, तू कौन है सोई न्याय तुम को प्राप्त हुवा; यद्यपि घट अनेक हैं परंतु तिन घटोंमें रहनेवाला आकाश एकही है, विचार दृष्टिसे घटभी अनेक नहीं मृत्तिका रूप करके एकही है उपाधिसे अनेक हैं। पराशरने कहा अहंकारमें तू वधा है, कहता है-में चैतन्य हूँ-तुझको लज्जा नहीं आती। मैत्रेयने कहा-लज्जा उसको है जो है बंधनमें और जानता है मैं मुक्त हूं। जो मुक्तको मुक्त जानता है और बंधको बंध जानता है उसको लज्जा न-हीं,उलटा मुझ चैतन्य अधिष्ठान विषे कल्पित अहंकारादिकों करके अनहुई बन्ध तुम आरोपण करते हो,यह तुमको अतिलज्जाका काम

है। जैसे कल्पित सर्प दंडमाला आदिक अपने अधिष्ठानरज्जुको नहीं बांधसक्ते तथा परस्पर एक दूसरेको भी नहीं बाँध सक्ते। परंतु सर्पादिकों करके रज्जुमें बंधका आरोप करना अतिहाँसी है। जैसे स्वप्नके अहंकारादिक स्वप्नद्रष्टाको नहीं बाँधते तो आत्माको अहंकारादिक कैसे दखल करेंगे किन्तु नहीं करेंगे यद्यपि जैसे व्यवहारक आकाशको महान् बलवान् वायु अग्निजलादिक भी शोषण दाह गालना आदिक नहीं करसक्ते तथा देवता दैत्य राक्षसादिक महान् बलवान् भी इस सूक्ष्म आकाशको रज्जुसे वा किसी अन्य साधनसे पूर्व तथा अब वर्तमान कालमें नहीं बांध-सके; तो तुच्छ जीव आकाशको बांधेंगे इसमें क्या कहना है ? जो भूताकाशके बांधनेका उद्यम करेगा, तो निष्फल होगा क्योंकि आकाश स्वरूपसे निर्बंध है तैसेही--यह भूताकाश भी जिस सुक्ष्म चैतन्यके पास सुमेरुपर्वतके समान अतिस्थूल है, तब ऐसे अति महान् सूक्ष्म सुक्ष्म चैतन्य साक्षी आत्माको, तुच्छ पंचभूतोंके कार्य अहंकारादिक वा पंचविषय वा पंचभूत; कैसे बांध सकेंगे, किंतु नहीं बांध सकेंगे,जैसे देवता, दैत्य, राक्षस, मनुष्यादिक जीवों-काही आपसमें बांधना और न बांधना होताहै आकाशका नहीं तैसेही-अहंकारादिकोंकाही आपसमें बंधमोक्ष होताहै, आकाशके समान अति सूक्ष्म; सुक्ष्म चैतन्य साक्षी आत्माका बंध मोक्ष नहीं होता। किंतु, मैं चैतन्य नित्य मुक्त हूँ।परंतु कथा ध्रुवकी कहो ? पराशरने कहा-कथा ध्रुवकी यही है कि,जान आपसहित सर्व हरिहै।

वामदेवने कहा हे ध्रुव ! तेरा स्वरूप क्या है ? ध्रुवने कहा जो जो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है, सो सो मेरा रूप नहीं, सो रूप जगत्काहै-इससे-जब मनका सात्त्विकी वा राजसी वा तामसीकोई फुरना नहीं फुरता, पुनःजिसकालमें मनकाकोईराजसी वा तामसी

वा सात्त्विकी फुरना फुरता है, पुनःफुरकर नष्ट होजाता है, पुनः उदय होताहै पुनः उदय होकर नष्ट होजाताहै, मनरूप फुरनेकी तीनों अवस्थाका जो निर्विकार निर्विकल्प साक्षी चैतन्य आत्मा है, सो मेरा रूप है और यह नामरूप जगत् स्वप्न जगतके समान मिथ्या है। वामदेवने कहा- जब सर्व गोविंद है तब बीचमें कुछ मिथ्या, कुछ सत्य यह भेद क्यों कल्पना करता है? ध्रुवने कहा- जब सर्व गोविंदहै तो भेद कल्पना भी गोविंदहै. इससे भजनसे क्या प्रयोजनहै। मैंने कहा हे ध्रुव! सर्व दृश्य जगत् भजनपरमात्मा ईश्वरका करते हैं, उसीको अल्ला खुदाभी बोलतेहै, सो परमात्मा ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है, तथा सर्वव्यापी अंतर्यामी है, जो ईश्वरपरमात्माको ऐसा नहीं मानोगे तो अंतर्यामी ईश्वर परमात्मा असत, जड, दुःख, परिच्छिन्न सिद्ध होगा और ऐसा परमात्माका स्वरूप किसी शास्त्रको तथा विद्वानोंको मंजूर नहीं। इस हेतु पूर्वोक्त सच्चिदानंद अंतर्यामी सर्वव्यापक इस बुद्धि आदिक सर्व नामरूपदृश्यका द्रष्टासाक्षी चैतन्यही है। इस साक्षी चैतन्यसे भिन्न देहसे लेकर माया पर्यंत कार्य कारणरूप दृश्य प्रपंचमें उपरोक्त कोई भी गुण घटा नहीं चाहे इस पिंड ब्रह्मांडमें खोज देखो। पूर्वोक्त विशेषणोक्त परमात्माको इस नामरूप दृश्य ब्रह्मांडसे बाहर मानोगे तो परमात्माको विषे सर्वव्यापकता सर्व अंतर्यामिता सिद्ध न होगी। जो सर्व जड पदार्थोंका नियमन करता है सोई चैतन्य परमात्मा है, अन्य नहीं, जब चैतन्य परमात्माब्रह्मांडसे बाहर हुआ तो यहसर्व जड पदार्थ चेष्टा कैसे करेंगे? किंतु नहीं करेंगे। प्रत्यक्ष विरोध होगा। चैतन्य विना जडकी चेष्टाकैसे होगी? सारग्राहीको; आग्रह नहीं होना, जिस वस्तुमें वेदोक्त पूर्वोक्त सच्चिदानंदादिक विशेषण घटेंगे सोई, परमात्माका स्वरूप सर्वको मानना योग्य है -। आत्मासे वा अन्यसे भाईचारा नहीं

किंतु सरल बुद्धिसे वस्तु निर्णय करनी चाहिये इससे विवादको छोडके न्यायरीतिसे पूर्वोक्त विशेषण साक्षी चैतन्य आत्मामेंही घटेंगे अन्यमें नहीं । "परमात्मा चैतन्य पुरुषने इस नामरूप जगत्को रचकर आपही तिसमें प्रवेश किया" इसश्रुतिसे जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नके पदार्थोंको रचकर आपही उनमें प्रवेश करताहै जैसे महाकाशही कुलाल रचित घटमें घटाकाशसंज्ञाको प्राप्त होता है तैसेही, जो पृथिवीके अंतर स्थित हुआ पृथिवीको नियमन करता है, पृथिवी जिसको नहीं जानती और पृथिवीको जो जानताहै, सो तुम्हारा आत्मा अंतर्यामी अमृतस्वरूप है। तैसेही जो मनके अंतर स्थित हुआ मनको नियमन करताहै परन्तु मन अपने नियमनकर्ताको भी नहीं जानता और जो मनको जानता है, सो अंतर्यामी तुम्हारा आत्मा अमृतस्वरूप है। यही रीति प्राणादिकोंमें भी जानलेनी । इस प्रकार इक्कीस (२१) वार पुनः पुनः अंतर्यामी, ब्राह्मण वेदभागमें परमात्माको आत्मारूपही कथन कियाहै । वैसेही छांदोग्यउपनिषद्के षष्ठ अध्यायविषे पुनः पुनः नववारी, परमात्मा चैतन्यको, आत्मारूप चैतन्यही कथन कियाहै वैसे सामवेदकी केन उपनिषद्मेंभी वारंवार इस आत्माकोही ब्रह्मरूपता कथन कियाहै. कैसे सो सुनो-जैसे हे अधिकारीजनो! जो मन बुद्धि आदिकों करके जाननेमें नहीं आता और जो मन बुद्धि आदिकोंको जानता है उसको तुम ब्रह्म जानो । जिसको तुम इदंरूपता करके उपासना करते हो सो ब्रह्म नहीं, इत्यादि अनेक श्रुति कथन करतीहैं, जो झूठ बात होती तो, श्रुति वारंवार नहीं कहती । झूठ बातको वारंवार कहना बावलोंका काम है श्रुति तो सत्यवक्ता है आत्मासे ब्रह्म भिन्न होगा तो ब्रह्म अनात्मा होगा घटवत् और पूर्णवस्तु ब्रह्मसे आत्मा पृथक् होगा तो आत्मा प

रिच्छिन्न मिथ्या घटवत् होगा,इससे घटाकाश महाकाशके समान ब्रह्म आत्मा नाम दो हैं, वस्तु एकहीहै तात्पर्य यह कि, सच्चिदानंद स्वरूप वस्तुसेही जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार होता है, न अन्यसे इससे, अब यह सिद्ध हुआ कि, सच्चिदानंद वस्तुकोही परमात्माकहो चाहे परमेश्वर कहो, चाहे ईश्वरा कहो, चाहे अल्ला कहो चाहे खुदा कहो, चाहे आत्मा कहो,चाहे साक्षी चैतन्य कहो, चाहे प्रत्यक् आत्मा कहो, चाहे बुद्धि आदिक सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंका द्रष्टा कहो केवल नामांतरका भेद है, वस्तुका भेद नहीं वस्तु एकही है तैसे-- देह बुद्धि आदि मायापर्य्यंत सर्व नाम रूप जगत् भी दृश्यत्वरूपता करके एकही रूप है। हे ध्रुव। जब तू बुद्धि आदिक नामरूपका, आपकोद्रष्टासाक्षी चैतन्य जानताहै तो तुझे सच्चिदानंद स्वरूपकाही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्य्यन्त सर्व दृश्य जगत् यजन करताहै और तेरेही निमित्त तपस्या करतेहैं; तेरीही सर्व प्रार्थना करतेहैं,सर्व दृश्य जड़ तुझ चैतन्यके ही गुलाम हैं, तू नहीं; तू चैतन्य अपनी दृश्य गुलामका भजन क्यों करता है। जो पुरुष अपने गुलामके आगे प्रार्थना करता है, उसको लज्जाका काम है। नहीं तो,हे ध्रुव। तू आपको बुद्धि आदिकोंका द्रष्टा सत् चैतन्य आनंद स्वरूप मत जान,जो तेरा आपको सच्चिदानंदमाननेसे बिगाड होता है, तो आपको असत् जड दुःखरूप दृश्य जान तो ठीकहै तबही तुझ असत् जड दुःखरूप दृश्यकी प्रार्थना तथा भजनादि व्यवहार,सत् चित् आनंद परमेश्वरके आगे बनसक्ता है, अन्यथा नहीं। परंतु तू; असत् जड दुःखरूप दृश्य मनादिकोंका द्रष्टा कैसे असत्य जड दुःखरूप दृश्य होगा, किन्तु नहीं होगा। आगे जो तेरी इच्छा होय सो कर। हे ध्रुव। जो तू आपको सच्चिदानंदरूप नहीं मानेगा तो उसते भिन्न असत् जड दुःखरूप आपको माननाही तुझको पडेगा, ध्रुवने कहा परमेश्वरमें

महानताऔर अपनेमें अल्पताकी भ्रांति जीवोंको तथा मुझकोहोती है, मैंने कहा हे ध्रुव। महानता अल्पताकी पूर्वोक्तप्रकारणमेंसिद्धिही नहीं होती। एक असत् जड दुःखरूप दृश्य पदार्थ हैं और एक सत् चित् आनंदरूप द्रष्टा पदार्थ है, दोही पदार्थकी सिद्धि होती है, तीसरा पदार्थही नहीं। ये दोनों परस्पर विलक्षण हैं, एक नहीं होते। सच्चिदानंद द्रष्टा परमेश्वर परमात्मा है और असत् जड दुःख रूप दृश्य जगतहै। दोनोंको तू विचार कर जो बुद्धिमें तुले सोई आपको मान् परंतु "जिस दृश्यको तू जानताहै सो दृश्य तू नहीं द्रष्टा है" जीव ईश्वरसे यहां क्या मतलबहै? हे ध्रुव। दाहकता उष्णता, प्रकाशकता, यह अग्निहीका स्वरूप है, तिस अग्निते भिन्न पृथिवी, जल, वायु, आकाशादिक पदार्थोंका तथा तिनके कार्योंका नहीं, जहां दाहकता, उष्णता, प्रकाशता; बुद्धिमान देखते हैं तहांही अग्निको जानते हैं, यह नहींकि, किंचित् चिनगारेमें, जो दाहकता उष्णता प्रकाशकता है सो अग्नि नहीं किन्तु, सूर्य वडवानल तथा महान् काष्ठ आरूढ लौकिक अग्निमेंही दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्नि है। ऐसा नहीं, सारग्राही, सरल बुद्धिमान्, विद्वान् लोग ऐसा जानते हैं कि, जो दाहकता, उष्णता, प्रकाशकतारूप अग्नि किंचित् चिनगारेमें है सोई, दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्नि सूर्य्यमें है, सोई दाहकता, उष्णता, प्रकाशकतारूपअग्नि महान्काष्ठ आरूढ लौकिक अग्निमें है हे साधो। महानता, अल्पता दीपना उपाधिमेंहै। दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्निमेंनहीं किञ्चित् चिनगारे आरूढ अग्नि किञ्चित्दाहकता, उष्णता प्रकाशकता करतीहै और वही चिनगारे आरूढ अग्नि सूर्यरूप होकर सारे ब्रह्माण्डको दाह उष्ण प्रकाश करतीहै, अग्नि जहां है तहाँ दी[illegible] सूर्य्यादिकोंमें एक रूपही है। तैसेही--हे साधो। जिसे [illegible]

आदिकोंका साक्षी, द्रष्टा, चैतन्य, बन्ध मोक्षरहित, निर्विकल्प, निर्विकार,स्वाभाविकअपनीमहिमामें स्थितहै तैसेही--ब्रह्मा विष्णु शिव सूर्य्यादिकोंकीदेहोंमें, चीटीकीदेहोंमें, राक्षसादिकोंकी देहोंमें पक्षी आदिकोंकीदेहोंमेंभीयहसाक्षीचैतन्यआत्माहीनिर्विकार निर्विकल्परूपकरकेस्थितहै।जैसे-एकहीदाहकता, उष्णताप्रकाशकता रूप अग्नि वत्ती आरूढ़ होकर एकमंदिरको तथा मंदिरभीतर धरे पदार्थोंको प्रकाशतीहै, सूर्य्य आरूढ़होकर वहीअग्नि सारेब्रह्मांडको तथाब्रह्माण्ड अन्तर्वर्ती पदार्थोंको प्रकाशतीहै । हे ध्रुव! जिसमनादि दृश्यको तू जानता है, उनका साक्षी है. सो दृश्य तुम कैसे होसक्ताहै घटद्रष्टाके समान, इससे हेध्रुव ! पृथिवी, जल, तेज, वायु,आकाश इन पंच भूतोंकी दृष्टिसे भी तेरी ऊँची अटलपदवीकी अधिकता नाहीं क्योंकि ऊँचानीचारूप सर्व पंचभूतही है।ऊचे सुमेरु आदिक ब्रह्मलोक स्थानमें पंचभूत कुछ अधिक नहीं, नीचे पातालादिकोंमें वमध्यमनुष्यलोकमें न्यून नहीं इस्से तेरी अटलपदवीका तुझकोयत्न निष्फल है ।तैसेही मायाकी दृष्टिसे भी तेरी अटलपदवी निष्फलहै क्योंकि,नीच ऊंच स्थान अटल पदवीसहित सर्व नामरूपप्रपंचमायाका कार्य होनेसे मिथ्याहै । क्या मायाका कार्य अटलपदवीनहीं किन्तु मायाका कार्य हीहै।हे ध्रुव।अब पूर्वोक्त विचार रीति अनुसार यही निश्चयकर कि, मैं ही सर्व चैतन्य आत्मा हूँ अटलपदवी कहां है । हे ध्रुव ! सन्त अटल पदवीसे मुक्तहैं और अपने स्वरूपमें मग्नहैं ।

हे ध्रुव! एक समय किसी निमित्तको पाके,मुझको शिवने कहा-हे पराशर ! तुझको राज्य त्रिलोकीका देताहूँ । मैंने कहा राज्यसे क्याहोगा?शिवने कहा जो चाहेगा,सो मिलेगा.चाहना तेरीनरहैगी मैंने कहा-जबमैं ईश्वर होऊंगा तब तुम तीनों देवताओंको मत्सर होगा कि; पराशर संसारका ईश्वर हो बैठाहै । इससे मझको राज्य

लेनेसे क्या प्रयोजन है क्योंकि. अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति वास्ते इच्छा होती है,इससे हे शिव। मैं चैतन्य आत्मा इस नामरूप अनंतकोटि ब्रह्मांडरूप प्रपंचका स्वतः सिद्ध ही स्वामी हूँ, कोई कृत्रिम नहीं हूँ क्योंकि, मुझ चैतन्य आत्माहीसे इस बुद्धि आदिक जड दृश्य प्रपंचकी चेष्टा होती है अन्यथा नहीं। जैसे-पुतलियां सर्व प्रकार करके चैतन्य पुरुषकेही अधीन होती हैं,उन जड पुतलियोंका चैतन्य पुरुषही राजा है, वैसे ही मैं अनंत कोटि ब्रह्मांडरूप पुतलियोंका एकही चैतन्य राजा हूँ, दूसरे चेतन्यका अभाव होनेसे, तुम्हारी त्रिलोकी मेरे राज्यके अंतर्भूत होनेसे स्वराज हूँ। ध्रुवने कहा--हे पराशर। तुम मुझसे अटल पदवी लो। मैंने कहा मुझको क्या प्रयोजन है, जो मैं एक जगहमें बद्धहोऊँ; संत स्वतंत्र विचरते हैं, पराधीन हैं नहीं। हे ध्रुव। लौकिक पुरुष भी बलवान्के दिये सांकेतिक स्थानमें अति दुःख पाते हैं, मुझ स्वेच्छाचारीके बंधनरूप अटल पदवी तेरी कैसे न दुःखरूप होगी किन्तु, अवश्य होगी। पुनः दत्तात्रेयको कहा-तुम अटलपदवी लो। अवधूतने कहा-यह अविद्या तुझहीको है, मुझको अटलपदवीकी इच्छा नहीं। पुनः वामदेव को कहा-तुम अटलपदवी लो। वामदेवने कहा, यह नीच बुद्धि तुझहीको है, जब एक आत्माही है तो चल अचल कहां है। तब ध्रुव वनविषे बालकके समान पुकारने लगा। कोई अटलपदवी ले तब पशु, पक्षी, वृक्षादिकोंने जवाब दिया कि, अंतर बाहर एक हम चैतन्य आत्माही हैं; चल अचल कहां है, जो हम स्थिरको लेवें, चलको त्यागें। ध्रुव मृतककी समान विशुद्ध होकर पृथ्वीपर गिर पडा। मैंने कहा हे ध्रुव! बालकके समान विलाप क्यों करता है; तू आकाशकी न्याईं व्यापक चैतन्य स्वरूप है, तुझमें ग्रहण त्याग है नहीं, तू एकरस निर्विकार निर्विकल्प स्वमहिमामें समस्थित है।

हे ध्रुव । अटलपदवीके लेने देनेवाले मनादिक हैं, तिनही को सुख दुःख होवेगा, तुझको नहीं. तू निर्विकार चैतन्य दूसरे मनादिकोंके व्यवहारमें किन्तु क्यों करता है? जैसे मनुष्योंके घट पटादिक पदार्थोंके लेन देनरूपी व्यवहारमें असंग आकाश किंतु नहीं करता, करे तो हँसने योग्य है। हे ध्रुव! इस असत् संसारमें आत्म-विचारशील पुरुष, शरीरकी प्रारब्ध करके जो कुछ प्राप्त होवे, सो ग्रहण त्याग बुद्धि रहित भोगते हैं, कुछ खेद नहीं मानते. क्योंकि, भोगता, भोग, भोग्य, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादिक त्रिपुटी अनात्म धर्म हैं, असङ्ग निर्विकार साक्षी चैतन्य आत्माका धर्म नहीं। हे ध्रुव। स्वप्न पदार्थोंका क्या हर्ष शोक करना है, उठो अपने स्वरूप की गम्भीरताको स्मरण करो, मृग तृष्णाके तरंगोंको मत पकडो, इस शरीरको कहीं न कहीं रहनाही है, जिमि गुजरी तिमि गुजरी, योंभी वाह वाह त्योंभी वाह वाह ? भावे जहां रह तुझको अपने स्वरूपकी ही गुलजार है, कोई अनात्म पदार्थोंकी तुमको गुलजार नहीं, संसार वगीचेमें सुखपूर्वक विचर, कर्तृत्व, भोक्तृत्व अभिमानरूपी फूल मत तोड । पुष्प तोडके सुगंध लेनेमें मजा नहीं किंतु अहंकार रहित दर्शन दीदारसे ही मजा है; नहीं तो कर्तृत्व भोक्तृत्व-रूपी पुष्पोंके तोडनेसे, वगीचेवाला; अहंकाररूपी मालिक तुझको दुःख देवेगा । यह कायदेकी बात ठीकही है, वेठीक नहीं। क्योंकि कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान करनेसे दुःख होता ही है। यह संसार रूप वगीचा तुझ चैतन्यका धर्म नहीं। यह मनका धर्म है, तात्पर्य्य यह कि. सर्व नामरूप प्रपंच अन्वयव्यतिरेक करके मनोमात्र है; जो तू अपने रस्तेसे चलेगा. तात्पर्य्य यह कि, जैसा तेरा निर्विकार निर्विकल्प सर्व दृश्यके धर्मोंसे रहित स्वरूप है तेसे ही सांगोपांग दृढ निश्चय कर, तो जीवन्मुक्त होकर विचरेगा जो विपरीत चलेगा,नाम दृश्य का धर्म अपना मानेगा तो दुःख पावेगा ।

हे ध्रुव ! अब हम वांछित स्थानको जाते हैं। तुम भी वांछित स्थानको जावो।

हे मैत्रेय ! यह अमृतसमान उपदेश ध्रुव सुनकर, अपने स्वरूप अमृतभावको प्राप्त हो, स्थिर अनस्थिर पदार्थोंमें समताको प्राप्त भया। हे मैत्रेय ! जो संतोंका वचन बुद्धिके श्रवणोंसे सुनताहै सो तत्कालही स्वस्वरूपकी प्राप्तिरूप अमृत भावको प्राप्त होताहै ॥

इति श्रीअनुभवप्रकाशे पराशरमैत्रेयसंवादे द्वितीयस्सर्गः ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग ३.

मैत्रेयने कहा-हेगुरो ! इस संसाररूप बंधनग्रहसे कैसे मुक्त होवे सो उपाय कहो। पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! सर्व, शास्त्र, विद्वानोंके अनुभवसे अपरोक्ष बंधनकी निवृत्ति सुखकी प्राप्तिवास्ते स्वरूपका सम्यक् ज्ञानही साधनहै; अन्य नहीं। ज्ञानका साधन लोकएषणा, पुत्रएषणा, धनएषणा तथा उन तीन एषणाओंके अंतर्भूत जो लोक वासना, शास्त्रवासना, देह वासनादिकोंका त्यागरूप वैराग्य, विवेक, शम, दमादिक हैं। जैसे-यद्यपि अन्धकारके दूर करनेका, निर्भयताकी प्राप्तिका तथा अंधकारमें धरे पदार्थोंके दर्शनादि व्यवहारका साधन दीपकका चसानाही है, अन्य नहीं। तथापि दीपकके सम्यक् चसानेवास्ते अनेक सामग्री चाहिये। मैत्रेयने कहा-तिन एषणादिकोंका त्याग कैसे होवे और वैराग्यादिकोंकी प्राप्ति कैसे होवे ? हे मैत्रेय! तिन एषणादि पदार्थ संघातका धर्महै. तिनके साक्षी तुझ आत्माका नहीं, यह जाननाही, एषणादिकोंके त्यागका उपाय है वा विचारपूर्वक सम्यक् अपरोक्ष देहादिकोंमें परिच्छिन्न अहंकारका त्यागनाही परमउपायहै वा समानते यह उपायहै। जिसकालमें सम्यक् दोपदर्शनपूर्वक, जगत्के पदा-

र्थोंकी सर्व एपणा अंतर बाहरते, सम्यक् त्यागता है, तिसी क्षणमें शम,दमादिक सर्व ज्ञानके साधनोंकी सम्यक् प्राप्तिहोतीहै,एषणाके त्यागसे भिन्नशमादिकोंकी प्राप्तिका साधन जुदा नहीं,तात्पर्य्य यह कि आसुरी संपदाके त्यागसेही वैराग्यादि देवीसंपदा प्राप्त होतीहै, वैराग्यादिरूपदेवीकी प्राप्तिवास्ते भिन्न साधन नहीं।जैसे रोगके जानेसेही आरोग्यता होतीहै, आरोग्यताकी प्राप्ति करनेवास्ते भिन्न साधन नहीं।जैसे रात्रिके जानेसेंही स्वाभाविकदिन प्राप्त होताहै।मैत्रेयने कहा पदार्थोंमें दोपदर्शन कैसे करना?पराशरने कहा स्त्री आदिकसर्व पदार्थोंमें दोष शास्त्रोंमें विस्तृत लिखेहैं यहां कछु कहनेका प्रयोजन नहीं परंतु संक्षेपसे कहते हैं । हे मैत्रेय!सच्चिदानंद निजस्वरूपसे पृथक्,सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंमें,असत् जड दुःखरूपता,सांगोपांग भलीप्रकार जैसेहै तैसेही जाननी, इसका नामही दोपदर्शनहै । हे शिष्य !देहादिक सर्व अनात्म पदार्थोंमें आत्मबुद्धि देहादिक सर्व अशुचि पदार्थोंमें शुचि बुद्धि, देहादिक सर्व अनित्य पदार्थोंमें नित्य बुद्धि तथा देहादिक सर्व दुःखरूप पदार्थोंमें सुख बुद्धिहै सो भलीप्रकार इस चार प्रकारकी अविद्याको त्याग कर पूर्वोक्त चार प्रकारकी अविद्यासे भिन्न,आत्मानित्य शुचिसुखरूप वस्तुहै,सोई तुम्हारा स्वरूपहै तिसीको तू अहं रूपकरके जान।देहादि संघातमें अहं मत मान, यही वैराग्यहै। जैसे कीडी फिरतीकोमिश्रीका डलामिलजावे तोकटुपदार्थ तिससेयत्नबिनाही आपहीछूटजाताहै तैसे सुखरूप आत्माको जब तूने अपना आप जाना तो दुःखरूप प्रपंच बलात्कारसेछूटजावेगा क्योंकि,सुखमेंही सबकी प्रवृत्तिहोतीहै दुःखमें नहीं और सुखरूपआत्माहीहै, अन्य नहीं,यहीसर्वशास्त्रोंका सिद्धांतहै।हेमैत्रेय !शास्त्र पढताहै औरअपने स्वरूपको नहीं जानता,तो पढना निष्फलहै और जाने पीछेभीप-

ढना निष्फल है जैसे कोई पुरुष पराल(फूस)से धाननहीं निकासता पुनःपुनःपराल कूटताहै तो मिथ्या परिश्रम है और धान निकासके पुनःपरालको कूटता है तो भी निष्फल है, विना निजतत्त्व जाने भयरूपसे निष्फल है । हे मैत्रेय ! तेरीभी मुक्ति होनी कठिन है, क्योंकि, तेरी बुद्धि पुराणशास्त्रोंमें लगरही है आपको तू पंडित परमहंस सर्वते बडा मानता है और अन्यको तू मूर्ख जानता है, क्योंकि, गुरु और सत् शास्त्रमें तेरी भक्ति नहीं तुझको स्वरूप प्राप्त होना कठिन है । मैत्रेयने कहा-अब मैं गुरुशास्त्रमें श्रद्धा करूँगा, इंद्रियोंको वैराग्यसे अष्टांगयोगसे वा सांख्ययोगसे रोकूंगा परंतु तत्त्व उपदेश करो । पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! इंद्रियोंको केवल हठसे रोकनेसे मुक्ति नहीं होती किंतु, शास्त्ररीति अनुसार, सर्व इंद्रियोंसे धर्मपूर्वक यथायोग्य,व्यवहारकर और अपनेकोअसंग,निर्विकार, निर्विकल्प, आत्मा ज्ञान, देह इंद्रियोंके व्यवहारमें कर्तृत्वभोक्तृत्व बुद्धि मत कर ये सब अनात्म धर्म हैं, तू आत्मा चैतन्य अपने धर्ममें स्थित रह । हे मैत्रेय ! जब यह देहादिक अनात्मा अपने धर्मको नहीं त्यागते, तो तू आत्मा अपने असंगादि धर्मोंको क्यों त्यागता है, ये देहादिक अनात्मा तेरा स्वरूप नहीं, यह पंचभूतोंका स्वरूप है, वा मायाका है । हे मैत्रेय ! मल मूत्र रूप देह अभिमानी पुरुष, मेहतरोंके बडे भाई हैं, क्योंकि, मेहतर चारघंटे मलका काम करता है, फिर नहीं करता । यह देह-अभिमानी पुरुष तो आठ प्रहर चौंसठघडी, मल मूत्ररूप देहविषेही अहंबुद्धिपूर्वक विराजमान रहता है, मलके कीडेके समान ग्लानि नहीं करता । इससे देह अभिमानी मेहतरसेभी अति नीच है । कारण कि, मेहतर आपको मलसे जुदा जानताहै और यह देहाभिमानी आपको मलरूपहीजानताहै इससेस्पर्शकरनेकेभी योग्य

नहीं जो इस देह अभिमानमें बंधहै, सोई पाखानेरूपदेह नरकमें बंध है जो इससे मुक्त है, सोई मुक्त है। हे मैत्रेय! इस भोगमय संसाररूप एक वृक्षके तीन थल हैं मधुर, खाटा, कटु-सांसारिक पदार्थ भोग-कालमें मीठे हैं, वियोगकालमें खट्टे हैं, और शरीर नाशकालमें यह पदार्थ कटु होते हैं। जैसे-मेवा आदि पदार्थ मधुर होते हैं, जलमें कुछ दिन रहनेसे खट्टे हो जाते हैं। पुनः वह खटाई पडी रहनेसे कटु होजाते हैं। इससे हे मैत्रेय! अभिमानको त्याग और पवित्रहो नहीं तो मेहतरकी तुल्यताको प्राप्त होवेगा, जब तू देहादिकोंका अभिमान त्यागेगा,तब देहादिकोंके धर्म हर्ष शोकादिकभी तुझ-को न होवेंगे आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जानें, "यही परमभजन है, वा मैं असङ्ग, निर्विकार, निर्विकल्प, सच्चिदानंद साक्षी आत्मा हूँ, यह असत् जड दुःखरूप संघात देह मैं नहीं, मैं देहादिक दृश्यका द्रष्टा आत्मा हूँ" इस परमभजनसे द्वैतसे पवित्र होवेगा। इसीपर एक कथा तुझको कहता हूँ सो तू श्रवण कर।

वेश्याकी कथा।

एक समय सब सन्त एक पर्वतपर बैठे थे, और ब्रह्मविचारमें मग्नहो हँसते थे कि, विचार बिना जो यह अनहुवा संसार प्रतीत हो रहा है वास्तवते नहीं, यह मायाकी अद्भुत लीला है। इसी अव-स्थामें-किसी सन्तकी सङ्गति करके हुआ है आत्मज्ञान जिसको तथा निवृत्त होगई है, देह अध्यासपूर्वक जगत्की वासना जिस-की-ऐसी एक वृद्ध वेश्या आई कैसी वह वेश्या है, सम्यक् अप-रोक्ष वैराग्यपूर्वक, ज्ञान अग्नि करके सम्यक् दग्ध होगया है सूक्ष्म स्थूल अहंकार जिसका तथा जाना है अपरोक्ष आत्मा स्वरूप जिसने किसी निमित्तसे कुसंग करके वेश्या होगई थी, पुनः किसी पुण्य प्रतापसे सत्सङ्ग करके महान् भावको (स्वरूपको)

प्राप्त हुई है क्योंकि, कर्मोंकी गति अद्भुतहै। ऐसी ब्रह्मवित् वेश्या, हम हँसते हुओंको देखकर, कहने लगी—हे संतो! तुमने शरीर (दृष्टिकर) मुझको जाना है सो तो सम्यक् विचाररूप अग्नि, मेरी दृष्टीसे भस्म होगया है। जैसे अश्वत्थामाके बाणकर कृष्णकीदृष्टिसे रथ भस्म होगया था परंतु अर्जुन तथा लोगोंकी दृष्टिमें वैसाही प्रतीत होता था। जैसे—भींतपर रंगकी स्त्री पुरुषादिकोंकी पुतलियाँ प्रतीतिमात्र हैं, रंगसे पृथक् स्त्री पुरुषादिक कछु वस्तु नहीं परन्तु बालकोंकी दृष्टिमें भिन्न भिन्न स्त्री पुरुषादिकोंके आकार हैं रंग और भींतके ज्ञाता पुरुषको नहीं। हे साधो! जैसे किसीके स्वप्नमें वा जाग्रत्में एकही गऊको स्वप्ननर वा जाग्रतनर देखकर स्वप्ननरोंकी, वा जाग्रत् नरोंकी भिन्न भिन्न दृष्टि होतीहै। चमारकी दृष्टि चमडेपरा जाती है कसाईकी दृष्टि मांसपर जाती है, गूजरादिकोंकी दूधकी दृष्टिहै. कि इतना दूध इस गऊमें है; त्रिवर्णके पुरुष गऊको पूज्य जानतेहैं और आत्मदर्शी गऊको आत्मा जानतेहैं परंतु पास जाग्रत् पुरुषको वा सम्यक् अपरोक्ष आत्मबोधरूप जाग्रत् पुरुषको पूर्वोक्त स्वप्नादि व्यवहारका अत्यंताभाव है। तैसेही—हे संतो! इस स्वप्नवत् मेरे शरीरको कोई वेश्या जानता है कोई माता जानताहै कोई भगिनी कोई बेटी कोई भूआ कोई मौसी और कोई पत्नी जानतेहैं। कोईक विद्वान् पुरुष इस मेरे रुधिर अस्थि मांस मलमूत्र शरीरको मायाके कार्य्य पंचभूतरूप मानते हैं और ब्रह्मवेत्ता मुझको आत्मरूप जानतेहैं। परंतु मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्माकी दृष्टिसे इस शरीर सहित सर्व नामरूप जगत्का अत्यंताभाव है। केवल जीवोंके फुर्णे मात्रमैंही मेरा शरीर है स्वदृष्टिसे नहीं। जैसे—स्वप्न नरोंकोही निद्रा कर स्वप्न प्रपंच प्रतीत होताहै, परन्तु स्वप्न द्रष्टाकी दृष्टिसे स्वप्न दृश्यका अत्यंताभाव है वा पास जाग्रत् पुरुषको अत्यंताभाव है। इससे मैं गऊ

तुमको संत जानकर आई हूँ, तुम शरीरदृष्टि मत करो । शरीर सबके पांचभौतिक मल मूत्रके एकही सरीखेहैं । संतोंकी पवित्र दृष्टि होतीहै और असंतोंकी अपवित्र दृष्टि होतीहै । हे संतो वेश्या संज्ञा शरीरकी है, मैं तो अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगद्वि-ध्वंसक, प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंद हूँ । नहीं जानती थी कि, मांस चमडेकी संत दृष्टि करेंगे क्योंकि संत वही हैं जो, आपसहित इस सर्व नामरूप प्रपंचको हरिरूप जाने । हे संतो ! मैं मूर्खतासे, पूर्व हाड मांस चमडा मलमूत्ररूप इस शरीरको तथा शुद्ध निर्विकार निर्विकल्प असंग आत्माको; एकरूप जानतीथी. उसीके अपराधसे संसा-रमें, सत्यत्व बुद्धिपूर्वक, महान् भोगोंकी वासना करके दुःखी हुई तथा परपुरुषके संयोगकर सुखी और वियोग कर दुःखी होती रही तथा आपको वेश्या जानती रही परन्तु अब मैं तुम संतोंकी कृपासे कल्पित बंधमोक्षादि सर्वसंसारके धर्मोंसे रहित सच्चिदानंदरूप आत्मा अपनेको जानती हूँ । पूर्व अज्ञात अवस्थाको स्मरण कर हँसती हूँ क्योंकि मैं क्या जानती थी कि मैं देश काल वस्तु परिच्छेदसे रहित सर्वकाल एक रस हूँ ।

संत दत्तात्रेयने कहा--हे वेश्या ! तू कहांसे आई है, कहां जावेगी और कहां रहती है वेश्याने कहा-अपने आपसे आई हूँ, अपने आपमें जाऊँगी, अपने आपमें स्थित हूँ । जैसे तरंग जलसे आया है जलमेंही जावेगा और जलमेंही स्थित है । वामदेवने कहा-हे वेश्या ! मन तेरा महान् चंचल है; मनको जब अफुरकरे तब स्वरूपको पावे बिना समाधि स्वरूपका पाना कठिनहै। वेश्याने कहा-जिसको समाधि (चित्तकी एकाग्रता) करनेसे सुखहो चित्तके फुरनेसे दुःखहो सो समाधि करे वा न करे मुझ चैतन्य असंग आकाशको तो वायरूप मनके फुरणे अफुरणेमें हर्ष शोक है नहीं ।

हे वामदेव! वायुके फुरणे अफुरणेमें, वायुको सुख दुःख हो वा न हो परन्तु सर्वथा असंग आकाशको हर्षशोकनहीं। जो आकाश वायुके फुरणे अफुरणेमें हर्ष शोक मानेगा, तो आकाश विद्वानों करकेहँसने योग्य होगा क्योंकि, आकाश आप चल अचलते रहित पूर्ण भी हुआ चल अचल वायुके धर्मोंको अपना धर्म मानता है सो भ्रमहै भ्रमी पुरुष सुखी नहीं होता। तैसे मुझ निर्विकार निर्विकल्पपूर्ण चैतन्य, आत्माको मनके धर्मसमाधि असमाधि करनेसे सुख दुःख नहीं। मनके धर्म मनकोही सुखदुःख देवेंगे मुझ निष्कर्तव्य निरपराधको नहीं। या अनीति नही होसक्ती कि, मूली, जहर, शराब अमृत आदि पदार्थ भोजन और करे उसका गुणदोषादि औरको होवे। हे वामदेव! विद्वान् पुरुषको विपरीत बुद्धि है नही, विना विपरीत बुद्धि विपरीत व्यवहार होता नहीं, उलटा परधर्म दुःखका देनेवाला होता है स्वधर्मही सुख देता है यह सर्व शास्त्रोंका सिद्धांत है इससे मैं अपने नित्य चित् सुखस्वरूपमेंही स्तिथहूं। परधर्ममनके फुरणे अफुरणेसे मुझको क्या प्रयोजनहै। जैसे--सर्व लोकोंके प्रकाशक सूर्य वा दीपकको लोकोंके व्यवहार होने न होनेसे, क्या प्रयोजन है।

मैंने कहा--हे वेश्या! तेरा गुरु कौन है? वेश्याने कहा—गोनाम इन्द्रियोंकाहै वा गोनाम अन्धकाररूपअज्ञानका है, रुनामप्रकाशकाहै, तात्पर्य यह कि, अज्ञानको तथाअज्ञानके कार्य्य इन्द्रियादिक सर्वको--जो, प्रकाशे तिसका नाम गुरु है; सो, ऐसा पदार्थ चैतन्य स्वरूप आत्मा मैंही सर्वका गुरु हूँ; मुझ चैतन्य द्रष्टाका दृश्य गुरु नहीं बनसक्ता। जैसे स्वप्नदृश्य प्रपंचका स्वप्नद्रष्टाही गुरुहै। जैसे सर्पदंड मालादिक पदार्थोंका रज्जुही गुरु है। हे पराशर! मैंइस दृश्यका द्रष्टा गुरु हूँ, ऐसा भी मैंने मुमुक्षुके समझाने वास्ते कहा है नहीं तो मैं अद्वितीय हूँ मुझ अवाङ्मनस--गोचरमें गुरु शिष्य

कल्पना नहीं । जो गुरु शिष्यकल्पना माने भी तो, मैं चैतन्यभात्मा ही सर्व नाम रूप दृश्यका गुरुहूँ, मुझे चैतन्यका अन्य गुरु कोई नहीं। स्वप्नप्रकाश होनेपर भी अन्य माने तो अनवस्थादिक दोषकी प्राप्ति होतीहै।हे पराशर! भजन गोविंदका निरूपण कर।मैंने कहा भजन यही है, न तू वेश्या, न मैं पराशर, एक गोविंदही है । जैसे--नघटाकाश नमठाकाश एक महाकाशहै। मैंने कहा हे वेश्या तू कौन है।कहाँसे आई है! कहां जावेगी ? वेश्याने कहा-जोतूहै सोई मैं हूँ, जहाँसे तू आया है तथा जहां जावेगा, मैं भी वहांहीसे आई हूँ, वहांही जाऊँगी। जहां तू रहता है वहांही मैं रहती हूँ। जहां से तू जन्मा है वहांहीसे मैंभी जन्मी हूँ, जो तुम्हारा हाल है सोई मेरा हालहै, विलक्षण नहीं इससे तेरा प्रश्न हांसीका आस्पद है। परन्तु भजन गोविंदका कर। मैंने कहा, हे वेश्या ! तूने आप ही पूर्व कहा है "मैं सर्व दृश्यका गुरुरूप हूँ" तब मुझको भजनसे क्या काम है। वेश्याने कहा, मैं कोई कर्तव्य जानकर भजन पूछती नहींहूँ परन्तु,सन्त जहांइकट्ठे होतेहैं,तहांस्वाभाविकही वचन विलास होताहै, यदि मेरा निश्चय पूछे तो मुझको शपथ है; जो अपनेको गुरु और अपने पृथक् दृश्यको शिष्य जानती हूँ । मैं अद्वितीय नारायण हूँ मुझेमें द्वैतका मार्ग नहीं ।मैंने कहा--हे वेश्या तूने गुरु शिष्य कल्पना क्यों की जब, तू अद्वैत है।वेश्याने कहा गुरु शिष्यकी कल्पनाभी कल्पनामात्रहै, कहा तो क्या घाटाहै, न कहा तो क्या बाधा है।हे पराशर। मिथ्या अहंकारको छोड जो मुझको स्वरूपकी प्राप्तिहोवे।मैंने कहा तूने कहनेमात्रको क्यों प्रमाणकिया? वेश्याने कहा--जैसे--तूने कहने मात्रको प्रमाण किया था परंतु क्या चिंता है, मृगतृष्णाका जल है नहीं, परंतु कहनेमें आताहै ।

अवधूतने कहा-तेरेकहनेसे भ्रमसिद्ध हुआ।वेश्याने कहा-अस्ति भाति प्रियरूप भगवान्से जो भिन्नप्रतीतिहै, सो भ्रम है ।वास्तवमें

विचारती हूँ तो भ्रमभी कहां है?भगवानही है। अवधूतने कहातेरे कहनेसे जानाजाताहै-जैसे भ्रमहै तैसेही भगवानहै;इसी कारणसे तू वेश्या हुईहै कि,भगवान् और भ्रमको सम कहतीहै। वेश्याने कहा भगवान् और भ्रम दोनों शब्दमात्रहैं,मैंअवाङ्मनसगोचरइन शब्दोंसे तथा शब्दोंके अर्थसे अतीतहूँ। परन्तु हेअवधूत!मेरेवचनों लक्षणोंका तू द्रष्टा कैसेहुआहै-जैसेस्वप्नके पुरुष स्वप्नद्रष्टाकेवा जाग्रत् पुरुषके वचनों लक्षणोंकाद्रष्टा नहीं होसक्ते वासोया पुरुष जाग्रत् पुरुषके हालका महरम नहीं होसक्ता। तैसा मुझ जाग्रत्का तू सोया कैसे द्रष्टाहुआहै;तुझको लज्जा नहीं आती?अवधूतनेकहा लज्जादिक सर्व पदार्थोंको धोयकर अवधूत हुआहूँ लज्जा किससेकरूं मैं अद्वितीयहूँ।वेश्याने कहा,बडाआश्चर्यहै जो आकाश अपनेमें नीलिमा मानके नीलिमाकेधोनेका उद्यम करताहै तो हांसीका आस्पद होताहै। हे अवधूत!सर्व पद अहंकारमेंहै जब अहंकारको तूने धोया नाम त्यागाहै तो सर्वत्यागी है, नहीं तो कुछ धोयानहीं। जब तू कहै मैंने अहंकारको त्यागाहै तो सर्व कर्मोंका धोना कथन चिंतन कौन करेगा क्योंकि, अहंकारही कथनचिन्तन होताहै अन्यथा नहीं।अवधूतनेकहाक्याकरूं, वेश्यानेकहाकर्तव्यसे कुछनकर, सम्यक् अपने स्वरूपको जान, जो कर्तव्य प्राप्त होताहै सो मिथ्याहै। संत निष्कर्तव्य पदमें स्थितहैं, वास्तवतेकर्तव्यअकर्तव्यके अभिमानसे भी रहितहैं, क्योंकि कर्तव्य कुछ नहीं बोद्धव्य हीहै। इससे नामरूप दृश्यसे दृष्टि उठाकर अदृश्यमें दृष्टि लगा, पीछे दृश्यमान अदृश्यमानका भेद नहीं रहेगा। जैसे-खांडके खिलौनेकेनामरूप त्यागेविना, बालकको सम्यक् चीनीका बोधनहीं होता। सांगोपांग चीनी जानेपीछे खिलौनेके नामरूप त्यागनेका कुछे प्रयोजन भी नहीं, सर्व चीनीरूपही है, खिलौने कहनेमात्रहैं।

अवधूतने कहा-हे वेश्या! तू परमहंस दीखती है। वेश्याने कहा परमहंस अपरमहंस मेरे स्वरूपमें दोनों नहीं, जैसे-स्वप्नके परमहंस अपरमहंस स्वप्नद्रष्टाके स्वरूपमें दोनों नहीं।

पराशरने कहा--हे मैत्रेय! वेश्याके वचन सुनकर अवधूतकी सुधिगई। पुनः जडभरत बोला हे वेश्या! तूने कहाहै कि, आत्मामें त्रिपुटीहै नहीं तोकिसमेंहै, जिसमें त्रिपुटीको मानकर आत्माजुदा माने सो कहो, ऐसा चैतन्य आत्मासे भिन्नत्रिपुटीकाआधार है नहीं इससे त्रिपुटी आत्मारूपहीहै परंतु. आपही अपनेको देखताहै, आपही अपनेको सुनताहै, आपही अपनेको स्पर्श करताहै;इसीप्रकार सब इंद्रियोंमें जानलेना।तात्पर्य यह कि.त्रिपुटीरूप भी आपहीहै तिसका द्रष्टा अधिष्ठान तथा आधारभीआपहीहै।जैसे-स्वप्नमें स्वप्नद्रष्टाही द्रष्टादर्शनदृश्यरूपत्रिपुटीभी आपही होताहै; तथात्रिपुटीका द्रष्टा अधिष्ठान तथाआधारभी आपहै और कोई जाग्रत्के पदार्थ स्वप्नमेंहैं नहीं, जिससे त्रिपुटी होवे। ताते-हे वेश्या! जब सर्वरूप आत्माही है-तब देखनाभी आत्माहीहै। वेश्याने कहा-हे जड़भरत! तेरी बुद्धि हँसने योग्यहै,जो एक आत्मामें सर्व कल्पना करताहै तथा भिन्न अभिन्न जानताहै। कभी तैंने अपने शरीरको अपनेसे भिन्न अभिन्न जानाहै। जैसे-घट पटादिक भिन्नभिन्नप्रतीत होतेहैं तथा बड़े,छोटे, शुद्ध अशुद्ध,परेउरे देशकाल, वस्तु,भेदवाले प्रतीत होतेभी पंचभूतरूपहै इससे एकरूपहीहैं, क्योंकि अकार्य हँसताहै रुदनकर। तब वामदेव और.जडभरतदोनोंरुदनकरने लगे।

पराशरने कहा-हेमैत्रेय!तब मैंने कहा-हे मित्रो!रुदनक्यों करतेहो, तुम्हारेस्वरूपमें रोनाहँसनासमानहीहै, हँसनेकोत्यागना, रोनेको ग्रहण करना अयोग्यहै। वेश्याने कहा हेसन्तो! स्वप्ननरोंकारोना हँसनादि व्यवहार स्वप्नद्रष्टाको समहैं। हे पराशर! जो रागद्वेप-

पूर्वक हँसना रोना है, तो मूर्खता है, यदि समताको लिये हँसना रोनाहै तो ठीक है। जैसे—नाटकमें नट स्वांगके अनुसार कभी रोताहै, कभी हँसताहै, परंतु नटको नाटकमें हँसना रोना विलासमात्र, प्रसन्नताका कारण है तथा नट और नाटकके द्रष्टारूपके विद्वान् पुरुषोंको भी नटका नाटकमें हँसना रोना विलासमात्र है। स्वयम् नट भी हँसना रोना आदि व्यवहार करतेभी नटत्व निश्चयसे चलायमान नहीं होता, बालकोंको नटका हँसना, रोना, हर्ष शोकका कारण है। हे पराशर! समदृष्टिके लिये, विद्वान् पुरुषोंकी जो जो रागद्वेषसे रहित चेष्टा है, सोई मुमुक्षुओंको उपदेश है। क्योंकि मुमुक्षु ऐसे विचारते हैं कि, इन विद्वान् पुरुषोंने ऐसा कोई समतारूप अमृतपान किया है? जिससे सब न्यून, अधिक लौकिक, पारलौकिक, कायिक, वाचिक, मानसिक, शुभाशुभ, सुख, दुःख, हँसना, रोनादि अवस्थामें, हमेशा शांतरूप समही रहतेहैं विभ्रमगतिको कदाचित् भी प्राप्त नहीं होते। जिस समतारूप अमृतके प्रतापसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिकोंके सहित उनके ऐश्वर्य्यकी इच्छा नहीं करते तो अन्य ऐश्वर्य्यका क्या कहना है, अनिच्छाभी नहीं करते ग्रहण त्याग बुद्धिसे रहित हैं, स्वतंत्र हैं, जन्ममरणरूपी भयसे भी रहित हैं। सदा जगत्के भोग पदार्थोंसे रहित हैं, तोभी प्रसन्न वदन रहते हैं शरदृतुकी पूर्णमासीके चंद्रमावत्। इससे सर्वसे विलक्षण कोई अद्भुत पदार्थ इन विद्वानोंको मिला है। इससे हम लोगोंको भी इस अमृतके पान करने वास्ते इन विद्वानोंके सकाशसे यत्न करने योग्य है नहीं तो हमारा जीवन व्यर्थ है। इस प्रकार सम्यक् संतोष विचार, निष्कामतादि आचरण विद्वानोंके देखके मुमुक्षुजनोंको भी परमपदपानेकी इच्छा होती है। इससे हंसना रोना अनात्मधर्म ब्रह्मरूप विद्वान् पुरुषोंको समही है जैसे—आकाश जीवोंके

रोनेमें समही है, हर्षशोकरूपी न्यून अधिक नहीं होता । हे मैत्रेय ! जडभरतादिक लज्जायमान होकर तृष्णीम् होगये क्योंकि, वेश्या अवाङ्मनसगोचर पदको कहती थी । इस पदमें वाणीका प्रवेश नहीं इससे तृष्णीम् होनाही भला था । पुनः मैंने कहा हे वेश्या ! संसार कैसे इस जीवका छूटे ? वेश्याने कहा मैं शास्त्र वेद पढी नहीं परंतु, तुम संतोंसे सुना है, जब परिच्छिन्न अहंकार आपा छूटा तब नामरूप संसार कहां है ? जैसे सुषुप्ति मूर्च्छामें अहंकार नहीं तो जगत्‌भी नहीं । पुनःमैंने कहा हे वेश्या!अहंरूप चित्त कैसेहो ? वेश्याने कहा, हे पराशर ! तू कौनहै? चित्तको वश करनेवाला, चित्तादि जड दृश्य हैं वा द्रष्टा हैं ? जो तू चित्तादि दृश्यका द्रष्टा है तो तुझको चित्तके वश करनेका क्या प्रयोजन है,क्योंकि चित्तादिक दृश्यका द्रष्टा तुझको चित्तादि दृश्यलाठी नहीं मारता है,तथा जादू मंत्र नहीं करते हैं,तेरा रस्ता नहीं रोकते हैं, तुझको जहर नहीं देते हैं, तुझको आवरण नहीं करते हैं,तथा अपना दृश्य स्वरूप और बंध मोक्षादि धर्म तुझको नहीं देते । अथवा तुझ द्रष्टाके, चित्तादि दृश्य, नजदीकभी नहीं बरन् तुझ द्रष्टाको चित्तादि दृश्य अपना हितकारी जानतेहैं,अहितकारी जानते नहीं क्योंकि, द्रष्टा चैतन्य करकेही जड दृश्यकी सिद्धि होतीहै, अन्यथा नहीं । यही द्रष्टाको दृश्य उपहित करता है । तुझ द्रष्टाको चित्तादि दृश्य कोई उपालंभ भी नहीं देते कि, तुम हमको ठीक नहीं प्रकाश करते,जैसे-सूर्य्य दीपकादिप्रकाशकोंको घट पटादि प्रकाश्य उपालंभ नहीं देते । तात्पर्य्य यह कि, सर्व प्रकार आकाशके समान अपना बिगाड नहीं होता और किसी प्रकारभी चित्तादि दृश्य पदार्थ तुझको पीडा नहीं देते । बिना प्रयोजन दूसरेका हर्जा करना नालायकोंका काम है । नाहक अपराध बिना, दूसरेसे शत्रुपना करना, पाप होता है ।

जैसे--विना अपराध धीवर, मछलियों और पक्षियोंको जालमें फँसाता है। धीवरकी समता मत कर, तेरेमें चित्तादि दृश्य हैं ही नहीं, वश किसको करता है। जैसे--शुद्ध स्फटिक मणि अपनेमें कल्पित लालीके दूर करनेका उपाय नहीं करती, करे तो भ्रम है अथवा जो तू आपको चित्तादि दृश्य जानते हैं तो; चित्तादि दृश्य तूही ठहरा वश किसको करता है, जो वश करता है तो, अपने धर्मोंका वा अपनेको वश कर वा न कर, द्रष्टाको क्या हानि लाभ है कुछ नहीं। तुझ चैतन्य द्रष्टाके आगेही चित्तादि जड, दृश्य वशवर्ती हैं, वशवर्तीको पुनःवशवर्ती करना लज्जाका कामहै; पीसेका पुनः पीसना हाँसी है जैसे स्वप्नद्रष्टा चैतन्यके अधीनही, स्वप्न पदार्थोंकी प्रतीति है स्वतःनहीं। चित्तादि दृश्य अपने धर्मोंको वा अपने आपको रोकेगा तो तेरा मरण निःसंदेह होगा; जैसे--मल मूत्र त्यागरूपी देहका धर्म, देह त्यागेगा तो अवश्यमेव मृत्यु होगी; आकाशकी कुछ हानि लाभ नहीं होगी जैसे निज शरीरको शरीर वशकरे चेतन विना सो न्याय तुझको होगा इससे जो तू अधिष्ठान कल्पित चित्तको वश किया चाहता है तो, अपने स्वरूपको सम्यक् जान। अधिष्ठानके ज्ञानते कल्पित की निवृत्ति बलात्कारसे होती है, कल्पितकी निवृत्ति वास्ते जुदा साधन नहीं चाहिये। जब तूने सर्व ओरसे पूर्णरूप अपना आत्मा जाना तब, आपेही मन भटक भटकके शांत होजावेगा। जैसे मध्य समुद्र विषे जहाजसे काग उडे सो काग चारों ओर समुद्रको देखता है और इधर उधर अपने बलसे भटकताहै, जब अन्य आधार नहीं देखता तब थककर जहाँसे उडा था उसी जहाजपर पुनः बैठताहै। ऐसेही-हरिपूर्णदृष्टि विना मनके वश करनेका और उपाय कोई नहीं। जैसे तरंगादिकोंका निजस्वरूप जलके जाननेसेही तरंगादिकोंकी वशीकारिताहोती है। जैसे--जड पदार्थ

निजात्मामें कल्पित रज्जुरूपकेसम्यक् अपरोक्षबोधसेही, मनरूप सर्प वश होता नाम निवृत्त होता है। जैसे स्वप्नद्रष्टाका, सम्यक् जागरणही, स्वप्नसृष्टिसहित स्वप्न मनका वशीकरण होताहै।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय! वेश्याने सत्यही कहा है,जैसे अंगारेमें जिस अग्निके वियोगसे,अनिर्वचनीय अन्य कारणके विना कलुपता प्राप्त होतीहै सो, कोयलेकी कलुपता किसीभी उपाय करके दूर नहीं होती जिस अग्निके वियोगसे कोयलेमें कलुपता हुईहै, तिसी अग्निमें कोयलेका प्रवेश होनेसे, कोयलेकी कलुपता दूर होतीहै पुनः यह मालूम नहीं होता कि, कोयलेकी; कलुपता कहां गई और कोयला कौनहै। तात्पर्य्य यह कि, अपना नाम रूप मिटायके एक अग्निरूप होताहै, तैसेही सच्चिदानंद रूप अग्निके वियोगसे, मनरूप कोयलेमें कर्तृत्व भोकृत्वरूप कलुपता उत्पन्न हुई है। सो कर्तृत्व भोकृत्व रूप कलुपता, यज्ञ,दान, तप, होम,व्रत, तीर्थ जप,ध्यान,वेदाध्ययन,शम दम,वैराग्यादि किसीभीसाधनसे दूर नहीं होती किन्तु, जिस सच्चिदानंदके अज्ञानसे, मन वा मन उपाधिक चैतन्यमें, कलुपतारूप आवरण हुआहै, तिसीके ज्ञानसे मनरूप कलुपता दूर होवेगी; अन्य उपायसे नहीं। तात्पर्य्य यह कि, आप सहित सर्व मनादिकोंको हरिरूप जाननेसे, मनादिक अपना नाम रूप त्यागके, हरिरूप होवेगा। पुनः यह नहीं जाना जावेगाकि मनादिक अपने धर्मोंसहित कहां गये। हे मैत्रेय! जब नामरूप मन सहित संसारको मिथ्या जाना और अपने स्वरूपको त्रिकालाबाध्य स्वरूप सत् जाना तब, मन कहां जावेगा, उलटा मिथ्या दुःखरूपते हटके, सुखस्वरूप आत्मामेंही बलात्कारसे लय होगा। हे मैत्रेय। मृत्तिका बुद्धिही घटादिनामरूपकेअभावका

घटादि मृत्तिकारूप हैं, यही दिव्यदृष्टि है क्योंकि, कारणदृष्टिही दिव्यदृष्टिहै, अन्य नहीं ।

हे मैत्रेय! पुनः वेश्या बोली-हे संतो! जिस समय संसारकी सर्व चाहनाको छोडकर, एकभगवत्की चाहना हुई, उसीसमय वेश्यादि संज्ञा दूर हुई क्योंकि, गोविन्द व्यतिरेक जो कुछ दृष्टि आताहै, सो मलिनताहै। जो मूढ है सोई इस दृश्यमानमें प्रीति करताहै, विचारवान् नहीं करता है। हे पराशर! तू इस दृश्यमानमें दृष्टि क्यों करताहै कि, मैं परमहंस हूँ, ऋषिहूँ, मैं ब्राह्मण, मैं पंडित, मैं कुलीन, मैं ज्ञानी इत्यादि हूँ-और यह वेश्या है, नीचहै, दुराचारिणी है इत्यादि. परंतु यह जान दृश्यमान यह शरीर अति मलिनहै, कृमिहै, भस्म होनीहै; गोविन्द व्यतिरेक जो प्रतीतिहै सोई मलिनताहै, मैंने कहा हे वेश्या! तूनेही पूर्व कहाहै कि मैं सर्वरूप अद्वितीय आत्मा हूँ तो मलिनता कृमि और भस्मभी तूहीहै। वेश्याने कहा सब कहनेमात्र नहीं तो मैं चैतन्य सर्व पदोंसे अतीतहूँ। मैंने कहा जो तेरेविषे सर्व पद नहीं तो तुझसे भिन्न कौन है, जिसमें सर्वपद होवें। वेश्याने कहा-तुझको सर्व असर्व पद कैसे दृष्टि आया है। मैंने कहा, जैसे तुझको मलिनता कृमि भस्म दृष्टि आया। पुनः वेश्याने कहा-हे पराशर! तू परमहंस है। मैंने कहा-ऐसे मत कहो, यह कल्पना मेरे विषे नहीं, यह कल्पना तेरे विषे है, जिससे आपको तूने वेश्या जानाहै और मुझको परमहंस जानाहै। हे वेश्या! जो जो तू मन वाणी करके कथन चिंतन करेगी, सोसो अहंकारका रूपहै वा मायाका रूपहै। दृश्यका तहांतकही रूपहै, जहांतक मन वाणीकी विषयता है, मैं आत्मा मन वाणीसे अगोचर हूँ। जैसे तूने सुनकर वेश्यापन दृढ किया, स्वप्नमेंभी तू और नहीं जानती तैसे तू जब अपने स्वरूपको दृढ जानेगी, तो मुक्तिकी इच्छा न करतीहुई भी, मुक्तिको पावेगी। जैसे-घटाकाश सम्यक् अपने

स्वरूपको जानताहै तो घटके फूटने न फूटनेमें निःसंदेह महाकाश स्वरूप है.यह नहीं कि, घटाकाश घटमें पदार्थ होनेसे,निर्विकार नहीं,सत् नहीं और विकारीहै, किन्तु सदा निर्विकारहै ।इससे हे वेश्या ! इस सूक्ष्म स्थूल अहंकारको निरहंकाररूपी हिमालयमें,और निरहंकाररूपी भस्मको लगा कि, पुनःपापसे निर्मल होयके शोभायमान होवें। वेश्याने कहा-हिमालयमें अनेक जीव मरते हैं परन्तु पापसे नहीं छूटते,इससे हिमालयमें जलनेका कुछ प्रयोजन नहीं.जलना मेरा तेरे वचनोंसे होगा क्योंकि,वेश्या नाम मनरूपी नगरसे निकासो । वास्तवते मैं चैतन्य आत्मा स्वाभाविक शोभायमान हूँ यत्नते नहीं। मैंने कहा-में ऐसा अतीत हकीम नहीं हूँ जो इसवेश्या नाम को निवृत्त करूँ और सच्चिदानंद नाम राखूं।जैसे कोई गृहस्थ अतीतके पास,अतीत होनेको आताहै तो,वह अतीत पूर्व गृहस्थके नामको निकासकर, दूसरा नाम घुसेडताहै,एकनाम रूप भ्रमको निकासा.दूसरा नाम रूप भ्रममें उलटा दृढ कर डाला;इसमें विशेषता क्या हुई।कुछ न हुई.इससे सच्चित् आनंदादिक सर्व नाम रूप कल्पित भ्रमहै,सत्य नहीं । जिससे सच्चित् आनंदादिक सर्व नामरूप सिद्ध होतेहैं,सो अवाङ्मनसगोचर तेरा स्वरूप है । हे वेश्या ! तू अहंपना त्याग पुनः तिस त्यागका भी त्याग कर जिससे स्वरूप अपना पावे। पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! वह वेश्या यत्किंचित् काल, संतोंकी संगतिकरके, मूल अपनेको पालिया,परंतु तुझको अबतक कुछ प्रवेश न हुआ । मेरा उपदेश तुझको अकार्यही हुआ । मैत्रयने कहा- तुम मेरे गुरुहो,अहंकर मेरा निवृत्त करो। पराशरने कहा-अहंकार तेरा है,मैं कैसे निवृत्त करूं । हे.मैत्रेय । बांदर चनोंकी मुट्ठी अपनी मूँदता है, तोफँसताहै जो अपनी मुट्ठी खोले तो छूट जावे। मुट्ठीका खोलना न

खोलना बँदरके अखत्यार है दूसरेके नहीं। हे मैत्रेय!मैं तेरा अहं-
कार निवृत्त करूँ कि,अपना तेरा अहंकार मुझको दुःखनहीं देता.
जिसको अहंकार दुःख देवेगा, सो आपही त्यागेगा । जैसे-कोई
चारआनें देकर,मजदूरके शिरपर बोझा उठवाकर चले,जब मज-
दूरको बोझ सहन नहीं किया जाता तो लाचार होकर नीचे पटक
देताहै,चाहे कोई हजार मोहर देवे क्योंकि अपने शरीरसे सहन
किया जाता नहीं-लाचारीहै।तैसे जब अहंकार तुझको दुःखदेवेगा
तो तू आपही बलात्कारसे त्यागेगा।मैत्रेयने कहा-जो मुमुक्षु-
ओंके अहंकारादिक विकार निवृत्त नहीं करते तो आपको तुमने
आचार्य कैसे मानाहै। पराशरने कहा-सत्त्व रज तमादि गुणोंके
प्रकाशक आत्मामें आचारविचार नहीं किंतु संघातके धर्म हैं।
परंतु मेरी कृपाकी आशा राख,वचन आगे मतकर और नित्य अ-
नित्य मत पूछ;जो कहूँ सो सत्यकर मान। मैत्रेयने कहा जबलग
संदेह मेरा निवृत्त नहीं होता तथा दिलमें नहीं जँचता, तब लग
मैं चुप होनेका नहीं । वेदमें लिखाभी है कि जबतक शिष्यका
संशय न मिटे,तब तक शिष्य चुप न होवे और गुरुभी क्रोधरहित
उपदेश करै।यह वचन मैत्रेयका सुनकर पराशरने मैत्रेयके केशहाथ
में पकड़कर भली प्रकार शासनाकी,मैत्रेयने कहा हेपराशरजी बड़ा
आश्चर्य है कि,दैत्यादिकक्रूर (हिंसक) जीवभी अपनी देहको
आप भक्षण नहीं करते तुम अपने आपको कैसे शासन देते हो।
मैं तो मैत्रेय, नाम मात्रभी नहीं, आपको मत मारो। पराशरने कहा
क्या मुझको तैंने तुच्छ समझा है? अभी तुझको भस्म करताहूँ।
मैत्रेयने कहा भस्मको भस्म क्या करोगे मैं तो हूँ ही नहीं, किसको
भस्म करते हो, परन्तु मैं यह नहीं जानताथा कि तुम मानको चाहते
हो। अब नम्रता सहित प्रश्न करूंगा, मेरी रक्षा करो। पराशरने कहा
इसीसे तुझको उपदेश नहीं करता कि, तुझको निश्चय नहीं ।जि

आत्मामें निश्चयहै, देहनाश होय तो भी निश्चयका त्याग नहीं करता वह दैत्यपुत्र तुझ ब्राह्मणसे शत अंश भला था कि, पिताने उसको अनेक वार शासना की पर निश्चयसे चलायमान नहीं हुआ । मैत्रेयने कहा हे गुरो ! कथा उसकी मुझसे प्रगट करो कि कैसे हुवा है ।

अथ प्रह्लादाख्यान ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! पूर्व दितिके उदरविषे दो पुत्र उत्पन्न हुएथे । एकका नाम हिरण्याक्ष था, जिसको विष्णु भगवान्ने वराहका रूप धारणकर मारा । तिसके पीछे हिरण्यकशिपु त्रिलोकीका राज्य करने लगा, सर्व इंद्रादिक देवता तिसकी आज्ञामें थे, यज्ञका भाग देवता लेतेथे सो वही लेने लगा, इंद्रादि देवता तिसके भयसे स्वर्गको त्यागकर पृथिवीपर रहतेथे । हिरण्यकशिपुकेगृहविषे एक प्रह्लाद नाम पुत्रउत्पन्न हुआ । जब प्रह्लाद पढनेके योग्य हुआ, तब पढाने वास्ते गुरुके निकट पिताने भेजा । पुनः कुछदिन पीछे हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको गुरु सहित बुलाके पूछा कि हे पुत्र! जो गुरुसे पढाहै सो सुनावो । प्रह्लादने कहा हे पिताजी! यह जो स्थूल सूक्ष्म दृश्यमान जगत्है सो स्वप्नके समान असत् भ्रम जानाहै और एक अद्वितीय विष्णु (व्यापक आत्मा) को ही मैंने सत् जानाहै । सर्व विष्णुही है, यह वचन सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधवान हुआ नेत्र लाल होगये । शुक्रको कहा हे ब्राह्मण! इसको क्यापढायाहै । विष्णु जो हमारी जानका घातक है, यह तिसका भजन करताहैऔर मैं जो त्रिलोकीका राजाहूँ सो मुझहीको बिसारताहै । शुक्रने कहा हे दैत्येंद्र! क्रोध मतकरो, वालक अवस्थाहै, इस निश्चयसेइसको फेरूँगा, अब तुझहीको याद करेगा । पुनः हिरण्यकशिपुनेकहा हे पुत्र । जो गुरु पढावे सोई पढो, नहीं तो तेरे प्राण जायँगे । प्रह्लादने कहा हे पिताजी

किसीकी शक्ति नहीं है कि,मुझको मारे,आकाशकी समान जगत्‌विषे जो व्यापक विष्णु आत्मा है,तिसको कौन मारे और कौन दुख देवे हिरण्यकशिपुने कहा-रे नीच बालक!कहो वह कौनसा विष्णु है जिसका बारंबार नाम लेता है, मुझको छोडके। प्रह्लादने कहा-हे पिताजी! विष्णु व्यापक सारे जगत्‌विषे मनका साक्षी है और इंद्रियोंसे अगोचर है,तुझ विचारनेत्र रहितको कैसे दीखे।योगीश्वर विष्णु आत्माको परमपद कहते हैं। हे पिताजी! तू,मैं और यह जगत् हैही नहीं, मूल और सार भगवान् विष्णु आत्माही है। हिरण्यकशिपुने कहा हे मूर्ख!तेरे मनको पापोंने घेराहै जो उलटा मानता है, नहीं तो संत कहते हैं कि-ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों प्रणवसे उपजे हैं, इसीसे जड हैं, दृश्य हैं और तू चैतन्य आत्मा है।भगवान् मायाको कहते हैं,आपको त्यागके मायामें लीन क्यों होता है। इतना कहकर हिरण्यकशिपुने दैत्योंसे कहा कि, इस पापीको दृष्टिसे दूर करो और गुरुके गृहमें लेजावो।

कुछ दिन पीछे फिर गुरुसहित प्रह्लादको बुलाया और पूछा, क्या पढा है?प्रह्लादने कहा-पढना न पढना,सुनना,देखना,लेना, देना, खाना,पीना,सोना,जागना,सूंघना,स्पर्शकरना; सर्व विष्णु ही है। प्रह्लादका वचन सुनकर अति क्रोधवान् हुआ, राक्षसोंको आज्ञा दी कि, इस बालकका घात करो,इसको कालने घेरा है, हमारे कुलमें यह अग्नि है। राक्षसोंने अनेक प्रकारकी शासना और भय दिया परंतु प्रह्लादका रोमभी न विगडा।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय! प्रह्लादकी समान तुझको जब शासना होवे तब कहेगा,मैं ब्रह्म नहीं हूं किन्तु जीव हूँ,परंतु दैत्य पुत्र अपने निश्चयसे न फिरा।मैत्रेयने कहा उसको क्या लाभ हुआ कि,इतनी शासना सही; क्योंकि, नामरूप भ्रम मात्र है,वस्तु सत् है, क्यों न उसको दंड हो,अपने स्वरूपको त्यागके दूसरेको अपने स्वरूप

ऊपर स्थित करना भूलका काम है; पर उसकी कथा कहो।

हे मैत्रेय! पुनः हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको बुलाकर कहा-हे पुत्र! नीच बुद्धिको त्याग;वैरीके पंथ मत जा, अभी तेरा कुछभी नहीं बिगडा। तुझको निर्भय करूंगा। प्रह्लादने कहा-मैंतो मूल-भी नहीं, जो है सो सर्व भय अभयादि, विष्णु आत्माहीहै। तब क्रोधवान् होकर आज्ञा दी कि, इसको सर्पादिकोंसे मरवाओ। जब सर्पादि ले आये तिसकालमें प्रह्लाद सर्पादिकों सहित सर्व जगत्को विष्णु आत्मा रूप ध्यान करने लगा। जैसे मेरे शरी-रमें अविनाशी मन आदिकोंका प्रकाश विष्णुहै-तैसे सर्पादिकोंमें है तथा ब्रह्मासे लेकर चींटीके शरीरमें वही विष्णु आत्माहै। विष्णु पृथक् विष्णु पृथक् सर्पादिकसे कहां है, सर्व विष्णु आत्माही है। सर्पादिकोंसेभी प्रह्लादको खेद कुछ न हुआ १ पुनः अग्निमें डाला, पहाड़से गिराया, सिंह व्याघ्रोंके आगे डाला, हिमालयके महान् भयंकर स्थानोंमें डाला इत्यादि अनेक मृत्यु-के कारणोंके सन्मुख किया, परन्तु प्रह्लादको कुछ खेद न हुआ क्योंकि आपसहित सर्व विष्णुही जानताथा, खेद दूसरेसे होता है। पुनः हिरण्यकशिपुने जुदा होकर गुरुको कहा कि; इसको साम, दान, दंड, भेद, राजनीतिसे शिक्षा करो। शुक्रने ऐसाही किया, परंतु प्रल्हादका निश्चय न डुला बरन् और दृढ हुआ।

एक समय अध्ययनशालासे शुक्र,किसी कार्यको बाहर गया तब पीछे अवकाश पाके;बालकोंको अध्ययनशालामें प्रह्लादकहने लगा।हे राक्षसपुत्रो! सर्वरूप व्यापक विष्णु आत्माही है,तुम हम हैंही नहीं,तिसी विष्णुकाही भजन करो। जो पूछो भजन क्याहै ? तो आपसहित सर्वजगत्को विष्णुआत्मा जाननाही परमभजनहै, बालकोंनेकहाहेप्रल्हाद।यह समयखेलनेकाहै,भजनका नहीं।प्रल्हा-दने कहा हे दैत्यपुत्रो! मनुष्य जन्म दुर्लभहै, बारंबार नहीं प्राप्त होता

शब्द, स्पर्श रूप रस, गंध, विषय और विषयोंके ग्रहण करनेवाले, श्रोत्रादिक इंद्रिय; सर्व योनियोंमें प्राप्तहैं। विषय इंद्रिय संबंधजन्य ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सबही वैषयिक सुख हैं, सो सर्वयोनियों-में प्राप्तहैं, किसी योनियोंमेंही अप्राप्त नहीं, इससे इनके वास्ते यत्न करना निष्फलहै। हे दैत्यपुत्रो ! शतवर्ष पुरुषकी आयु होतीहैं तिसमें आधी आयु तो सोनेमें जातीहै, अर्थात् ५० वर्ष तो रात्रिमें कट जातीहैं, शेष ५० वर्षमें बारह वर्ष खेलनेमें जाती है, बारह वा षोड्स वर्ष वृद्ध अवस्थामें जातीहै; शेष पचीस वर्षमेंही पारलौकिक सुखका साधन विद्योपार्जन देशोन्नतिका प्रयत्न तथा देशाटन भोग विलासभी इसीमेंही होसक्तेहैं, भजनभी इसी पचीस वर्षमेंही होसक्ताहै आध्यात्मिकरोगोंका भीइसीमेंही जोरहोताहै। परंतुक्षणभंगुरशरीर है बिजलीके चमत्कारवत् क्षणमें नष्ट होजाताहै, कभी शरीर जन्मताहै, कभी मरताहै, कभी बालक, कभी यौवन, कभी वृद्धअवस्था आतीहै। कभीजाग्रत, कभीस्वप्न, कभीसुषुप्ति, कभीमूर्च्छा; कभी समाधि, कभी हँसना, कभी रोना, कभी हर्ष, कभी शोक, कभीसुख कभी दुःख, कभी क्षुधा, कभी तृषा, कभी हानि, कभी लाभादिक दुःखमय अवस्था होतीहैं। इसीप्रकारसे हजारों सुखकी अवस्था हैं तथा हजारों दुःखकी अवस्थाहैं परन्तु चैतन्य शरीररूप इस संघातकीही अवस्थाहैं, आत्मा विष्णुकी नहीं। पुनःबाल अवस्था अत्यंत जडरूपहै इसमें कुछशुभाशुभ का ज्ञान नहीं इस अवस्थाके अनेक दुःख शास्त्रोंमें वर्णन किये हैं, तैसे यौवन अवस्थामें अनेक काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादिक विकार दुःखदायक शास्त्रोंमें

१ आज कल तो ६० या सत्तर वर्षतकका भी जीना दुर्लभहै, कोई जन्म लेतेही कोई दूसरे तीसरे वर्षमें, कोई १०-१५-२०-२५-३०-४० वर्षमेंही मृत्युको प्राप्त होजाते हैं।

कथन कियेहैं, तैसे वृद्ध अवस्थामें अंग क्षीणतादि दोष निरूपण किये हैं। हे दैत्यपुत्रो! जो भजन, दान, तपादिक नहीं करता, तिसको अवसर चूके, मृत्युके अंतकालमें पश्चात्तापही होताहै। माताके गर्भमें जठराग्नि आदि निमित्तोंसे महान् दुःखोंको पाताहै शिर नीचे पांव ऊपर गर्भमें होतेहैं, मलमूत्रकेकुण्डमें पड़ारहताहै; इत्यादि अनंत दुःखोंको पाताहै। पुनः बहुत दुःखी होनेपर गर्भदुःखके छूटने वास्ते, भ्रमसे अपने चेतन्यस्वरूपते भिन्न, परमेश्वरकी कल्पना करके प्रार्थना करताहै--कि, हे सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मा! पूर्व अनेक मल मूत्र रूप देहोंमें, देहाभिमानही मैं करता रहाहूँ, तिस देह अभिमानकाही फल पुनः पुनः यहमुझको गर्भवास है। जो मैं मलमूत्ररूप देहका अभिमान नहीं करता तो दुःखरूप गर्भवासको नहीं प्राप्त होता इससे सर्व दुःखोंका कारण देहाभिमानही है, अन्य नहीं। देह अभिमानी मेहतरकाभी बाप है। इससे हे बालको! तुमने कदाचित् भी देह अभिमान नहीं करना किन्तु, आपसहित सर्व नाम रूप जगत्को विष्णु रूप आत्मा जानो। जो जन्म-मरण बंधनसे छूटो। देह अभिमान त्यागे बिना अन्य तपादि साधनोंसे बंधनरूप संसार बंधसे नहीं छूटोगे, जो इस दुर्लभ मनुष्य शरीरमें, शिश्नोदरपरायणहोकर अपने मूलस्वरूप आत्माको न जानोगे तो अनंत कूकर शूकरकी दुःखमय योनियोंको प्राप्त होगे, मनुष्य जन्म पाना तुम्हारा निष्फल होजावेगा जैसे--चिन्मणि अकस्मात् किसी पुण्य प्रतापसे किसी पुरुषके हाथ आई तिसको मूर्खता करके अपने प्रयोजनको न साधके निष्फल खोदेनी, अत्यंत नालायकीका काम

---

१ इहां विस्तार भयसे लिखा नहीं, योगवासिष्ठ, आत्मपुराण आदि मोक्षउपयोगी शास्त्रोंके देखनेसे भलीप्रकार प्रगट होगा।

है। इससे मनुष्य देहको पायकर विचार करना कर्तव्यहै। मैं कौन हूँ? यह देहादिक प्रपंच क्या है? कहांसे आया हूँ? कहां जाऊंगा इस प्रकार जब अपने आपको नहीं चीन्हा तो मनुष्यदेहके पावनेसे क्या लाभ हुवा। हे बालको! अत्यंत मलमूत्ररूप अपवित्रइस शरीरका अहंकार त्यागकर, एक आत्माविष्णुकोही पवित्र जानो अन्तर बाहर आत्माही है, न इस आत्माका माताहै, न पिता है, न भ्राता है, न पुत्रहै, न इस आत्माका वर्ण है, न आश्रमहै, न बालादिक अवस्थाहैं येसबशरीरके धर्महैं, आत्माकेनहीं। आत्मा नित्य निर्लेपप्रकाशहै। उपाधिसे सर्वरूप विष्णु आत्माहीहै. जैसे-निद्रारूपअविद्या उपाधिसे विना स्वप्नद्रष्टा निर्विकार शुद्धहै, उपाधिसेसर्व स्वप्न प्रपंच रूप भी स्वप्नद्रष्टाहीहै। शरीरादिकोंके अभिमान प्रबंधसे प्रत्यक्ष नहीं भासता--जैसे शुद्ध स्फटिकमें कोईरीतिका भी रंग नहीं परन्तु, लालपुष्पादिकोंके संयोगसे लाल रंगवाली प्रतीति होतीहै वास्तवसे शुद्ध है। तैसे--आत्मामें यह दृश्यमान नामरूप प्रपंच वास्तवसे है नहीं, बुद्धि आदिकउपाधिकेसम्बन्धसे आत्मामेंप्रतीत होता है। जो इस नामरूप भ्रम प्रपंचमें, सत्यत्व प्रतीति करता हैसो जन्म मरणके बंधनमें पडता है। इससे हेबालको! तुमको योग्य है कि, अबही नारायणपरायणहोवो और आशासेमनको निराशकरो अस्ति भाति प्रियरूप नारायण आत्मासे जो व्यतिरेक है, सो मृगतृष्णाके जलवत् जानो, आत्माको सर्व अवस्थासे न्यारा साक्षी रूप जानो। जब इस निश्चयको दृढ़तासे धारण करोगे तब अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, तीन तापरूप संसारबंधनसे छूटोगे क्योंकि, यह सर्व उपाधि शरीरकी है। जब शरीर अभिमानसे छूटा तब सर्व उपाधियोंसे मुक्त होता है। द्वैतका विचार मनसे त्यागो जो कुछ देखो, सुनो, सूंघो, स्पर्श करो, रस लो, तथा लेना, देना

ग्रहण त्यागादिक व्यवहार करो,सो सर्व विष्णु आत्माही जानो, दूसरा कोई नहीं।जैसे-सर्व स्वप्नका व्यवहार स्वप्नद्रष्टा आत्मारूपहै जिसने बुद्धि आदिकोंका साक्षी स्वरूप अपने आत्माकोब्रह्मरूप-को सम्यक् जाना है (जैसे घटाकाश अपनेको महाकाशरूप जाने) सो इस भ्रमरूप संसारमें आवागमनको नहीं प्राप्त होगा।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तिसी समय शुक्रने आकर देखा तो सर्व बालक अध्ययन शालामें यह भजन कररहेहैं कि यह सर्वनाम रूप विष्णु आत्माहीहै,हमभी सर्वव्यापी विष्णु आत्माहैं, हम विष्णुरूप आत्मासे अहं त्वं रूप जगत् भिन्न नहीं, विष्णुरूप हमारे आत्माका यह सर्व नामरूप प्रपंच प्रकाशहैं, (लालकी दमकावत) हे मैत्रेय! शुक्राचार्य यह अवस्था बालकोंकी देखकर, हिरण्यकशिपुको प्रह्लादका अध्ययनशालामें जो वृत्तांत था सो सब न कह सुनाय बरन् हिरण्यकशिपुको स्वयं दिखला दिया (अपनी निर्दोषताके वास्ते) पाठशालमें प्रह्लादकी अवस्थाको देख, अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हो, हिरण्यकशिपुने रसोइयोंको हुकुम दिया कि,इस बालकको भोजनमें जहर देकर नाश करो हुकुम अनुसार रसोइयोंने ऐसेही किया और प्रह्लादको भोजन पानेवास्ते बुलाकर भोजन दिया। प्रह्लाद यही भजन करता था कि, भोजनभी विष्णु आत्माहै,भोजन बनानेवाला भी सर्वव्यापी विष्णुहै,भोजन करनेवाला भी विष्णु आत्माही है, विष भी विष्णुहै, अमृतभी विष्णु है, मैंभी विष्णु हूं तथा हिरण्यकशिपु भी विष्णु है। तात्पर्य यह कि,सर्व नामरूपात्मक प्रपंच विष्णुआत्माही है अन्य द्वैत नहीं।

हे मैत्रेय! उलटा विष प्रह्लादको अमृरूप विष्णु होगया, कुछ विषने अपना असर नहीं किया क्योंकि सब जगत् मनोमात्रहै। जैसे दृढमनमें भावना करताहै, तैसेही भावनाके अनुसारप्रत्यक्ष भासताहै और कोई बाहर प्रपंच हैनहीं,मनमें स्वप्नवत्‌ही प्रपंच है।हे

मैत्रेय ! भृंगीकीडा अन्य विजातीय कीडेकोभी निरंतर दृढभावनाके वशसे अपना रूप करलेताहै;यह तो नाम रूप प्रपंच आगे ही (स्वरूपसेही) अस्ति भाति प्रियरूप व्यापक विष्णुरूप आत्माहीहै, केवल मनने भ्रमकरके विपर्यय कल्पना की थी। जिस मनने निजस्वरूपसे विपरीत भावना की थी,वही मन जब सर्वनाम रूपको सांगोपांग निजस्वरूप विष्णु,आत्माही भावना करेगा तो,सर्व नामरूप प्रपंच विष्णु आत्माहीका स्वरूप क्यों न भासेगा? अवश्य भासेगा। हे मैत्रेय ! उपासनारूप भक्तिभी इसीका नाम है कि, "आपसहित,सर्व नाम रूप प्रपंचको, उपास्यरूप जानना" तभीही शांति होतीहै,राग द्वेष मिटजातेहैं, दुःखोंकी निवृत्ति और परमआनंदकी प्राप्ति होती है। हे मैत्रेय ! प्रह्लादको विषसे दुःख न हुआ क्योंकि, विष तथा अपने सहित सर्वको प्रह्लाद विष्णुरूपही जानता था। विष्णु अपने आपको तो दुःख नहीं देसक्ता;जैसे -अपने शरीरको आप कोई भी परिहार नहीं करता। इससे हे मैत्रेय ! तू भी विचार कर दृढ निश्चयधर कि,सर्व नामरूप प्रपंच,:अस्ति भातिप्रियरूप मैं आत्माही हूँ वा सर्वनाम रूपदृश्यप्रपंचसे,असंग,निर्विकार, निर्विकल्प सच्चिदानंद,साक्षी आत्मा,स्वमहिमामें स्थितहूँ, असत् जडदुःखरूप यह देहादिक प्रंपच मैं नहीं। धन्य है उस दैत्यपुत्रको जो ऐसी अवस्थामें भी अपने निश्चयसे चलायमान नहीं हुआ, मन वच शरीरसे अपने स्वरूपमेंही स्थित रहा। तुझकोविष देवे तो तत्काल कहे,मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ। मैत्रेयने कहा हे गुरो! भूत, भविष्य,वर्तमान तीनों कालोंमें सर्व नामरूप जगत् मैं हीहूँ,तोजीवभी मेंही हूँ, प्रह्लाद कहांहै,आपकी बुद्धिमें भेद पडा है?कि,आप प्रह्लादको मुझसे भिन्न समझते हैं। पराशरने कहा-हे पाखंडी! तेरा प्रह्लादके समान

मन शुद्ध नहीं तुझ पापीका दर्शन करना योग्य नहीं, पाप है मैत्रेयने कहा सत् है इससे परे पाखंड क्या है कि, मैं चैतन्य मायाकरके सर्व नामरूप प्रपंचको उत्पन्न,पालन,संहार करता हुआभी,स्वरूपसे कुछभी उत्पन्नादि करता नहीं। सर्वकाभोक्ताभी अभोक्ताहूँ निजस्वरूपसे मन वाणीका अविषय भी मायाकर मन वाणीका विषयभी मैंहीहूँ, शरीर दृष्टिसे चलताभी, स्वरूप दृष्टिसे अचलहूँ, कर्ताभी अकर्ता हूँ। सर्व मन वाणी शरीरादिक दृश्यकी चेष्टा करताभी अक्रिय असंग साक्षी हूँ । जैसे--स्वप्नद्रष्टा स्वप्न-दृश्यकी चेष्टा करता हुआभी क्रिय असंगहै ।एक पाखंड मेरा और है "हूँ मैं आप और अपनेसे भिन्न तत्पद, त्वं पद और ब्रह्म-पदको कल्पता हूँ तथा असत् जड दुःखरूप दृश्यको, अपनी सत्तास्फूर्ती करके,उलटा सच्चिदानंद रूप कर दिखलाता हूँ"। जैसे- लोहेको पारस सुवर्ण कर दिखलाता है, जैसे-इन्द्रजाली सर्व मायिक पदार्थोंको सत्यकर दिखाताहै। मैं चैतन्य आत्मा देश, काल,वस्तु,भेदसे रहित भी, देश काल वस्तु भेदवान्, (स्व-माया कर) भी मैंही हूँ,यही मुझ चैतन्यका महान पाखंड है। मुझ चैतन्यको अवाङ्मनसगोचर स्वयंप्रकाश होनेसे; मन इन्द्रियों करके दर्शनके अयोग्य हूँ तथा सर्व दर्शनभी मेराही है । जो पुरुष मुझ चैतन्य आत्माको,सम्यक् ब्रह्मरूप नहीं जानता, तिसको भ्रममात्र, चोरासी लक्ष योनियोंमें, जन्ममरणरूप पाप होता है। इससे हे पराशरजी! मुझको जो आपने पाखंडी दर्श-नके अयोग्य और पापी कहाहै सो पूर्वोक्तरीतिसे ठीकही कहा है। पराशरने कहा हे मैत्रेय!कथा सुन हिरण्यकशिपुनेशुक्रको बुलाकर कहा कि,इस बालकको किसीभी उपायसेनाश करो ढीलमत करो तब शुक्रने प्रह्लादसे कहा कि,हे पुत्र! पितातेरात्रिलोकीकाराजाप्रगट है,और से तुझको क्या काम है,पिताकी शरण ले और शत्रुकीमित्र-

ता त्याग, नहीं तो तेरा नाश होयगा, परमगुरु पिताहै तिसकी आज्ञा भंग मत कर।

हे मैत्रेय! तूभी मुझसे भयमान हो क्योंकि, शुक्र एकशक्ति रखताथा मैं सहस्रशक्ति रखताहूँ, शुक्रनेमेरेसे सन्था लीथी। मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्य आत्माके भयसे, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, यम, समुद्र, नदियां, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक सर्व दृश्य भयमानहोतेहैं, मुझको किसकी शक्तिहै जो भय देवें। मुझ चैतन्य विना सर्व नाम रूप दृश्य सिद्धही नहीं देवैगी तो भय कैसे देवेगी, जैसे-चित्रकी मूर्ति चितेरेको कैसे भय देवैगी तथा अनेकप्रकारकी पुतलियां; तंत्रीको कैसे भय देवेंगी, किंतु नहीं देवेंगी। वा अस्ति भाति प्रियरूपमें सर्व नाम रूप दृश्यका द्रष्टा आत्माहूँ, अपने आत्माको दृश्यभय कैसे देवेगी। हे पराशर! जो यहभी आपनेही शुक्रको उपदेश दिया होगा जो कि, वह प्रह्लादसे कहता था। पराशरने कहा-हे मैत्रेय! मैं शुक्रको निर्वाणपदका उपदेश करता था। परंतु, कामनाके वशसे उसके हृदयमें, निर्वाण उपदेश प्रवेश नहीं हुआ, उलटा यह कहताथा कि मुझको वह विद्या सिखाओ, जिससे किसी मुयेको जिलाऊं, किसी को कालवश करूँ, और मेरी संसारमें प्रतिष्ठा होवे। इस प्रकारकी शुक्रने विद्या पढी है, सोमुझकोदोपनहीं, उसकी कामनाका दोपहै। हे मैत्रेय! मुझ गुरुसेभय राख। मैत्रेयने कहा मुझविषे मरना जीवना दोनों नहीं, भय क्यों राखूं परंतु कथा प्रह्लादकी कहो।

हे मैत्रेय। प्रह्लादने कहा-हे गुरु। जाति हमारी सृष्टिसेनीचीहै और तुम ऊंचपद कहतेहो, इसवास्ते तुम्हाराउपदेश मेरे मनमेंनहीं बैठता जो जो दृश्यमानहे, उत्पत्तिमानहे, विकारवानहे तथा कार्यरूपहै, सो नश्यमानहैघटवत्, और आत्मा विष्णु इन पदोंसे रहितहैइसीसे सतहै। हेमहामुने! जो गुरु उपदेशकरके सत् आत्माकीप्रा-

त्ति करनेवालाहै सोई परमगुरुहै सोई पिता, माता, भ्राता, सुहृद्है ।जो पिता पक्षपातरहित होकर, सत् वस्तुका उपदेश करता है तो वही परमगुरुहै, जो ऐसा नहीं करता, सो पिता परमगुरु नहीं, किंतु शास्त्ररीतिके अनुसार पितामात्र है । तिसकाभी मन वाणी शरीरकरके, सब किसीको यथायोग्य पूजन करना धर्महै। परंतु लौकिक पिता, अतिकृपा करेगा तो शरीर इंद्रियोंकी पालना करेगा, परम पुरुषार्थ मोक्ष नहीं दे सक्ता, इससे तुम्हारी बुद्धिमें भेद पडा है कि, अज्ञानी पिताको परमगुरुसम न कहतेहो।कहो पिता मृत्युते छुडा सक्ताहै? कदापि नहीं और परमविद्वान् गुरुरूप पितामृत्युते निःसंशयछुडा सक्ताहै। हे शुक्र ! पिताका निरंतर ध्यान करना, ऐसा कहीं वेदमें लिखा नहीं किन्तु, सच्चिदानंद स्वरूप हरिकाही ध्यान करना वेदमें लिखाहै तथा योग्यहीहै।जो परमार्थको जानताहै सोई सत् उंपदेश करताहै, असत् नहीं ।शुक्रने कहा गोविंदके भजनसे क्या चाहताहै जो तेरी इच्छा हो सो तेरा पिताभी दे सक्ताहै। प्रह्लादने कहा तुमको मेरे अंतःकरणकी सुधि नहीं, ध्यान भजनका यही प्रयोजनहै कि मूल अपना पाऊँ; जब मूल पाया तब बंधनसे छूटा।समपद भजनते पाताहै और "आप सहित सर्व नारायणहै" यही भजनहै।शुक्रने कहा कि, त्वं पदका तथा तत् पदका लक्ष जो सच्चिदानंद मन बुद्धि आदि सर्व, इस दृश्य संघातका साक्षीद्रष्टा, निजात्मस्वरूपका, पिताने तुझको पूर्वउपदेश कियाहै सो क्यों नहीं मानता।प्रह्लादनेकहा-पिता देहकोही आत्मारूप करके उपदेश करताहै । तात्पर्य यहकि अन्नमय कोशकोही, श्रुतिके तात्पर्यको नजानके, आत्माकहताहै श्रुतिने तो अरुंधतीके दृष्टांत कर अन्नमयसे आगे, प्राणमयमनोमय विज्ञानमय आनंदमय कोशोंको आत्मरूप कथन किया है, इससे अन्नमयादिक पंचकोश रूप आत्माहैयहश्रुतिकातात्पर्य्यनहीं, यदि

श्रुतिका यह तात्पर्य्य होवे तो यह यत्नविना सर्वको प्राप्तहै, तब तो परम पुरुपार्थका यत्न निष्फल होगा इससे सत्वादि गुणोंका कार्यरूप जो जाग्रतादि अवस्था सहित स्थूलादि तीन शरीररूपी पंचकोशहैं सो संपूर्ण कारणकार्यरूप प्रपंच मन वाणीके गोचरहैं, इसीसेमिथ्याहैं।ताते हे अधिकारी जनो! "तुम्हारे आत्मा अवाङ्मनसगोचर" सर्वाधिष्ठान,जगदांध्यविध्वंसक,प्रकाशक,अद्वैत्व, सदा अपरोक्ष,साक्षी;सच्चिद्धन,विशुद्धानंदको अपना स्वरूपजानो मनवाणीके गोचरको अपना स्वरूपमत जानो;यह श्रुतिकारहस्यहै

पुनः शुक्रने कहा हे प्रह्लाद! अभी मान,नहीं तो तत्कालहीतुझको जलाऊँगा।प्रह्लादने कहा,न कोई किसीको जिवाताहै,न कोई मारता है रक्षा कर्ता सर्वका एक विष्णु आत्माही है। जैसे--स्वप्नद्रष्टाही सर्व स्वप्नपदार्थोंकी रक्षा नाश कर्ता है।अन्य जाग्रत् पुरुपभी नहीं करते तथा स्वप्न पदार्थ भी आपसमें रक्षक नाशक नहीं होते।शुक्रने क्रुद्ध होकर मुखसे अग्नि निकासी और प्रह्लाद भयमानहोकरविष्णुकी शरण हो प्रार्थना करने लगा-हे अनंत विष्णु! इस ब्राह्मणसे मेरी रक्षाकरो।पुनःकहा मैंने उलटाही समझा है,जब सर्व नामरूपजगत् एक विष्णु आत्माही है,तो शुक्र,अग्नि और प्रह्लाद कहां है,जिससे भय करूं। तब उलटा शुक्रकोही अग्नि जलाने लगी।शुक्र भयमान होकर मनमेंही प्रह्लादकी शरण हुआ--हे यजमान प्रह्लाद! मैं तेरा पुरोहितहूँ, यह अपराध हमारा क्षमा कर, मैं तेरी शरणहूँ।

हे मैत्रेय! शुक्र पहिले क्रोधवान् था जब प्राणोंकी, अंतर्नोबत पहुँची,तब प्रह्लादकी स्तुतिकरनेलगा।परन्तुप्रह्लाद दोनों अवस्थामें समहीरहा,विपमगतिको न प्राप्तहुआ हे मैत्रेय! तू भी सम आत्मपदमें स्थितहो,जिससे सर्व अवस्थामें सम होवे। मैत्रेयने कहा--मैं मूलको कैसे पहुँचूं।पराशरने कहा--तू आप मूलरूपहै, मूलको कैसे

पहुँचे, पहुँचना क्रिया कर होताहै, तू अक्रिय है। मूलसे तुझे क्या प्रयोजनहै,जो नारायण व्यतिरेक जानकर कर्म कर्ता है सो बंधनका कारणहै। निष्कर्तव्यमें कर्तव्य भ्रांति जबतक न त्यागेगा तब तक मूलका पाना कठिन है। मैत्रेयने कहा-भक्तिका स्वरूप कहो पराशरने कहा मैं पंडित नहीं हूँ-जो तुझको कथा सुनाऊं। मैत्रेयने कहा-पंडित नहीं तो मूर्ख होगा? पराशरने कहा दोनोंमेंसे एकभी नहीं हूं। मैत्रेयने कहा-दोनों नहीं तो कौनहै? पराशरने कहा मैं वही हूँ कि जिससे पंडित अपंडितादिक शब्द और शब्दोंके अर्थ सिद्ध होते हैं। मुझको सिद्ध करनेवाला कोई नहीं, मैं स्वतःसिद्ध हूँ।मैत्रेयने कहा मैं तुम्हारा आदि अंत कुछ नहीं जानता हूं। पराशरने कहा-मुझ अनन्त चैतन्य आत्माकी, चारोंवेद तथा ब्रह्माविष्णु शिवादिक भी,आदि अन्त नहीं जानते,तेरी क्या शक्तिहै जो जाने क्योंकि,सबसे आदि में चैतन्य हूँ,मुझ चैतन्यसेही वेदादिक उत्पन्न हुए हैं क्या जाने।पुत्र पिताके हालका महरम नहीं होसक्ता।

मैत्रेयने कहा-मुझको संन्यासी करो। पराशरनेकहा-हे मैत्रेय! अब तो तेरेको ज्ञानका प्रतिबन्धक, देह अभिमान, राईके तुल्य किंचित्मात्रहै, जब तू संन्यासी होवेगा, तब तुझको सुमेरुसेभी अधिक देह अभिमान बढेगा, जिससे ज्ञान होना तुझको दुर्लभ होजावेगा। सन्त जो निरपेक्ष हैं,वैरागपूर्वक आत्मदर्शी हैं, अदंडी संन्यासी हैं, मनका जिस दंडसे निग्रह होताहै, तिस दंडसंयुक्त हैं तथा सर्व दैवी गुणोंकर सम्पन्नहैं,तिनका तथा गृहस्थ आश्रममें किसी पुण्यप्रतापते धर्मपूर्वक सम्यक् आत्मज्ञान हुआ है जिनको, ऐसे सज्जन पुरुषोंके गुह्य उत्तम गुणोंको तू न प्राप्त होके भी केवल संन्यास ग्रहमात्रसे, उनका तिरस्कार करेगा-तिसके माहात्म्यसे तू परमदुःखको पावेगा। देहाभिमानरूपी बिलारीके निवारण

वास्ते संन्यास है, उलटा महान् देहाभिमानरूपी सिंहको घुसा-
लेना अत्यंत मूर्खता है । जैसे–कोई मूलकी वृद्धि वास्ते किसी
प्रकारका व्यापार करे और उसमें लाभ प्राप्त करनेके वास्ते उलटा
मूलभी खोदेवें सो यह अविचारका फलहै। सम्यक् विचारवान,
पक्षपातसे रहित, संन्यासी कोईही होताहै, केवल दंड अभिमानी
होनेसे सुख नहीं । इससे हे मैत्रेय ! इस देहाभिमानादिकोंके
निवारण वास्ते, स्वस्वरूपका सम्यक् ज्ञानरूपी दंड धारणकर,
उलटा अभिमान मतकर, आगे जो इच्छा हो सोकर । मैत्रेयने कहा
मेरेको अतीत करो।पराशरने कहा--हे मैत्रेय! अतीत किससे होताहैं
जो स्त्री पुत्रादिक बाहिर कुटुंबसे अतीत होताहै तोभी उनसे तू
शरीर दृष्टि करके अतीत नाम भिन्न है और जो शरीरके भीतर;
मन बुद्धि इंद्रियादिक, कुटुंबहैं तिनते भी तू चैतन्य साक्षी
आत्मा, स्वतः ही अतीत नाम भिन्नहै । तात्पर्य यह कि, तू
चैतन्य स्वतःही नामरूप प्रपंचसे अतीत नाम भिन्न है, कोई
कर्तव्यसे तुझे अतीत नहीं होना है । जैसे-आकाश सर्व पदार्थोंमें
स्थितभी, सबसे निर्लेप है, यही आकाशका अतीतपना है । जो
अतीतका अर्थ पूर्वोक्त अर्थसे भिन्न करेगा तो, आकाशके दृष्टां-
तसे नहीं बन सक्ता, क्योंकि पदार्थ आकाशसे जुदे नहीं रहसक्ते
और आकाशभी पदार्थोंसे जुदा नहीं रहसक्ता । जैसे--तू चैतन्य
देव, सर्व आकाशादिक नामरूप दृश्य जड़ पदार्थोंका सिद्धकर्ता
नियंताभी; दृश्यके अंतर बाहर पूर्णभी; असंग निर्विकार निर्लेप
है इसीसे तू चैतन्यही दृश्यसे परम अतीतहै । चैतन्यवत् आका-
श अतीत नहीं; जो तू आपको चैतन्य नहीं माने, वरन्
आपको दृश्य माने तो दृश्य दृश्यसेभी अतीत नहीं होसक्ता,
द्रष्टाही दृश्यते अतीत होताहै । मैत्रेयने कहा-मुझको योग बतावो
जो सिद्ध होऊँ, बहुतकाल जीऊँ, मृत्यु नहीं होवे । पराशरनेकहा-

योग वहीहै जिसमें जीवना मरना दोनों नहीं, नहीं तो अयोग है हे मैत्रेय ! तूने अतीत होनेकी इच्छा की है, इससे तू धन्य है क्योंकि मनुष्यजन्म दुर्लभहै, जो मनुष्य शरीरमें भजन नहीं करेगा तो पछताना होगा। मैंयही चाहताहूँकि, सर्वदेहादिकोंसे अतीत होअर्थात् आपको भिन्न जान। मैत्रेयने कहा-सर्व कर्मोंका त्याग कर अतीत होताहूँ परंतु कर्मसे कर्मका त्याग नहीं होता क्योंकि शुद्ध चैतन्यसे भिन्न कर्ता कर्म क्रियारूप, जगत् सर्व कर्मरूपही है । पराशरनेकहा यह जो तूने चिंतन किया कि, मैं सर्व कर्मोंका त्यागकरूँ तिस त्याग काभीत्याग कर, यही कर्मसे कर्मका नाशहै। जैसे लोहेसे लोहा कटताहै। जैसे मैलको मैल दूरकरताहै। तैसेही--कर्मसेही कर्म काटा जाताहै, चैतन्यरूप अकर्मसे, कर्मरूप प्रपंच कटता नहीं, उलटा अकर्मरूप चैतन्यसे कर्मरूपजगत्की सिद्धि होतीहै। जो मनवाणी का विषय है सो कर्म है, जो मन वाणीका अविषयहै सो अकर्म है ऐसा अकर्म चैतन्य आत्माही है, अन्य नहीं, ग्रहण त्यागादि सर्व कर्मही हैं; जब सर्व चाहना मिटगई, तब शरीर रहा तो क्या नहीं रहा तो क्या ? शरीर तो अकर्म नहीं हो सक्ता। इससे तू कर्मरूप शरीरसे आपको अकर्मरूपआत्मा जान जो ठीक ठीक अतीत होवे, नहीं तो इन अतीतोंसे किसीका भेषलेके अतीत हो जा। जब अतीत होगा तब अहंकार तुझको जलावेगा, तब सुख कैसे पावेगा। मैत्रेयने कहा-मैं क्या करूँ ? तुम ऐसा कुछ कहते हो, जिसमें मनवाणीकी गम नहीं। पराशरनेकहा-कर्तव्यको त्याग, अतीत हो। मैत्रेयने कहा-अतीतका धर्म कहो ? पराशरने कहा "सूक्ष्म स्थूल अहंकारसे रहित होनाही अतीतका धर्म है" इससे अधिक मैं पंडितनहीं हूं जो कहूँ जब पुरुष, स्त्री आदिक संबंधियोंको त्यागताहैतब सूक्ष्म अहंकारमें बँधाहुआ आपको त्यागी मानता है और गोविंदके ऊपर उपकार अपना मानता है और ऐसा अभिमान करता है कि

जिसको मैं वर देता हूँ उसको सफल होताहै, मुझको परमतपस्वी सर्व लोग जानते हैं, मैं यह देह त्यागके उत्तम लोकोंको पाऊँगा हे मैत्रेय ! ऐसे अतीत होनेकी तेरी इच्छा है तो भली बात है, परन्तु मैं जानताहूँ कि, तैंने सारी आयु इसी पंडिताई आदि दुनिय के काममें बिताई है। हे मैत्रेय। इन सर्व अतीतोंमें कोईही सम्यक् अतीत है, बहुतेरे तो अनात्माहंकारमें बँधेहैं और बंध मोक्षसे रहित--निर्विकार आत्मासे दूर पडेहैं। इससे सर्व देह इंद्रियादि संघातकी चेष्टा होते हुए भी आपको निर्विकार निर्विकल्प आत्मा अतीत जान पुनःउस अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्याग कर, जो सम्यक् अतीत होवे। मैत्रेयने कहा, संसारसे कैसे छूटूं? पराशरने कहा- गोविंद गोविंद कहो, संसार कहाँ है, संसारका तूने नाम सुन रक्खाहै, संसारका स्वरूप विचारा नहीं, विचारे विनाही तुझको संसार भासता है, जैसे-विचारेविना घट भासता है, नहीं तो मृत्तिका है। तैसेही-अस्ति भाति प्रियरूप आत्माही है, घट पटादि संसार कहाँ है। मैत्रेयने कहा कर्तव्य क्याहै? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! घटके कर्तव्यसे घट मृत्तिकारूप नहीं, किंतु स्वतःही मृत्तिकारूप है, परन्तु न विचारनेसे घट भासताहै, विचानेसे मृत्तिका भासती है।तैसे--स्वरूपकी प्राप्तिमें और भ्रमकी निवृत्तिमें विचारही कर्तव्यहै, अन्य यज्ञादि साधन नहीं।मैत्रेयने कहा जब सर्व गोविंद मैं कहूँ, तब तुम क्या प्रसन्न होगे?पराशरने कहा कहनेमें कुछ सिद्ध नहीं होता जबतक स्वरूप निश्चय न करे। जैसे भूख विनाखाये रोटीके कहनेसे दूर नहीं होती है मैत्रेय अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्मासे पृथक्-भगवान् परमेश्वर नारायण गोविंद अल्ला खुदा शिव विष्णु ब्रह्म ईश्वरादि--असत् जड दुःखरूप भ्रम मात्रहैंइससे--अपने सच्चिदानंद स्वरूपको अहंरूप करके जान और भगवान् रसनासे मत कह। संतभी वही हैं जो "सर्वनामरूप दृश्यसे श्रेष्ठ निजस्वरूप आत्माको जानतेहैं" नहीं तो असंतहैं।

योग वहीहै जिसमें जीवना मरना दोनों नहीं, नहीं तो अयोग है हे मैत्रेय। तूने अतीत होनेकी इच्छा की है, इससे तू धन्य है क्योंकि मनुष्यजन्म दुर्लभहै, जो मनुष्य शरीरमें भजन नहीं करेगा तो पछताना होगा। मैंयही चाहताहूँकि, सर्वदेहादिकोंसे अतीत होअर्थात् आपको भिन्न जान। मैत्रेयने कहा-सर्व कर्मोंका त्याग कर अतीत होताहूँ परंतु कर्मसे कर्मका त्याग नहीं होता क्योंकि मुझ चैतन्यसे भिन्न कर्ता कर्म क्रियारूप, जगत् सर्व कर्मरूपही है । पराशरनेकहा यह जो तूने चिंतन किया कि, मैं सर्व कर्मोंका त्यागकरूँ तिस त्याग काभीत्याग कर, यही कर्मसे कर्मका नाशहै। जैसे लोहेसे लोहा कटताहै। जैसे मैलको मैल दूरकरताहै। तैसेही--कर्मसेही कर्म काटा जाताहै, चैतन्यरूप अकर्मसे, कर्मरूप प्रपंच कटता नहीं, उलटा अकर्मरूप चैतन्यसे कर्मरूपजगत्की सिद्धि होतीहै। जो मनवाणी का विषय है सो कर्म है, जो मन वाणीका अविषयहै सो अकर्म है ऐसा अकर्म चैतन्य आत्माही है, अन्य नहीं, ग्रहण त्यागादि सर्व कर्मही हैं; जब सर्व चाहना मिटगई, तब शरीर रहा तो क्या नहीं रहा तो क्या ? शरीर तो अकर्म नहीं हो सक्ता। इससे तू कर्मरूप शरीरसे आपको अकर्मरूपआत्मा जान जो ठीक ठीक अतीत होवे, नहीं तो इन अतीतोंसे किसीका भेपलेके अतीत हो जा। जब अतीत होगा तब अहंकार तुझको जलावेगा, तब सुख कैसे पावेगा। मैत्रेयने कहा-मैं क्या करूँ ? तुम ऐसा कुछ कहते हो, जिसमें मनवाणीकी गम नहीं। पराशरनेकहा-कर्तव्यको त्याग, अतीत हो। मैत्रेयने कहा-अतीतका धर्म कहो ? पराशरने कहा" सूक्ष्म स्थूल अहंकारसे रहित होनाही अतीतका धर्म है" इससे अधिक मैं पंडितनहीं हूं जो कहूँ। जब पुरुष, स्त्री आदिक संबंधियोंको त्यागताहैतब सूक्ष्म अहंकारमें बँधाहुआ आपको त्यागी मानता है और गोविंदके ऊपर उपकार अपना मानता है और ऐसा अभिमान करता है कि

जिसको मैं वर देता हूँ उसको सफल होताहै, मुझको परमतपस्वी सर्व लोग जानते हैं, मैं यह देह त्यागके उत्तम लोकोंको पाऊँगा हे मैत्रेय ! ऐसे अतीत होनेकी तेरी इच्छा है तो भली बात है, परन्तु मैं जानताहूँ कि, तैंने सारी आयु इसी पंडिताई आदि दुनिय के काममें बिताई है। हे मैत्रेय! इन सर्व अतीतोंमें कोईही सम्यक् अतीत है, बहुतेरे तो अनात्माहंकारमें बँधेहैं और बंध मोक्षसे रहित--निर्विकार आत्मासे दूर पडेहैं। इससे सर्व देह इंद्रियादि संघातकी चेष्टा होते हुए भी आपको निर्विकार निर्विकल्प आत्मा अतीत जान पुनः उस अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्याग कर, जो सम्यक् अतीत होवै। मैत्रेयने कहा, संसारसे कैसे छूटूं? पराशरने कहा- गोविंद गोविंद कहो, संसार कहाँ है, संसारका तूने नाम सुन रक्खाहै, संसारका स्वरूप विचारा नहीं, विचारे विनाही तुझको संसार भासता है, जैसे-विचारेविना घट भासता है,-नहीं तो मृत्तिका है। तैसेही-अस्ति भाति प्रियरूप आत्माही है, घट पटादि संसार कहाँ है। मैत्रेयने कहा कर्तव्य क्याहै? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! घटके कर्तव्यसे घट मृत्तिकारूप नहीं, किंतु स्वतःही मृत्तिकारूप है, परन्तु न विचारनेसे घट भासताहै, विचानेसे मृत्तिका भासती है।तैसे--स्वरूपकी प्राप्तिमें और भ्रमकी निवृत्तिमें विचारही कर्तव्यहै, अन्य यज्ञादि साधन नहीं।मैत्रेयने कहा जब सर्व गोविंद मैं कहूँ, तब तुम क्या प्रसन्न होगे?पराशरने कहा कहनेसे कुछ सिद्ध नहीं होता जबतक स्वरूप निश्चय न करे। जैसे भूख विनाखाये रोटीके कहनेसे दूर नहीं होती है मैत्रेय अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्मासे पृथक्-भगवान् परमेश्वर नारायण गोविंद अल्ला खुदा शिव विष्णु ब्रह्म ईश्वरादि--असत् जड़ दुःख रूप भ्रम मात्रहैंइससे--अपने सच्चिदानंद स्वरूपको अहंरूप करके जान और भगवान् रसनासे मत कह । संतभी वही हैं जो "सर्वनामरूप दृश्यसे श्रेष्ठ निजस्वरूप आत्माको जानतेहैं" नहीं तो असंतहैं॥

हे मैत्रेय। अब प्रह्लाद चरित्र सुन--"शुक्राचार्य्य अपना जीव छुडाके निकस गयाहै"।यहप्रसंगसुनकर-हिरण्यकशिपुकनेपुत्रको बुलाकर कहा तेरे पास क्या शक्तिहै?जिसके बल किसी उपायसे भी तू मरता नहीं। यह मंत्र कहांसे सीखाहै?प्रह्लादने पिताके चरण चूमकरकहा-कि हे पिता।मैं मन्त्र यंत्रादि कुछ जानता नहीं परन्तु "आपसहित सर्व विष्णुको सम जानताहूँ यही मंत्रहै" हिरण्यकशिपुने कहा-अपने आत्माको त्याग कर, दूसरेनको शिरपर रखता है,सो बुद्धिकी मंदता है,इसीसे-आप सहित सर्व आपको जान, जो तीन तापते छूटे। प्रह्लादने कहा सर्व संसारका सार विष्णु आत्मा है जिसने सारको ग्रहण कियाहै,तिसको असार झूठ संसार क्या दुःख देसक्ताहै।यह वचन सुनकर राजाने अतिक्रोध किया।वहां एक पर्वत सौ योजन पृथिवीसे ऊंचा था।हुकुम दिया कि,इस पर्वतसे इसको गिरादो आज्ञा पाकर राक्षसोंने ऐसाही किया। प्रह्लाद जानता था सर्वव्यापक विष्णु आत्माही है, इस विचारसे उसको कुछ भ्रम न हुआ पुनः उससे भी ऊंचे पर्वतसे गिराया पर केशवने हाथोंपर लेलिया। यह दृढ उपासनाका फल है। विष्णुने प्रह्लादको कहा जो तेरी इच्छा होय सो मांग। प्रह्लादने कहा-मैं वह सेवक नहीं जो अपने स्वामीसे कुछ मांगूं जो पिताका नाश माँगूं तौ मुझको लज्जा है क्योंकि स्थावर जंगम तूहीहै,हिरण्यकशिपु कहां है।वहां हिरण्यकशिपु होकर कहताहै विष्णु मत कहो; यहां कहताहै सर्व विष्णुहीहै,इससे यही मांगता हूँ कि,तेरे बिन और कुछ न जानू जो तू कहै "मेरा तेरे ऊपर उपकारहै कि,तेरी मैंने अनेक उपद्रवोंसे रक्षा कीहै"

१ यहां योजन नाग चार हाथका है, धर्म पुस्तकोंमें भिन्न २ स्थान पर प्रसंगानुसार भिन्न २ माप लिखाहै, जैसे कहीं तो चारकोशका योजन लिखाहै। कहीं चार चार हाथका कहीं चार गज। कहीं चार अंगुलका। यहांपर आशय १०० योजनसे ४०० हाथकाहै।

सो नहीं क्योंकि, जब सर्व उपकार उपकार्य्य तूही है, तो उपकार तेरा किसपरहै। विष्णुने देखा कि, प्रह्लाद अचाहहै आज्ञा की "नेत्र मूँद"। प्रह्लादने नेत्रमूँदकर खोलनेपर देखा तो अपनेको पिताके पास खडापाया। हिरण्यकशिपु देखकर आश्चर्यवान हुआ और क्रोधित होकर साम्र राक्षससे कहा कि, यह बालक किसी उपायसे मरता नहीं, भजन मायाका करताहै, तुझको चाहिये कि; इसको मन्त्रोंसे वा किसी अन्य उपायसे नाश कर। तब सामर दैत्यने सहस्रों उपाय किये कि, बालकको मारूँ, पर न मारसका. क्योंकि प्रह्लादको दृढ निश्चय था कि, मंत्र और मंत्रपठन कर्ता और मंत्रसे मारने योग्य, सर्व विष्णु आत्माही है।

विष्णु विष्णुको तो नहीं मारता। ऐसा दृढ निश्चय देखकर विष्णु ने सुदर्शनचक्र अभिमानी देवताको आज्ञा की कि, प्रह्लादकी सर्व प्रकार रक्षा कर और सामरका शीश काट। सुदर्शनचक्रने ऐसाही किया। राजाको यह चरित्र देखकर विस्मय हुआ, चित्रकी मूर्त्तिके समान शून्यसा होगया. हुकुम किया, मेरे निकटसे इसकोदूर करो सारांश यह कि, ऐसेही अनेक मारनेके उपाय किये पर प्रह्लादका रोम मात्रभी न उखडा। पुनः राजाने प्रह्लादकी केश पकडकर, बहुत शासना की, पर प्रह्लाद अपनी प्रतीतिसे न चलायमान हुआ राजाके हाथमें एक गदा थी, सो प्रह्लादको मारी, वह गदा सहस्रखंड होगई; गुरु (शुक्र) ने कहा-हे राजन्। इतनी शासना तूने की पर कुछ इसको विघ्न न हुआ जैसेका तैसेही रहा, इसने आप सहित कोई पूर्ण वस्तु जानीहै, सोई इसकी रक्षा करताहै इससे इसकी शासनाका त्याग कर। राजाने कहा-जबलग शत्रुके निश्चयका त्याग न करे, तबतक इसके नाशके उद्यमका त्याग न करूँगा क्योंकि त्रिलोकीका स्वामी मैं हूँ, मुझ आत्मा विना इसने किस को देखा है, जो विष्णु कहताहै जाग्रत्, स्वप्नसुषुप्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण

समष्टि व्यष्टि सहित सर्व जगत् मुझ आत्माते हुआहै मुझ आत्मासे भिन्न कौन अनात्म घटवत् विष्णु है जिसका यह नाम लेताहै अपरोक्ष अपने आत्माको त्यागकर, परोक्षको जानताहै इससे हे प्रह्लाद मायारूप परोक्ष विष्णुका त्यागकर अपनेआत्माको जान और गुणका उपदेश जो तुझको मिलाहै सो.कह। प्रह्लादने कहा जितना गुरुने उपदेश कियाहै--धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्वरूप अरूपते परे उरे जनार्दन विष्णुहै। यहै परमार्थ मैंने जानाहै कि सर्व वहीहै तोचार पदार्थोंसेक्या प्रयोजनहै। हेपिताजी!आपभीनिश्चय यही करो कि, न मैं हूँ, न तू है, न यह जगत्है,एकविष्णु अद्वितीय आत्माही है। विष्णुभिन्न अविद्याहै, तिसको त्यागकर आप सहित सर्व विष्णुहै,इस विद्यामें लीनहो,पंचभूतके शरीरको मिथ्या जान। राजाने कहा-हे मूर्ख। जब सर्व आत्माहै तो विद्या अविद्या शरीर,अशरीर, त्याग, ग्रहण परमार्थअपरमार्थ विष्णु अविष्णु प्रह्लाद, हिरण्यकशिपु कहांहैं? इस्से राज्य त्रिलोकीका ले, आप भिन्न निश्चयका त्यागकर,आपको जान। प्रह्लादनेकहा--राज्यलोभसे उस निश्चयको त्यागूँ तो लज्जाका कामहै,क्योंकि राज्य सहित सर्व संसार अनित्यहै और मैंने नित्यको जाना है। हेपिता स्थावर जंगम सर्व विष्णु आत्माहै, सम निर्वाण चैतन्य अनंतहै; यह सर्व तिसीसे हुआहै, तिसीमें लीन होताहै और मध्यमें भी वही रूप जलतरंगवत् है, जिसने ऐसा जाना है. सो भगवद्रूप है।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय! तूने मुझसे कभी भी नकहा कि आप सहित सर्व भगवान्‌है मैत्रेयने कहा-प्रह्लाद रसनासे कहताथा इसीसे सुख नहीं पाताथा क्योंकि,पिताको भिन्न जानना और कहना "सर्व भगवान्‌है"यह संतोंका मार्ग नहींहै।हेगुरो! जो कहूँ मैंहीसर्वरूपहूँतो क्या कहनेसे आगे न था जो अब कहूँ। जैसे--जल जाने कि, सर्व तरंगादिक मैंहीहूँ, वा तरंगादिक जाने मैं जलहूँ, सो कहनामात्रहै

क्योंकि,तरंग हैं नहीं जलहीहै।तैसे-यह नाम रूप,अस्ति, भाति प्रियरूप आत्माही है । उससे भिन्न अत्यंताभावहै,यह बात स्वतः सिद्धहै,कहनेसे नहीं । पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तू परमहंस दृष्टि आता है।मैत्रेयने कहा-दृष्ट अदृष्टसे अगोचर मुझचैतन्य अरूपका कोई द्रष्टा नहीं,तुमको मैं कैसे परमहंस दृष्टि आया,पर कथाकहो पराशरने कहा, प्रह्लादने कहा-हे पिता ! जो कुछ दृश्यमानहै सो एक, अनंत विष्णु जान, इस निश्चयसे वहीरूप होगा । राजा यह वचन सुनकर,चौंकिसे उठा,चाहा प्रह्लादको अबहीं नाश करूँ जैसे रुद्रको महाप्रलयविषे संसारके नाशकीइच्छा होतीहै।राक्षसोंसे कहा-प्रह्लादके हाथ,पांव,बांधके समुद्रमें डालो; यह अभागा मायामें लीन है,मैंने इसके नाशमें बहुत ढील की थी कि,इस चाहको त्यागे परंतु इसको मृत्युने घेराहै । राक्षसोंने वैसेही किया। पराशरने कहा-हे मैत्रेय! तुझको यहअवस्था प्राप्तहोवे तो क्या कहे और क्या करे ? मैत्रेयने कहा-गोविन्दके भजनमें दुःखहोयतो मैं,उसका नामभी रसनापर न लाऊँ। पराशरने कहा हे मूर्ख ! चाहे, मैं मित्रको पाऊँ और आप भी बीच रक्खे और दुःखसेभयमाने तो मित्र मिलना कठिनहै । जो आपको नाशकर्त्ता है वही निश्चयमित्र-को पाताहै।विष्णु प्रह्लादकी परीक्षा करतेथे कि,चल है वा अचल है।

एक कथा ।

हे मैत्रेय ! इसीपर एक इतिहास सुन । एक ऋषिकी स्त्रीसे मेरी प्रीतिथी । मैत्रेयने कहा--पूर्व तुमने आपही कहाहै कि पराई स्त्रीसे प्रीतिकरताहै सो नरकको जाताहै, अब कहते हो ऋषिकी स्त्रीसे मेरी प्रीतिथी, तुम्हारे कथनके पूर्व उत्तरका विरोध हुआ । पराशर ने कहा सचहै, हे मैत्रेय । ब्रह्माकार वृत्तिरूप स्वस्त्रीसे भिन्न दृष्टि परस्त्रीके समान है वा स्वस्वरूप दृष्टिसे भिन्न दृष्टि परस्त्री स्वरूप

है। परन्तु उस ब्रह्माकार वृत्तिसे नवीन ज्ञानी अत्यंत प्रीति रखता है, तिस वृत्तिके निरोध करनेवाले काम क्रोधादिक अनेक पदार्थ हैं, तिनको तथा त्रिपुटीरूप सर्व जगत्को अंतःकरणकी ज्ञानमात्र वृत्तिरूपही नवीनज्ञानी जानताहै, क्योंकि जबलग पदार्थोंकावृत्ति रूप ज्ञानहै तबलगही पदार्थ है, अन्यकाल में नहीं, इसीसे ब्रह्माकार वृत्तिसेही नवीन ज्ञानी सुखमानके प्रीति करताहै। मुझ अवाङ्मनस गोचर, सर्वाधिष्ठान, जगत् विध्वंसक, दृश्यप्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंदकोब्रह्माकार वृत्ति, अब्रह्माकार वृत्ति तुल्य है इससे पर अपर मेरी दृष्टिमें नहीं क्योंकि शरीर अभिमान मुझको नहीं, आपसे आपहूँ, जो जीवहै उनकोकालसे, ईश्वरसे धर्मराजसे तथा शास्त्रसे भय होताहै । मन चंद्रमा, बुद्धि ब्रह्मा, चित्त विष्णु, अहंकार रुद्र, तात्पर्य्य यह कि, चक्षुमनआदिक अध्यात्म इंद्रिय और मन चक्षु आदिकइंद्रियोंके सूर्य्य चन्द्रमादिक देवता, मन चक्षु आदिक इंद्रियोंके अधिभूत रूप संकल्पादिक विषय, इन त्रिपुटियोंको मैंने उत्पन्न कियाहै, मुझे चैतन्यको किसीने उत्पन्न नहीं किया । इससे मुझको किसीका कंप नहीं, क्योंकि मुझ चैतन्यसे कोई विशेष नहीं ।

हे मैत्रेय! उस स्त्रीके दर्शनवास्ते सदा जाता था; एक दिन उसके देखनेकी अर्द्धरात्रिमें मुझको इच्छा हुई । स्वस्थानसे चला रात्रि अँधेरीथी औ वर्षा बरसतीथी, पर प्रेमका मित्र मेरे साथ अगवानी हुआ, मार्गके मध्य सर्प मेरे पगको लिपटा; मैंने जाना कि, मुझे मित्रने घेरा है, उस सर्पको मैंने कंठसे लगाया और जाना कि; प्रीतमहै । मैंने उससे कहा ऐसी निशिकारी विषे तेरे निमित्त चलाहूँ मुझको अपने गृहमें लेचल। पर हे मैत्रेय । गृह प्रीतमका गंगाके परले तीरपरथा, गंगा चातुरमासमें समुद्रकी भाँति तरंग मारती थी। प्रीतमकी प्रीतिविषे गंगा गोपदके

भाँति प्रतीतहुई। तिस सर्पकी नौका करके पारगया। जब तीरपर पहुँचा तो देखा, ऋषीश्वर मुनीश्वर बैठे तपस्या करते हैं। तिनोंने पूछा तू कौनहै? मैंने कहा अमुकऋषिकी स्त्री हूँ। तिनोंने कहा अर्द्ध-रात्रिमें तू कहां गईथी और कैसे यहां आई। मैंने कहा ऋपिकी स्त्रीके पास गई थी और उसीके पाससे उठकर आई हूँ। उन्होंने आपसमें कहा यह स्त्री नहीं, कोई जादूगर है। पुनः उन्होंने कहा-अब तेरी इच्छा कहाँ जानेकीहै। मैंने कहा-ऋपिकी स्त्रीके पास जाती हूँ सब विक्षेपमें आये, मुझकोलातों मुष्टियोंसे भली प्रकार मारा, पर मुझ-को वह शासना पुष्पसमानथी क्योंकि, तिस समय मैं पराशर न था जब उन्होंने भलीप्रकार-शोधकिया तो जाना कि, वसिष्ठका पौत्रप-राशर है। कहने लगे ऐसे पिताका पुत्र होके ऐसा कैसे हुआ। मैंने कहा न कोई मेरा पिता और न मैं किसीका पुत्र हूँ, मैं स्वयंरूप हूँ। जोहूँ तो मैं चैतन्य सर्व दृश्यका पिता नाम कारणअधिष्ठानस्वभद्रष्टावत् हूँ, वस्तुसे कारण कार्यसे रहित हूँ, कार्य कारण भाव भी मैंही हूँ, चैतन्य दृश्यते अतीत हूँ। उन्होंने जाना पराशर नहीं कोई चरित्र है। पुनः तिन्होंने और शासना की, शरीरमें जखम हुये पर मैंने कुछ न जाना। तिस समय प्रीतम भी आन पहुँचा और मैंने जब उसको देखा, पूर्व शासनकी अग्निते शांत हुआ तथा वियोगकी अग्निसेभी शांत हुआ। स्त्रीने कहा तेरी क्या अवस्थाहै? मैंने कहा मूलतेही मैं कुछ नहीं; जो है सो तूहीहै। शरीरका त्याग करूंगा पर तेरी प्रीति-का त्याग न करूंगा। उसने कहा जबशरीर न होगा तो मुझको क्या करेगा? मैंने कहा-तेरे मनविषे निवास करूँगा। कहा-अबभी तू मेरे मनविषे साक्षीरूपकर बसरहा है, फिर क्या बसेगा।

हे मैत्रेय! उसकी मेरीमूर्ति दो थीं पर मन एकही था, पर तैंने ऐसी कभी प्रीतिरूप निश्चयन किया। मैत्रेयने कहा-प्रीति, अप्रीति करना

मुझे चैतन्यका धर्म नहीं, मैं समहूँ, यह धर्म मनका है जहां द्वेष है तहां प्रीतिभी होगी,मैं चैतन्य एकरस हूँ पर कथा प्रह्लादकी कहो ।

पराशरने कहा-जब प्रह्लादकोबांधकरसमुद्रमें डाला तोसमुद्रकंपायमान हुआ,प्रह्लादको हरिभक्त जानके किंचित् भी दुःख न होने दिया, प्रह्लाद कमलपत्रवत रहा । राक्षसोंने यह अवस्था देखकर राजासे जाकर सारा हाल कहा।राजाने कहा उसपर शिलाका प्रहार करो,जिससे डूबजाय तिन मूर्खोंने वैसेही किया। तिस समय प्रह्लाद गोविंदकी स्तुति करता था कि,हे व्यापक । चैतन्य आत्मा ब्रह्मा, विष्णु,रुद्ररूप होकर जगत्की उत्पत्ति,पालना,संहार तूही करता है;सर्वरूपभी तूही है,सर्वते अतीतभी तूही है,जिनने तुझेको ज्ञाननेत्रसे नहीं देखा, सो पूजा अवतारोंकी करते हैं इसीसे परमार्थको नहीं पहुँचते ।सारांश यह कि,विष्णु होकर विष्णुकी पूजा करके, आपसहित सर्व विष्णु सम्यक् जाने।क्योंकि जो सर्व विष्णु है तो मैंभी विष्णुही हूँ; गुप्त प्रगट सर्व मेंही हूँ, आत्मा,परमात्मा मुझहीको कहते हैं । मेंही चैतन्य विष्णु आत्मा, पूर्ण, सर्वमें समहूँ । हे मैत्रेय ! इस प्रकार प्रह्लाद विष्णकी स्तुतिसे विष्णुसे मिलगया। मैत्रेयने कहा-जिसने विष्णुकी स्तुति की सो विष्णुसे मिला जिसने नहीं की सो नहीं मिला,तो मिलना न मिलना खुशामदरूपस्तुतिके अधीन है,स्वतःनहीं,ताते में इस मिलनेकी इच्छा नहीं रखता । क्योंकि, जब स्तुति नहीं करूंगातो विष्णु चैतन्यते बिछोहा होगा, पुनःस्तुति करूँगा पुनःमिलूँगा, इस पंचायतसे मुझको क्या लाभ है।जो जुदा मिलापवाले पदार्थहैं,सो सर्व अनित्य हैं।जैसे घटाकाश सदैव महाकाश रूपहै,तैसे मैं प्रत्यक् चैतन्य आत्मा सदैव ब्रह्मरूप हूँ, कभीभी जुदा मिला नहीं।पराशरने कहा—हे मूर्ख !मिलना यही कि,गोविंदको अपना आत्मा जान ।.मैत्रेयने कहा—जाना तो

मिला, नहीं तो भिन्न हुआ,जब कहते हो कि,सर्व आत्मा निर्विकल्पहै तो जानना और न जानना क्या? पराशरने कहा मैं नहीं जानता कि, कौनहूँ, पर ज्ञान शक्ति ईश्वरकी है, अज्ञानशक्ति जीवकी है। दोनों कथन मात्र हैं, कहां ज्ञान और कहां अज्ञान है, जो है सो निजरूप है।जब तत्त्व प्रतीत हुआ तब ज्ञान अज्ञान दोनों नाश हुये। जैसे--प्रज्वलित अग्नि गीले सूखे काष्ट दोनोंको जलावती है, इससे प्रह्लाद, जीव ईश्वर जगत्से उल्लंघकर, मूल अपनेको पहुंचाथा, जहां देखताथा विष्णुरूप अपने आत्माकोही देखता था। हे मैत्रेय! कह तू स्तुति गोविंदकी कैसे करता है? मैत्रेयने कहा, स्तुति तब होतीहै, जब निंदा हो, मैं चैतन्य द्वैत नहीं देखता, स्तुति निंदा क्याकहूँ, जबप्रह्लादकी न्याईं मुझकोभी दुःख होगा तब स्तुति करूँगा। पराशरने कहा तेरी क्या शक्तिहै कि, दुःखविषे एक सरीखा रहे, तू तो आपदाकालमें क्लेशकाही भजन करैगा। अब मैं तेरा नाशकर्ताहूँ,संसारमें ऐसा कोई दृष्टिनहीं आता जो तुझको मुझसे छुडावे। हिरण्यकशिपु भगवान्की निन्दा करताथा और प्रह्लाद स्तुति करताथा, तब भगवान्ने हिरण्यकशिपुको मारा प्रह्लादको छुडाया, मैंनिन्दा स्तुति किसीकी नहीं करता कि,तुझको छुडावेगा और मुझको मारेगा;ताते तुमको अबहीं भस्म करताहूँ। मैत्रेयने कहा-मैं मैत्रेय कहाहूँ आपहीहै आपको आप भस्मकर और खा। पराशरने कहा- मैं राक्षस नहीं जो तुझको खाऊँ परंतु अस्ति भाति प्रियरूप निजात्माते पृथक नामरूप असत् जडदुःख दृश्यको मैंने खायाहै। जो तूभी सच्चिदानंद आत्माते भिन्न भ्रममात्र दृश्य बनेगा तो तुझको मैं विवेकरूप राक्षस खाऊँगा पर गोविंदको चिन्तन कर।

हे मैत्रेय!जब प्रह्लादने ऐसी स्तुति की,तब विष्णु गरुडपर आरूढ आये। प्रह्लाद दोनों हाथ जोडकर नमस्कार कर स्तुति करने

लगा, हे पूर्णआत्मा! तुम्हारा दर्शन मुझको अमृतसमानहै, जितना नेत्रोंसे देखताहूँ तितनाही अघाता नहीं। विष्णुने कहा, जोतेरी इच्छा हो सो वर मांग। प्रह्लादने कहा, वर यही दे आप सहित सर्व तुझ हीको देखूं जैसे--विषयी विषयोंसे प्रीति करताहै, तैसे तुझमें मेरी प्रीति बनी रहै। हे प्रभो! मेरे पिताने मनमें जो द्वैत दृढ किया है तिसकी निवृत्ति कर कि, तुझहीको सर्वरूप जाने। विष्णुने कहा, प्रतिबंध अज्ञानका जिसके हृदयते उठताहै तिसको अपने विषे शीघ्रही लीन करताहूँ; अब तुझको निर्वाणपद दिया। प्रह्लादने कहा जो मेरेपर कृपा की है तो पिता मेरा मत मारियो, उलटा तेरे साथ प्रेमकरे; अपनेसहित सर्व तुझहीको जाने, अन्यको नहीं, ऐसा कीजियो। जो पूछे तू कौनहै तो मैं ब्रह्मात्मा स्वरूपहूँ। विष्णुने कहा-अंतर बाहरते एकमन होकर कह। प्रह्लादने कहा तुम्हारे हमारे और सर्व जगत् विषे अंतर बाहर विभागरहित एक आत्मापूर्णहै। विष्णुने कहा, तुझको जो यह दृढ निश्चय हुआहै तो पिताने जो तुझको इतना दुःख दियाहै, तिसका उपाय क्यों नहीं करसक्ता? प्रह्लादने कहा सत्त्व, रज, तमरूप मायाको आश्रयकरके जगत्की उत्पत्ति पालना संहार धर्महै, मैं चैतन्यमात्र निर्गुण अवाच्य पद हूँ। विष्णुने कहा-जब मेरे पास आताहै तो कहता है मैं ब्रह्मात्मा रूपहूँ जब पिताके निकट जाताहै और तुझको दुःख देताहै, तब कहताहै सर्व विष्णुहै, यह क्या बातहै? प्रह्लादने कहा सहन दुःखकी तुझकोही है। इसलिये योग्यहै कि; कष्टके समय तुझको चिन्तन करूँ। विष्णुने कहा तू मेरा भक्त भला है जो शासनाके समय मुझको आगे रखताहै। हेप्रह्लाद! पिता तेराभी तुझको आत्म उपदेश करताहै तू क्यों नहीं मानता। प्रह्लादने कहा शास्त्रोंकी मर्यादा रखने वास्ते, उपासनाकी बडाई तथा दृढ भक्तिके निश्चयकी रीति दि-

खलाने वास्ते, भक्तजनोंका तुझमें निश्चय और प्रेमकी रीति तथा भक्तजनोंपर तेरी सहायता, निःसन्देहता इत्यादिकी रीति दिखलानेवास्ते, पूर्वोक्त बातहै । विष्णुने कहा--कुछ मांग ? प्रह्लादने कहा देना धर्म ईश्वरकाहै, लेना धर्म जीवकाहै, मैं चैतन्य इन दोनों पदोंसे मुक्तहूँ । इससे तुझसे क्या मागूँ और तू क्या देवेगा । विष्णुने देखा कि,अचाहहै निःसंशय स्वरूपको प्राप्त हुआहै । कहा-हे प्रह्लाद अग्नि, जल, भूमि आदिक देवतोंको मैंने आज्ञा की हैकि, "तुम प्रह्लादकी रक्षा करो"।प्रह्लादने कहा--मुझ चैतन्यकी रक्षा कौन करे उलटा मैं चैतन्यही सर्व कल्पित पदार्थोंकी, सत्ता स्फूर्ति देकर रक्षा (स्फुरण)करताहूँ। विष्णुने कहा--अंतर्धान होताहूँ, अपने वांछितस्थानको जाताहूँ ।प्रह्लादने कहा--इसी कारण भजन अवतारोंका नहीं करताहूँ कि कभी दृष्ट कभी अदृष्ट होतेहैं अबसे आगे आत्मासे भिन्न जो सदा अपरोक्षहै,निश्चय न करूंगा, पर आये हो तो कुछतो आत्मनिरूपण करो । विष्णुने कहा तुझको आत्मधर्मसे क्या प्रयोजनहै । प्रह्लादने कहा आत्मा मैंहूँ मुझको प्रयोजन नहीं तो किसको है? विष्णु अपने स्थानको गये और प्रह्लाद जलसे निकसकर पिताके पास आया तब राजा आश्चर्यवान हुआ कि, यह जलसेभी जीवता निकसा और क्रोधकर दोनों हाथ बांधकर मुखपर ऐसी चपेट लगाई कि, प्रह्लाद वेसुध होगया, कहा हे अभाग ! तू आप आत्मस्वरूपहै, विष्णुको अपने ऊपर रखताहै। विष्णु आदि जगत् मात्र तुझसे प्रगट हुयेहै--जैसे--स्वप्नके ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि जगत् स्वप्नद्रष्टासे प्रगट होते हैं । अपने अमायिक स्वरूपको त्याग कर मायाविषे क्यों लीन होताहै । तुझको विपर्यय जानने विषे लज्जा नहीं आती । प्रह्लादने कहा--हे पिता ! अचिंत्य आत्मा विष्णुको कहतेहैं, न औरको । राजाने कहा--जलविषे तू विष्णुको कहताथा

कि, मैंही सच्चिदानंदरूप आत्माहूँ, अब विष्णु कहता है, आपसे भिन्न द्वैतको स्थापन करना क्या योग्य है ? हे पुत्र ! जो सर्व विष्णु होता तो सर्व चतुर्भुज मूर्ति जन्मसे एक समान दीखते जो कहे कि, सर्व पंचतत्त्वरूप जगत्‌है तौभी ठीकहै क्योंकि; विचारनेसे तो सर्व पदार्थ मायाके कार्य पंचभूतरूपहैं, यह दृश्य मायाकाहै । हे पुत्र ! तुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक् विष्णु सहित सर्व नाम रूप जगत् हैही नहीं तथा नाम रूप जगत्‌भी तूही आत्माहै, इनसे रहित भी तूही आत्माहै । हे पुत्र! मन वाणीके बीचसे तू चैतन्य आत्मा अगोचर है ऐसा होकर भी अपनेको मायारूप मानता है सो लज्जाका कारणहै प्रह्लादने कहा-हे पिता! जब मैं विष्णुसे संवाद करताथा तबकहां था? हिरण्यकशिपुने कहा--तू विष्णु और संवाद तीनों में चैतन्य आत्माही था क्योंकि मैं पूर्णहूं । प्रह्लाद ! आत्माबिना ध्यान मतकर न सुन, न कह, जो तूही आत्माहै तो विष्णुको क्यों आरोपताहै? प्रह्लादने कहा ऐसे न करे तो भगवान् और संतको कौन जाने । प्रयोजन मेरे कहनेका यहीहै कि, इस पदका नाश न हो । हेपिता! तू मैं जगत् सर्व परमात्माहैं । हिरण्यकशिपुने कहा-हे पुत्र ! आत्मा परमात्मा तूने सुनकर; मनमें कल्पित सिद्ध कियाहै, जबतू मेटेगा तबमिट जावेंगे जो तू प्रथम नहीं होवे तो आत्मा परमात्माको कैसे जाने इसलिये, जो कुछ भावाभावहै सो तूही है, तेरे अस्तित्वसे ही जीव ईशादिक पदार्थ सिद्ध होतेहैं । प्रह्लादने कहा-हे पिता ! जो सर्व आत्माही है तो, विष्णुभी अपना आत्माहै, तो तू क्योंनहीं कहता, मैं विष्णुहूँ । राजाने कहा, मुझ सच्चिदानन्द रूप आत्मा द्रष्टासे भिन्न सर्व विष्णु चतुर्भुज मूर्ति अमूर्ति आदि दृश्य वर्गहैं, मैं द्रष्टा होकर दृश्यरूप कैसे होऊं कभीभी द्रष्टा दृश्यरूप नहीं होता ।

पुनः हिरण्यकशिपुने क्रोधकर कहा तेरा नाशकरता हूँ कहो तेरा नारायण कहां है ? प्रह्लादने कहा अबतक तूने नहीं जाना ।

तुम्हारी इतनी शासना करनेपर भी,जिसने मेरी रक्षा की है सो नारायण है; सो प्रगट है,जहां प्रतीति करे वहांही प्रगट है।हिरण्यकशिपुने प्रह्लादके दोनों हाथ बांधके, थंभसे लटकाया और खड्ग नग्न करके कहा-अब तेरी रक्षाकरनेवाला नारायण कहां है ? बता । प्रह्लादने कहा-तुझमें; मुझमें; खड्गमें,थंभमें सबमें वही है। हिरण्यकशिपुने कहा-यदि प्रगट है तो क्यों नहीं निकलता ? यदि नहीं निकलता तो भ्रमरूप है । प्रह्लादने कहा जो सर्व वही है तो तू, मैं,थंभ सर्वमें भी वही है, जैसेही यह वचन प्रह्लादने कहा तैसेही थंभेसे गंभीर शब्द हुआ । हिरण्यकशिपुनेभी शब्द सुनकर शब्द किया और प्रह्लादसे कहा "आज तेरा परमेश्वर प्रगट हुआ है,देखूँ क्या होता है.?" शरीर विनाशी है,मुझ आकाशके सदृश चैतन्य आत्माका नाश कोई कर नहीं सक्ता क्योंकि,नाश, अनाश, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि सर्व जगत् अपना स्वरूप होनेसे अपने आत्मस्वरूपको कोई भी नाश नहीं करसक्ता, यह आत्मविचार कर महातेजस्वी निर्भय होगया । प्रह्लादने कहा, अभी कुछ विगडा नहीं, कहो सर्व विष्णु है । राजाने कहा--कामना मेरी पूर्ण हुई कि,मेरा शत्रु सन्मुख आया है,अब पीठ देना काम शूरोंका नहीं । प्रातःकालमें पूर्व दिशासे जैसे सूर्य उदय होता है तैसे नरसिंह भगवान् थंभेसे प्रगट हुए और परस्पर दोनोंने बहुतकालतक महान् युद्ध किया, दोनोंमें कोई नहीं हारताथा;परन्तु हिरण्यकशिपुके शरीरका भोग देनेवाले प्रारब्धकर्म होचुकेथे, इससे अंतमें विष्णुकी प्रबलता हुई । सूर्यके अंतर बाहर, संध्यासमय, पौरके बीच, अपने पटांपर उसका शरीर रखकर, अपने नखोंसे उसका उदर विदीर्ण किया । देवतोंने पुष्पोंकी वर्षा और स्तुति की,और प्रह्लादको प्रेरा कि भगवान्‌का क्रोध शांत कराओ। प्रह्लादने कहा; हे बाजीगर ! यह कौतुक तूने क्या किया है।

और किंचिन्मात्र संग शुक्रका हुआ तो प्रह्लाद कहने लगा हे गुरो। आज्ञाकरोतोशक्ति राखताहूँ।पुनः राक्षसोंको आज्ञाकीकि, विष्णुके मारनेवास्ते शस्त्र अस्त्र लेकर मैदानमें डेरा करो। पांच योजन नगरसे बाहर उतरा। विष्णु अंतर्यामीने विचारा कि; प्रह्लाद सद्बुद्धिको त्यागकर कुबुद्धि हुआहै परन्तु क्या करे कुसंग ऐसाही है किन्तु भक्तकी कुमति दूर करनी चाहिये, नहीं तो बिरद लजायमान होगा ऐसा विचारकर विष्णु वृद्ध ब्राह्मण कृशरूप होकर, लकडी हाथमें लेकर, कांपते कांपते आये। लोगोंसे पूछा यह धूम धाम किसकीहै लोगोंने कहा प्रह्लादको विष्णुके साथ युद्ध करनेकी इच्छाहै। आगे मत जाव क्योंकि, ब्राह्मण आगे मिलै तो अशुभहै । ब्राह्मणने कहा प्रह्लाद ब्राह्मणोंपर दयालुहै । लोगोंने कहा पहले था अब नहीं। ब्राह्मणने कहा मुझको क्या भयहै? बूढा हूँ,शरीर आज या कल नाश होना ही है ।तब उन्होंने कुछ न कहा, और प्रह्लादके निकट ब्राह्मण गया। प्रह्लादने कहा तू कौनहै? किस कामकेलिये आयाहै? ब्राह्मणने कहा तेरी शरण आयाहूँ,ईश्वरके अन्यायसे अतिदुःखीहूँकि सर्वकुल मेरा उसने नाश कियाहै।मैंने सुना है कि, तूने भी ईश्वरके नाशकी इच्छा की है; तू धन्य है । यह बुद्धि तूने गुरुसे पाई है । परन्तु कह उसका ठिकाना कौनसा विचारा है कि, मैंभी तुम्हारे संग जाकर पिता माताका बदलालूं।प्रह्लादने कहा ठिकाना उसका मैंनहीं जानता तब ब्राह्मण सुनकर हँसा और कहा--जैसा मैं मूर्ख था वैसाही तुझ कोभी देखा परंतु मैं तेरे बलकी प्रथम परीक्षा करता हूं,यह लकडी मैं पृथिवीपर डालताहूं इसको उठाकर मेरे हाथमें दे, तो मैं जानूंगा कि यहभी काम तुझसे होगा प्रह्लादने कहा अच्छी बातहै ब्राह्मणने लकडी पृथिवीपर डालदी। प्रह्लादने अपना सारा बल लगाया परंतु उठा न सका। तब जाना कि, यह विष्णुहै। ब्राह्मणके चरणोंपर शिर रखदा विनती करी कि मैं तुम्हारी शरणहूं, मेरा अपराध क्षमा

नरसिंह भगवान्ने प्रह्लादको दोनों भुजोंमें लेकर, रुधिरसे भरे हुए मुखसेही प्रह्लादका माथा चूमा और आज्ञा की कि, राज्य कर। प्रह्लादने कहा-इस राज्यमें मेरी चाहना नहीं, मैं कैसे राज्य करूं। विष्णुने कहा, तथास्तु. ऐसा कहके विष्णु अंतर्धान होगये।

पराशरने कहा हे मैत्रेय!मैंने तुझको इतना आत्मनिरूपण सुनायाहै तुझको क्या लाभ हुआ है,तूने एक कानसे सुना,दूसरे कानसे निकाल डाला,कहना मेरा अकार्थ हुआ।मैत्रेयने कहा,इस कथा श्रवणसे जाना कि,परमात्मा विना और कुछ नहीं।पराशरने कहा भयमान हो,माया विष्णुकी बलीहै।मैत्रेयने कहा,जब सर्व गोविंद है तो माया तथा विष्णु तथा तू,मैं,बल,छल,जगत्, सब गोविंद है। पराशरने कहा, मायाकी तथा कुसंगकी आश्चर्यरूपता सुन।

जब प्रह्लाद पिताके स्थानमें राज्यपर बैठा, तब शुक्राचार्यने कहा. हे प्रह्लाद!सच कहो पिताके नाशवास्ते विष्णुको तूने कहा था?वा विष्णुने आपही माराहै।प्रह्लादने कहा,मैंने नहीं कहा, उसने जो कुछ कियाहै सो आपही कियाहै, पिताके नाशकी मुझको इच्छा नहीं थी।शुक्राचार्यने कहा,तेरा जीना मृत्युसे भी बुरा है जबतक पिताका बदला वैरीसे न लेलेवै,जो कुछ खावेपीवे तुझको अभक्ष्यहै।प्रह्लादने कहा,किसकी शक्तिहै कि गोविंदसे समताकरै।शुक्राचार्यने कहा गोविंद कहांहै?तेरे निश्चयविषे प्रकाश कियाहै,नहीं तो गोविंद चतुर्भुज विष्णु आत्मासे क्या न्याराहै?यदिन्यारा होगा तो अनात्मा होगा।धर्मशास्त्रमें लिखाहै,पिताका बदला पुत्र लिये विना जो कुछ करताहै,सो अयोग्यहै।प्रह्लादनेकहा,प्रथमतुम कहतेथे,गोविंदका भजनकरोअबकहतेहो गोविंदको मारो,जब हिरण्यकशिपुको,उसके मारनेकी शक्ति नहीं हुई,तो मैं कैसे मारूँगा। शुक्राचार्यने कहा,वह अहंकार करताथा,तू आत्मशक्ति रखताहै।हे मैत्रेय।प्रह्लादको पिताने कितनी शासनाकी परंतु निश्चयसे न चलायमान हुआ

और किंचिन्मात्र संग शुक्रका हुआ तो प्रह्लाद कहने लगा हे गुरो। आज्ञाकरोतोशक्ति राखताहूँ। पुनः राक्षसोंको आज्ञाकीकि, विष्णुके मारनेवास्ते शस्त्र अस्त्र लेकर मैदानमें डेरा करो। पांच योजन नगरसे बाहर उतरा। विष्णु अंतर्यामीने विचारा कि; प्रह्लाद सद्बुद्धिको त्यागकर कुबुद्धि हुआहै परन्तु क्या करे कुसंग ऐसाही है किन्तु भक्तकी कुमति दूर करनी चाहिये, नहीं तो बिरद लजायमान होगा ऐसा विचारकर विष्णु वृद्ध ब्राह्मण कृशरूप होकर, लकडी हाथमें लेकर, कांपते कांपते आये। लोगोंसे पूछा यह धूम धाम किसकीहै लोगोंने कहा प्रह्लादको विष्णुके साथ युद्ध करनेकी इच्छाहै। आगे मत जाव क्योंकि, ब्राह्मण आगे मिलै तो अशुभहै। ब्राह्मणने कहा प्रह्लाद ब्राह्मणोंपर दयालुहै। लोगोंने कहा पहले था अब नहीं। ब्राह्मणने कहा मुझको क्या भयहै? बूढा हूँ, शरीर आज या कल नाश होना ही है। तब उन्होंने कुछ न कहा, और प्रह्लादके निकट ब्राह्मण गया। प्रह्लादने कहा तू कौनहै? किस कामकेलिये आयाहै? ब्राह्मणने कहा तेरी शरण आयाहूँ, ईश्वरके अन्यायसे अतिदुःखीहूँकि सर्वकुल मेरा उसने नाश कियाहै। मैंने सुना है कि, तूने भी ईश्वरके नाशकी इच्छा की है; तू धन्य है। यह बुद्धि तूने गुरुसे पाई है। परन्तु कह उसका ठिकाना कौनसा विचारा है कि, मैंभी तुम्हारे संग जाकर पिता माताका बदलालूं। प्रह्लादने कहा ठिकाना उसकामैंनहीं जानता तब ब्राह्मण सुनकर हँसा और कहा—जैसा मैं मूर्ख था वैसाही तुझ कोभी देखा परंतु मैं तेरे बलकी प्रथम परीक्षा करता हूँ, यह लकडी मैं पृथिवीपर डालताहूँ इसको उठाकर मेरे हाथमें दे, तो मैं जानूंगा कि यहभी काम तुझसे होगा प्रह्लादने कहा अच्छी बातहै ब्राह्मणने लकडी पृथिवीपर डालदी। प्रह्लादने अपना सारा बल लगाया परंतु उठा न सका। तब जाना कि, यह विष्णुहै। ब्राह्मणके चरणोंपर शिर रक्खा विनती क[illegible] मैं तुम्हारी शरणहूँ, मेरा अपराध क्षमा

करो। विष्णुने कहा उलटा तू मुझपर क्षमा कर, मेरे मारनेकी तूने इच्छाकी है। प्रह्लादने कहा--यह अपराध मेरा नहीं किन्तु, यह उपदेश शुक्रका है। विष्णुने कहा इसीसे गुरु देखकर करना चाहिये- "गुरु कीजिये जानि, पानी पीजै छानि"। गुरु वही है जो ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण हो। प्रह्लादने कहा--ऐसा गुरु कहाँ पावें ? विष्णुने कहा एक संत आपसे आप तेरे निकट आवेगा परन्तु चाहना उसके चरणोंके धूरकी मनमें रखना।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! ऐसे बुद्धिमान प्रह्लादको मायाने भ्रमाया था, तू क्यों न भ्रमेगा। मैत्रेयने कहा, हे गुरो ! भ्रमणा न भ्रमणा दोनों माया हैं, मैं अमायारूप भ्रमण अभ्रमणरूप मायाका साक्षी हूँ। मायाका कार्य भ्रमण अभ्रमण मनका धर्म है, मुझ चैतन्यका नहीं; मैं एकरस हूँ। भ्रम अभ्रमकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते मुझ चैतन्यको यत्न नहीं, निष्कर्तव्य हूँ पराशरने कहा-हे मैत्रेय। निष्कर्तव्य और सकर्तव्य कथन चिंतन भी मनका मनन है, वास्तवमें तू अवाच्यपद है। मैत्रेयने कहा प्रह्लादने भजन विषे क्या भेद किया था कि, उसको माया लगी पराशरने कहा हे मैत्रेय ! प्रह्लाद अपनेको वडा मानता था, यही मायाहै, जहां मैं तू न रहा वहां माया कहां है ?

मैत्रेयने कहा--प्रह्लादको कौन संत मिले ? पराशरने कहा-दत्त भगवान् आये और नगरकेसमीप एक स्वच्छ स्थानमें सोरहे राक्षसोंने तिनको देखकर कहा तू कौनहै ? दत्तने कहा मैं राक्षसहूँ। तिनमेंसे एक राक्षस प्रह्लादके निकट आया और कहा एक परमहंस आया है, तिसके वर्णाश्रमको हम नहीं जानते, तुमको दर्शन करनायोग्यहै। प्रह्लाद सुनकर दत्तके निकट आया और दंडवत किया मनमें शंका उपजी कि, वर्णाश्रम इसका नहीं जानता, पूजा कैसे करूं। तब पूछा--हे सन्त ! रूप तुम्हारा क्या है ? तुम

कौनहो? कहांसे आये हो ? कहां जाओगे ? संतने उत्तर न दिया बहुरि प्रश्नकिया, तो भी उत्तर न दिया । पुनः तीसरी बेर बोला कि मैंने सुनाथा कि, प्रह्लाद परमहंस है, पर देखा तो अभी माया-मेंही पडाहै क्योंकि, वर्णाश्रमका बिचार करें तो स्थूल शरीरकेभी नहीं निकस सके, शरीर अतीत आत्माके कहांसे आवेंगे । जो वर्णाश्रमकी कल्पना मानें भी तो स्थूल शरीरकेही वर्णाश्रम हैं, शरीर ही मायाहै ताते शरीर अभिमानी तू मायामें ही पडा है । प्रह्लादने कहा-मैं मायासे अतीत हूं, संतने कहा "मैं मायाते अतीतहूं" यह भी जानना मायारूप है । पुनःसन्तने कहा यह भी माया है, जो पूछता है तू कौनहै?कहांसे आयाहै? कहां जावेगा?जब सर्व गोविंद है तो गोविंद कहांसे आवे और कहांसे जावे आकाशकी न्याईं व्यापकहै; आना जाना परिच्छिन्नमें होताहै । हे प्रह्लाद ! देह अभिमान राक्षस स्वभावको त्याग और "देहादि संघातते भिन्न साक्षी आत्मा मैं हूं" इस दैवी बुद्धिको धारण कर; जो देव भावको प्राप्तहोवे । प्रह्लादने कहा अब मैं क्या करूँ ? संतने कहा वही कर जिससे करना कुछ न पडे ? प्रह्लादने कहा वह क्या वस्तु है । संतने कहा-सो तूही देहसे भिन्न चैतन्य अक्रिय आत्माहै।तुझमें कर्तव्य नहीं।जैसे घटसे भिन्न आकाश अक्रिय है हे प्रह्लाद!जबसर्व गोविंद है तू, मैं नहींतब आना जाना कहां है परन्तु पर अपरका वृथा अहंकार तूने कियाहै, सोई संखल अपनेपगको पायाहै, यह अहंकारही बीज आवागमनका है जिसने इस संखल (जंजीर)को ज्ञान खड्गसे काटा, सो ससारसे पारहुआ है,हे प्रह्लाद!नाम जो तूने पूछा है सो नामरूप तो भ्रम अहंकार है सर्व मनबुद्धि आदिकोंका ज्ञाता प्रकाश एकही मैं चैतन्य साक्षी आत्मा हूँ, मेरा ज्ञाता और कोई नहीं जो मेरे आने जानेको जाने, इससे मैं स्वयंप्रकाश हूँ। तूने जो आपको शरीर माना है सो शरीर जब गिरेगा तब इसकी अवस्था

तीन प्रकार होवैगी । जले तो भस्म,खायतो विष्ठा, पडारहै गडै तो कृमि । ऐसी मलिन वस्तुको आप मानके अहंकार मानता है कि मैं राजाहूँ । जैसे भंगी पाखानोंका, आपको राजा माने सो यही मायाहै । कहाँ यह अत्यंत मल मूत्र नरक रूप दृश्य रूप देह, कहाँ तू शुद्ध चैतन्य द्रष्टासाक्षीआत्मा, तुझको लज्जा नहीं आती कि, मल मूत्रको अपना स्वरूप मानता है। हे मूर्ख । भंगी भी विष्ठाको अपना रूप नहीं मानते, तू तो पंडित है । देहाभिमानही सर्व दुःखों का मूल है, जब अहंकार न रहा तब सर्व दुःख भी नष्ट होजातेहैं । हे प्रह्लाद बाहरसे कहै मैं शरीर नहीं, भीतरसे शरीर भी मान रखे तो भला नहीं, न वह ज्ञानी है न वह योगीहै केवल दुःखका भागी है इससे निश्चय जान; "शरीर कालका ग्रास है, मैं इस कालका भी कालरूप हूँ" इसके सुख दुःखसे क्यों चिन्तातुर होता है और क्यों मोह करता है? हे प्रह्लाद । तू पंचभूतोंसे तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध,. पंचविषय रूप तन्मात्रा दश इंद्रिय, चतुष्टयअन्तःकरण, पंचप्राण तथा सात्त्विक, राजस तामस, तीनगुण इन सबोंका कारण माया है सारांश यह कि, कार्य कारण रूप प्रपंचसे तू परेहै । शारीरिक, वाचिक, मानसिककर्मों ते तू चैतन्य मुक्त है और तेरा स्वरूप सच्चिदानंद रूप है,. बुद्धि आदिक असत् जड तेरा स्वरूप नहीं।प्रह्लादने कहा-तुम्हारे वास्ते शय्या ले आऊँ,तो शयन करोगे। अवधूतने कहा जो स्वाभाविक प्रारब्ध करके प्राप्त होवे तो हर्ष नहीं और कांटों पर शयन होय तो शोक नहीं । हे प्रह्लाद ! छत्तीस प्रकारके भोजन मिलें तो खता हूँ, नहीं तो सूखे पत्तोंसे निर्वाह कर्त्ता हूँ, और संतुष्ट हूँ हर्ष शोक नहीं । प्रह्लादने कहा राज्य करो । अवधूतने कहा-राजा, प्रजा, देश मेरी दृष्टिमें है नहीं ।

यह तन जारे भसम होय जाई, गाडे कृमि कीट खाई, शूकर श्वान काकको भोजन; तनकी इहै बडाई ।

किंतु अपने सहित यह सर्व वासुदेव जानताहूँ,इसीते स्वराज हूँ, यह सर्वकल्पित नामरूप मेरी प्रजा है ।जैसे--स्वप्नमें सर्व नामरूप स्वप्नद्रष्टाकी प्रजा है, स्वप्नद्रष्टा स्वराज है ।

हे प्रह्लाद ! यह कार्य्य कारण रूप जगत्,मुझ चैतन्यकी प्रजाहै सत,रज,तम रूप मायायुक्त मुझ सच्चिदानंदसे त्रिगुणात्मक शब्द-गुण सहित आकाश उत्पन्न हुआ । आकाश संयुक्त मुझ चैतन्यसे वायु,वायुविशिष्ट मुझ चैतन्यसे अग्नि अग्नि विशिष्ट मुझ चैतन्य-से जल, जलविशिष्ट मुझ चैतन्यसे पृथिवी पृथिवी विशिष्ट मुझ चैतन्यसे औषधि औषधिविशिष्ट मुझ चैतन्यसे अन्न, अन्नविशिष्ट मुझचैतन्यसे वीर्य वीर्य विशिष्ट मुझ चैतन्यसे शरीर हुआ;सो शरी-र समष्टिव्यष्टि भेदसे,दोप्रकारका है।पुनः आकाशादिक पंचभूतोंके एक एक आकाशादिकोंके सात्त्विक अंशसे श्रोत्रादिक पंचज्ञाने-द्रिय उत्पन्नहुईं,पुनःपंचभूतोंके सात्विकसाक्षी अंशसे चतुष्टयअंतः-करण हुआ,पंचभूतोंके राजसी अंशसे वागादिक पंचकर्मेंद्रिय उत्पन्न हुईं । पंचभूतोंके साक्षी राजसी अंशसे प्राण अपानादि पंचप्राण उत्पन्न हुये । पंचभूतोंके तामसी अंशसे काम क्रोधादिक पचीस प्रकृति उत्पन्न हुईं । हे प्रह्लाद ! यह सब मेरी प्रजाहै,मैं चैतन्य राजा,एकही अपनी सत्तास्फूर्ति देकर,पूर्वोक्त सर्वनाम रूप प्रजाकी पालनाकरताहूँ,मुझे कोईभी पूर्वोक्त प्रजा पालना नहीं कर-सक्ती इसीसे स्वराजहूँ। जोतूभी स्वराजमेरी मुवाफिक हुआ चाह-ताहै तो देह अभिमानका त्यागकर आपको सच्चिदानंदजान।आप कोत्यागके भजन किसकाकरताहै तुझको लज्जा नहीआती,खुदवा-दशाह होकर भ्रमसे आपको भंगी मानताहै तुझ चैतन्यविषे द्वैतका मार्गही नही।चाहे मैं भी बनारहूँ और रस भजनका पाऊँ,सो कठिन है । सच्चित् आनंदस्वरूप तूगोविन्दहै,गोविन्दकेमिलनेकी चाहना

करताहै.यहीतेरेमें बंधनहै। अपने आत्मस्वरूपमें मिलनाबिछुडना नहीं तो कैसे मिलेगा?किन्तु नहीं मिलेगा। जैसे-"लडका बगलमें ढंढोरा शहरमें" सो यह भ्रमका काम है। हे प्रह्लाद! तू वर्ण आश्रमकी तलाशमें फिरता है,तुझको वर्णाश्रमहीं मिलेगा,निज स्वरूप को कैसे जानेगा क्योंकि,गोविन्दमें वर्णाश्रम है नहीं। हे प्रह्लाद! तेरी न्याई जो वर्णाश्रम रखता हो, तिसको तू संत जान कर मिल,मैंवर्णाश्रम नहीं रखता हूँ। हे प्रह्लाद! तूने जो मेरे चरणोंपर शीश रक्खा है सो शीशभी मांस चर्म है और मेरे चरणभी मांस चर्म है,तेरे नमस्कारसे मुझको क्या लाभ है, क्षुधा तृषादिक हर्ष शोकादिक,शीतोष्णादिक कोई भी क्लेश दूर नहीं करता, न कोई सुख करता है,ताते मुझको तेरी नमस्कारकी इच्छा नहीं. परन्तु, तू निजस्वरूपको जान जो कर्तव्यते छूटे। हे प्रह्लाद। जो श्रोत्रादिक पंचज्ञानेंद्रियोंकर शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गंध जाने जाते हैं जो मनकरके चिन्तनमें आते है,वाणीकर जो कथनमें आते है, जो प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणोंकर सिद्ध होता है,सो तुम्हारा स्वरूप नहीं किन्तु जिसकर यह सर्व सिद्ध होते है सो तुम्हारा स्वरूप है वेदोंके पढनेसे भी स्वरूपकी प्राप्ति होनी दुर्लभहै,बुद्धिकी चतुराई से भी दुर्लभ है,बहुत श्रवणसे भी दुर्लभ है, कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रतों करके भी,तीर्थाटनसे भी,जपादिक उपासनासेभी,अग्निहोत्रादि कर्मोंसेभी स्वरूपकी प्राप्ति दुर्लभहै;परंतु आत्मस्वरूपके जाननेकी इच्छापूर्वक,श्रद्धासहित,सत्संगतसे ही स्वरूपकी प्राप्ति होती है। जब तुझको स्वरूप दर्शन होगा तब अंतरबाहरपना त्यागके आप ही होवेगा हे प्रह्लाद!यह तूने अकार्थ मानाहै कि मैंनेबहुत काल गोविन्दका भजन किया है पर शांति न आई तेरे मनविषे कपटहै गोविंदको कैसे पावे। जिह्वासे नारायण२कहना; मनमें कामनासंसारके सुखोंकी रखनी यही कपट है।हेसर्वनारायण और आपावीच

राखना,इस कपटको त्याग जो आपसे आपहोवे ।संसारमार्गमें भी जो किसीसे प्रीति करताहै तो जबलग भेद नहीं किया, तबलग ही प्रीति रहतीहै, जब आपसमें भेद पडा, प्रीति नहीं कपटहै। इस हेतु अन्तर बाहर सर्वका अंतर्यामी प्रकाशक, एकही सच्चिदानंद स्वरूप, आत्मासेही प्रीति कर। आपा भ्रमके-आरोपणसे भगवान् कैसे प्रसन्नहोगा अर्थात् नहींहोगा। यदि पूछे आपा क्याहै ? 'तो मैं प्रह्लाद जीव दासहूँ,नारायण हमारा स्वामीईश्वरहै' यही आपाहै। परंतु विचार कर देख दास स्वामी कहांहै एक रस चिद्घनदेवहीहै, निमकके डलेवत्। प्रह्लादने कहाहै रूप सत्ताको कौन सिद्धकर्ताहै ? संतने कहा "नहीं को हैंने सिद्ध कियाहै, है को कोई नहीं सिद्ध करता,है ही सर्वको सिद्ध करताहै" इसीसे है स्वयंप्रकाश है। प्रह्लादने कहा यह पद कैसे जाननेमें आवे?सन्तने कहा--है शब्द और है नहीं-ये शब्द और इन शब्दोंके अर्थ जिस अवाङ्मनसगोचर पदकर सिद्ध होतेहैं सो तू है, तुझ अवाङ्मनसगोचर करके ही सर्व नामरूप प्रपंचकी सिद्धि होतीहै, तू स्वयंप्रकाशहै, तुझको जाननेवाला कोई नहीं। जैसे-सूर्य करही अन्धकार प्रकाश दोनों सिद्ध होतेहैं।

हे प्रह्लाद !योग दोस्तीका नामहै। एक चींटीका मार्गहै दूसरा विहंगम मार्गहै,हठयोग चींटीमार्गहै,विचारयोग विहंगम मार्गहै, सो विचारयोग पूर्व तुझको कहाहै, हठ योग हठियोंसे सीखले। जैसे नटसे नट शरीरकी कसरत सीखे, इसपर एक कथा सुनः--

अध्यात्मक योगीश्वरोंकी कथा।

एक समयमें हिंमालय[1] पर्वतपर स्वाभाविक विचरता था और यह चिंतन करता था कि,सर्व शिवहै, शिवसे भिन्न कोई वस्तुहै नहीं।

---

१ मनुष्यशरीररूप हिमाचल पर्वत.

जब पर्वतकी शिखर (शरीर)पर पहुँचा,तब देखा अनेक योगीश्वर बैठे योगाभ्यास करतेहैं जो तू पूछे योगीश्वर कौन थे?सो सुन। पंच महाभूत,पचीस प्रकृति,तीनगुण,पंचज्ञानेंद्रिय,पंचकर्मेन्द्रिय पञ्चप्राण,चतुष्टय अन्तःकरण। सारांश यह कि, मन बुद्धि. चित्त अहंकार और समष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर तथा जाग्रत्,स्वम, सुषुप्ति,शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषय तथा चक्षु आदि इंद्रियोंके सूर्यादि देवता तथा पूर्वोक्त इन सर्वका उपादान कारण माया अविद्यारूप अज्ञान इत्यादि मनुष्य आकृतिको धारके योगाभ्यास करतेथे।तिन योगेश्वरोंके मध्यमें पंचज्ञानेन्द्रिय और मन बुद्धि चित्त अहंकार,किसी रीतिसे यह नवयोगीश्वर ज्ञानवान्भी थे। यद्यपि मुख्य ज्ञानरूप आत्माहीहै,तथापि ज्ञानरूप आत्माकी प्रधान उपाधि होनेसे उन्हें ज्ञानी कहतेहैं वा ज्ञानके साधन होनेसे ज्ञानी कहतेहैं,वा सत्त्वगुणके कार्य्य होनेसे ज्ञानी कहतेहैं, अन्य प्रकार नहीं दूसरे सर्व अज्ञानीथे;तात्पर्य्य यह कि,कर्मेन्द्रियादि ज्ञानके असाधन सर्वको प्रसिद्धहीहैं इससे अज्ञानी कहलाते हैं।मैंने पूछा हे योगेश्वरो!किस पदमें योग करतेहो ? उन्होंने कहा अकार विषे।मैंने कहा-अकारका क्या स्वरूपहै? उन्होंने कहा-ईश्वरअकार स्वरहै-जैसे-सर्व क, ख, ग, घ, ङआदिक वर्णोंविषे व्यापकहै और सब वर्णोंके उच्चारणका निर्वाहकहै। अकारही सत रूपहै। क्योंकि सर्व वर्णोंका अकारमें अभावहै, तथा परस्परमें भी अभावहै,परंतु अकारकी सर्वमें अनुस्यूतताहै।हे दत्त ! तैसेही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध गुणोंसे रहितहै सर्व गुणरूपभी वही है। तैसेही समष्टि,व्यष्टि, स्थूल, प्रपंच तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म प्रपंच तथा समष्टि व्यष्टि कारण प्रपंच जिसकर सिद्ध होताहैपूर्वोक्त सर्व प्रपंचविषे व्यापक है, पूर्वोक्त सर्व दृश्यका स्वरूप भूत हुआ अपनी सत्तास्फूर्ति करके सर्वका निर्वाहक है। सर्व

दृश्यरूप भी वहीहै;तथा सर्व दृश्यते अम्बरके समानअसंग भी वही है।सर्व दृश्यका द्रष्टा साक्षी भी वहीहै;तुरीय वातुरीयातीत संज्ञाका भी वाच्य वहीहै।अकार उपलक्षित सत्,चित्,आनंद नामोंकरके भी वही कथनकिया जाता है,तिसपदविषे हम योग करते हैं । मैं सुनकर हँसा और कहा-हेमित्रो।पूर्वोक्त सो पद तुम्हारा स्वरूप है, योग किस्से करते हो।सर्व दृश्य तुम्हारा ध्यान करता है,तुमको योगनाम संबंध किसी दृश्य पदार्थसे,क्रिया करके,करना नहींपडता,तुम अधिष्टानते विना कल्पित प्रतीतिका अभाव होनेसे, स्वतःही तुम अधिष्ठानका कल्पित दृश्यके साथ योग है,कर्त्तव्यसे नहीं। जैसे-स्वतःही चीनीका खिलौनोंके साथ योगनाम सम्बन्ध है तथा जैसे-आकशका स्वतःही सर्व पदार्थोंके साथ योग है,करना नहीं पडता । जो अवाङ्मनसगोचर पद अपरोक्ष,हाजिर हुजूर,बल्कि सर्वका सिद्ध करता है-सोई तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का स्वरूप है.अन्य मन आदिक दृश्य नहीं ।

हे प्रह्लाद ! पूर्वोक्त अनेक योगियोंके मध्यविषे,पंच ज्ञानेंद्रिय चतुष्टय अंतःकरण,यहनवयोगीज्ञानीथे,अन्य अज्ञानी प्रसिद्ध ही हैं तिन ज्ञानी योगेश्वरोंके मध्य,मैंने पूछा कि,हे श्रोत्रेंद्रिययोगेश्वर ! महान्शब्द, मध्यमशब्द और निकृष्टशब्द वा ध्वनिरूपशब्द वा वर्णात्मक रूप शब्दोंकाही तुम ध्यान करसक्ते हो। शब्द रहित जो आत्मा हरिहै,तिसका तुम हजार यत्नसे भी ध्यान नहीं करसक्ते, यदि परमेश्वर आत्मा तुम्हारे ध्यानमें आवेगा,तब हरि आत्मा, शब्दरूप होनेसे,अनित्य होजावेगा, इस्से हे श्रोत्रेंद्रिययोगेश्वरो ! तुम्हारा नारायण आत्माका ध्यान करना निष्फल है वा दंभहै किंतु शब्दका ध्यान करना सफल है । तैसेही हे प्रह्लाद ! मैंने त्वचा इन्द्रिययोगेश्वरसे पूछा कि,तुमकिसका ध्यानकरतेहो ? शीतोष्ण कोमल और कठिनादि स्पर्शवान पदार्थोंकाही ध्यान तुम

क्तेहो--स्पर्श रहित पूर्वोक्त पदका योग नाम संबंध तुम कदाचित् भी नहीं करसक्ते, इससे तुम्हारा कहनामात्रहीहै कि हम स्पर्शवर्जित पदविषे योगकरते हैं वस्तुतः स्पर्शकाही तुम योग करते हो अन्य नहीं । हे प्रह्लाद ! पुनः मैंने चक्षु इंद्रिय योगेश्वरसे पूछा कि, हे देव ! तुम सद्वक्ताहो, यथार्थ कहो,तुम किसका ध्यान करते हो । उसने कहा-हरि आदि स्थूल मूर्तिका तथापृथिवी जल अग्नि तीनोंभूतोंका तथा तिनके कार्य आदिके षट्प्रकारके रूपका ध्यान, इन्हींको मैं जानभी सक्ताहूं, इनसे अधिक अंतरीय अरूप पदविषे मुझसे योग नहीं होसक्ता।मैंने कहाजब तुमषट्प्रकारके रूप रहित वस्तुविषे योग नहीं करसक्ते तो नाम रूप रहित अंतर पदविषे हम योग करतेहैं; यह तुम्हारा कहना निष्फलहै, यथार्थ तो यह है कि; तुम बहिरही षट् प्रकारके रूपका योग करसक्ते हो । हे प्रह्लाद ! पुनःमैंने रसना योगेश्वरसे पूछा कि, हे रसज्ञ विद्वान् पक्षपातसे रहित ! तुम षट्प्रकारके रसविषेही योग करसक्तेहो, षट् रसरहित आत्मपदविषे तुम योग नाम संबंध नहीं करसक्ते ? इससे षट् रसके सिद्धकर्ता आत्मपदविषे तुम्हारे ध्यानका यत्न अफलहै । फिर हे प्रह्लाद ! मैंने घ्राणयोगेश्वरसे पूछा कि,हे घ्राणयोगेश्वर ! सुगन्धि दुर्गंधिपदार्थसे पृथक् वस्तुको तुझको योग नामसंवन्ध कदाचित्भी नहीं होसक्ता, इसलिये तुम्हाराभी कहना वृथाहै--कि हम व्यापक गन्धरहित अखण्ड रूपविषे योग करते हैं । तात्पर्य यह कि, तुम श्रोत्रादिक पांचो योगेश्वर तो बहिर शब्दादिक पांचगुणों विषेही योग नाम ध्यान करसक्तेहो, शब्दादिक पांचगुणोंते वर्जित जो, अन्तर प्रत्यक् आत्मा विष्णु है, तिसविषे योगनाम संबंध तुम नहीं करसक्ते । सारांश यह कि, शब्दादिक गुणोंविषे, श्रोत्रादिक तुम पांचों योगेश्वरोंका; स्वतःही देश काल वस्तुके अनुसार, योग नाम

ध्यान संबंध होता रहताहै । इस हेतु शब्दादिक गुणोंविषेभी योग नाम ध्यान करना तुम्हारा निष्फलहै, तब शब्दादिक गुणों रहित अवाङ्मनसगोचर आत्मपदविषे योग करना कहनेमात्र मिथ्या तुम्हारा भ्रमहै और योग कथन अफलहै, दोनों प्रकारसे तुम्हारा यत्न निष्फल है, किसवास्ते अपनी (भ्रमसे) आरामदारीभी खोते हो।हे प्रह्लाद!पुनःमैंने,मन,बुद्धि,चित्त,अहंकार, चारों योगेश्वरोंसे पूछा कि, हे मन,बुद्धि,चित्त,अहंकार योगेश्वरो! जाति गुण क्रियादिसंबंधवान् पदार्थोंकाही तुम चारों योग नाम संकल्प, विकल्प, निश्चय, चिंतन,अहंपना,करसक्तेहो,जातिगुणक्रियादिसंबंध रहित आत्मवस्तुमें कैसे योग तुम करसक्तेहो ? किंतु नहीं करसक्तेहो । लाखों यत्नसेभी तुम योग नाम संवन्ध आत्मासे अणुमात्र भी नहीं करसक्ते,इस हेतु हम सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा विषे योग करतेहैं,सो यह तुम्हाराकहनाव्यर्थहै।तात्पर्य्ययहकि,तुम सर्वज्ञानी अज्ञानी योगीश्वर एक आत्माकरकेही प्रकाशमान हुयेहो, तुम्हारे करके जो आत्मा प्रकाशमान नहीं सोई तुम्हारा स्वरूपहै, योग किससे करते हो ? उन्हाने कहा तुम्हारे कहेसे हमने जाना है कि अकार, उकार, मकार, वाचक और स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर वाच्य, इस सर्ववाच्यवाचकसंसारके, हमहीं निराकार, स्वप्रकाश अक्रिय, एक अविनाशी, सर्वके सिद्धकरनेवालेहैं, हमारेमें आना जाना योग करना नहीं वनसक्ता ।

हे प्रह्लाद!वे योगेश्वर किंचित्मात्र उपदेशसेही स्वस्वरूपको जान गये इससे हे प्रह्लाद सुखपूर्वक अपने स्वरूपका विचारही विहंगम मार्गहै । प्रह्लादने कहा एकको ऊंचा और एकको नीचा कहना तुमको योग्यता नहीं । अवधूतने कहा--जव सर्व तूहीहै, ऊंचनीच कहांहै ऊंच नीच भी तूही है परंतु मैंतुझको ऐसा कहताहूं जिसमें ऊंच नीच, विहंगम चींटी,मार्ग दोनों नहीं । प्रह्लादने कहा

तुम्हारे उपदेशसे मैं कृतकृत्य हुआ हूँ। मुझ चैतन्य स्वरूपमें न आना न जानाहै, न लेना है, न देनाहै न कहना, न सुनना, न जीवनाहै, न मरनाहै, न ग्रहण है, न त्यागहै, न विहंगम, न चींटी मार्गहै, न बंधहै, न मोक्षहै, न कोई शत्रु है, न मित्र है, न सुख है न दुःखहै, न प्रह्लादहै, न अवधूत है, न देवता है न राक्षस हैं, न स्थूल सूक्ष्म कारण है, न राग है, न द्वेष है, न पर, न अपरहै, न जीव है, न ईश्वर है; केवल मन वाणीसे रहित, एक, अद्वितीय आत्माहै। उपरोक्त चिंतनसेभी गूँगा मूकसा हुआ हूँ और सर्व-रूपभी मैंही हूँ, मेरी मुझको नमस्कार है। आपही वचन करता हूँ, आपही सुनता हूँ क्या कहूँ, द्वैत हैही नहीं। आजही सत्संग सफल हुआ है, उपमा तुम्हारी कौनसी रसनासे करूं, तुम विषे मन वाणीका मार्ग नहीं, परंतु उपमा तुम्हारी यही है कि सर्व असर्व रूप तुमहीं हो, सर्व नाम रूप तुम्हारे विषही कल्पित हैं, परंतु कुछ हुआ नहीं, हे सन्तो! मैंने तुमको अपना अहंकार दिया और आप स्वयंप्रकाश हुआ हूँ। अवधूतने कहा--झूठ मत कह जब सर्व तूही है, तो देना लेना कहां है।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय! इसप्रकारकहकर दत्तात्रेयने कहा अब हमजातेहैं प्रह्लादने कहा तुम्हारे बिना मेरा जीवन न होगा विषपान करना कबूल करताहूँ, पर संग संतोंका त्यागना कबूल नहीं करता क्योंकि, अनेक कोटि जन्मोंकी भटकना सत्संगसे दूरहोतीहै पारसके संगसे लोहा सुवर्ण होताहै, पारस नहीं होता. परंतु संतके संगकर संतही होताहै, इस हेतु संत मेरे प्राणहैं प्राणभी कहां हैं? संत आपहीहैं। तुम इहांही रहो, जावो नहीं। सन्त दत्तात्रेयने कहा-मैं पूर्णहों, मुझ चैतन्यमें आनाजाना नहीं। पुनः दत्तात्रेय प्रह्लादको दृढ बोध वास्ते उपदेश करनेलगे हे प्रह्लाद! परमार्थ रूप शिवआपहै

और शिवकोबाहर देखा चाहताहै,कैसेपावे।प्रह्लादनेकहा,मैंआपको नहीं जानता कि, मैं कौन हूँ क्योंकि, आप अहंकार नहीं और सर्व आपही हुआ हूँ । अवधूतने कहा--रसनासे कहताहै और मनमें द्वैत रखताहै.प्रह्लादने कहा द्वैत अद्वैत मुझ चैतन्यमें नहीं. तुम्हारे मन में है,गुप्त प्रगट सर्व जब मैंही हूँ तो रसना वाणी मन कहां है । अवधूतनेकहा मेरा प्रयोजन यही है कि आपविना न देखे कि,न सुने, न गुने, न सूचन स्पर्श करे.क्योंकि तुझ विना और कोई नहीं । दृश्यमानको झूठ जानकर त्याग कर अर्थात् मिथ्या जान और आपकोही सत जान, तेरा कल्याण होगा । आप शरीरका त्याग कर, आपको सच्चिदानंदरूपजान । यही शिवकी पूजा है कि,आप सहित सर्व नाम रूपको शिव जान, वा इसप्रकार जान कि;समष्टि व्यष्टि नाम रूप प्रपंच मंदिर विषे,प्रत्यक् आत्मा स्वतःमैंही ज्योतिर्लिंग स्थित हूँ सर्व नाम प्रपंच मुझ सच्चिदानंद शिवके पुजारी हैं।जैसे—सुवर्णके तथा मधुरता द्रवता शीतलता रूप जलके, भूषण तरंग पुजारी हैं इत्यादि दृष्टांत अनेकहैं। इससे मैंही चैतन्य सर्व दृश्यका पूज्य हूँ, मैंही सूक्ष्मसे सूक्ष्महूँ और स्थूलसेभी स्थूलहूँ, यह नाम रूप प्रपंच मुझ सच्चिदानंद सूर्यकी किरणहैं । मुझ चैतन्यके हीं, नारायण, गोविंद, अच्युत, हरि, परमेश्वरादि नाम वेदने कल्पे हैं परंतु मैं नाम रूपसे वर्जितहूँ। मैंही चैतन्य सर्व नामरूप प्रपंचके कर्मोंके फलका प्रदाताहूँ, वास्तवसे सर्व मैंही अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्माहूँ और सर्वसे अतीत भी मैंही हूँ इस निश्चय रूप पुष्पों कर आत्मदेवकी पूजा कर।.जो कछु प्रारब्ध कर, शास्त्र अनुसार, यत्न रहित प्राप्त होवे तिसको कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान रहित निःसंशय भोग लगा और सम्यक् अपने स्वरूपको जान,यही आत्मदेवके आगे पुष्पहैं। अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज, इन चार प्रकारकी खानिमें जितनेक चौरासीलक्ष देहहैं, सोई मन्दिरहैं, तिन-

में मैं एकही सच्चिदानंद विष्णु शिवरूप आत्मा विराजमान हूँ। जैसे–सर्व उपाधिमें एकही आकाश विराजमानहै। हे प्रह्लाद! ऐसा जान कि; पंचज्ञानेंद्रिय, पंच कर्म इंद्रिय, पंचप्राण, चतुष्टय अंतः-कारण, मुझ सच्चिदानंद शिवके पुजारीहैं, पूर्वोक्त पुजारी शब्दादिक निज निज विषयरूपी पुष्पोंको ग्रहण कर मुझ चैतन्य देवकी निरंतर पूजा करते रहतेहैं, मुझ चैतन्यकी सत्ता स्फूर्त्तिरूप प्रसन्नता करही, इन पुजारियोंका उपजीवन 'अर्थात् शब्दादिकोंके ग्रहण करनेकी सामर्थ्य होतीहै, अन्यथा नहीं यहनिश्चयही आत्मदेवकी पूजाहै। मुझ सच्चिदानंद स्वरूपकीही चारोंवेद भाटोंकी न्याईंस्तुति करते हैं, मुझ चैतन्य देवका ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक सब ध्यान करतेहैं, और मैंही, ब्रह्मा विष्णु शिवादिकहूँ। मरना, जीना, सोना; खाना, पीना, लेना देना, हर्ष, शोक, मान अपमान, सुख, दुःखादिक सारांश यह कि, कायिक, वाचिक, मानासिककर्म, सर्व मुझ चैतन्य देवकी पूजाहै। सर्व नामरूप दृश्यका मैं चैतन्यही मालिकहूँ और दृश्यरूपभी मैंहीहूँ वा कार्य कारणरूप ब्रह्मांड जलधरी में मैं चैतन्यही शिवलिंग स्थितहूँ। सूर्य चन्द्रमा मुझ चैतन्यदेवके मंदिरमें दीपक जल रहेहैं। तारामंडल आकाशरूप थालमें, मुझ चैतन्यदेवके आगे, छोटे आरतीके दीपकहैं। अठारह भार वनस्पति, मुझ चैतन्यके कंठमें पुष्पोंकी मालाहैं। पृथिवी मुझ चैतन्य देवका सिंहासनहै, दशोंदिशा मुझे चैतन्यदेवकी पूजाहैं सुमेरु आदिक पर्वत मुझ चैतन्यके भूषणहैं काल मुझ चैतन्यके खेलनेका गेंदहै सातोंसमुद्रमुझ चैतन्यके आगे जलके पात्रहैं। यावत्त मात्र शब्दहैं सो मुझ चैतन्यदेवकी नौबत बाजरहीहै, वायु मुझ चैतन्य देवका पंखा खेंचरहीहै। माया मेरी शक्तिहै, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, आदि देवियां इसी शक्तिके अवतारहैं। विषय इंद्रिय सम्बन्धजन्य सुख दुःखका अनुभव मुझे चैतन्यदेवके

आगे भोगहै। जीव ईश मुझ चैतन्यदेवके मुख्य पुजारीहैं।जगत्की उत्पत्ति पालन संहार मुझ चैतन्य देवकी क्रीडाहैं। सत्त्व, रज, तम मुझ चैतन्य देवके पहरेदारहैं। जाग्रत, स्वप्न,सुषुप्ति मुझ चैतन्य देवके खेलनेके स्थानहैं।तात्पर्य यह कि- पूजक, पूज्य,पूजा त्रिपुटी रूप सामग्रीसे सर्व जगत् मुझ चैतन्य देवकी पूजा करताहै वास्तवसे त्रिपुटीरूप भी मैंहीहूं, अत्रिपुटीरूप भी मैंहीहूं। हे प्रह्लाद! जैसे स्वप्नमें, पूज्य, पूजक पूजा, सर्व त्रिपुटीरूप प्रपंच, एक स्वप्नद्रष्टा की ही पूजा करतेहै,क्योंकि स्वप्नमें अन्यदेवका अभाव है वास्तवमें स्वप्नद्रष्टाही, सर्व स्वप्न प्रपंच रूप होनेसे, पूज्य पूजक पूजाभाव भी तिससे भिन्न नहीं। तैसेही इस मायामात्र दृश्य जाग्रत् प्रपंचमें भी एक सच्चिदानंद स्वरूप द्रष्टा देव मैंही हूं, जहां पूजा होती है, तहाँ चैतन्य देवकीही पूजा होतीहै, अन्यकी नहीं। वास्तवसे जब सर्व सच्चिदानंद तूही है तब पूज्य पूजक भाव कहां है जैसे पंचभूतका कार्यरूप, कोई तृणादि एक वस्तु जाने कि सर्व भूत भौतिक दृश्य प्रपंच मैंही हूं। इसप्रकार यथार्थ चिन्तनमें, शास्त्र गुरु संस्कारसहित, बुद्धिमान कोईभी विवाद नहीं करता, अन्य करते हैं, क्योंकि सर्व पंचभूतरूपही है। तैसे--जिसने सम्यक् अपनेको अस्ति भाति प्रियरूप जानाहै तो वह यह चिन्तन करे कि, "सर्व अस्तिभाति प्रियरूपसर्वात्मा मैंही हूं" तो ठीकहीहै क्योंकि, अस्ति भाति प्रियसे पृथक् कोईभी दृश्यमान वस्तु है नहीं। इससे तू आपको सर्वात्मा रूप जान। ध्यान किसका करताहै। ध्याता ध्यान ध्येयरूपभी तूहीहै तथा तिसते रहितभी तू ही है तो पुनः ध्यान किसका करताहै।हे प्रह्लाद! विश्वके देखनेकी इच्छा मत कर,अपने स्वरूपको जान,जब तू अपने स्वरूपको जानेगा तब सर्व दर्शन तेराही होगा। जैसे-घटको सर्व घटोंके दर्शनवास्ते

बाहरनहीं जाना होता किन्तु, घट अपनेको मृत्तिका स्वरूप जाने तब सर्व घटोंका यत्न विनाही तिसको दर्शन होताहै वा स्वप्नद्रष्टाको सर्व स्वप्न पदार्थोंको देखने नहीं जाना किन्तु अपना स्वरूप सम्यक् जानेसेही सर्व स्वप्नपदार्थ जानेजातेहैंक्योंकि,स्वप्नद्रष्टामेंही कल्पितहै रज्जु सर्पवत्।हे प्रह्लाद।न तू है,न मैं हूँ,सर्व मैंही हूँ,आपा अहंकारको त्याग जो आप होवै। प्रह्लादने कहा-आपेका त्याग-करूँ तो आप क्योंकर होऊँ ? दत्तने कहा-आपा परिच्छिन्न अहंकार गया, तब शेष रहा सो अवाङ्मनसगोचरहै। तातै सर्व साधनों कर्त्तव्योंका फल यही है कि आप सहित जाने सर्व सच्चिदानंद स्वरूप हरि है। जिसको तू खोजता है, सो तूही है। मैं ऐसा अतीत नहीं हूँ जो तुम्हारे राज्य संपदाकी इच्छाराखूँ, मेरा प्रयोजन यही है कि, तू आप बिनाकुछ न देखे न सुने, क्योंकि, तुझेसच्चिदानंदस्वरूप बिना और कुछ हैही नहीं। दृश्य-मानको असार, झूठ जान, प्रत्यक्ष जो अदृश्यमानहै (ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्य्यंत) सर्वविषे एकरस शिव पूर्ण मान।

अथ शिवकुबेरसंवादाख्यान।

हे प्रह्लाद। इसीप्रसंगपर एक कथा सुन।एकसमय शिव कैलास में स्वामिकार्तिक, गणेश और अनेक गणोंसहित बैठेथे, शिवकी जटासे जो गंगा चलती थी, सो शिव शिव करती चली जाती थी तहां सर्व पक्षीभी शिवशिवही बोलतेथे।तिसी समयमें कुबेरने आ-कर महादेवसे विधिपूर्वक दंडवत करके प्रश्न किया। हे महादेव ! यहदृश्यमानमूर्ति,अमूर्ति,सर्व असत्,जड,दुःखरूप प्रपंचही,ज्ञानें द्रियों करके देखने,सुनने, सूँघने, रस लेनेमें आताहै तथा कर्मेंद्रियों करके भी शब्द उच्चारण, ग्रहण, त्याग, गमनागमन, मल मूत्र त्यागरूप, प्रपंचही ग्रहण होताहै, प्रत्यक्षादि प्रमाणों करकेभी नाम रूपदृश्य प्रपंचकीही सिद्धि होतीहै,मन बुद्धि चित्त अहंकार

करके भी माया,और मायाके कार्यभूत भौतिक पदार्थोंकाही मनन, चिंतन,निश्चय,अहंपना होताहै । इनसर्वसे रहित वस्तुको मैं कैसे जानूँ ? क्योंकर प्राप्त हो सोऊ कहिये। शिवने कहा-हे कुबेर ! यह प्रमाता, प्रमाण,प्रमेयरूप,त्रिपुटी,तुझ निर्विकार,निर्विकल्प; सत्,चित्,आनंदस्वरूप करकेहीसिद्ध होते हैं;कोई त्रिपुटी करके तू चैतन्य सिद्ध नहीं होता । त्रिपुटीसे भी त्रिपुटी सिद्ध नहीं होती क्योंकि,तूही चैतन्य स्वयंप्रकाश रूपहै ।यद्यपिचक्षु सूर्य आदिक प्रमाण प्रकाशक और घट पटादिक प्रकाशक,आपसमें प्रतीत होते हैं तथापि सर्व नाम रूप त्रिपुटीको,कल्पित दृश्य होनेसेत्रिपुटी-में प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं बनसक्ता । जैसे—स्वप्नेकी कल्पित त्रिपुटी,स्वयंप्रकाश; स्वप्नद्रष्टा करकेही सिद्ध है; मिथ्या स्वप्न पदार्थों कर स्वप्नद्रष्टा सिद्ध नहीं होतातथा आपसमेंभी स्वप्न पदार्थ प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं बनसक्ते । तैसे-तुझ चैतन्य विना,जा-ग्रतके पदार्थ आपसमें कल्पित कल्पितको सिद्ध नहींकरसक्ते ।जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प दंडको, दंड सर्पको और सर्प दंडमालाको, माला सर्प दंडादिकोंको सिद्ध नहीं कर सक्ते। हे कुबेर। पूर्वोक्त सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंको; तू चैतन्य जानताहै, तुझ चैतन्यको कौन जाने, तू स्वयंप्रकाश,सर्व नामरूप दृश्यका, अस्ति भाति प्रियरूप प्रकाशक आत्माहै;तुझ सर्वात्माको अपनीप्राप्तिकी इच्छा लज्जाका काम है । जैसे-फेन तरंगको बुदबुदादिक सर्व नाम रूपकी मधुरता,द्रवता,शीतलता रूप जल ही आत्मा है,तिन तरंगादिक मध्ये किसी तरंगको,अपने स्वरूप जलकी प्राप्तिकी चिंता करनी मूर्खता है । कुबेरने कहा बंध मुक्त क्याहै ? शिवने कहा दोनों अहं-कार तेराहै,नहीं तो बंध मुक्त दोनों,रूप नहीं रखते कि तुमको बता-दूं । कुबेरने कहा योग उपदेश करो ? शिवने कहा योग यहीहै कि, जान आपसहित सर्व शिवहै । हे कुबेर ! बुद्धिमानको एक

शैनही बहुतहै, निर्बुद्धिको परमार्थ पाना कठिनहै । कुबेरने कहा धारणा कहो ? शिवने कहा-धारणा नाम निश्चयका है, निश्चय धर्म बुद्धिकाहै, बुद्धिका मुझ चैतन्य आत्मामें अत्यंताभावहै, कहे कौन? परन्तु "आपको तू अवाङ्मनसगोचरसम्यक् जानं" यही धारणा है। कुबेरने कहा हे शिव ! हर्ष शोकसे कैसे छूटूँ ? शिवने कहा हर्ष शोकके द्रष्टा, तुझ साक्षीको हर्ष शोक कहां है ? हर्ष शोक मनके धर्महैं, आपको मनरूप मतमान । कुबेरने कहा मनका रोकना कहो ? शिवने कहा तुझ चैतन्यरूप आकाशका वायुरूप मन क्या बिगाड करताहै किन्तु कछुनहीं करता। मन पंचभूतोंका साक्षी सात्त्विक अंशका कार्यहै, तू पंचभूतोंसे रहित है । मन कर कुछ बिगाड होताहै सो, पंचभूतोंका बिगाड हो वा न हो, तुझको मनके रोकनेका क्या मतलब है । दूसरेकी शुभ अशुभ क्रिया देखके अपनेमें आरोप कर संतापितहोना यही अज्ञानहै। वा जब सर्व सच्चिदानंद स्वरूप शिवहै तब मन और कुबेर कहाँ- है ? शिवहीहै । कुबेरने कहा-जब मैं नहीं तब तुम कहां हो ? अहं पूर्वकही त्वं होताहै, जब अहं नहीं, तब त्वं कहाँ है ? स्वर्ग, नरक, बंध, मोक्ष, हर्षशोकादि कहांहैं ? कहीं नहीं, जो है तो सच्चिदा- नंदरूप सर्व शिवहै । महादेवने कहा, हे कुबेर ! तू कौनहै ? कुबेरने कहा मैं सच्चिदानंदरूप शिव हूँ क्योंकि अग्निकी संगतिसे लकड़ी- का रूप नहीं रहता किंतु, अग्निही होतीहै । तैसे तू अग्नि और मैं लकडी जब मैंने आपा तुझको दिया, तू हुआ। शिवने कहा जब तक लकडीहै तबतक अग्निहै-तैसेही जब तू है, तब मैं हूँ, जब तू नहीं तब मैं कहां हूँ । हे कुबेर ! जहां अहंकार (मैं) नहीं तहाँ तू कौन है सो कह । कुबेर तूष्णीं हुआ क्योंकि, आगे वचनकी ठौर न थी पराशरनेकहा हे मैत्रेय ! जब इसप्रकार दत्तने प्रह्लादकोशिवकुबे- रकी कथाके मिससे उपदेश किया, तब प्रह्लादने कहा हे दत्त। मैंने

जानाथा कि, तेरीसंगतिसे कछुपाया है,सो अवयह भ्रममेरामिटगयाहै क्योंकि, आदि अंत मध्य सर्व गुप्त प्रगट मैंहीहूँ मेरी मुझको वन्दनाहै। दत्तने कहा अब मैं जाताहूँ।प्रह्लादने कहा जहां जावे वहां सर्व मैंहीहूँ। दत्तनेकहा अब मैं नहीं जाता क्योंकि, तुझको परमहंसदेखताहूँ। प्रह्लादनेकहा जो काग नहीं तो हंस कहांहै ? हे मैत्रेय! प्रह्लाद यह वचन कहकर स्वरूपमें लीनहुआ और दत्त जैसे आयाथा तैसेही चला गया।

इति श्रीपक्षपातरहित-अनुभवप्रकाशस्य तृतीयः सर्गः॥ ३॥

अथ चतुर्थ सर्ग।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तूभी ऐसे मत जान कि, संग संतोंका मुझेको हमेशह बना रहेगा,जो काल संतोके संगमें व्यतीत होताहै सोई दुर्लभ जान।मैत्रेयने कहा तुम्हारे उपदेशसे मोमके समानगल गयाहूँ, जानता था कि, मैं ब्राह्मणहूँ, अब कितनाही ढूँढताहूँ पर ब्राह्मणत्व नहीं पाता और यहभी नहीं जानता कि, मैं कौनहूँ।इससे इस शरीरको जलायकर नाश करताहूँ, सर्व कर्तव्योंसे छूटूँगा और स्वस्वरूपको प्राप्त होऊँगा।पराशरने कहा हे मैत्रेय!शरीरके होतेही तू चैतन्य शरीरके कर्तव्यों अकर्तव्योंसे रहित स्वतःही है। जैसे आकाश घटके होतेही घटकी क्रियासे स्वतःही रहितहै-तातें शरीरके होतेही आत्मानात्मके विचाररूपी अग्निकर शरीर सहित शरीरके कर्त्तव्योंको जला। जो कर्तव्योंसे छूटे अन्यथा नहीं।

अथ ज्ञानकी साधनव्याख्या।

पराशरने कहा हे मैत्रेय!सर्व जीवोंके अंतःकरणमें मल विक्षेप आवरण तीन दोष रहतेहैं। मल नाम पापकाहै, विक्षेप नाम चित्तकी चंचलताकाहै-आवरण नाम अपने स्वरूपको न जाननेकाहै

इन तीन दोषोंके दूर करने वास्ते तीनही उपाय, हिंदू, मुसलमान अंग्रेज,पारसी आदिकोंके सर्व शास्त्रोंविषे लिखे हैं।मल दोषके दूर करने वास्ते सर्व शास्त्रोंमें, सत् संभाषण आदि वाक्यादि इंद्रियोंका कर्त्तव्य रूप कर्मकांड लिखाहै।मनकी चंचलताके दूर करने वास्ते अनेक प्रकारकी, सगुण वा निर्गुण सच्चिदानंदरूप परमेश्वरकी प्राप्ति वास्ते, सर्वशास्त्रोंमें उपासना लिखीहै वा चित्तका किसी सूक्ष्म वा स्थूल वा त्रिपुटीमें वा हृदय विषे, ज्योति इत्यादि वस्तुमें,बाहर वा अंतर,जोडना रूपी ध्यान लिखा अज्ञान आवरण की निवृत्ति वास्ते सर्व शास्त्रोंविषे ज्ञानकांडभी लिखाहै।जिस अंतःकरणमें पूर्व जन्मके प्रयत्नसे, वा इस जन्मके प्रयत्नसे पूर्वोक्त दोष नहीं तिसपर शास्त्रका उपदेशभी नहीं जिसमें मल विक्षेप दो दोष नहीं केवल अपने स्वरूपका न जाननारूपी आवरणही दोषहै, तिसको केवल ज्ञानकांडकाही अधिकारहै। यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत जप; तप, होम, तडाग आदि बनाने तथा संध्या तर्पणादिकयावत् मात्र शारीरिक शुभ क्रियाहैं सो सर्व कर्मकांडकोटिमें हैं। ध्यान योगादि यावत्मात्र मानसी क्रियाहैं सो उपासना कांड कोटिमेंहैं। केवल आत्माको ब्रह्मरूप कथन करनेवाले शास्त्र ज्ञानकांडहैं।

हे मैत्रेय।अनेक प्रकारके शास्त्रोंमें वाक्य लिखेहैं, किसी जगहमें ज्ञानकांड पहिले लिखाहै कर्म उपासना पीछे लिखीहैकिसी जगहमें उपासना पहिले लिखीहै कर्म ज्ञान पीछे लिखेहैं किसी जगहमें कर्म पहिले लिखेहैं उपासना ज्ञान पीछे लिखेहैं तात्पर्य यह कि किसी जगहमें पहले कर्म पुनः उपासना पुनः ज्ञान क्रमसे लिखेहैं, किसी जगहमें अक्रमभीलिखेहैं। पुनःकर्मकांडशास्त्रमें अशुभकर्मों की निवृत्तिकरवानेवास्ते भयानकवाक्यभी लिखेहैं और शुभ कर्म की प्रवृत्तिनिमित्त रोचक वाक्यभी लिखेहैं तथा यथार्थभी लिखेहैं

तैसे--उपासना कांड शास्त्रमेंभी, अपनी रुचि अनुसार अशास्त्रीय अनात्म उपसनाके निषेध अर्थ भयानक वाक्य भी लिखेहैं, शास्त्रोक्त उपासनाकी प्रवृत्तिके अर्थ, श्लाघनीयरोचक वाक्यभी लिखे हैं और यथार्थभी लिखे हैं ज्ञानकांड शास्त्रमें भी ज्ञानके माहात्म्य से शास्त्र निषिद्ध प्रवृत्तिके निषेधक, भयानकवाक्य भी लिखेहैंऔर ज्ञानविषे प्रवृत्ति निमित्त, जीवताही मुक्त होता है इत्यादि रोचक वाक्यभी लिखे हैं तथा निर्विकार निर्विकल्पस्वत: हीयहआत्मा ब्रह्मस्वरूप है इत्यादि, यथार्थ वाक्य भी लिखे हैं। सारांशयह कि सर्व शास्त्रोंका तात्पर्य्य, परंपरा वा साक्षात् करके, असत् जड दुःखरूप प्रपंच भ्रमकी निवृत्ति द्वारा, स्वभावसेही, निर्विकार निर्विकल्प कल्पित बंध मोक्षरहित, मैं सच्चिदानंद स्वरूप हूं; इस निश्चयके बोधन करनेमें है ।

हे मैत्रेय ! ऐसा न होय, पूर्वोक्त शास्त्रोके वाक्योंकी व्यवस्था न जानके, शास्त्र श्रवण करके गुरुदत्त निज :निश्चयका त्याग करे । वही धीर बुद्धिमान, बलीहै जो शरीरपात होय तो होय परन्तुनिश्चयका त्याग न करे क्योंकि, अनित्य शरीरको तो गिरनाहीहै। हे मैत्रेय ! आप सहित सर्वको सच्चिदानद जानना, यही मुक्ति है और आपको सच्चिदानंद न जानना, अपनेते मन आदि नामरूप जगत् भिन्न जानकर तिनमें अहंकार करना यही वन्धहै, निर्भय होना तिसको कठिन है।हे मैत्रेय ! यह जगत, स्वप्नके समान मिथ्या है और तू सत् स्वरूपहै। जिसने आपको शरीर मानाहै तिसको नरकते निकसना कठिनहै क्योंकि, रुधिर; मांस, अस्थि, मज्जा, मलमूत्र रूप इस शरीरके अभिमानकोही नरक कहते हैं। सर्व मलिन वस्तुका यह शरीर मंदिर नरक है, जिस कायासे हेत है वही नरक है। हे मैत्रेय ! तू अपनी चाहनासे मलिन देह अभिमान रूपी, महान्

अंधकूपमें पडा है, किसकी शक्तिहै जो तेरी रक्षा करे। इसलिये इस असार शरीरकी प्रीतिका त्याग कर, शरीर अभिमानही आवागमनका बीज है। अपने स्वरूपको सांगोपांग जान जो बन्ध मोक्षके भ्रमसे छूटे; नहीं तो दुःख होगा। हे मैत्रेय! इस मलिनशरीरसेवैराग्य करना तुझको योग्य है मैत्रेयने कहा वैराग्य राग दोनों कहो? पराशरने कहा--वैराग्य यहीहै जो अपने सच्चित् आनंद स्वरूपसे पृथक् जगत्का अत्यंताभाव जानना और रागयहीहै कि, आपसहित सर्व नामरूपको, सत् चित् आनंद स्वरूप जानना वा असत् जड दुःख मय नामरूप, जगत्की भावना त्यागके, निज आत्मामें भावना करना यही रागहै। मैत्रेयने कहा हेपराशरजी! पूर्वोक्त वैराग्य और रागादिकोंका जानना न जानना मनका धर्म है, मुझ निर्विकल्प निर्विकार चैतन्यका नहीं क्योंकि, जब गाढनिद्रानाम सुषुप्ति अवस्था होतीहै वा समाधि मूर्च्छा होतीहै, तब मनअपने अज्ञान उपादान कारणमें लीन होता है; तिसकालमें न राग विरागकी कल्पनाहै न ज्ञानी, न अज्ञानी, न बंध, न मोक्ष, न हर्ष शोक, न ग्रहण त्याग, न सुख दुःख, न पुण्य पाप, न जीव ईश्वर नजड चैतन्य, न सत् असत्, न सूक्ष्मस्थूल, न मातापितादिक किसीकी कल्पनानहीं होती, न अपने शरीरकी, न वर्णाश्रमकी, न दैवी आसुरी गुणोंकी, न धर्म अधर्मकी, नऊँच नीचकी, न निर्विकल्पसविकल्पकी, न स्त्री पुरुषकी, न शत्रुमित्रकी, नजातिपांतिकी, नलेने देने की, न जप तपकी, न संसार असंसारकी, न साक्षी असाक्षी की, न द्रष्टा दृश्यकी, न फुरने अफुरनेकी, न मायां रहित अरहितकी, नआत्मा अनात्माकी, न शुचि अशुचिकी, न हिन्दूमुसल्मानकी, नभ्रमअभ्रमकी। तात्पर्य्य यह कि, सर्व नामरूप त्रिपुटीसंसारकीकल्पनाही नहीं होती, मैं चैतन्य तो तिसकालमेंभी हूँजो मेरापूर्वोक्तसंसारधर्म होता तो सुषुप्तिकालमें भी मेरे साथ होता, इससे अन्वय व्यतिरेक

करके जहां मन तहाँही पूर्वोक्त संसार धर्म है; जहां नित्त नहीं तहां पूर्वोक्त संसार धर्मभी नहीं। हे गुरो! यह नहीं कि, जो मैं चैतन्य सुपुप्ति,अवस्थामें तो निर्विकल्प निर्विकार बंध मोक्षादि अनात्म धर्म रहित हूँ और अब जाग्रत् स्वप्न अवस्थामें सविकल्प सविकार बंध मोक्षादि सहित हुआ हूँ,ऐसा नहीं किन्तुजोमैं चेतन्य सुपुप्तिअवस्थामें निर्विकल्प,निर्विकार, बंध मोक्षादि रहितथा अब वर्तमान जाग्रत् अवस्थामें वा स्वप्नमें भी सोई निर्विकार निर्विकल्प बंध मोक्षादि रहित चैतन्य मात्रहूँ; इससे मायारूप मनके धर्महैं; माया रूप, चित्तरहित मेरे धर्म नहीं।जैसे राजाके निवासके चारस्थान होते हैं--एक बाहर कचहरीका स्थान होता है, एक मध्यमें अपने माता, पिता, भ्रातादिक नजदीकी संबंधियों सहित खान पानादिक सहित बैठनेका स्थान होताहै और तीसरा एकही अपनीस्त्रीके साथ हास्य विलास करनेका अंतःपुर एकांतस्थानहोताहै।तथा पूर्वोक्त स्थानोंसे रहित सात्त्विक एक भजनका स्थान होताहै, तिसमें अन्य कोई पुरुप भी नहीं होता, एक राजाही होताहै। तैसेही—कचहरी स्थानापन्नजाग्रतहैक्योंकि, तहांइन्द्रियमनआदि स्वस्वकार्य्यमें सम्यक् हाजिर हैं, शब्दादिप्रजासहित तिन सबके मध्यमें, सर्व ऊपर आज्ञा कर्ता आत्मा राजावत् है। मध्यस्थान स्वप्न है और अंतःपुर स्थानापन्न सुषुप्ति है क्योंकि, तहां अविद्यारूप स्त्रीही, अपने कार्य्य रहित, निजपति आत्माके पास होतीहै।तैसेही भजन स्थानापन्न तुरीय अवस्था है क्योंकि, तुरीयमें मायातथा मायाके कार्य्य,प्रपंचसे रहित,अपने स्वरूपका, विद्वान्को निश्चय होता है। तीसरे एकांत स्थानमें वा भजनके स्थानमें जो राजाहै और जो तिस राजाका निश्चय है कि, मैं क्षत्रिय राजा हूँ,यह स्त्रीभी नहीं किन्तु मैं राजा हूँ।जब वही राजा कदाचित् मध्यस्थानमेंवा

बाहर कचहरीके स्थानमें आताहै, तबही वही राजा होताहै वही तिसका निश्चय होताहै, अन्यथा नहीं होता; यह नहीं कि, सात्त्विक भजन स्थानमें और होगयाहै, मध्यमें और होगया है; अंतःपुरमें और था, कचहरीमें और होगयाहै, किन्तु एक रस राजाही है, स्थानका भेद है, पुरुष राजाका भेद नहीं। तैसेही--यह नहीं कि तुरीया अवस्थामें तथा सुषुप्ति अवस्थामें आत्मा निर्विकार निर्विकल्प सर्व संसार धर्मोंसे रहितहै और स्वप्न जाग्रतमें आत्मारूप राजा विकारीहै तथा सविकल्पहै। राजाके समान आत्मा सर्व अवस्थामें स्वभावसेही निर्विकार, निर्विकल्प, एकरस, एकहीहै विकारी सविकल्प नहीं होता, मन आदिकोंके समान--क्योंकि मनआदिक स्वभावसेही, विकारी हैं, इसलिये यत्नविनामुमुक्षुओंको, अपने स्वरूपको सर्व अवस्थामें निर्विकल्पनिर्विकारजानना मैं चैतन्य निर्विकल्प निर्विकारसंसारधर्मोंसेरहितसभी अवस्थामें एकरसहूँ; वैराग्यादिक मनकी कल्पना है, मेरी नहीं। हेमैत्रेय! सर्व नाम रूप संसार तुझे सच्चिदानंद स्वरूपकर पूर्ण है, तू चैतन्यदेव सदा संसारसे मुक्तहै, सर्वकी चेष्टा तुझे चैतन्यकरही है, परन्तु तू सदा निर्लेप है। आपसहित सर्वसच्चिदानंद स्वरूपहूँ, इस दृढबुद्धि के निश्चयका नामही भक्ति है तथा ज्ञान है, तिससे पृथक् निश्चय का नाम अभक्ति अज्ञानहै।

अथ राजा भरतका आख्यान।

हे मैत्रेय! इसीपर एक कथा सुन--पूर्वजन्ममें एक वन विषे भरत राजा, चित्तकी एकाग्रतारूप तप करता था और आत्मअनुसंधानमें मग्न था परन्तु अपने स्वरूपका अपरोक्ष बोध तिसको नहीं हुआथा, इसीते तीनजन्म पाये। एकदिन तिसी वनविषे सिंह आया और सिंहके भयते मृग भागेभागीहुई एकगर्भिणी हरिणीके उदरसे

(भयके कारण)बच्चा भरतके आश्रमके निकट गिरपडा कैसा बच्चा है जो माता पितासे रहितहै और कोई तिसका रक्षक भी नहीं,अतीव सुन्दरहै।अति कृपालु जो राजा भरतहै, तिसने बच्चेकी यह अवस्था देखकर, करुणा करके, अपनी गोदमें उठालिया। तिस बच्चेके साथ ऐसा स्नेह किया कि;अपना जो ध्यानथा वहभी भूलगया,तिसहरिणीके बच्चेकाही लालन पालन करने लगा।इसी हालतमें, कुछदिन बीते, बच्चा बडा हुआ। एक दिन भरत फल फूलके वास्ते वनको गया,पीछे बच्चा दूसरे मृगोंके साथ पशुस्वभावसे चला गया।भरतने आकरदेखा तो बच्चा नहीं मिला,तिसके निमित्त विलाप करनेलगा तिसके विना बहुत व्याकुलहुआ।तात्पर्य यह कि,तिसकी कोमलताको याद करते हुये,तिसका गुण गाता हुआ, तिसके पालनपोषणकी चिंता करताहुआ,जो राजा तिसके अन्तःकरणकी वृत्ति मृगके आकारही हो गई।हे मैत्रेय! प्रीतिका यही लक्षण है कि,तद्रूप होना, राजाभरतने इसी वासना विषे,शरीरका त्यागकिया;पुनःहरिणका जन्म पाया। परन्तु बीज आत्मज्ञानका उसके मनसे नहीं गया था इसलिये, ज्ञानपूर्वकही दूसरा जन्म पाया। पुनः ज्ञानपूर्वक तीसरा जन्म ब्राह्मणके गृहमें लिया। माता पितानेभी जन्म नक्षत्र अनुसार भरतही नाम रक्खा। हे मैत्रेय! पूर्व अभ्यासके बलसे तथा ज्ञानके प्रतिबंधकके अभावसे, अपने सच्चिदानंद स्वरूपको संशय विपर्ययसे रहित, गुरु उपदेश विनाही, जाननेलगा कि, मैं निर्विकल्प निर्विकार स्वतःही बन्ध मोक्षादि संसारधर्म तथा संसारसे रहित सच्चिदानंदस्वरूप हूँ।

अथ ज्ञानप्रतिबंधकका वर्णन।

मैत्रेयने कहा हे गुरो!ज्ञानका प्रतिबन्धक क्या कहिये? पराशरने कहा हे मैत्रेय!ज्ञानके प्रतिबंधक तीनप्रकारके भूत भविष्य वर्तमान

होतेहैं । वर्तमान कालमें–जो सुख दुःख रूप भोग भोगे अर्थात् अनुभव कियाहै तथा तिन भोगोंके साधनोंका जो अनुभव कियाहै श्रवण मनन निदिध्यासन कालमें तिन्हीं स्त्री आदिक पदार्थोंका स्मरण होना, अर्थकी तर्फ चित्त न लगना इसका नाम भूत प्रतिबंधहै । तिस भूत प्रतिबन्धसे ज्ञान नहीं होता·क्योंकि मनएकहै । जब मन भूत अनुभव करे पदार्थोंका स्मरण करेगा तब गुरूपदिष्ट महावाक्योंका अर्थ निर्विकार निर्विकल्प निज स्वरूप आत्माका कैसे अनुभव होगा किन्तु नहीं होगा । मैत्रेयने कहा भूत प्रतिबंधके दूर करनेका उपाय कहो!पराशरने कहा-हेमैत्रेय!विचार द्वारा भूत प्रतिबन्धक पदार्थोंके साथ अपना अभेद चिंतन करना कि, सो पदार्थ मैंही हूँ वा पूर्व अनुभूत पदार्थोंमें सम्यक् दोप दृष्टि करनी अब भावी प्रतिबन्ध सुन ।

कर्मके तीन प्रकार ।

हे मैत्रेय!देह अभिमान संयुक्त करे कर्मोंके फलकी महान विचित्रताहै । सो कर्म तीन तरहके हैं-(१) अनेक पूर्व मनुष्यशरीरमें अहंकार सहित किये जो शुभाशुभ कर्म सो, संस्काररूपसे सूक्ष्म शरीरमें स्थित रहते हैं तथा जिन कर्मोंको अनेक ऊंच नीच जन्मोंमें सुख दुःखरूप फल आगे देनाहै तिन कर्मोंका नाम संचित कर्महै सो कैसे कर्म हैं, उनमेंसे अनेक कर्मोंका फल सुखदुःखभोगसक्ता हैऔर एक कर्मका फल एक शरीरपाकर भी सुखदुःख अनेक शरीर पायकरभी भोगसक्ता है।कर्मोंकी विचित्र शक्तिहै । २ तिन संचित कर्मोंके मध्यमें जो इस वर्तमान शरीरके एक वा अनेक आरंभक कर्म हैं तिन कर्मोंका नाम प्रारब्ध कर्म है । ३ वर्तमान शरीरमें ज्ञानी वा अज्ञानीसे जो कर्म होते हैं सो क्रियमाण कर्म कहाते हैं ज्ञानके देनेवाले कर्मभी प्रारब्ध कोटिमें ही हैं जिसके वर्तमान·

शरीरके उत्तर,अनेक शरीर पानेके व एक शरीर पानेके प्रारब्ध कर्महैं। वर्त्तमान शरीरमें ज्ञानके साधन,हजार श्रवण मनन निदिध्यासन करो वा सत्संगकरो,तिसकोज्ञान नहीं होताक्योंकि जिसको वर्त्तमान शरीरमें,अपने स्वरूपका सम्यक् अपरोक्षज्ञान हुआहै,उसको आगे जन्म नहींपाना,यह ज्ञानका नियम ठहरा और प्रारब्ध कर्मको तो वर्त्तमान शरीरसे उत्तर अनेक व एक अवश्यमेव ऊंच नीच जन्मदेनाहै। तिन कर्मोंको वर्त्तमान शरीरमें ज्ञान नहीं होने देना,तिनकाभी यह नियम ठहरा।तिन प्रारब्ध कर्मोंमें भी,ज्ञानपूर्वक प्रारब्ध क्षय हुये अंत जन्ममें, गुरु शास्त्र सामग्री संपादन करके व बिना सामग्री इस जीवको ज्ञान होना,अवांतर जन्मोंमें न होना,यहभी तिन प्रारब्धकर्मोंकाही नियमहै। इससे वर्त्तमान भरत शरीर,गुरु शास्त्र श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञानके साधन हुयेभी,प्रारब्धरूपी प्रतिबंधके वशसे तीसरे जन्ममें प्रारब्धरूपी प्रतिबंधके क्षयसे, गुरु शास्त्र सामग्री बिनाही भरतको ज्ञान हुआ था इससे हे मैत्रेय ! प्रबल भावी प्रतिबंधके दूर करनेको कोई उपाय नहीं,भोगनेसेही नष्ट होताहै। वर्तमान शरीरमें ज्ञानके प्रतिबंधक दोष चारप्रकारके होतेहैं-कुतर्क १ दुराग्रह २ विषयासक्ति ३ मंदबुद्धिता ४। ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोत्रिय गुरुमें श्रद्धा सम्यक् कर तिनके वाक्य पुनःपुनःसर्व श्रवण करनेसे,पुनःमनन पुनःनिदिध्यासन करनेसे वर्तमान जन्ममेंही अपने स्वरूपका सम्यक अपरोक्ष ज्ञान होताहै।

हे मैत्रेय! सर्व प्रतिबंधकोंसे रहित,विद्वान भरतने मनमें विचारा कि,वाणीद्वाराही रागद्वेष होताहै,मौन होनेसे किसीसे राग द्वेष नहीं होता तथा संबंधीभी निकम्मा जानकर गृहस्थी जोडतेनहीं। मुझको गृहस्थाश्रम ग्रहण करनेकी इच्छाभी नहीं,बन्धन रहित

होकर देशाटन करनेकी इच्छाहै और प्रारब्धकेअधीनभवितव्यभी इस शरीरकी ऐसेही होनीहै,यह ईश्वरकी नीतिहै,इससे जडवत् मौन करनाही ठीकहै,गृहस्थीका बंधन निर्यत्नही टूटेगा । कोईमें जन्म मरणके तथा राग द्वेपके भयसे,मौन ग्रहण नहीं करता क्योंकि सम्यक् आत्मा अपरोक्षवान हजार तरहके राग द्वेप करनेसे भी जन्मको नहीं पाता,एक रागकी क्या गिनतीहै। परंतु विद्वान् सर्वात्मा होनेसे किससे राग द्वेप करे। पूर्व में अज्ञानी था इसीसे तीन जन्म पाये,अव मैंने जानने योग्य पदको जानाहै, रागद्वेपादिक सर्व इस मनके धर्म हैं,मुझ चैतन्यके नहीं ।

राजा भरत अंतिमजन्ममें जडभरत हुआ।

हे मैत्रेय ! इसप्रकार वह ब्राह्मण विचार करके, जान बूझके जडवत् मूक होगया । उसदिनसे लेकर लोक तथा गृहके संबन्धी उनको जडभरत कहने लगे। उपनयन भी गृहस्थका न ग्रहण कराया तथा विशेप प्रीतिको भी(निकम्मा जानकर)त्याग दिया जड भरतको यह बात अनुकूल होगयी। स्वतंत्र वन विपे,नगरों विपे, पर्वतों विपे, कुंजों, नदियोंके तटों विपे विचरने लगा । जो कुछ प्रारब्धके अनुसार प्राप्त होवे तिसको भोगे,परंतु राग द्वेपको न प्राप्त होता क्योंकि, आप सहित सर्वको अपना सच्चिदानंद स्वरूप जानता था ।

हे मैत्रेय ! कोई राजा तीव्र कामनावाले और अज्ञानी पंडितों द्वारा वोधन कियाहुआ,देवीकी भेंट वास्ते कोई निकम्मा मनुष्य वनमें तलाश करताथा;तिसको जडभरत मिलगया । उसने अनुमान करके जाना कि,यह निकम्माहै, और देवीके सम्मुख ले जाकर खड्गसे भरतका शिर काटने लगा । जड़भरत हँसता था, किंचित्मात्र भी भयको न प्राप्त हुआ । अनन्तर मंदिरमें आका-

शवाणी हुई-हेमूर्ख राजा! यह ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् चाहे तो तुझ मुझे सहित सर्व जगत्को भस्म कर सक्ता है क्योंकि; ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूपहै, परन्तु यह समदर्शी स्वरूप है, इसीसेएक रसहै; तू ज्ञाननेत्रोंसे रहित अंध इसको क्या जाने इससे तू मूर्खहै। अपना अपराध क्षमा करावो, नहीं तो मैं तुझको दंड दूँगा। यह सुनकर हर्ष शोक रहित एकरस आकाशवत् तिनकी अवस्था, राजा देखकर, आश्चर्यवान् हुआ और जाना कि यह कोई महान् पुरुष है। अपना महान् अपराध जानकर शरणागत हुआ और पूछने लगा-हे भगवन्! तुम कौन हो? मेरा कसूर माफ करो तुमने कोई अलौकिक वस्तुको पाया है, जिस शरीर नाशअवस्थामें तुम निर्भय और प्रसन्न हो। हे कृपालु! समदर्शी महापुरुष, कालके भयसे रहित वस्तुका मुझ दीन नवीनकोभी उपदेशकरो। इसप्रकार राजाकी सरल वाणी सुन करुणाके समुद्र जडभरतजी कहने लगे। हे राजन्! अन्तर जो बुद्धि आदिकोंका परिणाम करनेवालाहै, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिको, भूत, भविष्य, वर्तमान कालको, सत, रज, तमको, ज्ञान, अज्ञानको, जो सिद्ध प्रकाश करलेवाला साक्षी आत्माहै; सोई कालके भयसे रहित सच्चिदानंद स्वरूप वस्तु है। हे राजन्! यह सर्व बुद्धिआदि दृश्य पदार्थ जाग्रत् स्वप्नमें होतेहैं, सुषुप्तिमें पुनःमिटजातेहैं, तिस बुद्धि आदिकोंके भावाभावको अनुभव करनेवाला द्रष्टा वस्तु एक रसहै, इसीसे इस द्रष्टाको सत् कहते हैं। तैसेही यह सर्व बुद्धिसे आदि लेकर माया पर्यंत, सर्व कार्य कारण रूप, संघात दृश्य जड रूप है, स्वपरका भी इस दृश्यको ज्ञान नहीं। जिस सत् वस्तु करके इस जड संघातकी चेष्टा होती है तथा सर्व बुद्धि आदिकोंके व्यवहारका ज्ञान होताहै, इसीसे नाम सत् वस्तुका चैतन्य रक्खा है।

मन वाणीका गोचर दुःख रूप दृश्यसे, पूर्वोक्त जो सत् चित् वस्तु भिन्न है तिसी सत् चित् वस्तुका नाम आनंद धरा है ।

सर्व नाम रूप दृश्यमें आकाशके समान व्यापक होनेसे, इन बुद्धि आदिकोंके सत्‌चित् आनंद द्रष्टाका नाम, विष्णु वेदने रखाहै

अमंगल अकल्याण स्वरूप दृश्यसे सत् चित् आनंद विष्णु साक्षी द्रष्टाको, अतीत होनेसे शिवनाम वेदने कल्पा है ।

सर्व नाम रूप दृश्यजातका सच्चिदानंद द्रष्टाही स्वामी प्रेरक है; इसवास्ते किसीका नाम वेदने गणेश रखदिया है ।

हे राजन्! विष्णुसहस्रनाम, शिवसहस्रनामइत्यादि नामोंकाअर्थ सत् चित् आनंदद्रष्टावस्तु विषेही घटसक्ता है, तिससे पृथक असत् जड, दुःख परिच्छिन्न, अमंगल रूप, दृश्य वस्तु विषे नहीं घटसक्ता और सच्चिदानंद व्यापक वस्तुसेही मन वाणीके गोचर, दृश्यवेद सहित, जगत्‌कीउत्पत्ति, पालनातथासंहार होताहै, सत् चित्‌आनंद व्यापक वस्तुही मोक्षस्वरूपहै।इससे भिन्न मोक्ष अंगीकार करनेसे असत् जड दुःखरूप मोक्ष होवेगा । हर्षशोकादिकोंके द्रष्टा सत् चित् आनंद वस्तुको, दृश्यरूप पृथिवीकेकार्य, शस्त्रभी छेदन नहीं करसक्ते, जल नहीं गाल सक्ते, अग्नि नहीं दाह कर सक्ती, तथा वायु शोषण नहीं करसक्ता । सारांश यह कि, सर्व दृश्यके भीतरभी दृश्य स्पर्शसे रहित, अहं बन्ध मोक्षादि रहित, स्वरूपसेही, जोनिर्विकल्प निर्विकार है, सोई तेरा स्वरूपहै । हे राजन् ! जो वस्तु मन आदिकोंके फुरणेका सविकल्प निर्विकल्पका तथा मन आदिकोंके विकार, निर्विकारका ज्ञाता है । तात्पर्य्य यह कि, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयादिक सर्व त्रिपुटियोंका जो प्रकाशक, सत् चित् आनंद व्यापक वस्तु है सोई तुम्हारा स्वरूपहै वही मेरा स्वरूप है । ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंका भी वही स्वरूपहै । चींटीका, चंडालका, स्त्रीका भी वही स्वरूप है, अतएव सर्व जगत्‌का

वही स्वरूपहै । हे राजन् ! मायारूप पंचभूतोंका विकाररूप यह संघात स्वरूप नहीं,किंतु पूर्वोक्त सत् चित् आनंदस्वरूप आत्मा है। देह असत् संसारको,असार स्वप्नवत् जानकर इस देहमें अहं-बुद्धि त्याग; पुनःतिस त्यागकाभी त्यागकर,पीछे जो शेषरहेगा सो अवाङ्मनसगोचर पदहै सो तूही है। हे राजन्! मैंने आपको सच्चिदानंदरूप जानाहै इसीसे,असत् जड़ दुःखरूप संसारसे मुझ-को भय नहीं। कोई मैंने अमल नहीं खाया और न कोई मुझको जादू मंत्र आताहै,न कोई मैं कला विद्या सीखाहूँ,न कोई मुझमें सिद्धाईहै और न कोई मैं रसायन जानताहूँ कि,काल ईश्वर शास्त्रके भयसे रहित हूँ किंतु,मैं केवल सच्चिदानंद स्वभावसेही,कालादिक दृश्यमें, असंग निर्विकार निर्विकल्प आपको जानताहूँ इसीसे निर्भयहूँ । हे राजन् । ये अनात्मक दृश्यमान देह तो ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंकेभी, अनित्य कालके ग्रासहैं, इन देहोंकी क्या कहनी है ? तू आत्माही सत् चित् आनंद स्वरूप कालका काल चिरं-जीवीहै,तूही काल सहित सर्व दृश्यकी उत्पत्ति सिद्ध करनेवाली है तूही चैतन्य स्वयंप्रकाश स्वतःसिद्धहै, किससे भयकरताहै । देह विषे अहंकाररूप दीनताको त्याग और "मैं सच्चिदानंदस्व-रूप अवाङ्मनसगोचरही सर्वात्मा हूँ" इस उदार निश्चयको धारण कर । हे राजन् । जब तू इस पूर्वोक्त उदार निश्चयको नहीं धारण करेगा तो इससे पृथक् किसी असत् जड़ दुःखरूपवस्तु-मेंही निश्चय धारण करना पड़ेगा क्योंकि; मनको कोई न कोई निश्चय करनाही है बिना किसीके निश्चय किये ठहरे भी नहीं और बिना एक निश्चय किये आराम भी नहीं होता है।हे राजन्! असत् जड़ दुःख रूप वस्तुमें अहं निश्चय करनेवाला असत् जड दुःख रूपही होता है ।और मैं सच्चिदानद व्यापक स्वरूप हूँ, इस निश्चयवाला सत् चित् आनंद स्वरूपही होता है क्योंकि,

जैसा मनका दृढ निश्चय होता है,वैसेही तिसकी गति होती है। इससे,कायिकवाचिक मानसिक इस संघातमें;सर्व व्यवहार शुभाशुभ होते न होते आपको सर्व व्यवहारोंका अकर्ता, अभोक्ता, द्रष्टा, साक्षी, असंग, निर्विकार निर्विकल्प सच्चिदानंद स्वरूप जान। यह भी निश्चय बुद्धिकाहै इसकोभी अपना दृश्यरूपजानके अवाङ्मनसगोचर हो रह । साक्ष्यसाक्षी भावभी उपाधि है, फुरे कछु नहीं असत् जड दुःखरूप अपनी दृश्य विषे, अहंनिश्चय भूलकर भी मतकर, दुःख होगा, आगे जो तेरी इच्छा है सो कर।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इस प्रकार जडभरत कहकरतूष्णीं हुये अपनी इच्छा अनुसार चले गये और राजा अपने स्वरूपमें स्थित जीवन्मुक्त होकर अपने राज्य व्यवहारको, कर्ता भोक्ता बुद्धि रहित, करने लगा। पराशरने कहा हे मैत्रेय! तू भी इसी निश्चयको धारण कर और देह अभिमानको त्याग। मैत्रेयने कहा-मुझमें ग्रहण त्याग दोनोंही नहीं। मुझ अस्ति भाति प्रियसे आगेही नामरूप पृथक् नहीं है अब धारण किसका करूं और ग्रहण त्यागकिसका करूं । निश्चय करना बुद्धिका धर्म है, सो नामरूपका निश्चयबुद्धि कर सक्ती है; नामरूपसे रहितका नहीं। जो जो निश्चय करूंगा सो नाम रूपकाही करूंगा, अन्तमें नामरूपकी ही प्राप्ति मिलेगी, सो अबही यत्न विना नाम रूपकी प्राप्ति है, फल क्या हुआ,सोकहो मैं चैतन्य बुद्धिसे परे हूँ कौन निश्चय धारण करे। असली पूछोतो मैंही चैतन्य बुद्धि आदिक दृश्यसे,अवाङ्मनसगोचर होकर भी, बुद्धि आदिक ध्याता, ध्यान ध्येय सर्व दृश्यको धारण कर रहाहूँ पीसे हुयेका पुनःक्या पीसना है? पर कथा उस संतकी कहो।

जडभरत और राजा रहूगणका वृत्तान्त ।

हे मैत्रेय ! कोई एक राजा था सो,सुखपालकीसवारीकरनेका व्यसनीथा; रहूगण तिसका नामथा। एक महान्‌शीतलछारु, सर्व

ऋतुके पुष्पोंसे, शीतल सुगंध वायुसे तथा अनेक पक्षियोंके शब्दों से संयुक्त पर्वत था, तिस पर्वतपर राजा गर्मीके दिनोंमें, अपने गृहसे पालकीपर सवार होकर,हमेशः हवा खाने तथा संतोंसे मिलने वास्ते आया करता था।एक दिन ग्रीष्मऋतुमें पालकीमें सवार होकर, तिस पर्वतमें,हवा लेनेवास्तेचला,मध्यमें सुखपालके उठाने वाले कहारोंको बीमारी होगई।राजाने सब हाल जानके अहलकारोंको हुक्मदिया कि,जल्दीकहारोंको लाओ,सोप्रमादिअहलकारों को कहारोंकी तलाश करतेहुये दो मनुष्य मोटे ताजे तिसी जंगलमें विचरते हुये मिले। कैसे हैं ये हिंदू न मुसलमान जाने जाते हैं, न नग्न हैं न सम्यक् वस्त्र भगवे पहरे हुये हैं, न केवल मुंडित हैं न केवल जटाधारीहैं, न पंडित न मूर्ख जाने जातेहैं, न पूज्य न अपूज्य जाने जातेहैं, न अमीर न फकीर जाने जाते हैं,न शुद्ध न मलिन, न संत न असंत न त्यागी न गृही जाने जातेहैं, अव्यक्तही तिनका निश्चय है, अव्यक्तही तिनका चिह्नहै।नइच्छावान् न अनिच्छित प्रतीत होते हैं, न संशक्तिमान् न असंशक्तिमान्प्रतीतहोतेहैं, न सर्वज्ञ न अल्पज्ञ प्रतीतहोतेहैं, न मौनी न अमौनी प्रतीत होते हैं, न रागवान न विरागवान मालूम होतेहैं,न श्रेष्ठ आचारवान न अश्रेष्ठाचारवान् जाने जाते हैं, न भयवान् न अभयवान् प्रतीत होतेहैं, न क्रोधी न शांतिमान् न गुरु न शिष्यकर प्रतीत होतेहैं। न विवेकी,न अविवेकी, न धूर्त न अधूर्त जाने जातेहैं,न धर्मी न अधर्मी, न उदार न कृपण जाने जातेहैं, न कर्मकांडी न अकर्मकांडी, न उपासक न अनुपासक जाने जातेहैं, न कवि न अकवि, न कामी न अकामी, न जीव न ईश्वर जानेजातेहैं।न भक्त न अभक्त,न लोभी न अलोभी,न संमोही न अमोही जानेजातेहैं। न ज्ञानी न अज्ञानी प्रतीतहोते हैं, नसम्यक्,कर्ता न अकर्ता, न भोक्ता

न अभोक्ता प्रतीत होतेहै । न मानी न अमानीप्रतीत होतेहैं। तात्पर्य यह कि, बाहिर किसीभी असाधारण लक्षण करके जाने जाते किन्तु, तिनका स्वसंवेद लक्षण है । जंगली पुरुषोंकी समान वामदेव जडभरत दोनों थे। तिन दोनोंको पकडकर राजाकी सुखपाल मेंजोड दिया और कहा जल्दी चलो । सो वे कभी जल्दी चले कभी खडे हो जावें कभी हँसें कभी मौन होवें, कभी पालकी कांधेसे गिरपडे कभी टेढे चलें कभी सूधेही चलेजावें । राजा और अहलकार बहुत तिरस्कारके वाक्य कहने लगे बलिक मूर्ख जो राजाके खिदमतगार थे सो हाथोंसे तथा लकडियोंसे मारने भी लगे परन्तु वे जैसे थे तैसेही प्रसन्नमुख रहे, किंचित् भी हर्ष शोक नहीं किया । तब राजा यह अवस्था देखकर, तत्काल सुखपालसे उतरा और दर्शन करतेही प्रमादको त्याग कर, शुद्ध अंतःकरण हो विन्ती करनेलगा हे स्वामिन् ! आप संतोंको निष्प्रयोजन मैं असंतने दुःख दिया है, क्षमा करो और मुझको सत् उपदेश करो।

प्रथम जडभरत बोला--हे राजन्!हमारे कांधेपर सुखपाल देनेसे तूने पाप माना है सो,सुखपालका बोझ कांधेपर है, कांधोंका बोझ कमरपर है, कमरका बोझ गोडोंपर है, गोडोंका बोझ चरणोंपर और चरणोंका बोझ पृथिवीपर है, इससे पृथिवीसे क्षमा करो वा पृथिवीका बोझाजलपरहैक्योंकि, कार्य अपने उपादानकारणमेंही रहता है।जैसे--घटादिक पृथिवीमेंही रहते हैं--तैसे--जलका बोझ अग्निपरहै, अग्निका भार वायुमें है,वायुका भार आकाशमें,आकाश समष्टिसूक्ष्म अहंकार महत्तत्त्वरूप है, महत्तत्त्व माया रूपहै और कल्पित मायाका तथा मायाके कार्य बुद्धि आदिकोंका, सर्व नामे रूप दृश्यका अधिष्ठान, आधार तूही सच्चिदानंद साक्षी है, इससे तू चैतन्यही, अपने ऊपर आप, क्षमा कर वा न कर हम क्षमा क्या करें ? अथवा हे राजन् । सुखपाल भी पृथिवी आदिक

पंचभूतरूप है और शरीरभी-पृथिवी आदिक पंचभूतरूपहै·पंचभूतही पंचभूतोंसे क्षमा करावे वा न करावे, पंचभूतही पंचभूतोंपर क्षमा करे वा न करे। तथा पंचभूतरूप देहही पंचभूतरूप पालकी पर सवार हैं और पंचभूतरूपही पालकीके उठानेवाले हमारे शरीरभी पंचभूत रूपहै,तुझ असंग,निर्विकार,निर्विकल्प, संघात रूप,त्रिपुटीके द्रष्टा चैतन्यको, लोगोंके झगडेसे क्या पंचायत है!हे राजन्!वृथा अहंकार तूने कियाहै कि;मैं सुखपाल पर चढ़ाहूँ, विचार सुखपाल कहांहै, काष्ट ही है काष्ट पृथिवीरूपहै, पृथिवी जल रूपहै;जल अग्निरूपहै, अग्नि वायुरूपहै, वायु आकाशरूप है, आकाश अहंकाररूपहै,अहंकार महत्तत्त्वरूपहै महत्तत्त्व माया-रूपहै सो माया तुझ चैतन्यमें रज्जुसर्पवत् कल्पितहै तुझ चैतन्यसे पृथक् नहीं·तूहीहै। कहो !सुखपाल कहांहै ? सुखपालका स्वरूप विचारेविना अभिमान मत कर। तुझको लज्जा नहीं आती कि अपने ऊपर आप सवारी करताहै।

जगदुत्पत्ति।

हे राजन्! तुझ चैतन्य प्रकाशसेही यह देहरूप सुखपाल वा ब्रह्मांडरूप सुखपाल उत्पन्न हुआहै। जैसे स्वप्नद्रष्टासेहीनिद्रा दोषकर स्वप्न सृष्टि उत्पन्न होतीहै। प्रथम तुझ निर्विकार सत्‌चित् आनंदसे; मायारूपीदोपकर, शब्दगुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ। पुनः तुझ चैतन्य आकाशसे स्पर्श गुणवाला वायु हुआ पुनःतुझ चैतन्यरूप वायुसे रूपगुणवाला अग्नि प्रगटहुआ पुनः तेजरूप चैतन्यसे रसगुणवाला जल उत्पन्न हुआ।पुनःतुझ चैतन्यसे गंध गुणवाली पृथिवी हुई पृथिवीसे ओषधी, ओषधीसे अन्न;अन्नसे वीर्य;वीर्यसे शरीररूपी सुखपालहुआहै। वा स्वप्नके समान क्रम विनाही"एककालावच्छेदेन"यह कारण कार्यरूप संघात वाब्रह्मां-

डरूप सुखपाल,तुझचैतन्यसे उत्पन्न हुआहै क्रमसेभी तुझ चैतन्यसेइसकी उत्पत्तिहै औरअक्रमसे भी तुझसेही उत्पत्तिहै।हे राजन् जैसे-लोकविषे लौकिक पिता अपने पुत्रको उत्पन्न करताहै और आपको पुत्रसे जुदा जानताहै तथा अपनेपुत्रादिके ऊपर चढता हुआ लज्जावान् होताहै। तैसे-तू चैतन्य. इस देह वा ब्रह्मांडरूप सुखपालका सुखपालरूप पुत्रादिकका, अलौकिक पिता, अपने देहादिसंघातरूप पुत्रको, अपना रूप जानताहै और अपने पुत्र ऊपर चढता प्रसन्नता मानता है, तुझको लज्जा नहीं आती इस प्रकरणमें देहादि संघात जो अपनेसे अत्यंत भिन्न हैं तिनको अपना स्वरूप मानना यही चढनाहै। इससे इस संघातरूप सुखपालको आपसे भिन्न मानकर अहंकार त्याग। यद्यपि वास्तवसे देहका त्याग तुझको आगेही सिद्ध है; जैसे-घटाकाशका घटसे संबंध आगेही नहीं, तथापि भ्रमसिद्ध संबंधके त्यागका त्यागहै। यह असत्, जड, दुःख रूप शरीर मेरा है वा शरीर मैं हूँ, यही इस शरीररूप सुखपालमें सवारीहै राजाने कहा-मैं शरीरके अहंकारसे कैसे छूटूँ, जडभरत तूष्णीं हुये।

पराशरने कहा-हेमैत्रेय!जडभरतके तूष्णींहोनेपरवामदेवने कहा हेराजशार्दूल। जैसे तू इसकाष्ठकी सुखपालमें बैठा और सुखपालके सुख दुःख भोगताहुआभी; आपको सुखपालसे जुदा जानताहै, पालकी रूप तू आपको कदाचित् भी नहीं जानता इसी प्रकार सुखपालके उठानेवाले कहारोंसे, चोपदारोंसे तथा अन्य संबंधियोंसे आपको जुदा जानताहै। जो कोई पूछे, यह सुखपाल किसकी है, तब तू कहता है "हमारी है" नहीं कहता कि, मैं सुखपालरूप हूँ। तैसेही-यह शरीर सुखपालहै, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, सत, रज, तम, गुण ये आठ प्राण, देह रूप सुखपालके उठानेवाले कहार हैं। दश इंद्रिय आगे

जानेवाले चोपदार हैं और पंचभूतरूप काष्ठों कर रची हुई, यह संघात वा ब्रह्मांड रूप,सुखपालहै ।शब्दादिपंचविषय रूप रस्तों-में;मनादि रूप कहार सुखपालको लिये चलते हैं।मायारूप पृथि-वी इंद्रियरूपचोपदार, मनादिकहारोंका संघातवाब्रह्मांडरूपसुख-पालको तथा अन्य सामग्रीकातूआधार है।हेराजन्। पूर्वोक्त कहार चोपदार सहित असत्,जड़ दुःखरूप यह (देहरूप) सुखपाल तुझ सत् चित् आनंद स्वरूपसे अत्यंत भिन्न है, एक नहीं तू चैतन्य पुरुष इस शरीररूपी सुखपालमें वा ब्रह्मांडरूप सुखपालमें स्थित हुआभी तथा इस संघातके सुख दुःखको अनुभव करता हुआ भी, असंग निर्विकार है । हे राजन् । जब तू इस संघातको सुख-पालकी न्याई आपसे जुदा, अपनी दृश्य, जानके देह अभिमान त्यागेगा और अपनेको प्रत्यक् चैतन्य स्वरूप जानेगा,तब हमारे समानजीवन्मुक्त होकर विचरेगा। काष्ठकी सुखपाल और पंचभू-तोंका विकार यह देहरूप सुखपाल;जडादि गुणोंकरके तुल्यहीहै । वास्तवसे दोनों तुझ चैतन्यसेभिन्नहैं औरतू प्रत्यक् चैतन्य दोनोंसे जुदाहै, परन्तु काष्ठकी सुखपालसे निश्चयकर आपको जुदा मान-ताहै और देहरूप सुखपालको अपना स्वरूप जानताहै, यह बडा आश्चर्यहै। हे राजन् । या तो दोनों सुपालोंते आपको जुदा जान या दोनों सुखपालोंको अपना स्वरूप जान। एकको अपनास्वरूप जानना, एकको न जानना,यह विचार रहितका कामहै, विचारेसे दोनों समानही हैं;यह ऐसेहै जैसे कोई कहै एकहीमुर्गी आधी मुई है,आधी जीवतीहै, यह न्याय मूर्खताका तुझकोप्राप्त होगा। अथवा हे राजन् ।यह कार्य कारण रूप,सर्व ब्रह्मांडही,तुझ एकही सच्चि-दानंद पुरुषकी सुखपाल है, देह अभिमानी,अज्ञानी जीव सुखपा-लके उठानेवाले तेरे कहारहैं। काल तेरा चोपदार है, चांदसूर्यदोनों मसाल चसाकर आगे चलनेवालेहैं ।तारागण तुझचैतन्यके खेल-

नेके पुष्पहैं; आकाश तेरा चन्दोवा हैं।वायु तुझको पंखाकरनेवाला है,सात समुद्रसहित मेघमाला तुझ चैतन्य पुरुपकोपानी पिलानेवाले हैं। माया तेरी शक्तिहै।तीन गुण रूप ब्रह्मा, विष्णु, शिव तुझे चैतन्य पुरुषके कारिंदाहैं।दिन और रात सुखपालकेंउठानेकालंबा काष्ट है,जिसको कहार पकडतेहैं।अग्नि तेरी चिरागदानी करनेवाला है। यावत् वनस्पति तेरे सैर करनेका बगीचाहै,सुमेरुआदिक पर्वत, तुझ चैतन्य पुरुषके ब्रह्मांडरूपसुखपालके सिराने हैं। पंच शब्दादि विषय सुखपालकी कील लगरहेहैं। पृथिवीतेरेसुखपालमें बैठनेकी जगह है। तात्पर्य यह कि,हे राजन् ! जैसे--तू इस, जड काष्ठमय सुखपालमें स्थित हुआ, सुखपालकेसर्व हालका ज्ञाता द्रष्टा,सर्व प्रकार करके भिन्न है, काष्टमय सुखपालके नाशसे तू नाश नहीं होता। तैसे--तू चैतन्य पुरुष, एकही इस देह सहित, ब्रह्मांडरूप असत् जडदुःखमय सुखपालमें स्थित हुआ हुआ अपनी सत्ता स्फूर्ति करके;इस कार्य कारणं ब्रह्मांडरूपी सुखपालका,पालन पोषण तू चैतन्य करता हुआ,इसके सर्व हालका ज्ञाता,द्रष्टा, सर्व रूप करके जुदा है। राजाने कहाजो-मैंशरीरसे भिन्न हूं कौनहूं ? वामदेवने कहा-"मैं कौन हूँ" इस बुद्धि के चिंतनको, वाणीके कथनको अंतर जिसने जाना, वही तू निर्विकल्प निर्विकार है। वही मैं हूँ, ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्वका स्वरूप वही है।

ऋषभदेव व राजा निदाघका संवाद ।

वामदेवने राजा रहूगणसे कहा-हे राजन् । इसी पर एक कथा है सो तू सुन--एक समय ऋषभदेव निदाघ राजाके आश्रम पर स्वाभाविक ही विचरता हुआ आया। उसको आया हुआ देखकर निदाघ उठ खडा हुआ शास्त्रविधिपूर्वक

पूजन किया और विनती की, हे महाराज ! भोजन कीजिये । ऋषभदेवने कहा—बहुत अच्छा । तब राजाने अनेक प्रकारके भोजन कराये,जब जिम चुके तब निदाघने कहा हेस्वामिन् !अघाये हो ? ऋषभदेवनेकहा-हेराजन् ! प्राणोंको क्षुधाथी,तिनोंने भोजन पायेहैं इससे प्राणोंसे पूछ !जो अघायेहैं तो प्राण अघायेहैं,मुझ चैतन्यको (द्रष्टा होनेसे मुझमें) क्षुधा, अघावना दोनों नहीं । निदाघने कहा-तुम कहां रहते हो ? कहां जावोगे ? आयेकहांसेहो ? ऋषभ देवने कहा-मैंचैतन्य आकाशकी न्याई सर्वमें पूर्णहूँ,मुझमें आवनाजाना नहीं । देशकाल वस्तु भेदसे मुक्तहूँ । निदाघनेकहा-नगरमें चलिये और आरामकरिये । ऋषभदेवने कहा-इस नामरूप ब्रह्मांड, नगरविषे,आगेही मैं स्थित होरहाहूँ, मुझ चैतन्यविना कोईभी जगह खाली नहीं । जैसे-घटाकाशको कहिये तुम नगर चलो जो लज्जाका कामहै । हेराजन् ! मैं चैतन्य आनंद स्वरूपहूँ और अक्रिय हूँ मुझमें न आरामदारी दुःखहै नहीं कि,नगरमें जाकर आराम पाऊँ, यह सर्व जगत् नेत्रोंके खोलनेसे उत्पन्न होताहै,यदि फुरणा मात्र जगत् नहीं होता तो सुषुप्तिमें भी प्रतीति होना चाहिये,परंतु नेत्र मूँदनेसे मिट जाताहै तिससे मिथ्याहै । और मिथ्याकोसिद्ध करनेवाला तू चैतन्य सत्ताहै । निदाघने कहा-मेरा हर्ष शोक कैसे दूर होवे ? ऋषभदेवने कहा-हर्ष शोक मनके हैं,हर्ष शोकके द्रष्टा तुझ चैतन्य के नहीं । निदाघने कहा-जन्म मरण क्योंकर मिटे ? ऋषभदेवने कहा-जन्ममरणादिक षट् विकार इस संघातके हैं, तुझ निर्विकार साक्षी चैतन्यके नहीं,मिटें कैसे । जैसे घटाकाश कहे जन्म मरणादिक मेरे कैसे छूटें,यह विना विचारकी वात है, विचारेसे षट् विकार घटकेहैं,निर्विकार घटाकाशके नहीं । निदाघने कहा-बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति कैसे होवे ? ऋषभदेवने कहा हे राजन् ! प्रथम तू बंध मोक्षका स्वरूप कह ?

में उपाय कहूँगा। निदाघने कहा-और तो कोई बन्ध मोक्षका स्वरूप विचार करनेसे मालूम होता नहीं क्योंकि,दुःखसे सुखभी बन्धमोक्षका स्वरूप प्रतीत होताहै, केवल दुःखपृथक् बन्धका अर्थ करें, तो सुख आजाताहै सुखसे पृथक् मोक्षका अर्थकरें तो दुःखकी प्राप्ति होतीहै,इससे बन्ध मोक्ष सुख दुःख स्वरूपहैं तिससे भिन्न नहीं, ऋषभदेवने कहा सो सुखदुःखरूप बंध मोक्षतो दूर नहीं किंतु अपरोक्षहीहै क्योंकिजो देशांतरमेंपरोक्ष होवे स्वर्गवत् तो हमको तुमकोऔर सर्व जगत्को,प्रत्यक्ष दुःखसुखरूप बंध मोक्ष का अनुभव नहीं होना चाहिये;हम लोगोंको बंधमोक्षरूप सुखदुःखका अनुभव प्रत्यक्ष होताहै इस हेतु अपरोक्षहै परोक्ष नहीं जब इस वर्तमान शरीरमें ही सुखदुःखरूप बंध मोक्षका प्रत्यक्ष अनुभव होताहै सारांश यह कि,सुख दुःख रूप बंध मोक्षके अनुभव करनेवाले हम प्रत्यक् आत्मा बन्ध मोक्षसे भिन्नहैं, तो मरके वा कब कैसे हमारी मोक्ष होगी ? किन्तु सुख दुःखरूप बन्धमोक्ष कब हमारी होगी यह बात हमको कहनी वा अपने मनमें निश्चय करनी सो भूलका कामहै क्योंकि,नित्य मुक्त मुझे प्रत्यक् आत्माको न पूर्व बंध मोक्ष हुई है, न अब है न आगे होगी। हे निदाघ ! सुख दुःख रूप बंध मोक्षको अनुभव करनेवाला,नाम सिद्ध करनेवाला तिन सुखदुःखसे न्याराहै,यह बात सामान्य पुरुषभी जानतेहैं। इससे हे निदाघ! इस संघातमें, दुःखसुखरूप,बन्ध मोक्षको अनुभव नाम सिद्ध करनेवाला कौन है ? तथा बन्धमोक्ष किसकोहै? यह विचार करना चाहिये। वागादिक पंचकर्मेन्द्रिय तथा प्राण ये तो,केवल शब्दादिक क्रियाके करनेवालेहैं ज्ञान शक्ति इनमें नहीं केवल क्रियाशक्ति है क्योंकि,जड आकाशादि पंचभूतोंके, एकरराजसी अंशसे उत्पन्न हुयेहैं। इसीसे पंच कर्मेन्द्रिय तथा प्राण, सुख दुःखरूपबंध मोक्षके ज्ञाता भी

नहीं,तथा बंधमोक्ष इनका धर्म भी नहीं,घटवत्।तैसेही पंच ज्ञानेंद्रिय,मन,बुद्धि,चित्त, अहंकार, चतुष्टय अंतःकरण, जड पंचभूतोंके कार्य होनेसे जडही है क्योंकि, जैसा कारण होताहै तैसाही कार्य भी होताहै यह नियमहै।ज्ञानेंद्रिय तथा अन्तःकरण, कर्मेंद्रियोंके तथा प्राणोंके बडे भाई हैं, किसी रीतिसे, ज्ञानेंद्रियोंमें तथा चतुष्टय अंतःकरणमें ज्ञानशक्ति माने भी, तौभी वृत्तिरूप ज्ञानके उत्पत्तिके साधन हैं ज्ञान स्वरूप नहीं,इसीलिये श्रोत्रादिक ज्ञानेंद्रियोंसे केवल शब्द,स्पर्श,रूप,रस, गंधकाही ज्ञान होता है, तिनोंसे भिन्न सुख,दुःखरूप बंध मोक्षको तो स्वप्नमेंभी नहीं जान सक्के। क्योंकि जो बन्ध, मोक्ष, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधरूप होवे तो श्रोत्रादिक ज्ञानेंद्रियोंसे जाने जावें,सो तो बंध मोक्ष शब्दादिरूप हैं नहीं। इस्से ज्ञानेंद्रियोंका धर्म, बन्धमोक्ष नहीं तथा बन्ध मोक्ष ज्ञानेंद्रियरूपभी नहीं।यद्यपि सर्व इंद्रियादि नाम रूप दृश्यको बंध मोक्ष रूपही आगे कहनाहै तथापि इसप्रकरणमें बन्ध मोक्षको दृश्य इन्द्रियादिकोंते भिन्न कहनेका तात्पर्य है। तैसे-मन, बुद्धि, चित्त, अहंकाररूप चतुष्टय अन्तःकरणका धर्मभी दुःखसुखरूप बन्धमोक्ष नहीं;संकल्प,विकल्प;निश्चय,चिंतन, अहंपणाही इनका धर्म है, अन्य नहीं।जो बन्ध मोक्ष अन्तःकरणकाहीधर्म होवेतो संकल्प,विकल्प,निश्चय,चिंतन,अहंपणारूपही,दुःख सुख रूप बन्ध मोक्ष होवेंगे।इससे भिन्न बन्ध मोक्षका स्वरूप कथन करना केवल शास्त्रसंस्कार रहित अविचारका काम है। इसलिये अन्तःकरणका धर्म संकल्पादि मात्रही बन्ध मोक्षका स्वरूपहै,कोई पृथक् पदार्थ नहीं यह सिद्धहुआ क्योंकि,आभास सहित अन्तःकरण वा अविद्याविशिष्ट चेतन और अधिष्ठान कूटस्थ सहितका नाम जीव है। अन्तःकरणसे चैतन्यको भिन्न करे वा नहीं करे, परंतु सर्व प्रकारसेही चैतन्य,असंग, निर्विकार,सच्चिदानंद, जीवका ७२

पड़े। तिसमें बन्धमोक्षका उपयोग नहीं, उलटा बन्ध मोक्षको सिद्ध करनेवाला वही तेरा स्वरूप है। विचार अन्तःकरणमें आभासकेभी सुख दुःख रूप बन्ध मोक्ष धर्म नहीं वास्तवसे तिसको भी कूटस्थ होनेसे प्रतिबिंब जैसे बिंब होताहै। केवल आभासकेभी सुख दुःख रूप बन्ध मोक्ष धर्म नहीं तथा केवल अविद्याके भी सुख दुःख रूप बंध मोक्ष धर्म नहीं क्योंकि, यदि अविद्याके धर्म होते, तो सुषुप्तिमें अविद्या तो है और दुःख सुखरूप बन्ध मोक्ष नहीं, इस अन्वयव्यतिरेकसे अविद्याकेभी बन्ध मोक्ष धर्म नहीं इससे आभास सहित अन्तःकरणसे भिन्न जीवका वाच्यस्वरूप नहीं तिस जीवके वाच्यस्वरूपमेंही बंधमोक्षकी कल्पना हो वा न हो, जीवके लक्ष्य स्वरूप चैतन्य तेरे स्वरूपमें नहीं। हे निदाघ! तात्पर्य यह है कि, अंतःकरणके संकल्प मात्र, दुःख सुख रूप बन्ध मोक्ष सहज धर्म हैं, धर्मोके उपादान कारण अंतःकरणधर्मोके नाशविना संकल्प रूप बन्ध मोक्ष धर्मोंका नाश नहीं होता, इससे बन्ध मोक्ष संकल्प रूप धर्म अंतःकरण रूप है और अंतःकरणके उपादान कारण आकाशादि पञ्चभूत हैं इससे अंतःकरण पञ्चभूत रूपहै। पंचभूतोंके नाश विना अंतःकरणका अभाव नहीं होता। पञ्चभूतोंका कारण मायारूप अज्ञान है, मायाके नाश विना पञ्चभूतोंका नाश नहीं होता, । इस्से पञ्चभूत माया रूपहैं और माया रूप अज्ञानका सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मज्ञान विना नाश नहीं, होता, सो सच्चित, आनन्द स्वरूप मायासे आदि लेकर देह पर्य्यंत, सर्वको जाननेवाला, तूही आत्मा है। सो अपने स्वरूपका न जाननाही मायारूप अज्ञानहै, इससे अपने सत चित् आनन्द निज स्वरूपका ज्ञानही अपेक्षित सुख दुःख संकल्परूप बन्ध मोक्षकी निवृत्तिका उपाय है। वा पूर्वोक्त बन्धकीनिवृत्ति रूप आत्मा अधिष्ठानही मोक्षरूप सुखकी प्राप्तिकाउपायहै। हे निदाघ। जोपूर्वोक्त अपेक्षित बन्ध मोक्षकी निवृत्तिका वा बन्धकी निवृत्ति मोक्षसुखरूप

आत्माकी प्राप्तिरूप निजरूपका सम्यक् अपरोक्ष ज्ञान उपाय त्यागके, अन्य उपायमें प्रवृत्ति करता है सो दीपकको त्यागकर अँधेरेके दूर करनेका अन्य उपाय, निष्प्रयोजन है तथा केवल फूसका कूटना है।

हे निदाघ! जो तू बंध मोक्षको पूर्वोक्तरीतिसे मायारूप नहीं माने तो कहो बंध मोक्षका क्या स्वरूपहै? द्रष्टा रूप है वा दृश्यरूपहै? दोनोंमें बंध मोक्षको एक रूपतो कहना पडेही गा क्योंकि, द्रष्टा दृश्यसे कोई पृथक् तीसरा पदार्थ तो है नहींदोहीहैं।जब बंध मोक्षको सत् चित आनंदस्वरूपद्रष्टा मानोगे,तो सत् चित् आनंद स्वरूपही बंध मोक्ष हुये, पृथक् न हुयेसो सच्चिदानंद स्वरूप तूही है, तुझको बंधकी निवृत्ति, मोक्षकी प्राप्ति वास्ते कर्तव्य करना निष्फलहै क्योंकि, तुझ चैतन्यते पृथक् बंध मोक्षका अभाव है। तैसेही हे राजन्! जब बंध मोक्षको दृश्य रूप मानोगे तौ भी अंतःकरण सहित, बन्ध मोक्षके द्रष्टा तुझ सत् चित् आनंद स्वरूपको, बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते, यत्नकरना योग्य नहीं।तात्पर्य यह कि, दोनों प्रकारसे तुझको बन्ध मोक्ष वास्ते कर्तव्य नहीं क्योंकि, अपना स्वरूप स्वतःसिद्धही बन्ध मोक्षसे रहित निष्कर्तव्य है, तिसमें कर्तव्य बुद्धिही भ्रांति है, सो भ्रांति रूपही बंध मोक्षका रूपहै निष्कर्तव्यमें कर्तव्य भ्रांतिके दूर करनेमेंही, गुरु शास्त्र वैराग्यादि साधनोंकी सफलता है। कोई स्वरूपकी प्राप्तिमें सफलता नहीं क्योंकि, अपना स्वरूप आगेही प्राप्त है, गुरु शास्त्रको नवीन प्राप्ति नहीं करानी इससे, तू आपको अस्ति, भाति, प्रिय रूप सर्वात्मा जान जो सर्व रूप होवे।

हे मैत्रेय! इतना कहकर-वामदेवने कहा हे रहूगण! इस प्रकार सर्वके सारभूत, आत्माका निदाघको उपदेश कर ऋषभदेव चले

गये। तब निदाघने अस्ति भाति प्रिय सर्वरूप आपको, जाननेवत् जाना। तैसेही हे राजन्! तू भी आप सहित सर्वको अस्ति भाति प्रियरूप जान वा मायासे लेकर देह पर्यंत सर्व नामरूप दृश्यका आपको साक्षी द्रष्टा जान। जिसको यह निश्चयहै, प्रगट अनेक प्रकारके नाम रूप, संसार तिसको भासता भी है परन्तु एक आत्माही जानता है। जैसे--अनेक घटपटादिक अज्ञानीको प्रतीत होते भी, विचारवान् एक पृथिवी ही जानता है। जैसे स्वप्नपदार्थ अनेकरूप प्रतीत होते भी; स्वप्नद्रष्टाके ज्ञाताको, सर्व स्वप्नद्रष्टा रूपहै। तैसे-नामरूप भिन्न भिन्न भासतेहैं पर मूल सर्वका आत्मा एकही है, इसहेतु अज्ञानियोंकी दृष्टित्याग, विद्वानोंकी दिव्य दृष्टिको ग्रहणकर ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वप्रकाश अपनाही जान कि, सर्व अस्ति भाति प्रियरूप मैंही हूँ, मुझसे भिन्न कुछ नहीं।

पराशरने कहाः-हे मैत्रेय! इस प्रकार वामदेवके अमृतरूप वचन सुनकर, रहूगणराजा कृतकृत्य होकर, वामदेवकी समान स्वतंत्र मनवाञ्छित स्थानोंमें विचरने लगा और वामदेव जडभरत भी चले गये। हे मैत्रेय! पुनः जडभरत विचरता हुआ अपने जन्मस्थानको आया। आये जडभरतको देखकर माता पिताने मोहकर कंठ लगाया और भाइयोंने भी प्रीति कर ऐसा समझा कि, जडहै तो भी हमारा भाईहै। जडभरतको मीठा भोजन दिया। पीछे पिता हाथ पकडकर एकांत स्थानमें लेजाकर प्रीतिपूर्वक पूछनेलगा-हे पुत्र! वचन क्यों नहीं कहता, तुझको किसीका भय है; वा जानके नहीं कहता साँच कह, तू मुझको योगी भासताहै क्योंकि, जिसको सुख दुःख हर्ष शोक, मान अपमान एक समान है, वही योगी है। कह इससंसार समुद्रसे पार कैसे होऊँ? हे मैत्रेय। जडभरतने विचारा अब वचन करना योगय है तब पिताका वचन सुनकर हँसा पुनः रुदन करने लगा। यह देख पिताने कहा हे पुत्र! तेरा हँसना, रोना क्योंकर है जड-

भरतने कहा हे पिता ! मेरे हँसने रोनेसे तुझको क्या प्रयोजन है ? पर हँसना सुखसे होताहै, रोना दुःखसे होताहै, सुखदुःख दोनों पुण्यपापरूप कर्मसे होते हैं।पुण्यपाप रूप कर्म इस देहसे होते हैं देह[1] (उपलक्षित सर्व जगत् जानलेना) और देह,रूप जगत् अपने सत् चित् आनंद स्वरूपके अज्ञानसे होता है, सो अज्ञान अपने सच्चिदानंद स्वरूपके ज्ञानसे दूर होता है इससे हे पिता ! स्वतः ही वार षारसे रहित अपने स्वरूपको जान। जो हँसना रोना रूप संसार समुद्रसे पारहोवे, अन्यथा न होवेगा।जैसे-घटाकाश स्वतःहीघट रूप समुद्रके वार पारसे रहित है-घट दृष्टिसे नहीं।

ज्ञानका साधन।

हे पिता ! सो आत्मज्ञानके वास्ते दो उपाय हैं-एक हठयोग है, दूसरा आत्मविचार योग है।आत्मविचार बिना आसन प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि मन वाणी कायाके हठसे जो योग करना है सो हठ योग है पर शरीर और शरीरके कर्तव्य सर्व मिथ्या हैं, अनात्मा मिथ्यासे जो उत्पन्न होताहै सो साँचनहीं होता मिथ्याही होताहै।समाधिसेआदिलेके मलत्याग पर्यंत,सर्वकायिक वाचिकमानसिक क्रियाओंको,अनात्मधर्म जाननाऔरमनवाणीके गोचर सर्व दृश्य वर्गको असत् जडदुःखरूप जानना और सर्व कर्तव्योंसेरहितआपकोस्वतःही सच्चिदानंद रूपजाननाकोईकर्तव्य कर आपकोनिष्कर्तव्य नहीं जाननायही आत्मयोगहैजैसेस्वतःही

---

१ शरीर ही जगत् रूप है क्योंकि, सुख दुःखमय सर्व व्यवहार शरीर सम्बन्धी ही हैं; स्त्री, पुत्र, माता, पिता, कुल, कुटुम्ब, परिवार, देश , नगर, ग्राम, लोक,परलोक आदि सर्व देहके सम्बन्धी हैं--यदि देह न हो तो किस प्रकार किस लिये इन मंबोंसे प्रीति की जावे अर्थात् उनसे क्यों सम्बन्ध रखा जावे । शरीर द्वाराही मनुष्य मोक्षभी प्राप्त करताहै, सुखदुःख भोगता है इत्यादि । विचार करनेसे भलीप्रकार प्रमाणित होजावेगा कि, शरीरसे भिन्न जगत् कोई भी पदार्थ नहीं ।

जगत्के सर्व कर्तव्योंसे रहित सूर्यकास्वरूप दाहकता, उष्णता, प्रकाशता, असंगता जानना, पिताने कहा, हेपुत्र! मैं पापी कैसे आत्मयोगी होऊँ! जड भरतने कहा तू चैतन्य तीनोंकालविषे पापरूपमलसे स्वतःही रहितहै पापी क्यों होता है! तुझ चैतन्यकी आदि, अंत मध्य कोई नहीं जानता क्योंकि सर्व दृश्यके ज्ञाता तुझ सत्चैतन्य आनंदका और ज्ञाता है नहीं जो तेरा और ज्ञाता माने सो वह तुझ सत् चित् आनंदसे भिन्न, असत् जड दुःख रूपहोवेगा। जो असत् जड दुःखरूप है सो ज्ञाता होही नहीं सक्ता है इससे हे पिता! तुझ चैतन्य विषे पाप किसने देखा! पुण्यपापके जाननेवाले तुझचैतन्यमें पापहैही नहीं। दुःखके कारणका नाम पापहै सो सर्व दुःख अहंकारसे होतेहैं इससे पापरूप अहंकारको त्याग, जो निष्पाप होवे। ब्राह्मणने कहा-मैं जीवहूँ। जडभरतने कहा तूने सत्य कहा कि, सर्व दृश्यका जिलाने वाले तुझ चैतन्यमें मृत्यु नहीं। भला जो तू जीवही है, तो तेरा वर्णाश्रम क्याहै? ब्राह्मणने कहा--जीव विषे वर्णाश्रम नहीं। जडभरतने कहा हे पिता! जो जीवमें वर्णाश्रमी नहीं तो पाप पुण्य जीव विषे कहाँहै! जब तू आपको वर्णाश्रमी मानता है, तबही पाप पुण्य है जब वर्णाश्रम मिथ्या है तब धर्म अधर्म कहांहै! जब धर्मअधर्म नहीं तो धर्माधर्मका कार्य शरीर कहां है जब शरीर नहीं, तब जीव कहाँ! जब जीव नहीं तब ईश कहां है इससे जीव ईशादि सर्व जगत् स्वप्नवत् है, एक तूही चैतन्य स्वप्नद्रष्टावत् सत्यहै। ब्राह्मणने कहा, जब सर्व मिथ्या है तो शरीरमें जो शुभाशुभ कर्म होताहै, तिसका फल सुखदुःख कौन भोगताहै! शरीरतो इहाँही भस्मीभूत होजाता है। जडभरतने कहा, हे पिता! जैसे स्वप्नमें शरीरादिक कर्म करते हैं और काल पायकर स्वप्नमेंही शरीरादिक भोग भोगते हैं, जन्मते हैं, मरतेहैं, अनेक क्रीडा करते हैं, परन्तु स्वप्नद्रष्टा चैतन्य असंग निर्विकार है।

हे पिता! जो तू चैतन्य स्वप्नका द्रष्टा था,सोई तू चैतन्य इसस्वप्नवत् जाग्रतका द्रष्टा है, सोई तू सुषुप्ति मूर्च्छाका द्रष्टा है;द्रष्टाका भेद नहीं इससे तू आत्मा शुभाशुभसे न्यारा है;तुझे क्या भय है, सदा प्रसन्न हँसता रह। पिताने कहा--सदा यज्ञादि कर्म करता था, तुम कहते हो कर कुछ नहीं। जडभरतने कहा--यज्ञ नाम विष्णु व्यापक वस्तुकाहै, सो व्यापक चैतन्य तू है, यह जाननाही यज्ञ है। इससे अपने आपको कैसे यज्ञ करता है,तू स्वयंप्रकाश स्वरूपहै, तूही सत् चित् आनंद जीव रूप होकर,ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत, सर्वशरीरोंमें कर्ता है और सर्व शरीरोंमें तूही सर्वकाभोक्ताहै। असत् जड़ दुःख रूप दृश्य कर्ता भोक्ता बन सक्ते नहीं। हे पिता! जब तू-शरीर नहीं तब कर्मोंसे क्या मतलब है। पिताने कहा, कर्मोंका लोप मत कर,मैं प्रेत हो जाऊँगा। जडभरतनेकहा हे पिता! शरीरसे भिन्न होनेका नाम प्रेत है, सो इस संघातसे जो आप भिन्न जानता है वही प्रेत है। पिताने कहा,आप भ्रष्ट है मुझकोभी भ्रष्ट करता है? जडभरतने कहा, जो नामरूप दृश्यसे आपको न्यारा जानता है वही भ्रष्ट है, इससे मेरे समान तूभी भ्रष्ट हो। हे पिता! मुझको पिता पुत्रकी भावना नहीं,किंतु तू मैं, और सर्व जगतको मैं सत्चित् आनंद अपना स्वरूप जानताहूँ।पिताने कहा जिसउपायसे भय कालका दूर हो सो कहा।काल महाबलीहै तिससे मेरी रक्षाकर जडभरतने कहा,शरीर होते कालका भय दूर होजावे यही कालसे रक्षा है, जब काल आया उस समय कालसे रक्षाकी चाहना करनी;वा,मेरे पीछे रक्षाकी चाहना करनी निष्फलहै। हे पिता! तू अपने अकाल स्वरूपको जान और काल सहित सर्व जगत्को भ्रमरूप जान। हे पिता! अपने स्वरूपकेअज्ञानसे इस वर्तमान शरीरसे पूर्व भ्रमरूप तूने ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत अनेक

जगत्के सर्व कर्तव्योंसे रहित सूर्यकास्वरूप दाहकता, उष्णता, प्र-काशता, असंगता जानना, पिताने कहा, हेपुत्र! मैंपापी कैसे आत्म-योगी होऊँ? जड भरतने कहा तू चैतन्य तीनोंकालविषे पापरूपम-लसे स्वतःही रहितहै पापी क्यों होता है? तुझ चैतन्यकी आदि, अंत मध्य कोई नहीं जानता क्योंकि सर्व दृश्यके ज्ञाता तुझ सत् चैतन्य आनंदका और ज्ञाता है नहीं जो तेरा और ज्ञाता माने सो वह तुझ सत् चित् आनंदसे भिन्न, असत् जड दुःख रूपहोवेगा। जो असत् जड दुःखरूप है सो ज्ञाता होही नहीं सक्ता है इससे हे पिता! तुझ चैतन्य विषे पाप किसने देखा? पुण्यपापके जाननेवाले तुझचैतन्य-में पापहैही नहीं। दुःखके कारणका नाम पापहै सो सर्व दुःख अहं-कारसे होतेहैं इससे पापरूप अहंकारको त्याग, जो निष्पाप होवे। ब्राह्मणने कहा-मैं जीवहूँ। जडभरतने कहा तूने सत्य कहा कि, सर्व दृश्यका जिलाने वाले तुझ चैतन्यमें मृत्यु नहीं। भला जो तू जीवही है, तो तेरा वर्णाश्रम क्याहै? ब्राह्मणने कहा--जीव विषे वर्णाश्रम नहीं। जडभरतने कहा हे पिता! जो जीवमें वर्णाश्रमी नहीं तो पाप पुण्य जीव विषे कहाँ है? जब तू आपको वर्णाश्रमी मानता है, तबही पाप पुण्य है जब वर्णाश्रम मिथ्या है तब धर्म अधर्म कहांहै? जब धर्मअधर्म नहीं तो धर्माधर्मका कार्य शरीर कहां है जब शरीर नहीं, तब जीव कहाँ? जब जीव नहीं तब ईश कहां है इससे जीव ईशादि सर्व जगत् स्वप्नवत् है, एक तूही चैतन्य स्व-प्नद्रष्टावत् सत्यहै। ब्राह्मणने कहा, जब सर्व मिथ्या है तो शरीर-में जो शुभाशुभ कर्म होताहै, तिसका फल सुखदुःख कौन भोगताहै? शरीरतो इहाँही भस्मीभूत होजाता है। जडभरतने कहा, हे पिता! जैसे स्वप्नमें शरीरादिक कर्म करते हैं और काल पायकर स्वप्नमेंही शरीरादिक भोग भोगते हैं, जन्मते हैं, मरतेहैं, अने-क क्रीडा करते हैं, परन्तु स्वप्नद्रष्टा चैतन्य असंग निर्विकार है।

हे पिता! जो तू चैतन्य स्वप्नका द्रष्टा था,सोई तू चैतन्य इसस्वप्नवत् जाग्रतका द्रष्टा है, सोई तू सुषुप्ति मूर्च्छाका द्रष्टा है,द्रष्टाका भेद नहीं इससे तू आत्मा शुभाशुभसे न्यारा है;तुझे क्या भय है, सदा प्रसन्न हँसता रह। पिताने कहा--सदा यज्ञादि कर्म करता था, तुम कहते हो कर कुछ नहीं। जडभरतने कहा--यज्ञ नाम विष्णु व्यापक वस्तुकाहै, सो व्यापक चैतन्य तू है, यह जाननाही यज्ञ है। इससे अपने आपको कैसे यज्ञ करता है,तू स्वयंप्रकाश स्वरूपहै, तूही सत् चित् आनंद जीव रूप होकर,ब्रह्मासे लेकर चीटीपर्यंत, सर्वशरीरोंमें कर्ता है और सर्व शरीरोंमें तूही सर्वका भोक्ताहै। असत् जड़ दुःख रूप दृश्य कर्ता भोक्ता बन सके नहीं। हे पिता! जब तू शरीर नहीं तब कर्मोंसे क्या मतलब है। पिताने कहा, कर्मोंका लोप मत कर,में प्रेत हो जाउँगा। जडभरतनेकहा हे पिता! शरीरसे भिन्न होनेका नाम प्रेत है, सो इस संघातसे जो आप भिन्न जानता है वही प्रेत है। पिताने कहा,आप भ्रष्ट है मुझकोभी भ्रष्ट करता है? जडभरतने कहा, जो नामरूप दृश्यसे आपको न्यारा जानता है वही भ्रष्ट है, इससे मेरे समान तूभी भ्रष्ट हो। हे पिता! मुझको पिता पुत्रकी भावना नहीं,किंतु तू में, और सर्व जगतको में सत्‌चित् आनंद अपना स्वरूप जानताहूँ।पिताने कहा जिसउपायसे भय कालका दूर हो सो कहो काल महाबलीहै तिससे मेरी रक्षाकर जडभरतने कहा,शरीर होते कालका भय दूर होजावे यही कालसे रक्षा है, जब काल आया उस समय कालसे रक्षाकी चाहना करनी;वा,मेरे पीछे रक्षाकी चाहना करनी निष्फलहै। हे पिता! तू अपने अकाल स्वरूपको जान और काल सहित सर्व जगत्को भ्रमरूप जान। हे पिता! अपने स्वरूपकेअज्ञानसे इस वर्तमान शरीरसे पूर्व भ्रमरूप तूने ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत अनेक

शरीर पाये हैं, पुनः त्याग किये हैं, पुनः धारण करेगा। परंतु शरीरोंकोही काल नाशकरता आया है,तुझ एक रस चैतन्यको कालने अबतक नाश नहीं किया, तो अब कैसे नाशकरैगा? जो तू पूर्व था सोई तू अब है,वैसाही आगे रहेगा बदला नहीं, जैसे--तेरे शरीरने अनेक बार नवीन वस्त्र ग्रहण किये हैं और अनेक बार जीर्ण हुये वस्त्रोंको त्यागभी कियाहै, परंतु शरीर वही है बदला नहीं; जैसे फल फूल, पत्र बदलते रहते हैं वृक्ष नहीं बदलता। हे पिता! जो चैतन्य, शरीर समान नाशवाला होता तो, तुझ चैतन्यको भी काल नाश कर देता; कालका किसीसे तुझसे वा आत्मासे, भाईचारा नहीं। तैसेही अनेक जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति होगई पर तिनका अनुभव करनेवाला एकरस वही चैतन्यहैबदला नहीं। हे पिता! देश, काल वस्तु, भेदवाले देहादिक असत् जड दुःख रूप दृश्य पदार्थोंकोही काल नाश करताहै,तू सच्चिदानंद काल सहित दृश्यका द्रष्टा देश काल, वस्तु भेदसे रहित है तुझको कालका क्या भय है? उलटा तुझ चैतन्यसे, कालादिक भय रखतेहैं। मैं, तू यह जगत् तथा काल कुछ नहीं,केवल अहंकार तेरा है। जबलग मायाका कार्य देहादिक किसीभी वस्तुको आपामाननेवाला अहंकारहै तबहीतक कालहै क्योंकि कालके समान अहंकार अति दुःखदायक है परिच्छिन्न अहंकार करकेही कालके वशीकार होते हैं, स्वतः नहीं। वा अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे जो पूर्वोक्त अपने स्वरूपके अज्ञानकरकेपृथक् प्रतीतिहै,सोई काल है।वा शब्दादि विषयोंमें जो अति स्नेह है सोई काल है क्योंकि अज्ञानहीजन्ममरणआदिदुःखोंका कारणहै जब आपा माननेवाला अहंकार न रहातो काल कहाँ है?जैसे-सुषुप्तिमें अहंकार नहीं तो कालका भय भी नहीं जहां अंहकार है तहांही कालहै। इससे हे पिता!देहादिकोंविषे अहंकारको त्यागजो कालके

भयसे रहित होवे,अन्य किसी प्रकारसेभी कालकी निवृत्ति नहीं होगी।पिता-हे जड़भरत! कालसेही सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार होताहै,कालकी कैसे अनित्यताहैं जड़भरत-हे पिता! "काल करकेही सर्व जगत्की उत्पत्ति;पालन,संहारहोताहै" यह अर्थसंयुक्त शब्द जिसकर सिद्ध हुआ सो,तू कालका सिद्ध करनेवाला,कालसे न्यारा है वरन् काल तेराही आत्मा हृषीकेशहै। जैसे स्वप्नमें काल करकेही,स्वप्न जगत्की उत्पत्ति पालना संहार प्रतीति होतीहै परंतु, काल सहित सर्व स्वप्नपदार्थ कल्पितहैं,कल्पित पदार्थोंकी कल्पित पदार्थ तो;उत्पत्ति पालन संहार नहीं करसक्ता, स्वप्नद्रष्टाहीसतहै। हे पिता! अपने आत्माको,कोईभी भय वा नाश नहीं कर सक्ता और होताभी नहीं।जैसे अग्निकी दाहशक्ति अपनेसे भिन्नकाष्टादि सर्वका दाह कर सक्ती है,पर अपने आत्मा अग्निको दाह नहीं कर सक्ती,वा अग्निके अंतरबाहर मध्य स्थित आकाशको भी दाह नहीं करसक्ती।तैसे कालकेंअंतरबाहर मध्य पूर्ण कालका तू आत्मा है। कालके सिद्धकर्ता,तुझ प्रकाश स्वरूप,आत्माको काल कैसे नाश करता है, किंतु, भयमान हुआ नाम भी, नाशका नहीं ले सक्ता। हे पिता! जैसे तूने कालका निश्चय किया है तैसे सर्व इंद्रियोंके प्रकाशक,अपने आत्मा हृषीकेशमें निश्चय कर, जो भ्रम कालका तेरा नाश हो इसीलिये जान मैं हृषीकेश हूँ। हे पिता! जैसे जिस पुरुषने आकाशादि पंचभूतोंके कार्य, इस शरीरको वा किसी तृणादिक एक पदार्थको विचारकर संशय रहित सम्यक, पंचभूतरूप जाना है,सो पुरुष इस एक शरीरमें स्थित हुआ भी, ब्रह्मांड और ब्रह्मांड अंतरवर्ती सर्व भूरादि पदार्थोंको अपरोक्षहस्ता-मलकवत् देखता है क्योंकि,ब्रह्मांड और ब्रह्मांड अंतरवर्ती भूरादि सर्व पदार्थ पंचभूतोंके कार्य होनेसे पञ्चभूतरूपही है। इससे

पुरुषको कोई भी भूत भौतिक अज्ञात पदार्थ नहीं रहता, सर्वका जिसको प्रत्यक्षज्ञानहोताहै । कारणके ज्ञानसेकार्य अवश्य जाना जाताहै।तैसेही-जिसनेगुरु शास्त्र द्वारा, अस्तिभाति प्रियरूप सम्यक् अपरोक्ष, अपना आत्मा जानाहै;सो सर्वनामरूप जगतको अपरोक्ष अपना आत्मा ही जानताहै।कारण कि, निजस्वरूप चैतन्यही इस जगत्का विवर्त उपादान कारण है, इससे अपने सच्चिदानंद स्वरूपको सम्यक् जान, जो सर्व तूही होवे, जाननाही है शरीरसे करना कुछ नहीं । हे पिता ! तूने वृथाही आपको ब्राह्मण माना है, इस अहंकारको त्याग, पीछे हृषीकेश आत्माही है ।

पिताने कहा—हे जडभरत! अब तेरी कृपासे मैंने समझा है कि, न मैंहूँ, न तू है, न जन्म है, न मरण, न वर्ण, न आश्रम, न लोक, न परलोक, न ग्रहण, न त्याग, न बंध, न मोक्ष, न जीव न ईश्वर, एक हृषीकेश आत्माही है ।

तिसी समयमें वामदेव आये और कहा बड़ा आश्चर्य है! आप हृषीकेश आत्मा हैं,और हृषीकेश आत्माके देखनेकी इच्छा करता है । हृषीक नाम इंद्रियोंका है, तिन इंद्रियोंको जो प्रेरै तथा प्रकाशै तिसका नाम हृषीकेश है । सो सच्चिदानंद वस्तु आत्माकेही हृषीकेशादि अनेक नाम हैं । ब्राह्मणने कहा-हे वामदेव ! जब मैं सब समही हृषीकेश हूँ, तो एकसे मित्रता, एकसे शत्रुता, कभी क्रोध कभी दीनता, क्यों होती है? वामदेवने कहा-जो तू चैतन्य समान होता तो मित्रताकरता, शत्रुता न करता, दीनताकरता,क्रोधनकरता परन्तु तू चैतन्य तो शत्रुता मित्रतामेंपूर्णहै तथाक्रोधदीनतामेंभीपूर्ण है और तुझ चैतन्यकरही क्रोधमैत्र्यादि सिद्ध होते हैं। ब्राह्मणने कहा जो ऐसेहैं तो संत क्रोधादिकोंका त्याग क्योंकरतेहैं।वामदेवने कहा संत त्यागका त्याग करते हैं, नहीं तो त्याग ग्रहण करना किसीका

योग्य नहीं क्योंकि,अनर्थक क्रोधादिक संत त्यागतेहैं शरीरका रक्षक क्रोधादिक त्यागते नहीं जो त्यागें तो शरीरका अभाव होगा। इससे परिच्छिन्न ब्राह्मणादिवर्णाश्रमका अहंकार त्यागिके आपको सबमें पूर्ण हृषीकेश जान। ब्राह्मणने कहा—मुझमें जानना न जानना, ग्रहण त्याग, दोनों नहीं, मैं मन वाणीसे अतीतहूँ। वामदेव तूष्णीं हुआ क्योंकि,आगे वाणीका ठौर नहीं।

जडभरतने कहा हे पिता! यही उपाय कालके नाशकाहै यही योगहै, यही भक्तिहै, मैं तेरा ऐसा पुत्र नहीं हूँ जो मुये पीछे तेरा पिंड करूं तुझे जीवतेही मुक्त किया। ब्राह्मणने कहा झूठा मत कह, मैं तीनों कालोंमें मुक्तहूँ मुक्तको मुक्ति क्या है? तू पुत्र किसकाहै,मैं पिता किसका हूँ न तू पुत्र न मैं पिता,पुत्र पिताका अहंकार जाग्रत् तकही है सोये सब नाश हुआ। हे जडभरत! कुटुंब सहित सर्व रस्तेकी सराय है,वा नदी नाव,और गंधर्वपुरके समान है। जब सर्व वासुदेवहै तब मैं कहां जाऊँ? क्या करूं? क्या सुनूं? किसका ग्रहण? किसका त्याग करूँ? कहां जड और चैतन्य, कहांफुरना अफुरना, कहां विकार सविकारादि, यह सब मनके मनन फुरने मात्रहैं, मैं निर्विकल्प हृषीकेश हूँ।

वामदेवने कहा—हे जडभरत! तूने पिताका नाश ऐसा किया है कि,वह पुनः नाश नहीं होवेगा। जडभरतने कहा इसके पुण्योंने फल दियेहैं, मैंने कुछ नहीं किया। पुनःवामदेवने कहा-हे ब्राह्मण! तू कौन है? ब्राह्मणने कहा-हे.हृषीकेश! हृषीकेशसे क्या पूछता है? वामदेवने कहा मैं हृषीकेश नहीं और हृषीकेश हूँ। ब्राह्मणने कहा अनंत नामरूप मुझे हृषीकेश आत्माकेहैं हृषीकेश भी मैं ही हूँ। तिसी समय दत्त आये और कहा एक ब्रह्म आत्माकोही देखना योग्यहै न द्वैत। ब्राह्मणने कहा जो सर्वात्मा मैंही हूँ, तो देख

कौन ? दत्तने कहा मेरा कहना तूने कैसे सुना । ब्राह्मणने कहा जिसने कहा तिसीने सुना क्योंकि, वक्ता श्रोता एकहीहै,जिह्वासे कहताहै,कानोंसे सुनताहै,नासिकासे सुगंध लेताहै, त्वचासे स्पर्श करताहै,परंतु सबका अनुभव कर्ता एक है । जैसे-बारादरीके अन्तर एक पुरुषही, बारादरीके द्वारोंको तथा द्वारोंके अग्र पदार्थोंको अनुभव करताहै ।हेदत्त! तू परमहंसहै मुझपर कृपाकर।दत्तने कहा कृपा यहीहै कि, निश्चय कर "मैंही जीव शिव शरीरसे परेहूं" । जडभरतने कहा यह कृपा तूने आपपर की है,कृपा वह है जो और पर कीजै । दत्तने कहा--पर अपर.तेरी दृष्टिमेंहै मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्माकी दृष्टिमें नहीं । तथापि कार्यकारणरूप, असत् जड दुःखरूप, पर दृश्य प्रपंच, मुझ सच्चिदानंदकी कृपासे सच्चिदानंद हो रहाहै, यही मेरी पर अपर कृपाहै। पुनःदत्तने कहा हे ब्राह्मण!तेरे देखनेको आया था,पर देखा तो सर्व तूहीहै यही तेरा देखनाथा ब्राह्मणने कहा, न जडभरत, न दत्त, न अहं,न त्वं, न यह जगत्, एक मैंही चैतन्यहूं । दत्तने कहा मैं नहीं तहां तू कौन है?अहं पूर्वकही त्वं होताहै,इससे जहां अहं नहीं तहां त्वं कदाचित् नहीं।पर गोविंदकी भक्तिसे पर अपरसे छूटता है। हे ब्राह्मण ! कहो भजन कौनसाहै ? ब्राह्मणने कहा--कथन चिंतन करनेवाले, अहंकारादिकोंसे पूछो.मुझ चैतन्यमें अहंकारादिकहैं नहीं.कैसे कहूं? अहंकाररूप धागेकरकही भिन्न२इंद्रियोंका मेलनहै अन्यथा नहीं, परंतु भजन यहीहै; "आपसहित इन सर्वनामरूपको हृषीकेश आत्मा जान" व "आपको मनसहित दृश्यसे अवाङ्मनसगोचर जान" यही भजन है ।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तू कह कि, भक्ति क्याहै ? मैत्रेयने कहा जब मैं भक्ति भगवान्‌को कल्पनेवाला नहीं तो भक्ति कहांहै? भगवान् कहांहै!तेरी कल्पनाहै,पर इतिहास कहो। पराशरने कहा-

इतिहास यही है कि, निश्चयकर जो सर्व हृषीकेश आत्माहै। मैत्रेयने कहा--जब मैंही नहीं तो निश्चय कौनकरे?पराशरने कहा--हे मैत्रेय जहांतूमें नहीं तहांही हृषीकेश गोविन्दहै--इसीपर एक कथा सुन।

दाम्भिक वैराग और तपका वृत्तान्त।

एक समय हम सर्व संत मिलके मार्गमें चले जातेथे कि, एक तपस्वी पंचाग्नि तापता मिला।हमभी देखकर तिसकेपास स्वाभाविकही चलेगये।तपस्वीने पूछा हे संतो।तुम कौनहो ?कहांसे आयेहो? कहाँ जाओगे ? जडभरतने कहा जैसे तू है तैसेही बनारह और सदा अग्निमें जल।तुझे हमकोवृथा पूछनेसे क्या प्रयोजन है पर विनाभक्ती गोविंदके जो कर्म होते हैं, सो वृथा असार हैं । इस हेतु भजन गोविन्दका कर जो निर्मल होवे, द्वैतकी मलीनतासे छूटे।भजन विना जो श्वास आता है सो अकार्थ है और पवन है ऐसे जान।जिह्वा मांसका टुकडा भजनविना मुखमें राखनीयोग्य नहीं, वृथा बकवादके वास्ते जिह्वा नहीं,भजन वाणीसे करताहै,मन पाप पुण्यमें फिरता है- कैसे भलाहो। भजन नाम अपनीकल्याणमें प्रारब्ध थापता है और धन कमानेमें पुरुषार्थ मानता है; यह नहीं जानता कि, शरीर कालके मुखमें पडा है और चाहना जीनेकी करता है, अपनी कल्याण शरीरके गिरे पहलेही होसक्ती है, काल समीप पहुँचे कछु नहीं होता । हे तपस्वी! चैतन्यरूपी समुद्रमें, बुद्बुदेतरंगरूपी हमारा न कहीं आना है न जाना है; अगर आना जाना मानेभी तो चैतन्यरूपी जलमें आना जाना कहां है जलही है । जलके समान सार गोविन्द आत्मा है, आना जाना बुद्बुदे तरंगकी समान हैं, तैंने व्यर्थ माना है कि, मैं तपस्वी हूँ, इस अहंकारका त्यागकर।तपस्वीने कहा जब तुमसे मिलाप हुआउसी समय अहंकार मिटगया क्योंकि अग्निकेसंगसे लकडीका अपना रूप नहीं रहता,अग्निरूपही होताहै । जडभरतने कहा तपस्वी नहीं

है, जिसने सर्व पदोंको जलाया है और निष्कर्मतारूपी भस्म मली है। कह! तूने किस वस्तुको भस्म कियाहै?तपस्वीने कहा बुद्धि नहीं रही जो कहूँ, पर मैं नहीं जानताहूँ कि, क्या त्यागने ग्रहण करने योग्य है। जडभरतने कहा हे तपस्वी! दुःख देनेवाले पदार्थोंको पुरुष त्यागताहै, सुखदेनेवाले पदार्थोंको ग्रहण करता है; सो विषय इंद्रियोंके संबंध, वियोगमें दुःखसुखमाननेवाला, मनरूप अहंकारही सर्व अज्ञानी जीवोंको दुःखदेता है। सोईदुःख देनेवाला पूर्वोक्त अहंकार तूने अबतक त्यागा नहीं। उलटा तूने सर्वसे अधिक अहंकार मानाहै कि; दुनिया लंडी क्या भजन जाने और क्या तपजाने, हम गुरुका दिया भजन करनेवाले महा तपस्वी, पंचधूनीके तापनेवाले हैं।हमारे चाचागुरु चौरासीधूनी तापतेहैं, बडे पंडित हैं, सिद्धहैं तथा वैद्यक विद्यामें कुशलरहे। हमारे भतीजा चेला कांटों ऊपर शयन करतेहैं तथाचार वक्त चारों धाम करिआये हैं, सारादिन पाठही करते रहते हैं। हम तूँबेका, आसनका, मालाका तथा मल मूत्रके त्यागका, मंत्र जानते हैं। हमारे गुरुतो राजोंकरके पूज्य होरहेहैं और हम सेरभर गांजा एक प्रहरमें उडादेतेहैं तथा हम सिमल धतूरा खाजाते हैं; हमको कछु दखल नहीं करसक्ता यह साधु निगुरा है, पूजा पाठ कछु नहीं जानता। जो कोई साधु गरीब होवे तिससे पूछना कि; तुम्हारा कौन धाम कौन द्वारा, कौन संप्रदाय है ? अमुकी पूजाका क्या मंत्र है ? धाम पुरीयोंको परसा है वा नहीं परसा है तो छाप दिखला ? तूँबेका मंत्र आता है ? झोलीका मंत्र आताहै ? तेरे काका गुरुका क्या नाम है? यदि वह सांगोपांग सबहाल कह सुनावे तो, तब चाहे हीन जाति भी हो परन्तु वह साधु पंक्तिका अधिकारी है, जो बिल्कुल नहीं कहै वा कोईक बात कहै, कोई न कहै तो, वह साधु नहीं निगुरा है

यह पंक्तिका अधिकारी नहीं, इसका दंडा, झोली, तूँबा खोसले, तूँबे झोलीका मंत्र भी नहीं जानता। अथवा दूसरे भेषका कोई विद्वान्‌भी हो, कदाचित् अन्नके वक्त आजावे, प्रथम तो प्रीति नहींकरे, अन्नमें भी संशय है कदाचित् देवे तो यह साधु पंथाई है, पंक्ति बाहिर इसको अन्नदेना और जो कोई गृहस्थ छोडकर, अपनी कल्याण वास्ते शरणागत होवे, तिसको बंधका हेतु सर्वअनात्मधर्मकाही उपदेशकरें वा गैयोंकी तथा भंडारकी सेवामें ही लगादेवे। बहुत उत्तम अधिकारी हो तो पूजामें लगादेवे परंपरा गुरु शिष्यादि संप्रदायक सीखना, पर्मधर्म मानके सिखावें मुखसे भक्तिही सार है ऐसा कहें और भक्तिका सम्यक् स्वरूप निश्चय करें नहीं। जो प्रातःकाल स्नानकरे और अखंड विभूति लगावे चाहे धनही राखे, पर महान तपस्वी होताहै। निरहंकार होकर सत्संगके प्रतापसे स्वरूपको भी कोईही जानतेहैं।इसीसे हे तपस्वी! इस मिथ्या देह अभिमानको त्याग, और आप सहित सर्व गोविन्द जान।पुनःइस जाननेको भी त्याग पीछे जो शेष रहै सो अवाच्य पद है सोई तेरा स्वरूपहै। यही परमभक्तिहै चाहे ज्ञानियोंसे पूछ देख! चाहे वेदमें ढूँढ देख, ! अथवा निज अनुभवसे विचार देख आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर यह कहकर जड़भरत तूष्णीं हुआ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तब मैंने कहा--हे तपस्वी! ये पंच अग्नि तुझ अज्ञानीको दुःखका हेतु है और ज्ञानीको सुखका हेतुभीहै क्योंकि, इनका स्वरूप तथा अपना स्वरूप जाननेसे सुखहै, नजाननेसे दुःखहै। हेतपस्वी! जैसे तू पंचअग्निकर तथा चौरासी धूनियोंकर, बाहर तपायमानहै तथा "मैं पंच अग्नि व चौरासी अग्निको तापताहूँ" इस अभिमानसे भी तू तपायमानहै, तैसे तू अंतर देह अभिमानी अविद्या, अस्मिता

राग द्वेष, अभिनिवेश, इन पांच अग्नियोंकर निरंतर जलता रहताहै, तुझेको शांति कैसे होवेगी ? हे तपस्वी ! देहादिक अनात्मामें आत्मबुद्धि, देहादिक अनित्यमें नित्यबुद्धि, देहादिक अशुचिमें शुचिबुद्धि, देहादिक दुःखोंमें सुखबुद्धि इसीका नाम अविद्याहै । सूक्ष्म अहंकारका वा मरनेका भय अस्मिताहै, राग द्वेष प्रसिद्धही हैं। परंपरा संप्रदायको वा सुनी बातको, सम्यक् विचारे बिना ग्रहणकर रखना हठछोडना नहीं चाहे झूठ भीहो,इसका नाम अभिनिवेश है। तैसेही--मन करके शरीर करके, तथा वाणी करके चौरासी प्रकारकी अहिंसा अर्थात् परपीरा नामदुःखरूप पाप देहाभिमानी पुरुषको निरंतर होता रहताहै। तिनका आत्मज्ञानबिना बाधा होना बहुत कठिनहै यह योगशास्त्रमेंलिखाहै । इस्से तुझे देह अभिमानीको चौरासी प्रकारकी अग्नि अंतर तथा बाहर जलातीहैं; तुझको शांति कैसे होगी। हेतपस्वी! ज्ञानीको यह तपायमान नहीं करतीहै क्योंकि, देहादिक संघातमें (ज्ञानीको) अहंबुद्धिका अभावहै।वाशरीररूपी पृथिवीपर श्रोत्रादिक पंचज्ञानेंद्रियही पंच अग्निहैं,शब्द,स्पर्श,रूप रस गंधरूपी काष्ठ गोबरीसे, जल रहीहै, देह अभिमानी अहंकाररूपी जीव तू तपस्वी पूर्वोक्त पांच अग्निनको तापताहै। जैसे–तू बाहर अग्निके, जलानेको साधन गोबरी काष्ट आदि, मिलने न मिलनेसे सुख दुःख मानताहै,तैसे-विषय इंद्रियके संयोगवियोगमें सुखदुःख तू मानताहै;इससे तू देह अभिमानी अंतर बाहर निरंतर जलता रहताहै । सारांश यह कि,मैं सुनताहूँ मैं स्पर्श करता हूँ, मैं देखताहूँ,मैं रसलेता और सूँघताहूँ, वा नहीं, यही तेरा तापना है । ज्ञानी इन पंचाग्नियोंकर तपायमान नहीं होता, क्योंकि वह निरभिमान है उलटा तिनको सत्ता स्फूर्तिदेता हुआ आकाशवत् असंगहै,शांतिरूपहै।वापंच कर्मेंद्रियपंचअग्निहैं,वाक्उच्चारण,ग्रहण

त्यागे,गमनागमन, मलमूत्रका त्याग करना,यह लकडी गोबरीहैं शरीररूपी पृथिवीपर तू देह अभिमानी जीव तपस्वी, तिन पांच अग्नियोंको तापताहै,मैं बोलताहूँ मैं ग्रहण त्याग करताहूँ;मैं गमनागमन करताहूँ;मैं मल मूत्र त्यागताहूँ,वा नहीं यही तेरा तापनानाम जलनाहै। ज्ञानी नहीं जलता,ज्ञानी उलटा तमासा देखताहै । वा पंचप्राण पंचाग्निहैं,पंचप्राणोंकी वृत्तियां इस गोबरी काष्ठादिसे शरीर रूपी पृथिवीमें जलतीहैं, तू देह अभिमानी तपस्वी (जीव) तिनको तापता है,मैं क्षुधा तृषावाला हूँ वा नहीं यही अहंकार तेरा तापना जलनाहै,ज्ञानीको नहीं । वा काम,क्रोध,लोभ,मोह, अहंकार यह पंचाग्नि हैं,काम क्रोधादिकोंके कार्य काष्ठ गोबरीहैं,शरीरूपी पृथिवीपर बलतीहैं,तू देह अभिमानी(मनरूपी जीव)तपस्वी तिनको तापताहै ।तात्पर्य यह कि,मैं कामी हूँ,क्रोधी हूँ, मैं लोभी हूँ, मैं मोही हूँ,मैं अहंकारी हूँ,वा नहीं यहीं तेरा तापना नाम जलनाहै ।अध्यास करके दुःख तू पाता है,देहाभिमानरहित आत्मवेत्ताकोदुःख नहीं । तैसेही–जाग्रत्;स्वप्न;सुषुप्ति,मरण समाधि यह पंचाग्नि हैं,शुद्ध सत्त्व,मलिन सत्त्व,शुद्ध रज,मलिन रज और तम यह गोबरी काष्ठहैं,शरीररूपी पृथिवीपर जलते हैं, तू इनका अभिमानी तपस्वी तापता है।किस प्रकारसे कि, मैं जागता सोता हूँ, जन्मता मरता हूँ,समाधि करताहूँ वा नहीं,यही तेरा तापना नाम जलना है। ज्ञानी इनमें नहीं जलता क्योंकि;ज्ञानी इन सर्व समाधि आदि अवस्थाके होने न होनेको केवल मनका धर्म जानताहै और अपने स्वरूपको समाधि आदिहोने न होनेमें निर्विकार जानताहै। वा मायारूपी पृथिवीपर यह पंचभूतरूपी पंचअग्निहैं, स्थावर जंगम रूप,सर्व शरीर इन पंचाग्नियोंकीगोबरी लकडीहैं,तूही मायाविशिष्ट ईश्वर,समष्टिअभिमानीहुआशबलब्रह्म,इनपंचाग्नियोंका

तपानेवाला तपस्वी है,मैंउत्पत्ति पालन संहार इस जगत्की कर्ता हूँ यही तापना है । परन्तु हे तपस्वी !अंतर बाहर पूर्वोक्त सर्वाग्नियोंके अंतर बाहर मध्यमें आकाश,स्थित हुआ हुआ भी,तिन सर्व अग्नियोंको अवकाश देता हुआ भी तिन पूर्वोक्त अग्नियोंकेहोने मिटनेमें असंग,निर्विकार,अभिमान रहित,निर्विकल्प स्थित है !हे तपस्वी!तैसेही जबतू आपको सत्चित्आनंद आत्मास्वरूप जानेगा तथा पूर्वोक्त सर्वाग्नियोंको सिद्धकरनेवाला,असंग, निर्विकार, निर्विकल्प,आकाशके समान व्यापक जानेगा,तब तूइन अग्नियोंके तापने न तापनेमें हर्ष शोक न मानेगा,तथा पूर्वोक्त इन अग्नियोंके होने मिटनेमें समही रहेगा,इससे देहाभिमानके त्यागका त्यागकर जो निर्भय होवे । ऐसे कहकर हे मैत्रेय ! मैं तूष्णीं भया । वामदेव विलास करने वास्ते बोलने लगा ।

अथ नारद तथा सनत्कुमारादिका संवाद ।

वामदेवने कहा-हेतपस्वी! एक समय चारों,सनकादिक,ब्रह्माके पुत्र तथा जयविजय विष्णुके द्वारपाल बैठेथे और आपसमें आत्मविचार कररहेथे । तिसी समय अवसर पायकर नारदभी आये । सनंदनने कहा हे नारद ! कहांसे आये हो ? कहां जावोगे ?अबतक कहाँ रहे ? नारदने कहा बुद्धि आदिकोंके साक्षी व्यापक आत्मा विष्णुसे आयाहूँ,विष्णु विषेही जाऊँगा, विष्णुविषेही रहताहूँ, आपभी विष्णु हूँ,जैसे जलसेही बुदबुदा प्रगटाहै,जलसेही आयाहै जलमें ही जावेगा,जलमेंहीस्थित है,जलमेंही लीन होवेगा और जलरूपीहीहै। तात्पर्ययहकि,पूर्वोक्त सर्ववातवाणीका विलासमात्र है,नहीं तो जलहीजलहै । तैसेही-चैतन्यरूपी समुद्रमें आनाजाना तरंगोंके समान जान । सनत्कुमारने कहा-रूप तेरा क्या है ? और

नाम तेरा क्या है? नारदने कहा जो विष्णुको भ्रम होवे कि,मैंकौन हूँ तो उसका भ्रम कौन निवृत्त करे? क्योंकि,माया सहित भूत भौतिक सर्व जगत् पुरुपसे प्रगट हुआ हैं,इससे जड है पुरुपको कौन कहे, तू यह है कि, वह है । असली पूँछे तो सर्वनामरूप मेरेही हैं। जैसे--स्वप्नमें यद्यपि सर्वनामरूपकी भिन्न भिन्न प्रतीति होती है, तथापि सर्व स्वप्नद्रष्टारूपही हैं । जिसकर नेत्र रूपको देखते हैं, जिसकर त्वचास्पर्शकरतीहै,नासिकाजिसकरगंधकोलेतीहै;रसना जिस चैतन्य कर रसको लेतीहै, कान सुनते हैं, मनजिसकर मनन करताहै, तात्पर्य यह कि जिस चैतन्यसे यह सर्व संघात, चेष्टा करता है सो मैंही हूँ। जय विजयने कहा हे नारद।ऐसे मत कहो, तेरे प्रभुके आगे जाय कहो कि,नारद कहताहै मैं विष्णुहूँ। नारदने कहा तू किसीको कहता है? तूआपविष्णुचैतन्यहै, वक्ताश्रोता सर्व विष्णु आत्माही है,तू मैं कहां है ? जय विजयने कहा हे नारद ! जब विष्णुके पास जाताहै तो,दंडवत करताहै अब कहताहैमैंविष्णु हूँ? नारदने कहा दंडवत्, अदंडवत्, करनेवाला, जिसको दंडवत् किया है, सो सर्व विष्णु आत्माही है ऐसे कहकर नारद चलेगये । वामदेवने कहा हे तपस्वी! तू भी इस अनात्मतपकोत्यागकर और "सर्व शुभाशुभ संघातकी चेष्टा सर्वशुभाशुभ चेष्टाकेकरनेवाला यह संघात और जिस प्रयोजन वास्ते चेष्टा करता है यह सर्व त्रिपुटियां, अस्ति भाति प्रियरूप में आत्माही हूँ वा इनते रहित अवाच्य पद हूँ, इस दृढनिश्चयरूपआत्मतपको कर" ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! जैसे संत लोग इच्छापूर्वक आयेथे तैसे चलगये और तपस्वी अपने स्वरूपमें स्थित हुआहै।हेमैत्रेय! तू भी इसअपवित्र शरीरका तथा शरीरके व्यवहारोका अभिमान त्याग और पवित्र हो। मैत्रेयने कहा-जिसने अहंकार किया है सोई त्यागेगा, मैं चैतन्यने अहंकार किया नहीं त्यागूँ कैसे? जैसे-

घटकाशने घटका अभिमान किया नहीं त्यागे कैसे? पर कहो कालसे कैसे मुक्त होवें ?

एक ब्राह्मण पतिपत्नीका-सम्वाद ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय!एक कथा सुन-एक ब्राह्मण था तिसकी स्त्रीने प्रश्न किया कि, हे प्रभो ! मुक्त कैसे होऊँ? क्योंकि, शरीर कालके वश है क्या जानें कि, अवही नाश होय और अपने स्वरूपसे अप्राप्त रह जाऊं। ब्राह्मणने कहा-जब काल आवेगा, तब आपही शरीरसे मुक्त करेगा चिन्तासे क्या प्रयोजन है मुक्ति वास्ते कर्तव्य करनेसे क्या मतलब है ? क्योंकि, मुक्ति नाम शरीरसे छूटनेका है, सो यह विचारसे आपसे आप होगा । क्योंकि तू चेतन्य आत्मा शरीरसे स्वाभाविकही मुक्त नाम जुदाहै, होना नहीं, घटाकाशकी न्याईं । स्त्रीने कहा-परलोकके रस्तेमें वैतरणी नदी सुनी है, सो कैसे तरूंगी ? इसलिये गोदान करना चाहिये ब्राह्मणने कहा, चिंता मत कर, जो तुझको परलोकमें लेजावेंगे, जिसरीतिसे वे वैतरणी नदीसे पार होवेंगे उसी रीतिसे तेरेको भी लेजावेंगे, जो उस नदीमें छोड़ जावेंगे तो धर्मरायके प्रश्न उत्तरसे छूटेगी पर हे स्त्री ! अनात्म देहादिकोंविषे,अहंबुद्धिरूपी गौ, पचभूत रूप ब्राह्मणोंको; जब तू ठीक ठीक दानकरदेवेगीतव वेतरणी नदी सहित, संसाररूपी समुद्रसे सहजही तरजावेगी। सारांश यह कि;यह देहादिक संघात मैं नहीं, न यह संघात मेराहै,किन्तु यह पंचभूतोंकाहै,मैंइससंघातका साक्षी चेतन्य आत्माहूं, यहीदानदेना है; अन्यथा अनेक गौकेदानदेनेसेभीनहींतरेगी।वाइसलोकपरलोकके सुखोंकेभोगनेकीकामनारूपतृष्णाहीवैतरणी नदीहैजिसने, इसका त्याग कियाहै तिसकोवैतरणीसेक्या कामहै?स्त्रीनेकहा परलोकके मार्गमें शूल और ततवालू होताहै और ऐसासुनाहैकिपगरखी

अश्वादिक दान करताहै;तिसको दुःख नहीं होता। ब्राह्मणने कहा जो दुःख यमकिंकरोंको होगासो हमकोभी होगा। स्त्रीनें कहा किंकरोंके शरीर सूक्ष्म हैं, उनको दुःख नहीं होता।ब्राह्मणने कहा यह स्थूल शरीर तो इहां अग्निमें भस्मीभूत हुआ, हमाराभी सूक्ष्म शरीरहै।पर हे स्त्री! जब तू "सर्व नामरूप जगत् विषे, सम, शांत परिपूर्ण,आत्मा मैं ही हूँ"इस निश्चयरूप पगरखीको पहिनेगी,तो सर्व दुःखरूप कांटे मिटजावेंगे, अन्यथा नहीं। स्त्रीने कहा जो जल दान इहां करताहै,उसीको परलोकके मार्गमें जल मिलताहै, अन्यको नहीं। ब्राह्मणने कहा यमकिंकरोंको जब प्यास लगेगी, जहांसे वह जलपान करेंगे वहांसे हमभी पान करेंगे। स्त्रीने कहा, वह यम किंकर हमको जल नहीं पान करने देवेंगे।ब्राह्मणने कहा किसी शास्त्रमें नहीं कहा कि जल यमकिंकरकाहै,उत्पत्ति,पालना संहार जगत्की सच्चिदानंद ईश्वरसेहै,यमकिंकरकी क्याशक्तिहै? जो जलपान न करने देवे। हे प्रिये! जो जलपान करने नहीं देवेंगे तो भी प्रसन्नरह क्योंकि,पंचभूतोंका शरीरहै,जब जल न मिला, तो शरीरनाश होवेगा, तौभी यमके प्रश्न उत्तरते छूटेंगे। पर हे प्यारी!जब तू यह निश्चय करेगी कि,मैं यह देहादिक संघात नहीं किन्तु,मैं देहादिकोंका;तथा देहादिकोंके सर्व व्यवहारका जाननेवालाहूँ इस ज्ञानरूप अमृतको पान करेगी,तो उलटा यमकिंकर भी तेरा पूजन करेंगे। स्त्रीने कहा जब हमको धर्मराजके पास ले जावेंगे और पुण्य पापका हिसाब पूछेंगे, तो क्या कहूँगी? ब्राह्मणने कहा जैसे-जाग्रत्में जो अभ्यास करता है वही विशेषकर स्वप्नमें आताहै। तैसे तूनेभी जीवते हुये, इस संघातकी चेष्टारूप पुण्य, पाप अपना धर्म माना है तथा निश्चय मृत्युलोक मानाहै, यह कर्म मैं करतीहूँ इसका फल भोगूँगी इत्यादि जैसा-तू निरंतर दृढ संकल्प करेगी, तैसे तुझको परलोकमें भासेगा। आपही कर्म

करताहै आपही उसका फल चाहताहै, तो उसकी प्राप्ति क्यों न होय ? मैं पापीहूँ,मैं पुण्यात्माहूँ, मैंवर्णीहूँ,मैं आश्रमीहूँ, यमकिंकर लेखा मांगेंगे इत्यादि जैसा तू संकल्पका अभ्यास जीवित अवस्था में करेगीतैसेही तुझको भासेगा। जब मूल अपनेको विचारे तो न पुण्यहै, न पाप है,न धर्मराय किंकर है, न जीव ईश्वर है, न पर लोकहै,यह सर्व भ्रम तेराहै, बरन् जो तूने मनमें विचाराहै, सोई प्रगटेगा इसकारण हे स्त्री ! तू आपको सत् चित् आनंदरूप जान भूलकर भी संघातके धर्मोंको अपना धर्म मत मान। क्योंकि,मैं पापी पुण्यवान् जीवहूँ और मैं सच्चिदानंद व्यापक स्वरूप हूँ, यह मनका मानना तुल्यही है,इससे आपको चिद्रूप माननाही श्रेष्ठहै अन्य नहीं।हे प्रिये ! अहंकारको त्याग जो कालके भयसे निर्भय होवे।जब कल्पना करनेवाले अहंकारही नहीं तब तू कहां?मैं, कहां? काल कहां ? संसार कहां ? यह लोक परलोक कहां ?शेष जो निर्विकल्पहै सोई तू है।हे स्त्री।अब कह तू कौन है?स्त्रीने कहा यह सर्व नाम रूप प्रपंच मनोमात्रहै क्योंकि, सुषुप्तिमें मन नहीं होता,तो पुण्य पापरूप जगत् भी नहीं होता, जब मन जाग्रत् स्वप्नमें फुरताहै; तो अनेक प्रकारका अहं त्वं रूप प्रपंच भासताहै,पर मैं दोनों अवस्थामें निर्विकल्प निर्विकारहूँ,यह संसार मेरा धर्म नहीं किंतु मैं असंसारी हूँ। ब्राह्मणने कहा--जब तू ऐसी है,तब भोग मैं कैसे भोगूँगा ? स्त्रीने कहा-सुख दुःखका प्रत्यक्ष अनुभव करनेका नाम भोगहै,सो तेरे भोगका साधन जैसे-आगे यह शरीर था सो अबभी है,मैं चैतन्य तो तेरे भोगका साधन न पूर्वथी न अब हूँ,मैं चैतन्य तो तेरा आत्मस्वरूपहूँ।मैं तो भोगता, भोग्य, भोग इस त्रिपुटीका पूर्वभी नाम अज्ञात अवस्थामें भी प्रकाशका साक्षी आत्माथी।अब ज्ञात अवस्थामें भी वही मैं चैतन्य त्रिपुटीको जाननेवालीहूँ, तू भी वहीहै और यह जगत् भी वहीहै।ब्राह्मणने कहामैं अतीत होताहूँ।

स्त्रीने कहा–मुझे चैतन्यका आगे, तुझदृश्य जडके साथ कब मिलापथा, जो अब अतीत होता है ? हे ब्राह्मण! जो तू दृश्यरूप प्रजा होकर चैतन्य राजारूप आकाशसे अतीत हुआ चाहे, तो सो न होगा क्योंकि; यह दृश्यरूप प्रजातेरे एक देशमें होनेसे वा सर्वदेश काल वस्तुमें मुझ चैतन्यको पूर्ण होनेसे।जैसे पृथिवी, जल; तेज, वायु, चारभूत तथा तिनके कार्य,भौतिक पदार्थ आकाशसे अतीत नहीं हो सक्के, पर तू चैतन्य इस दृश्यसे आपसे आप अतीतहैआकाशकी न्याई। बहुरिअतीत क्या होता है? ऐसा अतीत हो जिसमें ग्रहण त्याग दोनों न होवें। ब्राह्मणने कहा मेरा रूप क्या है? ब्राह्मणीने कहा रूप तेरा यही है, जो तूही है। इतना कहकर ब्राह्मणी स्वरूपमें लीनभई।

राजा मान्धाताकी कथा।

पराशरने कहा हे मैत्रेय!ऐसेही एक कथा और हुई है सो तू सुन एक मान्धाता नाम राजाथा उसने अर्द्धरात्रिमें अपनी सेजपर जागकर रानीसे कहा कछु भोजन लेआओ। रानीने कहा रात्रि दिन खाने सोवनेमेंही गया, परमार्थ कुछ न हुआ। राजा सुनकर आश्चर्यवान् हुआ और कहा कौन कर्म है?जिससे परमार्थ पाऊँ? रानीने कहा संग संतोंका कर, जो चाहनासे मुक्तहोवे और प्रेम करा।राजाने कहा.परम संत विष्णु हैं, सोई परमार्थका उपदेश करैगा। ऐसे विचार कर राजा विष्णुके प्रेममें ऐसे मग्न हुआ कि, जैसे नदी समुद्रमें मग्न होजातीहै। तात्पर्य यह कि, आपा अहंकारका त्याग किया और विष्णुरूप हुआ।ऐसी जिगरकी हायमारी मानो पुण्य पाप धोडाला और वेसुध होगया। किंचित्काल पीछे होशमें आया और कहा हे रानी! इस समय विष्णु आवैतोक्या भेंट राखिये? रानीने कहा तन, मन, धन। राजाने कहा–मल,

मूत्र,रुधिर मांस रूप शरीर है, रसनाभी मांसका टुकडा है और मन संकल्प विकल्परूप है,इससे यह उत्तम भेंट नहीं। रानीनेकहा–लाल मोती हीरे जवाहिर भेट करो। राजाने कहा तेरी मेरी दृष्टिमें माणिक मोती हैं, नहीं तो पत्थरोंके टुकडे हैं। रानीने कहा हँसी मतकर, वहुत काल तप करनेसे भी विष्णु नहीं मिलता तत्कालही विष्णु कैसे मिलेगा।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय! विष्णु यद्यपि अपना आत्मा है तथापि भ्रमकर अपने विष्णु आत्माके पानेकी इच्छा करता है। जैसे--स्वप्न नरोंका स्वप्नद्रष्टा विष्णु आत्माहै, परंतु भ्रमसे स्वप्नद्रष्टाके मिलनेकी इच्छा करताहै।

राजाने कहा संत कहते हैं--जिस समय इसने चाहना त्यागी उसी समय विष्णु मिला। राजाने यह वचन कहा, फिर ऐसा प्रेम उसके मनमें उमडा-कि, गुण यादकर रुदन करते २ विशुद्ध होगया, पुनःनेत्र खोलनेपर जिधर तिधर विष्णुही देखने लगा।

हे मैत्रेय! विष्णु राजाकी शय्यापर सोया हुआ न था, पर उसके निश्चय प्रेमसे, उसीके संकल्पने विष्णुरूप होकर दर्शनदिया राजाने कहा हे विष्णु! मैंने अविद्या कर माना था कि, मैं राजाहूँ परन्तु मैं पूर्वभी नहीं था, अब भी मैं नहीं हूँ, तूही आदि अंत मध्यहै, मैं कहां था तूही है। विष्णुने कहा हे राजन्! जो अहंकार रूपी भेंट मेरी तूने चिन्तन करीथी सो लेआ। राजाने कहा अहंकार करही तेरे चरणकमलोंकी मेरे मनमें प्रीतिहै, इस वास्ते अहंकारले और आप भी जा क्योंकि, तू तबतकहीं था जबतक अहंकार था, जब अहंकारनाश हुआ तू मैं कहाँ है? अवाच्य पदहै। राजा यह वचनकहकरअपने स्वरूपमेंलीनहुआ और विष्णुभी अंतर्धान हुये।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! अहंकारको त्याग जो पवित्रहोवे। मैत्रे-

यने कहा अहंकार और अनअहंकार; पवित्र अपवित्र, दोनों मुझ चैतन्यमें नहीं; परन्तु कालका भय जिससे छूटे सो कहो। पराशरने कहा हे मैत्रेय! एक इसी पर कथा सुन।

अथ यमकिंकर और यमका-सम्वाद।

एक समय यमकिंकरने धर्मरायसे प्रश्न किया कि, हे धर्मराय! तुम्हारा भय प्राणीको कैसे दूर होवे? धर्मरायने कहा भय मेरा अविद्यातक है, जब अपने स्वरूपको सम्यक् जाना, तब भय मेरा नहीं रहता। देह अभिमानीकोही मेरा भयहै, जिसने सम्यक् देह अभिमान त्यागा है, "नित चित् सुखस्वरूप आत्मा आपको जानाहै" तिसको मेरा भय नहीं। किंकरने कहा हे यमराज! तुम्हारी आज्ञासे प्राणीको शरीरसे निकासकर मैं ले आता हूँ परन्तु रूप उसका कुछ दिखाई नहीं देता, लेखा पाप पुण्यका तुम किससे पूछते हो? और सुखदुःख किसको देतेहो? यमराजने कहा इन बातोंके पूछनेसे तुझे क्याप्रयोजन है? यमकिंकरने कहा-बड़ा आश्चर्यहै कि, जिसपर हम लोग आज्ञा चलातेहैं, तिसका स्वरूप जानतेहीनहीं। तुम्हारी आज्ञा कर प्राणीको स्वर्ग नरकमें डालता हूँ और उसके रोनेका तथा हाय हायका शब्द सुनता हूँ, पर उसके स्वरूपमें भेद कुछ नहीं पडता, सुखदुःखमें एकसाहै, इससे जाना जाता है कि, देहसे निर्लेपहै। जो देहके अहंकारसे रहितहैं, तिसको कालकी फाँसीसे क्या दुःखहै? इससे जाना जाताहैकि, यह तुम्हारी धूम धाम भ्रममात्र है। धर्मरायने कहा-ईश्वरके कर्तव्योंको कौन जाने? यमकिंकरने कहा जो उसके कर्तव्योंको नहीं जानते, तो पापपुण्यक्योंकर विचारते हो? धर्मरायने कहा यह बात प्रगट करनेसे सर्व धर्म तथा मेरी आज्ञाका नाश होजायगा। यमकिंकरने कहा धिक् है! मुझको और मेरे दण्ड तथा फांसीके देनेको कि, जानूँ नहीं यह

और आपको किंकर मानूँ ।धर्मरायने कहा इन बातोंसे क्या निकासेगा, भजन गोविंदका कर,जो संसारके दुःखसे बचे ।मलिनता अहंकारता जो तेरे मनरूपी दर्पणको लगीहै,सो नाश होगी मूल तेरा तब आपसे आप प्रगट होगा ।यमकिंकरने कहा आपकोजाना नहीं तो भजनसे क्या प्रयोजन है ? हे यमराज ! जो मेरे प्रश्नका उत्तर दो तो भला,नहीं तो प्राणोंका त्याग करूंगा । यमराजने कहा-किंकर ! प्रथम सर्व चाहनासे मनको अचाह कर जो अपने मूलको पावे । किंकरने कहा मैं कौन हूं ? जो मनको चाहनासे निवृत्त करूँ और मनका क्या स्वरूप है ? जो चाहनासे छूटे ? धर्मरायने कहा तू नित्य सुख ज्ञानस्वरूप है और मन संकल्प, विकल्प पंचभूतोंका विकाररूप है । किंकरने कहा जब मैं स्वतःही यथार्थ अचाहरूपहूं तोमनकी चाहना अचाहनासे मुझचैतन्यको क्या हर्ष शोक है? जोमुझ ज्ञानस्वरूपमें चाहना हो तो त्यागभी बनता है? इससे दूसरेके घरकी बात मत कहो,मेरे अपने घरकी कहो ।मन-चाहे अचाह हो,वा न हो आप मुये जगप्रलयहै,जब आपही नहीं तो जगत् कहांहै!सुषुप्ति मूर्छावत् । हे यमराज! सर्व जीव,ज्ञानी,अज्ञानी,आपसमानही शुभाशुभ सर्व चेष्टा करतेहैं परन्तु जिसके देह अभिमानहै, अपने स्वरूपको नहीं जानताऔर आपको पुण्यवान्‌पापी मानताहै,वहीतेरी यमपुरीमें आताहै,दूसरा आत्मज्ञानी आता नहीं! इससे देह अभिमानही दुःखका मूलहै ।

एक राजाकी कथा ।

(जिसको गीदडसे वैराग्यका उपदेश मिला)

धर्मरायनेकहाहेकिंकर!एक राजा था,सो शिकारकोवनमेंगया। कोई शिकार न मिली,तब गीदडको बाणमारनेलगा । तब गीदडने

कहा,मेरेको मत मार-त्रिलोकी न रहेगी। राजाने कहा--तुझ जैसे मैंने अनेक मारे पर त्रिलोकी नष्ट न हुई। गीदड़ने कहा-हे राजन्! जब मैं नहीं तो त्रिलोकी कहांहै?राजाने सांच जाना कि "आप मुये जग प्रलय है" गीदड़को न मारा। इसी समय वैराग्य (राजाको) उत्पन्न हुआ घरमें आकर रानीको एकांतदेशमेंबुलाया और वैराग्यका वृत्तांत सब कह सुनाया। राजाने कहा-हे रानी! मैं अतीत होता हूँ। रानीने कहा बहुत भला है,पर हे राजन्! अतीत किससे होते हो राज्यसे अतीत होते हो,तो जब आप नहीं उत्पन्नहुयेथेतो भी राज्यथा,जब आप यहांसे चले जावोगे,वामरजाओगे तो भी राज्य बना रहेगा और कोई न कोई राज्यका अभिमानी भी बनाही रहेगा। इससे आपका राज्य नहीं,जो आपका राज्य होता,तो आपके संग आता और आपके संग जाता,सो तो ऐसे देखनेमें नहीं आता। हे राजन्! यह राज्य पुण्योंका है, आपका नहीं। राजाने कहा पुण्य मैंने कियेहैं इससे राज्य मेरा है। रानीने कहा हे राजन्! पुण्योंके कर्ताको जीव,मन,बुद्धि, चित्त, अहंकार, अविद्या इत्यादि नामोंकर कथनकरतेहैं,यहीकामोंकेकर्ताहैंऔरयही कर्मोंके फल भोक्ताहैं। आपतो जब जीव पुण्य,पापरूप,कर्मकरताहो वा नहीं तथा जब तिनका फल भोक्ताहो वा नहीं भोक्ताहो, तिन दोनों अवस्थाओंके साक्षी चैतन्य नित्य मुक्तआत्माहो। इससेआप पुण्योंके कर्ता नहीं और तिन कर्मोंके फल सुख दुःखके भोक्ताभी नहीं,इसीसे आपमें कर्तव्यभी नहीं। राजाने कहा मनादि जड़है, घटवत्,कर्मोंके कर्ता भोक्ता कैसे बनसकते हैं। रानीने कहा-हे राजन्! मनादि घटके समान अति जड़भी नहीं और निर्विकार आत्माकीन्याईं चैतन्यभी नहीं किंतु, मध्यभावी हैं, क्योंकि आप नित्य सुखरूप आत्माके आभासके ग्रहण करनेकी मनादिकोंको योग्यता है और घटादिकोंको योग्यता नहीं। -

हे राजन्! जो आपको दुःख देताहै तिसीसे अतीत हूजिये । जो राज्यमें दुःख देनेकी शक्ति हो,तो राज्यमें स्थित सर्व पुरुषोंको दुःख होना चाहिये,इससे पदार्थोंमें सुख दुःख नहीं, कल्पनाका बनाया सुख दुःख है । हे राजन्!जो आप कहो-इस गृहसे अतीत होता हूँ,सोभी नहीं बनसक्ता क्योंकि यह हवेली या मंदिर आपके संग आया नहीं और न आपके संग जावेगा भी जो आपकी होती तो आपके संग रहती।हे राजन्! इन हवेलियोंमें अनेक आपके पिता पितामह रहरह कर चले गये और अनेक रहकर चलेजावेंगे,आप भी कुछ दिन रहकर चले जाओगे ।रस्तेके मुसाफिरखानेके समानहैं इससे यह हवेलियां मुसाफिरोंकी हैं आपकी नहीं।जो मुसाफिर मुसाफिरखानेमें मूर्खता करके अपना दावा करता है तो दुःख पाता है और अपनी इज्जत खोता है । जो अपना ममत्व नहीं बांधता सो सुख पाता है और गुजरानभी अच्छीतरहसे करता है।हे राजन्!पृथिवीके विकाररूप इस गृहके अनेक चीटीं, मकोड़ी, मूसा, सर्पादिक,जीव तथा आपके संबंधी अभिमानी हैं केवल आपका गृह नहीं किंतु पूर्वोक्त सर्वोंका है । जो गृह दुःख दायक हो तो पूर्वोक्त सर्व जीवों को दुःख होना चाहिये । इससे गृह दुःखदायक नहीं जो आपको दुःख देय वा आपका होवे तिसका त्याग करो । दूसरा गृह तो जड है जड पदार्थको सुख दुःख देनेकी सामर्थ्यभी नहीं,परंतु आप सुख दुःख मानलेनेसे होताहै, नहीं मानैतो नहीं होता । हे राजन्!इस संघातरूप गृहसे अतीत होओ,नाम देह अभिमान त्यागो, अभिमानही त्यागे पूरा पड़ेगा अन्य प्रकार नहीं। राजाने कहा--इन संबंधियोंसे अतीत होता हूँ।रानीने कहा हे राजन्! आप चैतन्य इन संबंधियोंसे स्वतः ही अतीत नाम भिन्न हो,एकरूप नहीं और आपभी अपनेको ।पुत्रादिक संबंधियोंसे अतीत अर्थात् भिन्नही मानते हो ।

कहींऐसा न होय कि,इन संबंधियोंको त्यागोऔरदूसरेकिसीभेष-
के संबंधियोंको ग्रहण करो ।यहां तो राजा और गृहस्थीकहाते हो
अतीत होनेपर मैं अमुक भेषका अतीत हूँ, अमुक मेरे गुरु,अमुक
गुरुभाई,अमुक चेला, अमुक सेवक, आदि मिथ्या अभिमानमें
बंधोगे । यहाँ वहाँ सब प्रकारसे अभिमान समही यहां तो मुकुट
मोतियोंकी माला पहरतेहो फिर वहांतिलकऔरतुलसीकी माला व
रुद्राक्षकी माला धारण करोगे इसहेतु जैसेनामरूप तुम्हारा यहां है
तैसाही अतीत हुये होगा । जैसे महल इहां है तैसेहीकिसीगुरुका
मठ वहांभी होगाइससे कहो हे राजन्! किसते अतीत होतेहो।

रानीने कहा हे राजन्।असली विचार करो तो भ्रम सिद्धशब्द
स्पर्श,रूप, रस, गंध,पंच विषय और कामक्रोधादिकपंचकर्मेंद्रिय
पंच ज्ञानेंद्रिय, पंचप्राण, मन,बुद्धि,चित्त,अहंकारतथा इनके का-
रणभूत, पंच महाभूत, यह आपकेसंबंधीहैं वाकार्यकारणनामरूप
प्रपंचयहसंबंधीहैंयहीपिछलेजन्मांतरोंमेंभी संगथे, जबलगआपको
निजस्वरूपकाज्ञान नहींहोगातबलगआगेभीरहेंगे।यही संबंधी ही
आपके भ्रमकर दुःखके देनेवाले हैं,इनसे अतीत होते नहीं और यह
पुत्रादिक संबंधी जो आपके सुखकेसाधनहैंतिनसेअतीत होतेहो।
इससे आपकी बुद्धि हँसनेयोग्य है । हे राजन् !तिन (पुत्रादिक
संबंधियों)को त्यागतेहो।सो आपही यह कालपायकरत्याग जावें-
गे अथवा आपही संबंधियोंकोस्वाभाविकत्यागोगे परन्तु,मनादि
संबंधी आपको ज्ञानसे प्रथम कदाचित् भी नहीं त्यागेंगे जो आप
मनादि संबंधियोंसे अतीत नाम आपको सम्यक् भिन्नमानोगेतब
कालकी फाँसीमें न आवोगे । हे राजन् ! अनेक वार आपने
स्त्री पुत्रादिकसंबंधी त्यागे हैं और ग्रहण कियेहैं तथा ज्ञानविना
आगे त्यागोगे तथा ग्रहण करोगे परन्तु दुःख दूर न हुये होंगे इस
हेतु अंहकारहीको त्यागो जो सर्वत्यागी होवोएकवस्तुकोत्यागने

और एकको ग्रहण करनेसे सर्व त्यागी न होगे परन्तु सर्वत्यागोंका त्याग करनेसे पीछे जो अवाच्यपद शेप रहेगा, सोई आपकास्वरूप है। यह नहीं कि, अहंकार किसी दूसरे यत्नसे त्यागाजाताहैकिन्तु विचारकी महिमासे ही त्यागा जाताहै,अन्यसाधनसेनहीं।राजाने कहा हे रानी। अब मैं सर्वकामनासे निराश हुआहूँ,जो कहे तू सोई करता हूँ। रानीने कहा प्रथम आप अहंकारको भस्म करो पीछे जो आपकी इच्छा होय सो करना।राजाने कहा मैं क्याकरूँ ? और किसकी शरण जाऊँ ? जो मुझे उपदेश करे। रानीनेकहामैंउपदेश आपको करती हूँ,पर मुझको आपने निजस्त्री मानाहैतिसबुद्धिका त्याग करो।राजाने कहा मेरे मनमें ऐसी अग्नि उपजी है कि, स्त्री पुरुपका भाव भस्म होगया है;जो संत्को नहीं चाहता, सोई मल मूत्ररूप स्त्रीआदि शरीरकी इच्छा करता है और मुझको तो इंद्रकी अप्सराकीभी इच्छा नहीं, तो तेरी क्या वांछा है। रानीने कहा अहंकारको त्याग करो देखो आप कौन हो आपकाकौनहै?आप किसके हैं ? यह जो दृश्यमान जगत् है,सो नेत्रके खोलनेसे प्रगट होता है। जब नेत्र मूँदे न आप न कोई आपका और न आप किसीके, न यह नाम तथा रूप इच्छा अनिच्छादिमनरूप जगत् रहता है।नेत्रके खोलने मूँदनेसे मनका फुरना अफुरना जानलेना, जबआपही नहीं तब क्या ग्रहणकरते हो? और किसकात्यागकरते हो? राजा यह वचन सुनकर सर्वकामनासे निष्काम हुआओर अपने अंतःपुरमें गया,तब जैसे आगे हमेशावस्त्रभूपणपहरकर राजाकी सेवामें स्त्रियाँ आतीथीं वैसेही आई।राजाने देखकर कहा हे स्त्रीजनो! जब मैं नहीं तब तुमसे क्या प्रयोजन है ? ऐसे कहकर राजा विशुद्ध होगया। सबने जाना कि,राजा बावरासाहोगयाहै। रानीने कहा चिंता मतकरो। राजाको कुशल है। जबकुछकालबीता

तो राजा जाग्रत् हुआ और नेत्रभर ऐसा रोया कि, हो मेंअहंकार को धोयडाला फिर कहने लगा कि हस्ती, अश्व, अनुचर, पुत्र, स्त्री मेरे नहीं, यह शरीरभी मेरा नहीं,जब तो शरीरके संबंधी मेरेकहां-से होवेंगे। इससे यह सब मिथ्या भ्रममात्रहै परन्तु मैं आपको नहीं जानता कि, मैं कौनहूँ किसकारण पक्षीके समान इस शरीरमें बँधा हुआ हूँ। यह मनुष्यशरीर चिंतामणि हाथ आयापरन्तुव्यर्थ विषयरूप कीचडमें डालदिया और अपनी प्रथा (निजहाल) न समझी यह अत्यंत मूर्खता है ।

हे रानी ! मेरी वही अवस्था हुई है कि, एक अतीत नदीके किनारे बैठाथा और नदीमें बुद्बुदे उठेथे, तब अतीतने बुद्बुदेको देखकर कहा हे बुद्बुदे। तू मुझसे ऐसा स्नेहकर कि, तेरा मेरा श्वास एक होजावे। अतीतकेकहतेरही बुद्बुदा लीन होगया और अतीत रुदन करने लगा कि, हाय हाय मेरा बुद्बुदा नष्ट होगया है, इसके विना मैं कैसे जीऊँगा। यह अतीतकी अवस्था देखकर एक वि-द्वानने कहा हे मूर्ख ! बुद्देको तू क्यों रोता है ? आपको रो कि तूभी उसीके समान एक श्वास मात्रका मिहमानहै । रानीने कहा जब ऐसे जाना है, तब क्यों शरीरादिकोंके साथ स्नेह करतेहो ? राजाने कहा चाहना पिशाचके समान मनको लगीहै,इससे कौनहै जो मेरी रक्षा करे? रानीने कहा चाहना आप करते हो, रक्षा औरसे चाहते हो तब कौन है जो आपकी रक्षा करे, एक श्वास चाहनासे अचाह होनेसे आपसे आप मुक्ति है पीछे सर्व दर्शन आपकाहीहोगा क्योंकि, अहंकाररूप चाहना ही भगवान्‌के मिलनेमें प्रतिबंध है जब चाहनाकरनेवाला अहंकार मिटा तब आपही आप है। हेराज-न् असली विचार करें तो चाहना मनको लगीहै, इस व्यवहारके सिद्ध करता आप चैतन्यको तो चाहना नहीं लगी क्योंकि, चाह-ना और मनके जाननेवाले; आप तो चैतन्यसाक्षी आत्माहैं और

चाहना मनको लगीहै आपको नहीं । मन चाहनाकी निवृत्ति करै वा न करे चाहे मनको छोडे वा न छोडे आपकोदूसरेके व्यवहारमें क्या फिक्रहै कि इस मनका फिक्र करतेहो तो दूसरोंका फिक्र क्यों नहीं करते ? क्योंकि जैसे सत्य चैतन्यसे इस संघात सहित मन, चाहना जुदीहैं, तैसे सर्व लोक जुदे हैं । जो दया करना है तो सर्व पर करो नहींतो तूष्णीं होरहो । हे राजन् मनको पिशाचके समान चाहना लगी है इस चाहनासे भी अचाह हूजिये।सारांश यह कि, आपको स्वतःही सर्वस्वस्वधर्म सहित मन वाणीके फुरनेसे रहित अफुर जानो, माया और मायाके कार्य नामरूप प्रपंचको फुरनारूप जानोवा चाहना अहंकाररूप जानो। रानीने कहा हे राजन्! अतीत हूजिये। राजाने कहा अतीत गृहीहोने वालाहीनहींरहा भस्म होगयाहै, अब अतीत कौनहोवे ? जो मुझसे पूछो तो मैं स्वरूपसेही बंध मोक्षसे अतीतहूँ अब अतीत होने वास्ते मुझे चैतन्यको यत्न नहीं क्योंकि, बंध मोक्षरूप प्रपंच भ्रमरूप है भ्रमकी निवृत्तिवास्ते अपने स्वरूप अधिष्ठानका जाननेवत् जाननाही कर्त्तव्यहै, अन्य नहीं । हे रानी ! मैंने अपने स्वरूपको सम्यक् अवाङ्मनसगोचर कर जाना है इस्से स्वतःही अतीतहूँ । रानीने कहा हे राजन्! जब आप चैतन्य मन वाणीका अविषय हो तो मन वाणीको विषय कौन है ? हे रानी ! अस्ति भाति प्रिय रूप मैं आत्माही मन वाणीका विषयहूँ और मन वाणी रूपभी मैंही हूँऔर अविषयभी हूँ । तात्पर्य्य यह कि, माया और मायाका कार्य सर्व नामरूप प्रपंचभी मैंहीहूँ तथा तिसते रहित भी मैंही हूँ, इसके आगे क्या कहूँ ? यह कह कर राजा तूष्णीं हो विष्णुका ध्यान करने लगा क्योंकि पूर्वही राजा विष्णुका उपासकथा । धर्मरायने कहा हे किंकर जिनके मनसे द्वैत मलीनता दूरहोतीहै तिनकी यह अवस्थाहै।यमकिंकरने कहा मुझ प्यासेको

अमृतरूप कथा उस राजाकी कहो,ढील मत करो। गोविन्द विना सब मिथ्या है क्योंकि,जब मैं प्राणीको लेने जाताहूँ तब धन, पुत्र, स्त्री,गृह,माता, पिता संबन्धी शरीर सर्व वहांही रहजातेहैं, अपना कर्तव्य साथ लिये एकलाही आताहै और एकलाही जाताहै, इससे सब मिथ्या है।

धर्मरायने कहा हे यमकिंकर! व्यापकविष्णु आत्मा राजाके अंतःकरण विषेही था परन्तु राजाके दृढ संकल्पनेही विष्णुरूप होकर बाहर दर्शन दिया। विष्णुने कहा हे रूप! मेरे वचन क्यों नहीं करता?राजाने कहा हे विष्णु!वाणीसे पूछो--वचन क्यों नहीं करता,जो वाणी वचन करे वा न करे मुझको चैतन्यकी हानि लाभ नहीं।जैसे वायुका छिद्रद्वारा शब्द हो वा न हो परन्तु आकाश दोनों अवस्थामें सम है। हे विष्णु! जब सर्व तूही था तब मुझको क्यों न उपदेश कियाकि,सर्व मैंहीहूँ!विष्णुने कहा तबतक तेरेकषाय परिपक्व नहीं हुये थे।जैसे-मलीन दर्पणसे अपना मुख स्पष्ट नहीं दीखता, तैसे तेरा मनरूपी दर्पण मलीन था। "आप सहित सर्व विष्णुहै"इस भावनारूपी भक्तिरूप छाई (रोली) करके अब शुद्ध हुआहै इसीसे तूने आपको अस्ति भाति प्रिय सर्व आत्मारूप जानां और अब तू विष्णु हुआहै। हे राजन्! विष्णु नाम व्यापक वस्तुकाहै, जो व्यापकवस्तुहै सोई सत्यहै, परिच्छिन्न वस्तु सत् नहीं होती,घटके समान जो सत् वस्तुहै सोई चैतन्य ज्ञानस्वरूप वस्तु होतीहै, असत्वस्तु ज्ञानस्वरूप नहींहोती। जो ज्ञानस्वरूप वस्तुहै,सोई सुखस्वरूपवस्तुहोतीहै,जड वस्तु आनंदस्वरूप नहीं होती।इसीसे व्यापक सच्चिदानंद वस्तुका नाम विष्णु है,सोई मेरा स्वरूपहै सोई तेरा स्वरूपहै, सोई चींटीका, श्वानका,स्त्रीका तथा सर्व जगत्का स्वरूप है और जिसने अपने इस स्वरूपको सम्यक् जानाहै सोई विष्णुहै। हे राजन्! शंख, चक्र, गदा, मोर मुकुटा-

दिक लक्ष्मी सहित चतुर्भुज दृश्यमान यह मूर्ति तो माया मात्रहै और परिच्छिन्न वैकुंठनिवासी है, यह व्यापक सच्चिदानंद स्वरूप नहीं होसक्ता। जैसे अन्य दृश्यमान मूर्ति मायामात्रहै—तैसे यह चतुर्भुज मूर्तिभीहै, विशेपता नहीं। हे राजन्! यह बात पक्षपातसे रहित मैंने तुझको कहीहै, इस सम्यक् विचारमें बडाई छुटाई किसीकी नहीं होती, जहां पक्षपातहै, तहां सम्यक् आत्मनिरूपण नहीं, इससे अब विष्णु हुआ है।

राजाने कह—हेविष्णु! जगत्की उत्पत्ति ब्रह्मासे होतीहै, जगत्की पालना विष्णु करताहै और संहार शिवकरताहै, शास्त्रोंमें ऐसा कहाहै तुम सत्यवक्ता हौ जैसे यह बातहै तैसे कहो। विष्णुने कहा हे राजन्! जिस सच्चिदानंद व्यापक अधिष्ठान वस्तुसे, ब्रह्मा, विष्णु शिवकी यह दृश्यमान मूर्तिभी उत्पन्न होकर प्रतीत होतीहै पुनः जिसमें लीन होतीहै, तिसी वस्तुसे जगत्की उत्पत्ति पालना संहार होताहै, अन्यसे नहीं क्योंकि व्यापक सच्चिदानंद आत्मवस्तुसे भिन्न सर्व परिच्छिन्न, असत् जड दुःखरूप अनात्मवस्तुहै। असत् जड, दुखरूप, अनात्म वस्तुसे असत्, जड दुःखरूप अनात्मवस्तुकी उत्पत्ति पालना संहार नहीं होसक्ता। जैसे-इन्द्रजालीही सर्व पदार्थोंकी, मिथ्या भ्रम मात्र, प्रतीति करसक्ताहै, इन्द्रजालीद्वारा माया मात्र रचे पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको नहीं रचसक्ते, इन्द्रजालीही रचसक्ताहै। जैसे स्वप्न जगत्की स्वप्न द्रष्टाही उत्पत्ति पालना संहारकर सक्ताहै, स्वप्न पदार्थ किसी पदार्थकाभीउत्पत्ति, पालना संहार नहीं करसक्ते क्योंकि, स्वप्न द्रष्टा भिन्न, सर्व स्वप्न पदार्थको तुल्यही भ्रम मात्रहै। इससे हे राजन्! जो तूने सम्यक् अपने सच्चिदानंद व्यापक स्वरूपको जाना है, तो निःसंग होकर चिंतन कर कि, मुझ चैतन्यसेही सर्व जगत्की मर्यादा

है, इस नामरूप प्रपंचका मैंही चैतन्य मालिक अधिष्टान हूँ, मुझ चैतन्यसे ही इस जगत्की उत्पत्ति पालना संहारहै, अन्यसे नहीं। यही वेदांत शास्त्रका डिमडिमाहै तथा अपना अनुभवहै। जिसको अपने स्वरूपका अनुभव हुआहै, वह शास्त्रका आश्रय नहीं लेता क्योंकिं, अनुभवसेही सर्व शास्त्र होते हैं। अनुभव नाम सत् चित् आनंद आत्माका है, शास्त्र तो केवल प्रमाण मात्रही होते हैं। इससे हे राजन् ! और शास्त्र तो कर्मकांड और उपासनाके प्रतिपादक हैं और वेदांत शास्त्र ज्ञानकांडका प्रतिपादक है। जो कर्म, उपासनाके प्रतिपादक शास्त्र सत् हैं, तो वेदांत शास्त्रभी सत्यहै, जो वह असत् हैं तो यहभी असत् है क्योंकि; सर्व शास्त्रोंको सत् अंगीकार करना चाहिये या असत् अंगीकार करनाचाहिये। एकको सत् और एकको असत् मानना यह हिसाब बाहिर बातहै। वास्तवमें विचारे तो कर्मकांड उपासनाकांड अन्तःकरणकी मलीनता और चंचलताके दूरकरनेके लिये ज्ञानके उपयोगी हैं अब हे राजन् ! तू कौनहै ? राजाने कहा हे विष्णु! तूने जो कहा "तू कौनहै" ? इसमें त्रिपुटी सिद्ध होती है। एक वचन करता दूसरा बचन, तीसरा जिस प्रयोजनके लिये वचन किया, यह त्रिपुटी जिस प्रकाश कर सिद्धहुई है सोई मैं हूं। पुनः राजाने कहा हे विष्णु तुम्हारा स्वरूप क्याहै? विष्णुने कहा जो तेरा स्वरूप है सोई मेराहै शंख, चक्र, गदादिकों सहित यह दृश्यमान मूर्ति तथा सर्व जगत् माया मात्र है, मैं चैतन्य अमायक स्वरूप हूँ, परन्तु हे राजन्! मुझ अतिथिका तुम आतिथ्यकरो। राजाने कहा हे प्रभो! स्वराज अपना तुझको दिया, मैं नहीं हूं जो कुछ है सो तूही है। विष्णुने कहा अहंकारतूने मुझको दिया क्या दिया? परन्तु अहंकारसेही सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार है तथा अहंकारकरही जीव ईश ब्रह्म है, तथा सर्व संसार है, जब तू नहीं तब संसार कहां है? अहंकारकेदेनेसे

सर्वस्व दान है । राजाने कहा क्या अहंकार तुझसे भिन्न है? मैंने जाना है कि, तुझसे भिन्न कुछ नहीं। विष्णुने कहा जो भिन्न नहीं तो अहंकारका देना कहां है ? राजा यह वचन सुनकर अपने स्वरूपमें लीन हुआ । जैसे घटाकाश महाकाशमें लीन होवे।

रानीने कहा हे विष्णु ! राजाको तूने मारा है? विष्णुने कहा हे रानी ! राजा मरा नहीं अमर हुआहै। रानीने कहा हे विष्णु!तू कोन है? विष्णुने कहा मैं सत् चित् आनंद व्यापक अद्वितीय हूँ! रानीने कहा इनपदोंका अर्थ कहो क्योंकि, मैं वेद, शास्त्र, पढी नहीं हूँ और सत्संगभी, मुझको स्त्री होनेसे, किंचित् मात्रही है। विष्णुने कहा सत् उसको कहते हैं जो असत्से जुदा होवे और चित् उसको कहते हैं, जो जडसे भिन्न होवे तथा आनंद उसको कहते हैं, जो दुःखसे न्यारा होवे, व्यापक उसको कहते हैं जो परिच्छिन्न न होवे और अद्वितीय उसे कहते हैं जो द्वैतसे रहित होवे । रानीने कहा मैं जानतीथी कि,तू निर्वैरनिर्विकार हैं परन्तु तेरे कहनेसे जाना कि, सर्व विकार तेरेमेंही हैं क्योंकि, अवाङ्मनसगोचर विषे बुद्धि रूपी वाणियोंके हिसाबका खाता नक्की हो चुका है, अब इन हिसाबोंसे कुछ मतलब नहीं । हे विष्णु। जब सर्व अस्ति भाति प्रिय रूप तूही हैं, तो किससे तू न्यारा है ? और किससे तू अभिन्न है? तुझविषे द्वैत अद्वैत भिन्न अभिन्नका मार्ग नहीं, नहीं तो अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे जुदा असत्, जड दुःखरूप प्रपंचको दिखला जिससे तू न्याराहै।जैसे सुवर्णसे भिन्न भूषणोंको दिखला इत्यादि जलतरंगादि दृष्टांत अनेक हैं । इससे हे विष्णु ! सर्व मेंही हूँ, तू है ही नहीं।विष्णु हँसा और कहा मुझे ब्रह्म कहते हैं। रानीने कहा जीव,ईश,ब्रह्म,सच्चिदानंद इत्यादि नामरूप मुझ अवाचपदसेही सिद्ध होतेहैं,मैं चैतन्य किसी करभी सिद्धनहीं हो सक्ता, इससे मेरा नमस्कार मुझको है।मुझमें जानने न जाननेका

मार्ग नहीं और जानना न जानना भी मेरेमेंही है तथा सर्व दृश्य मेरा चमत्कार है लालकी दमकवत् । विष्णुने कहा हे रानी । तू कौन है ? रानीने कहा मैं आपको नहीं जानतीकि,कौन हूँ क्योंकि जो जाननेमें आताहै सो दृश्य मिथ्याहै,बुद्धिका धर्म है और मैं चैतन्य सर्वका जाननेवाला हूँ,मुझको कौन जाने कि,तू कौनहै ? इसीसे स्वयं प्रकाश हूँ ।विष्णुने कहा तुमसे सर्व जगत् प्रगट हुआ है तू क्यों नहीं आपको जानती ? क्या तू जड है ?रानीनेकहा जड घटादितमोगुणके कार्यहैं और बुद्धि भूतोंके सत्त्व गुणका कार्य है,इसीसे घटादिकोंकी अपेक्षासे बुद्धि चैतन्यहै । मैं अवाङ्मन-सगोचर जड चैतन्यसे रहित चैतन्यस्वरूपहूँ,जिस मुझकर जड चैतन्य, सत, असत्, ज्ञान, अज्ञान, ग्रहण, त्याग, धर्म, अधर्म, मन वाणीका कथन,चिन्तन,सिद्ध होताहै,जिस मुझेकर नामरूप जगत् सिद्ध होता है सो,मैं स्वयंप्रकाश स्वरूप आत्मा हूँ, यही सम्यक् जानना है ।

मोक्षकी प्राप्तिके हेतु कुछ कर्तव्य नहीं ।

बंधमोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते,शारीरिक वा मानसिक वा वाणीसेभी कर्तव्यकरना कुछ नहीं क्योंकि,बन्ध मोक्ष अपनेस्वरूपके अज्ञानसे भ्रममात्रसिद्ध है । तात्पर्य्य यह कि,अपने स्वरूपको सम्यक् न जानना बंध है और अपने स्वरूपको सम्यक् जाननाही मोक्ष है । इसके अतिरिक्त बन्ध मोक्ष कोई वस्तुनहीं,जिसके ग्रहण त्यागसे पुरुषको बन्ध मोक्षहोवे और न कोई बन्ध मोक्षकास्थान है,जहां जाकर बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्ति होती है । विष्णुने कहा हे रानी। बंध मोक्षका प्रतिपादक शास्त्र निष्फल होजावेगा। रानीने कहा बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते शास्त्र यत्न नहीं कहता,वरन्जैसे अंधकार के दूरकरने वास्ते तथा अंध-

कारमें धरी मणिकी प्राप्तिवास्ते, दीपकका चसानाही कर्तव्य है, अन्य नहीं,परन्तु दीपकके चसाने वास्ते अनेक साधन हैं, कोई अंधकारके दूर करनेवास्ते तथा अंधकारमें धरी मणिकी प्राप्तिवास्ते अनेक साधन नहीं। तथा जैसे अपने मुखके देखनेवास्ते केवल शुद्ध दर्पणका सन्मुख करनाही कर्तव्य है,परन्तु जिस दर्पणमें मलिनता होवे तिस दर्पणकी मलिनताके दूर करनेवास्ते अनेक साधन हैं,कोई मुख देखनेके अनेक साधन नहीं। तैसे-बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते केवल अपने स्वरूपका सम्यक् जाननाहीकर्तव्य है,अन्य नहीं परन्तु जानना सम्यक बुद्धिसे होता है,जिस बुद्धिरूपी दर्पणमें मल विक्षेपादि,दोपरूप मलिनताहै,तिसके दूर करनेवास्ते अनेक जप,तप,भजन,यज्ञ, दान,पूजा, तीर्थ, यात्रा, व्रत, शम, दम, वैराग्य, विवेकादि साधन हैं, कोई बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते साधन नहीं। इसी अंशमें गुरुशास्त्र पुरुपार्थ सफल है वा अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्व निजस्वरूपसे जो भिन्न प्रतीति होती है,सोई भ्रमहै, तिस भ्रमकी निवृत्ति वास्ते ही गुरुशास्त्र की सफलता है,कोई मोक्षरूप ब्रह्मात्माकी प्राप्ति वास्ते गुरुशास्त्र नहीं। हे विष्णु! अपने स्वरूपमें मन वाणी वेदकी गम नहीं क्याकहूँ-मैंऐसाहूँ? किवैसा हूँ? जो मैंहूँ,सोई हूँ मुझसे कुछ कहा नहीं जाता।

रानीने कहा-बडा आश्चर्य है कि,सत्सगतिसे पहलेभी स्वतःही बंध मोक्षसे रहित,शुद्ध चैतन्य, निर्विकार,निर्विकल्प, देश, काल,वस्तुभेदसे रहित थी परंतु अपने स्वरूपके न जाननेसे मैं आपको यह मल मूत्ररूप संघातही जानती थी।जैसे-कोई तृणोंमें हस्तीको छिपाया चाहै,सोमूर्खहै,तैसे मैं पंचभूतोंका विकाररूप जो,यहपंचज्ञानेंद्रिय,पंचकर्मेंद्रिय,पंचप्राण,मन,बुद्धि,चित्तअहंकारसंयुक्त संघाततृण है सो इन तृणोंविपे (इनतृणोंकी उत्पत्ति नाश

तथा इनकेभावाभावको जाननेवाले तथा शब्द स्पर्शादिकविषयों-
को सिद्ध करनेवाले, साक्षी चैतन्यआत्मारूपहस्तीको गुह्यभावसे
रहित भी.मैं छिपाती थी । तात्पर्य यह कि; मैं प्रकट सूर्यकी
न्याईं द्रष्टारूप हुई हुई भी, आपको दृश्यरूप जानती थी। इसी
अपराधसे भ्रमसे भ्रमरूप जन्म मरणको प्राप्तहोती रही, परंतु अब
मैंने अपनेस्वरूपको सम्यक् जानाहै भ्रमरूप चोरको निकासाहै,
जो दुःख देता था, अब मेरे भ्रम निवृत्त हुयेहैं । विष्णुने कहा हे
रानी! यहभी तुझको भ्रमहै कि,पूर्व में अज्ञानी थी अबमैं मोक्षको
प्राप्त हुईहूं आत्मामें तीनों कालोंमें बंध मोक्ष है नहीं, जिस मनने
आपको वन्ध माना था, उसी मनने अब मोक्षमाना है,इससेजा-
नाजाताहै कि, बंधमोक्ष मनन मात्र है,तूआत्मा दोनों मनकी अव-
स्थाका साक्षीहै। हेरानी! तू सबसे उच्च पदको प्राप्त हुईहै । रानी
ने कहा मेरे विषे ऊंच नीच दोनों नहीं, एकरस आत्माहूँ।विष्णुने
कहा हे रूप! मेरे ऐसे वचन गौरवताके मत कह ।जिसने अपना
स्वरूपपायाहै उसकी भली चुपहीहै।जैसे-संसारमेंजो धनराखताहै
तिससे कोईपूछे कि,तुम्हारे पास कुछ धनहै तो कहताहै"कुछनहीं"
रानीने कहा हे विष्णु! जो खाताहै उसीको डकार आती है, जि-
सको चिन्तामणि प्राप्त हुईहै, सो हजार छिपावे, तो छिपती नहीं
हे विष्णु!निर्बल पुरुषही किसीके भयसे धनको छिपाताहै, जो
निर्भय सबसे बलीहै उसका धन छिपाया छिपतानहीं-जैसे-सूर्य
का प्रकाश रूप धन ब्रह्मांडसे छिपाया छिपता नहीं और सूर्यको
भी अपने स्वय प्रकाश रूपधनको छिपानेकी ताकत नहीं। तैसे
मुझ चैतन्यका स्वयं प्रकाशता कर सर्व दृश्यको प्रकाशता तथा
स्वरूपसेही बंध मोक्षसे रहितता ,नित्य मुक्तता,परिपूर्णता,एकर-
हस्यता, सतरूपता, आनंदरूपता, तथा अवाङ्मनसगोचरतादि

धन,इस असत् जड दुःखरूप दृश्यसे छिपाया छिपता नहीं उलटा मुझ चैतन्यको सत्ता स्फूर्तिरूपधन करके, असत् जड दुःखरूप दृश्यभी;सत् चित् सुखरूप धनी प्रतीति होरहीहै तथा भयमान होरहीहै।जैसे गुड करके कटुपदार्थभी मधुर होतेहैं।जैसे रज्जुकी सत् रूपता,कल्पित सर्प दंडमालादिकोंसे, छिपाये छिपती नहीं उलटा रज्जु करकेही तिनकी सिद्धिहोतीहै। इससे हेविष्णु! कहो मैं सत् कहतीहूँ कि,असत्? जो असत् कहतीहूँ, तो मुझको दंड दे। विष्णु तूष्णीं हुआ क्योंकि आगे वचनकी गम नहीं।

रानीने कहा हे विष्णु! तूष्णीं मतहो, विनावचनविलास कहे सुने संशय दूर नहीं होते। विष्णुने कहा-हे राजन्! अब तू क्या किया चाहताहै?कौन ठौर तूने पकडीहै? राजा ने कहा चाहना, अचाहना, पकडना,छोडना, बंध मोक्षकी निवृत्ति, प्राप्तिवास्ते कर्तव्य मानना और ज्ञानके पीछे आपको निष्कर्तव्य मानना इ-त्यादि, सर्व अंतःकरणके स्वभावहैं,मुझ चैतन्यकेपूर्वोक्त स्वभाव नहीं। इससे मुझको कुछ इच्छा नहीं।जैसे आप फरमाइये तैसेही मैं करताहूँ।विष्णुने कहा हे राजन्!तू अब विष्णु हुआहै, यथा प्राप्तविषे हर्ष शोकसे रहित तथा ग्रहण त्यागसे रहित होकर धर्म-पूर्वक जीवन्मुक्तहोकर विचर।यह सर्व दृश्य पदार्थ तुझ चैतन्यकी लीलामात्रहै तुझको कोई दुःखके हेतु नहीं,उलटा सुखके हेतु हैं।

अहंकारका कर्तव्य।

तुझ चैतन्य महाराजकीप्रसन्नतावास्ते,अहंकाररूपमालीने तुझ-चैतन्यकी सत्तापाकर,यह संसाररूप बगीचारचा है।अंडज,जरा-युज, स्वेदज,उद्भिज्ज इन चार खानियोंमें होनेवालेजीव, इस सं-साररूप बगीचेमें,पुष्प खिलरहेहैं।सात समुद्र इसमें बावलियां हैं

सूर्य चंद्रमा लालटेन लगरहे हैं, ज्योतिपचक्र छोटी वत्तियोंकी रोशनी होरही है; मेघमाला रूप फुहारे चलरहे हैं, देखो हे राजन् कोई मनुष्यरूपी पुष्पशुद्ध शुक्लरूप है; कोई लालरूप है, कोई कृष्णवर्णवाला पुष्प है,कोई शुक्ललाल मिश्रित है;कोई कृष्णलाल मिश्रित है। किंचित् रज तम सहित शुद्ध सत्वगुण प्रधान स्वभाव वाले विष्णु आदि शुद्ध शुक्लरूप पुष्प हैं। रजोगुण स्वभाववाले जीवरूप लाल पुष्पवत् जानना। तमोगुण स्वभाववाले जीव नीले पुष्पवत् जानना। सत्वगुण स्वभाववाले जीव केवल धवल पुष्पजानने। किंचित् सत्व रज सहित केवल तमोगुण प्रधान नारकी,वृक्ष, राक्षस, दैत्य, सर्पादिक, जीवरूप पुष्प हैं। किंचित् तम सत्वगुण सहित रजोगुण प्रधान मनुष्यादि अनेक भेद हैं। ये चारप्रकारके जीव तीनों गुणोंके स्वभाववाले हैं पृथक् नहीं। देखो कोई जीवरूप पुष्प देखतेरअदृश्य हो जाताहै, कोई नवीन प्रगट हो आताहै, कोई कुम्हला जाता है। कभी हैजा बीमारी रूप वायुकर वा अनेक जीवोंकी प्रारब्ध कर्म क्षयरूप वायुकर इकठ्ठे ही जीवरूप पुष्प गिर पडते हैं अनेक प्रकारके कौतुक अहंकाररूप मालीने संसार रूप बगीचेमें कर रक्खे हैं।

मनका कर्तव्य।

देख मनरूप नट तुझ चैतन्य महाराजाकी प्रसन्नता वास्तेअनेक स्वांग धारणकर रहा है, कभी आपको बंध मानता है, कभी आपको मोक्ष मानता है,यह भी मनका स्वांग है। कभी निर्विकल्प होता है, तब हर्ष मानता है, कभी विषयके संबंधसे चंचल होता है, तो आपको धिक्कार मानता है, हे राजन्! यहभी मनरूप नट का स्वांगही जान। कभी आपको वैराग्यवान् मानके उत्कर्ष होता है, दूसरेको अवैराग्यवान् मानके तर्क करता है, कभी आपको

पंडित मानता है, कभी मूर्ख मानता है, कभी ज्ञानी होकर निजको कृतकृत्य मानता है, अज्ञानी होकर अकृतकृत्य मानता है, देख यहभी विचित्र मनकेही स्वांगहैं । कभी आपको पुण्यवान् मानता है, कभी आपको पापवान् मानताहै, कभी आपको जीव मानता है, कभी आपको शिव मानता है, कभी वेदांतके संबंधसे आपको ईश्वर मानताहै, कभी जीव ईश्वरका भेद माननारूप स्वांगकरता है । कभी जीव ईश्वरका अभेद माननारूप स्वांग करताहै । कभी संशयवान् होता है, कभी निस्संशय होताहै, यहभी मनरूप नट का स्वांगही जान । कभी समाधि करना, कभी योग करना, कभी शांतिमान् होना, कभी अशांतिमान् होना, कभी मौनी होना, कभी अमौनी होना, कभी आपको वर्णीमानना, कभी आपको आश्रमी मानना; कभी इनसे रहित आपको मानना, यह सब मनरूप नटका तु-ारे आगे नृत्य है । कभी आपको द्रष्टा साक्षी, सत् चित्, आनंद रूप मानना, कभी आपको असत्, जड, दुःख रूप दृश्य मानना यहभी मनरूप नटका स्वांग है । कभी कर्मकांडसे अन्तःकरणकी शुद्धि माननी, उपासनासे मनकी निश्चलता माननी, ज्ञानसे आवरणकी निवृत्ति माननी, कभी तीर्थादिकोंके स्नानसे पुण्यमानना, कभी न मानना, वेदाध्ययन करना, परस्पर शास्त्रोंका विवाद कर खंडन मंडन करना और कभी ज्ञानसे मुक्ति माननी, कभी कर्म उपासनाते माननी, कभी बन्ध मोक्ष न मानना इत्यादि, मन वाणी सहित मन वाणीका कथन चितनरूप सब मनरूप नटका नाटक है । कभी राजसी संकल्प होना, कभी सात्विकी, कभी तामसी संकल्प होना, देख ! यहभी मनरूप नटके स्वांग हैं ।

बुद्धिका कर्तव्य ।

किसी पदार्थका निश्चय करना, किसीका न करना यह बुद्धि रूपी वेश्याका तुम्हारे आगे नृत्य है । हजारों वार जाग्रत्, स्वप्न,

सुषुप्ति, मूर्च्छा, मरण समाधि यह भी बुद्धिरूपी वेश्याका तुम्हारे आगे नृत्य है।

कभी बालक होना, कभी युवा होना, कभीवृद्ध होना, कभी उत्पत्ति होना, कभी नाश होना, यह शरीररूप नटका तुम्हारी प्रसन्नताके वास्ते नाटक है।

कभी क्षुधा होनी, कभी तृषा होनी, यह प्राणरूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है।

कभी चिंतन निर्गुण वा सगुण परमेश्वरका ध्यान करना और करनेसे प्रसन्न होना, कभी न करनेसे अप्रसन्न होना, यह चित्तरूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है। कभी देहाभिमान करना, कभी आत्मामें अहं प्रत्यय करना, यह अहंकाररूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है।

।.हे राजन्! और नाटक देखो श्रोत्रादिक इंद्रिय तुझ चैतन्यके गुलामहैं, तुझ चैतन्य साक्षीकी प्रसन्नता वास्ते, शब्दादिक विषयोंको ग्रहण करके तुम्हारे आगे भेंट रखता है। जैसे पालित बाज पक्षीको मार करके स्वपालकके आगे आन रखते हैं, और बाजका पालक यह तमाशा देखकर प्रसन्न होता है। तैसे--श्रोत्रादिक इंद्रियरूपी बाज, शब्दादिक विषय रूप पक्षीको ग्रहण करके तुझ चैतन्यके आगे आन रखते हैं। इस नाटकको देखकर तू खुश हो।

तैसेही वागादिक कर्मेंद्रियरूपनटभी; शब्दउच्चारणादिकनाटक कर रहे, तुम्हारे आनंदके वास्ते। तात्पर्य यह कि, कायिक वाचिक मानसिकजितनी इस संघातकी चेष्टाहैं; सोसबतुझ चैतन्य साक्षीके आगेनाटकहैं। हेराजन्! तुमसाक्षी चैतन्य, मनादिकनटों केसाथ एकरूप होकर, नाटक मत करना क्योंकि, इस विपर्यय बुद्धिसे तुम्हारे इस तुच्छ व्यवहार करनेसे विद्वानोंमें हँसी होगी। जैसे कोई भला मनुष्य नटोंके साथ मिलकरनाटक करता है तो

पंडित मानता है, कभी मूर्ख मानता है, कभी ज्ञानी होकर निजको कृतकृत्य मानंता है, अज्ञानी होकर अकृतकृत्य मानता है, देख यहभी विचित्र मनकेही स्वांगहैं। कभी आपको पुण्यवान् मानता है, कभी आपको पापवान् मानताहै, कभी आपको जीव मानता है, कभी आपको शिव मानता है, कभी वेदांतके संबंधसे आपको ईश्वर मानताहै, कभी जीव ईश्वरका भेद माननारूप स्वांगकरता है। कभी जीव ईश्वरका अभेद माननारूप स्वांग करताहै। कभी संशयवान् होता है, कभी निस्संशय होताहै, यहभी मनरूप नट का स्वांगही जान। कभी समाधि करना, कभी योग करना, कभी शांतिमान् होना, कभी अशांतिमान् होना, कभी मौनी होना, कभी अमौनी होना, कभी आपको वर्णीमानना, कभी आपको आश्रमी मानना; कभी इनसे रहित आपको मानना, यह सब मनरूप नटका तु- ्ारे आगे नृत्य है। कभी आपको द्रष्टा साक्षी, सत् चित्, आनंद रूप मानना, कभी आपको असत्, जड, दुःख रूप दृश्य मानना यहभी मनरूप नटका स्वांग है। कभी कर्मकांडसे अन्तःकरणकी शुद्धि माननी, उपासनासे मनकी निश्चलता माननी, ज्ञानसे आ-वरणकी निवृत्ति माननी, कभी तीर्थादिकोंके स्नानसे पुण्यमानना, कभी न मानना, वेदाध्ययन करना, परस्पर शास्त्रोंका विवाद कर खंडन मंडन करना और कभी ज्ञानसे मुक्ति माननी, कभी कर्म उपासनाते माननी, कभी बन्ध मोक्ष न मानना इत्यादि, मन वाणी सहित मन वाणीका कथन चिंतनरूप सब मनरूप नटका नाटक है। कभी राजसी संकल्प होना, कभी सात्विकी, कभी तामसी संकल्प होना, देख। यहभी मनरूप नटके स्वांग हैं।

बुद्धिका कर्तव्य।

किसी पदार्थका निश्चय करना, किसीका न करना यह बुद्धि रूपी वेश्याका तुम्हारे आगे नृत्य है। हजारों बार जाग्रत, स्वप्न,

सुषुप्ति, मूर्च्छा, मरण समाधि यह भी बुद्धिरूपी वेश्याका तुम्हारे आगे नृत्य है।

कभी बालक होना, कभी युवा होना, कभी वृद्ध होना, कभी उत्पत्ति होना, कभी नाश होना, यह शरीररूप नटका तुम्हारी प्रसन्नताके वास्ते नाटक है।

कभी क्षुधा होनी, कभी तृषा होनी, यह प्राणरूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है।

कभी चिंतन निर्गुण वा सगुण परमेश्वरका ध्यान करना और करनेसे प्रसन्न होना, कभी न करनेसे अप्रसन्न होना, यह चित्तरूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है। कभी देहाभिमान करना, कभी आत्मामें अहं प्रत्यय करना, यह अहंकाररूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है।

हे राजन्! और नाटक देखो श्रोत्रादिक इंद्रिय तुझ चैतन्यके गुलामहैं, तुझ चैतन्य साक्षीकी प्रसन्नता वास्ते, शब्दादिक विषयोंको ग्रहण करके तुम्हारे आगे भेंट रखता है। जैसे पालित बाज पक्षीको मार करके स्वपालकके आगे आन रखते हैं, और बाजका पालक यह तमाशा देखकर प्रसन्न होता है। तैसे--श्रोत्रादिक इंद्रियरूपी बाज, शब्दादिक विषय रूप पक्षीको ग्रहण करके तुझ चैतन्यके आगे आन रखते हैं। इस नाटकको देखकर तू खुश हो।

तैसेही वागादिक कर्मेंद्रियरूपनटभी; शब्दउच्चारणादिकनाटक कर रहे, तुम्हारे आनंदके वास्ते। तात्पर्य यह कि, कायिक वाचिक मानसिक जितनी इस संघातकी चेष्टाहैं; सोसब तुझ चैतन्य साक्षीके आगेनाटकहैं। हेराजन्! तुमसाक्षी चैतन्य, मनादिकनटों केसाथ एकरूप होकर, नाटक मत करना क्योंकि, इस विपर्यय बुद्धिसे तुम्हारे इस तुच्छ व्यवहार करनेसे विद्वानोंमें हँसी होगी। जैसे कोई भला मनुष्य नटोंके साथ मिलकरनाटक करता है तो

तिसकी सब लोग निन्दा करते हैं। तू मनादिक नटोंके नाटकका द्रष्टा,साक्षी, भलामानुप, चैतन्य, निर्विकार, निर्विकल्प, स्वतः सिद्धहै यत्नकर नहीं। हे राजन्! असली विचार करे तो तुझ चैतन्य को द्रष्टापनाभी,दृश्यसे भिन्न करने वास्ते, उपदेश कियाहै,क्योंकि प्रथम निपेध मुखही उपदेश मुमुक्षुको कर्तव्यहै,जब अपने स्वरूपको दृश्यसे भिन्न करके जाना, पीछे सर्वरूप विधिका उपदेशकरनाचाहिये। जैसे--प्रथम स्वप्नपदार्थोंसे स्वप्नद्रष्टाको, भिन्न बोधन करके पीछे सर्वसे स्वप्नद्रष्टाको ही, उपदेश करना चाहिये। इससे हे राजन्! अस्तिभाति प्रियरूप तूही सर्वात्माहै। द्रष्टा; दर्शन, दृश्य,त्रिपुटीरूपभी तू ही है,त्रिपुटीका प्रकाश करनेवालाभी तूही, है। उठो! जबलग शरीर है तबलग कोई न कोई चेष्टा करनीही है और सर्व चेष्टा स्वप्नके तुल्य मिथ्याही हैं, इससे यथाप्राप्तिमेंही क्यों न विचरो? ऐसे कहकर विष्णु चलेगये। रानी राजा विज्ञातवेद होकर, अपने राज्य कार्यको करनेलगे परंतु जलकमलवत् सर्व व्यवहार करतेभी अलिप्त रहे ।

कालसे कैसे और कौन छूट सकता है?।

धर्मरायने कहा हे यमकिंकर ! जो देह अभिमानसे रहित, सम्यक् अपने स्वरूपको जानता है । सारांश यह कि,यह पंचभूतोंका विकार रूप संघात मैं नहीं; किन्तु मैं चैतन्यसाक्षी आत्मा हूँ,इस निश्चयवान् पुरुषके ऊपर हमारा तुम्हारा जोर नहीं चलता । जो धर्मात्मा है; जो धर्म पूर्वक धन उपार्जन करके अपने बालबच्चोंकी पालनाभी करताहै, यथायोग्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार अतिथि सेवन भी करता है और पाप आचरण नहीं करता, तिसके ऊपर भी तुम्हारा हमारा जोर नहीं चलता । तथा जो पुरुष हरिको अपने आत्मासे भेद करके वा

अभेदकरके सगुण वा निर्गुण परमात्माका स्मरण ध्यान करता है और सत्य संभापणादि गुणोंसे युक्त सज्जन रीतिसे रहता है, तिस ऊपरभी तुम्हारा हमारावल नहीं चलता तथा जो प्रणवादिक हरिके नाम श्रद्धापूर्वक हरवक्त उच्चारण करताहै,परउपकारी है तथा पाप आचरणकरतानहीं,तिसकेऊपरभी तुम्हाराहमारा बलचलतानहीं।

काल किसको पकडता है ?

हे यमकिंकर। जो पापाचारी है,अन्यायकारी है,विश्वासघाती है,दुराचारी है, जो माता पिताका मन वाणी शरीर करके किसी प्रकारसे भी तिरस्कार करता है,जो कृतघ्न है, जो चोरीकर पर धन हरता है,जो गुरु विद्वानोंका तिरस्कार करता है, देह अभिमानी है,तथा जो परमेश्वर का नाम भी स्मरण नहीं करता,तिसके ऊपर तुम्हारा हमारा बल चलता है,तिसको तुम दुःख दे सक्ते हो। जैसे—लोकविषेराजा और राजाके सिपाही, अन्यायकारी (ज़ुल्मी)कोही दुःख देसक्ते हैं।

जो भला मनुष्य, सराफ, अपने रस्तेमें ही आता जाता है, तिसको राजा वा राजसिपाही कोई भी दुःख नहीं दे सक्ते,उलटा जहां धर्मका कामपडे तहां तिनकी गवाही मन्जूर की जाती है। इससे हे यमकिंकर। तू और मैं किसीको भी,दुःख सुख नहीं दे सक्ते,अपने शुभाशुभ कर्तव्य करकेही जीव सुख दुःख पाते हैं, इससे अभिमान मत कर कि, मैं दुःख देता हूं। हे यमकिंकर ! तूने जोकहा था कि, मैं प्राणीको लेने जाता हूँ, लेभीआताहूँ, परंतु इसका रूप नहीं जानता कि,क्या वस्तु है ? हे यमकिंकर। जिस प्राणीके स्वरूपको तू देखा चाहता है, सो तेरा अपना आत्माहै, अपने आत्माको तू कैसे देखे ? जैसे—चक्षु अन्यको तो देखते हैं परंतु चक्षु चक्षुओंको तो नहीं देखसक्ते, देखना दूसरेमें होता है।

दृश्य करके तो द्रष्टाका जानना नहीं होता,द्रष्टा करकेही दृश्यका जानना होता है। मन करके वा चक्षु आदिक इन्द्रियों करके हे किंकर! तू प्राणीके स्वरूपके देखेनेकी इच्छा करता है, सो तो मन इन्द्रियादिक दृश्यका स्वयंद्रष्टा,अपने स्वयं प्रकाशको कैसे देखेंगे ? किन्तु नहीं देखेंगे। जैसे—चक्षु सर्वकोदेखतेहैं, चक्षुओंको कोई देखता नहीं, चक्षुओंकरके प्रकाशित पदार्थकहें कि,हम चक्षु-ओंको देखें वा जानें सो तिनका कहना निष्फल है। तैसे ही—तू अपने आत्माको मन करके वा चक्षुओंकरके देखा चाहता है; इससे तेरीबुद्धि हँसने योग्य है। हे यमकिंकर।तू देह अभिमानको त्याग और आपको चिद्घन नित्य सुखरूप जान। जो कालके भयसे निवृत्त होवे। जिसको अपने सहित, यह सर्व नामरूप प्रपंच;वासुदेव निश्चय है,तिसको यमसे क्या प्रयोजन है ? जिसने देह अभिमान त्यागा नहीं और पापचारीहै,सोई मेरे पास आता है इससे हेकिंकर! भजन गोविंदका कर जोंमलीनतासे निर्मलहोवे भजन यहीहै "जान आप सहित सर्व हरि है" और आगे क्या पूछताहै ? किंकरने कहाजैसेमछलीकोजलकेसमुद्रसे निकासकर सु-गंधीके समुद्रमें डाले,तो मछलीको नामन्जूरहै बरन्सुगंधीउसको विषकी न्यांई है,तैसे मुझेको और कुछ मतलबनहीं, यहीप्रयोजन है कि अपने स्वरूपको जानू पर मैंने जाना है कि अज्ञानी पुरुषके ठगने वास्ते तुम्हारी हमारी,धूमधाम है,विचारसे सर्व भ्रममात्र है। धर्मरायने कहा ऐसे मत कह, मेरी शासनासे भय कर प्रभुसे किंकरको समता करनी नहीं चाहिये। यमकिंकरने कहा-न तू प्रभु, न मैं किंकर एक गोविंद आत्माही है, पर कथा उस राजा-की कहो। धर्मरायने कहा किंचित् बात कहनेसे, कहता है धर्मराय, यमकिंकर, सर्व भ्रम मात्रहैं, जब भिन्न भिन्न सम्यक् कहूँगा, तब निश्चय करेगा कि, त्रिलोकीही नहीं। अनुचरसे

वात वेमर्याद करनी दुःखका मूलहै। किंकर! चौरासी लक्षयोनि नरकहैं, सो देहाभिमानी नारकी तिन नरकोंमें भोक्ता है और एक ही आत्मारूप स्वर्गहै।चाहे स्वर्गमें वा नरकमें वास ले।यमकिंकर ने कहा स्वर्ग नरकरूप अहंकारहै नहीं, सर्व गोविंद है। पर कथा राजाकी कहो। धर्मरायने कहा जब तू उसके जैसा आप नहींहोता तो उसकी कथा पूछनेसे क्या प्रयोजन है ?इससे नारायणको अपने आत्मासे अभेद जान जो तेरा हृदय शुद्धहोवे, शुद्धहृदय विना मेरा वचन तुझको प्रवेश न करेगा।हे किंकर ? जब तू आप न विचारेगा तब ब्रह्मा विष्णु शिवभी तुझको उपदेश करें तो भी कुछ गुण न होगा, इस कारण देहाभिमानको त्याग और सत्य प्रतीति कर कि "विना आत्मा और कुछ नहींहै"। हे किंकर। गोविंद तो जगत् की उत्पत्ति, पालना, संहार विकार स्वभाववालाहै और तेरा स्वरूप आत्मा निर्विकार शुद्धहै। किंकरने कहा तुम शुद्ध अशुद्ध कहते हो मैं दोनोंसे न्यारा हूं, पर कथा कहो।

धर्मरायने कहा सुन-काल पाकर पुनः राजाके अंतःकरणमें विष्णुके दरशनकी अतिप्रीति हुई,सो भक्तवत्सलईश्वरविष्णु तत्काल राजाके अंतःपुरविषे प्रगटहुआ। राजा देखकर प्रेममें मग्न होकर स्तुति करनेलगा। हे विष्णु! मैं कुछ नहीं, जो कुछहै सो तूही है मध्यमेंभी तूहीहै। अंतमेंभी तूहीहै। विष्णुने कहा जब सर्वमेंही हूं तू नहीं,तब तूने कैसे जानाकि, सर्व विष्णु तूही है। आपा अहंकार विना यह जानना नहीं होता।राजाने कहा जो कहताहूँ सो अविद्यासे कहताहूँ; तेरे मिलापसे आपा अहंकार नहीं रहा। जैसे अग्निके सगसे काष्टका आकार नहींरहता। क्याकहूँ? जो कुछहै सो तूहीहै। आपही आपकोकहताहै, आपही आपको जानना, सुनना सूँघना, स्पर्शकरना, लेना, देना, दाता, मँगता; सर्व त्रिपुटीरूप आपहीहै,जैसे-स्वप्नद्रष्टा सर्वरूपहै। विष्णुने कहा कुछ मांग।राजाने

कहा मैं तो हूँही नहीं मांगूँ क्या? यही कृपाकर कि, तुझबिना न देखूँ न सुनूं विष्णुने कहा अभेद दृष्टि तब प्राप्त होतीहै,जब किसी पदोंकीभी चाहना न रहे। चाहनाही अपने स्वरूपके दर्शनविषे पर्दाहै। जब चाहना नाश हुई तब आपसे आप है। चाहनाके दूर करनेकोही शास्त्र कर्तव्य कहता है,कोई अपनेस्वरूप (कामना) दर्शनमें कर्तव्य नहीं कहता। जैसे बादलके दूर करनेकाही कर्तव्य है, सूर्यदर्शनमें कोई कर्त्तव्य नहीं।

चाहना कैसे छूटे ?

राजाने कहा चाहनाके दूरकरनेका उपाय कहो। विष्णुने कहा-जब मायाके गुणोंके साथ मिलके आप कुछ बनताहै, तब चाहनाभी होतीहै, जब आपा अहंकार गया तो चाहनाभी संगही जातीहै इससेआपाको बीचसे उठादे,बाकी शेष जो हैं सो अवाचपदहै। जो परमात्माका भक्त कहाता है और आपा बीच रखताहै, तिसको धिक्है। हे राजन् जैसे सर्व पदार्थोंके अंतर बाहर आकाश पूर्णहै,तैसे-तू आपको पूर्ण जान"यह सर्व नामरूप जगत् मैंहीहूँ,मुझ चैतन्य बिना न कोई हुआहै न होगा, मुझ चैतन्यकीही सर्व उपासना,प्रार्थना तथा पूजा करतेहैं,मैंही चैतन्य सर्वकोआप अपने कर्मके अनुसार फल देताहूँ,मुझ चैतन्यकी सर्वदा जयहै और मैंही वेदसे वेद्य,सर्वको प्राप्तहोने योग्यहूँ"इस दृढभावनाको धारण करे कि वही रूप होवे। हे राजन् प्रगटहै जबलग लकडी अग्निका संग नहीं पाती तबलग लकडीका रूपहै,जब अपना आपाअग्निको सौंपा, तब अपनारूप त्यागके अग्निरूप होतीहै। तैसे-जबतक तू आपा अहंकाररूपलकड़ीको, ब्रह्म अग्निमें नहीं जलाता, तबतकही तुझको आवागमनहै;जब तूने जानाकि, एक आत्मचैतन्यमैंहूँ,तब द्वैत हैही नहीं, तब निःसंशय तद्रूप होवेगा। हे राजन् मरनेके भय

कर और जीनेकी आशासे,एक घड़ी भजन करता है, तो सबसे कहताहै-मैंने तो एता भजन किया,और रात दिन जब इंद्रियोंकी पालनामें बिताता हैतब किसीसे बातभी नहीं करता सो तो किसी-से नहीं कहता,इससे सब चाहनासे अचाह हो और आपको परिपूर्ण जान कि,सर्वमें ही हूँ,फिर दुःख सुख कहां है? राजाने कहा-जब सर्व अस्ति भाति प्रिय रूप मैंहीहूँ,तो चाहना अचाहना ग्रहण त्यागभी मैंही हूँ,किससे अचाह होऊं?विष्णुने कहा, जो तू चिंतन करता है जिसका चिन्तन होता है,तथा चिन्तन यह त्रिपुटी तू तो हैही नहीं क्यों भ्रम करता है? राजाने कहा जब मैं नहीं सर्व अंतर बाहर तूही है तो चाहना अचाहना भी तूही है, "तू चानासे अचाह हो" यह तुम्हारा कहना बेहिसाबकी बात है। चाहना हो वा न हो मुझको क्या फिक्रहै?कुछ नहीं। जिसको फिक्र है सोई त्यागेगा;मुझको फिक्र नहीं है तो त्यागूं क्या?विष्णुने कहा हे राजन्! आशासे निराश हो और मेरी शरण आ मुझे बिना न जान,न देख। जो दृश्यमात्र जगत हैं सो स्वप्नसमान है।राजाने कहा जब मैं नहीं तूही है तो मुझको इन बातोंसे क्या मतलब है?

भक्ति तीन प्रकारकी है।

विष्णुने कहा-भक्तिकर।राजाने कहा जहां अहंकार है वहांही भक्ति है,जहां अहंकार नहीं वहां भक्ति कौन करे? विष्णुने कहा भक्ति तीन प्रकारकी है१ उत्तम२मध्यम ३ निकृष्ट।१पाषाणादिक मूर्तियों की पूजा-निकृष्ट भक्तिहै। २अपने आत्मासे जुदापरमात्मा को मानके,ध्यान स्मरण करना मध्यम भक्तिहै।३अपने आत्मासे अभेदपरमेश्वरको जानना(घटाकाशको महाकाश रूपवत्)उत्तम भक्तिहैक्योंकि,सत्चित् सुखरूप आत्मासे भिन्न घटादिक अनात्मा है।परमात्माको आत्मासे भिन्न माने,तो असत्; जड, दुःखरूप अनात्मा होवेगा असत् जड दुखःरूप,अनात्मा होताहै और जड

मिथ्या दृश्य होता है। इस हेतु अपने आत्मासे परमेश्वरको भिन्न मानना भक्ति नहीं अभक्ति है। इससे "मुझ व्यापक चैतन्य विष्णुको अपने आत्मासे अभेद जान" यही परमभक्ति है। राजाने कहा मेरे स्वरूपमें भेद अभेद दोनों नहीं, जिसमें भेद अभेदका मार्ग है वही (तीन प्रकारकी) भक्ति करो वा न करो। जब सर्व मैंही हूँ तो उत्तम क्या ? मध्यम क्या ? और निकृष्ट क्या ? उत्तम मध्यम निकृष्टभी मैंही हूँ। विष्णुने कहा जो भक्ति करता है, सो पर अपरसे छूटता है। राजाने कहा जिसमें पर अपर हो और जिसको पर अपर दुःख देता हो सो पर अपरसे छूटनेका साधन करे, मेरे स्वरूपमें देश काल वस्तुका भेद नहीं, एकरस पूर्ण हूँ। पर अपर कहां है ? पर अपरभी मैं चैतन्यही हूँ। जैसे-स्वप्नमें पर अपर है नहीं, स्वप्नद्रष्टाही सर्वरूप है, ऐसा होकर जो भक्ति न करे, आपा अहंकार रक्खे तो भक्ति नहीं कपट है। विष्णुने कहा हे राजन् ! भक्ति कर जो मूल अपना पावे। राजाने कहा हे विष्णु! तूने आपही कहा है, "सर्व मैंही हूँ" जब सर्व तूही है, तो मैं जो भक्ति करूँ सो मैं कौन हूँ ? विष्णुने कहा मैं हूँ और भक्तिभी मैंही करता हूँ। राजाने कहा जब सब तूही है, तब मेरी भक्ति करनेसे और न करनेसे तुझको क्या हानि लाभ है ? विष्णुने कहा भक्ति विना सुख नहीं ? राजाने कहा भक्ति करनेसे सुख होगा, न करनेसे दुःख होगा, तो ऐसी भक्ति करनेकी मुझको इच्छा नहीं। जब सब तूही है तो दुःख सुख किस पर है ? आप अपनी भक्ति कर चाहे न कर, मुझसे पूछे तो भक्ति करने न करने तथा बंध मोक्ष जीव ईशादि संसार, माननेवाला अहंकार था, सो मिथ्या अहंकार मेरा नष्ट होगया है। अब भक्ति ज्ञान ध्यान भजन कौन करे ? मेरे स्वरूपमें तो संसार आगेही नहीं था भ्रम करके अहंकारने कल्पा था, सो अहंके जानेसे संसार भी गया, अब भक्ति कौन करे ? भक्ति सेवक स्वामी भाव विन

होती नहीं और मैंने आप सहित सर्व जगत्को हरिरूपजानाहै ।[1] विष्णुने कहा यही परमभक्ति है, कि अपने आत्मासे मुझकोअभेद जानना नहीं तो कपट है ।

इतनी बात कहके विष्णु अन्तर्धान होगये। धर्मरायने कहा हे किंकर ! जब तेरी भी यह अवस्था होवे तब स्वरूपको पावे। किंकरने कहा अपनी स्थिति बिना स्वरूप पावना कठिनदेखता हूँ, क्योंकि,रसनासे वारंवार नारायण ! नारायण ! कहताहूँ, पर मन पाप पुण्यमें बंधहै इससे, भजन नहीं कपटहै। जब कर्मकरते आपको निष्कर्म जानूँ, सर्व आशासे निराशहोऊँ तब पूर्णकाम होऊँ। हेधर्मराय। मैं कौनहूँ? मूल मेरा क्या है? धर्मरायने कहा- तुझेको कितनी बार कहाहै कि,यह बात मुझसे मत पूछ, क्योंकि, मुझको; जीवोंके भले,बुरे कर्मोंके पक्षपातरहित धर्मपूर्वक न्याय करनेकी परमात्माकी आज्ञाहै, कोई जीव ईशके स्वरूपके उपदेश करनेकी आज्ञानहीं।किंकरने कहा - बडा आश्चर्यहै कि, अपने स्वरूपको जाने विना सुखके वास्ते कर्मकरना;प्रकाश विना अंधेरेको दूर करनाहै। हे मैत्रेय! उसी समयमें वसिष्ठ "सर्वमिदमहं च वासुदेवः२"कहते हुये आये।वसिष्ठने कहा हे धर्मराय ! तुमने जो कहाहै,जिसका मन अविद्यामें लीनहै तिसको स्वरूप पावन कठिनहै जिसका मन शुद्धहै तिसको सुगम है। कहो मलीनता शुद्धता दोनों किससे प्रकाश रखतेहैं और किसमें हैं? धर्मरायने कहा-प्रकाश दोनोंका आत्मासे है और अंतःकरणमें दोनोंहैं। जैसे दर्पणके मकानमें शुद्धता,अशुद्धता,अमृत, विष, दोनोंका प्रकाश नेत्रोंसे होताहै और शुद्धता अशुद्धता,अमृत विष दोनों दर्पणके मकानमें हैं जैसे--शुद्ध दर्पणसे मुख देखाजाता है अशुद्धसे नहीं देखा जाता। तैसेही शुद्ध अंतःकरणरूपी दर्पणसे आत्मरूपी मुख

१ आप सहित सर्व वासुदेव है ।

देखा जाता है अशुद्धसे नहीं । जो कहो अंतःकरणके शुद्धकरनेका उपाय कौनहै ? तो जप, तप,दान, भजनादि अनेक उपाय हैं परन्तु आप सहित सर्व जगत्को,सत्,चित्,आनंद रूप निरन्तर दीर्घकालतक, सत्कारपूर्वक, श्रद्धासे,ध्यान करनेसे अंतःकरण शीघ्रही शुद्ध होताहै । यही निश्चय बुद्धिमें सम्यक् जँचजाना ज्ञान है, नहीं तो निर्गुण अहंग्रह उपासना है । वसिष्ठने कहा, आत्मा स्त्री है कि, पुरुष है कि, नपुंसक है ? धर्मरायने कहा- आत्मा न स्त्री न पुरुष न नपुंसक और स्त्री पुरुष नपुंसक भी, आत्माही है । जैसे स्वप्नके स्त्री पुरुष, नपुंसक, द्रष्टा नहीं और सर्व वेहीहैं, इसीसे आत्मा आपसे आपहै । वसिष्ठने कहा, जब आपहै तब औरभी होगा जो और नहीं तो आप कहांहै ? धर्मरायने कहा, नित्य सुख ज्ञान स्वरूप आत्मासेही सर्व दृश्यपदार्थ उत्पन्न होते हैं, रज्जुसर्पवत् । आत्मासेही जाने जातेहैं। आत्मा किसी दृश्यपदार्थसे जाना नहीं जाता,स्वयं प्रकाश होनेसे । इस प्रकार आत्मा पर, अपर, द्वैत,अद्वैत, दृश्यसे परे नाम भिन्न है । वसिष्ठने कहा जो आत्मा दृश्यसे परेहै तो उरे भी होगा; नहीं तो कहो,दृश्यसे उरे कौनहै ? दृश्य और अदृश्यसे उरला देश आत्मा विना खाली होगा । हे धर्मराय ! पूर्ण आत्मामें उरे परे नहीं । जैसे पंचभूतोंमें उरे परे नहीं, सर्व रूप पंचभूतही हैं ।

धर्मराय तूष्णीं हुआ उसी समय गौतम और याज्ञवल्क्यदोनों आये। गौतमने कहा हे वसिष्ठ ! कहो रूप मेरा क्याहै ? कृष्ण वा श्वेत वा लालादि।वसिष्ठने कहा मैं नहीं जानताकि कोई मेरेवचनोंका श्रोताहै,मुझविषे द्वैतका-मार्ग नहीं क्या कहूँ ? किसको कहूँ ? पर कहताहूँ, श्वेतसत्वगुण,कृष्णतमोगुण और लालरजोगुण रूप, माया तथा मायाका कार्य जोकुछमनवाणीकागोचरहै तेरा स्वरूप नहीं. यह मिथ्यामायाका स्वरूपहै।तेरास्वरूपतोअवाङ्म-

नसगोचर,सर्वाधिष्ठान,जगदांध्यप्रकाशक,अवेद्यत्व,सदाअपरोक्ष साक्षी, सच्चिद्घन,विशुद्धानंद है।गौतमने कहा जबतुझविषेद्वैत नहीं तो तुझको श्रोता वक्ता कैसे भान हुआ कि, आपहीआपहै? वसिष्ठने कहा जो दोनों नहीं तो तूने कैसे सुनाहै ? गौतम तूष्णीं हुआ। तब याज्ञवल्क्यने कहा-मैं एक सत्त्व ज्ञान अनंत स्वरूप सर्वआत्मा हूँ, मुझ आत्मासे पृथक् जो दृष्ट आताहै सो भ्रममात्रहै। जैसे सुवर्णसे पृथक् जिसको भूषणोंकी प्रतीति होती है सो भ्रमी है। वसिष्ठने कहा हे याज्ञवल्क्य !जलको अपनेसे पृथक् फेन बुद्बुदा तरंग,कदाचित् भी भान नहीं होते,तुझचैतन्यअधिष्ठान आत्माको "आत्मासे पृथक् दृश्य भ्रममात्रहै" यह कैसे भासा ? याज्ञवल्क्यने कहा-जल जडहै और मैं आत्मा सूर्यवत् स्वयंप्रकाशस्वरूप हूँ, मुझ सत्रूप आत्मासे ही भ्रम अभ्रमकी सिद्धि होती है। नहीं तो कहो,आत्मा विना भ्रम अभ्रमको किसने न जाना? भ्रमको भ्रम तो सिद्ध नहीं करसक्ता। यमकिंकरने कहा-हे याज्ञवल्क्य! सत् मैंने अब तक नहीं देखा, भिन्न भिन्न कर कहो।याज्ञवल्क्यनेकहा सत् तू है,सत्को देखे कैसे?जो सत् देखने जाननेमें आवेगा तो असत् दृश्य परप्रकाश होगा।अध्यारोपकर तिसकास्वरूपकहता हूँ, साक्षात् नहीं जिससे इस दृश्यसंसारकी उत्पत्ति,पालनासंहार होताहै तथा जाग्रत,स्वप्न सुषुप्ति हजारों वार हो होकर मिटजाते है जिसमें हजारों वार क्रमसे सत्व, रज,तम गुण होकर मिट जाते हैं,जिसमें हजारोंवार भूत,भविष्यत्,वर्तमान काल हो होकर मिट जाते हैं,जो आप तीनों कालोंमें एक रस रहता है,जो कदाचित् विकार (अन्यथा भाव) को नहीं प्राप्त होता;तिस आत्माको सत् कहतेहैं। अन्तर जो, अपने स्वयंप्रकाश करके,सूर्यवत् सर्वमनादिक दृश्यको परिमाण करता है कांटेवत्(तराजूकेसमान)तात्पर्य

यह कि जिसकर अंतर सर्व मनादिकोंका वृत्तान्त जाना जाताहै, तिस आत्माको ज्ञानस्वरूप कहते हैं। उसकी इयत्ता परिमाण करा जाता नहीं इसवास्ते आत्माको अनंत कहते हैं इसआत्मासे भिन्न सर्व दृश्य पदार्थ असत् जड दुःखरूप जाने जाते हैं, इससे आत्माको सत् चित् आनंदरूप कहते हैं। यमकिंकरने कहा, जलसे बुदबुदा उत्पन्न हुआ है, प्रकट जलरूपही है तैसे सत् आत्मासे जगत् उत्पन्न हुआ है इससे सत् रूपही है, असत् क्यों कहते हो? याज्ञवल्क्यने कहा, यह नहीं-कि जिससे जो चीज उत्पन्न होवे सो वैसेही होवे। उपादान कारणके समान तो निःसंदेह कार्य होता है-जैसे मृत्तिकाके समान सत्तावालेही घटादिक होते हैं-परंतु विवर्तकारजके समान कार्यकी सत्ता नहीं होती। जैसे स्वप्नद्रष्टासे निद्रादोपकर स्वप्न प्रपंच उत्पन्न होताहै, परन्तुस्वप्न-द्रष्टा सत् रूपहै, स्वप्न प्रपंच असत्रूप है, तथा जैसे इन्द्रजाली अपनी माया करके अनेक पदार्थ उत्पन्नकरता है परंतु इन्द्रजाली सत् है तिसके किये हुये पदार्थ असत् हैं, । तथारज्जुके अज्ञानसे सर्पादिक उत्पन्न होते हैं, परंतु रज्जु सत्रूपहै।सर्पादिकअसत्रूप हैं। तैसेही आत्माके अज्ञानसे जगत् उत्पन्न होताहैपरन्तु आत्मा सत्रूपहै, तिससे उत्पन्नहुआ जगत् असत्रूप है। हे किंकर! तू अबतक अविद्यामें बंधा है:ज्ञान तुझको प्राप्त नहीं हुआ इसीसे अपने मूलसे अप्राप्तहै।यमकिंकरने कहा पूर्व तुमने स्वयंहीकहाहै कि,मैंही सर्वात्माहूं तो ज्ञानीअज्ञानीभीतुमहीहो,द्वैत हैहीनहीं तब अनहुई द्वैतको क्यों आरोपण करतेहो?याज्ञवल्क्यने कहा,मैंकौन हूं? यमकिंकरने कहा जो मैं हूं। याज्ञवल्क्यने कहा तू कौनहै? यमकिंकरने कहा मुझमें जानने न जाननेका मार्ग नहीं। आपही आपहूं। याज्ञवल्क्यने कहा-जब तुझमें जाननेका मार्ग नहीं तो मेरे विषे ज्ञान अज्ञान क्यों आरोपता है? किंकर तूष्णीं हुआ।

तिसी समय व्यास आये और कहा जो कोई मुक्त हुआ चाहे; भक्ति गोविन्दकी करे। याज्ञवल्क्यने कहा भक्तिका स्वरूपक्या है ? व्यासने कहा आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जाननाहीपरमभक्ति,है। याज्ञवल्क्यने कहा आप सहित सर्व हरिरूप जाननारूपभक्ति,जीव रूप मनको करनीहै। मन दृश्य मिथ्यासंकल्पविकल्प रूप कल्पित है,तिस मनकी मुक्ति नहीं होसकती और जीवनका लक्षस्वरूप हरि साक्षी आत्मा चैतन्य "आप सहित सर्व हरि है" इसजानने न जाननेसे पहलेही स्वतःसिद्धही बंध मोक्षसे रहित कथन है,तिसकी मुक्तिभी नहीं बनसक्ती यहां (जीवभी मनके अंतर्भूतही जानना)। जैसे-जलके अंतर्भूतही सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिंब है,जलके ग्रहणसे प्रतिबिंबकाभी ग्रहण होता है। तैसे मनरूप जलके ग्रहणसे साक्षी आत्माका मनविषे प्रतिबिंबरूप,जीवकाभी ग्रहण होता है। अपने स्वरूपका जाननाही मुक्तिहै न जानना बंधहै और मुक्ति बंधकी कल्पना करना भ्रममात्र है। कोई मुक्ति वस्तु नहीं,जिसके ग्रहणसे मुक्तिहोवे।

योगका प्रयोजन।

याज्ञवल्क्यने कहा इससे हे व्यास!योग कर जो तेरा मन शांत होवे। व्यासने कहा मुझ चैतन्य आत्मामें योग वियोग दोनों नहीं, स्वतःही शांत स्वरूपहै,योगके करनेसे नहीं। योग नामहै चित्तकी एकाग्रताका-जब मैं चैतन्य चित्तसे परे नाम जुदा होके चित्तका साक्षी द्रष्टा हूँ,तो मुझको चित्तकी एकाग्रता अन एकाग्रतासे क्या मतलब है ? यह चित्त तो एक रस रहताही नहीं,कभी स्वतःही एकाग्र होजाताहै(सुषुप्ति आदि स्थानोंमें)कभी चंचलहोजाताहै। मुझ चैतन्यको इस चित्तकी चंचलता और एकाग्रता,दुःखसुखनहीं देनी,विना प्रयोजननाहक किसीसे छेडाछेडी करना भलमन्सीका

काम नहीं,उलटा अपना (लुचोंसे छेडाछेडी कर)बडप्पन खोना ह। इससे मैं चैतन्य योग वियोग दोनोंसे मुक्त हूं। याज्ञवल्क्यने कहा आत्मा एक है कि दो ? व्यासने कहा आत्मा एक अद्वितीय है। याज्ञवल्क्यने कहा जो आत्मा एक होता तो,कोई योगमें,कोई भोगमें,कोई धर्ममें,कोई कर्ममें,कोई मोक्षकेसाधनोंमें,कोईसंसारके व्यापारोंमें रतिकर रहा है,कोई सुखी है,कोई दुःखीहै,कोई सर्वज्ञ है,कोई अल्पज्ञ है,एकसा नहीं। इससे जाना जाता है कि,आत्मा अनेक हैं,एक नहीं। वसिष्टने कहा जैसे अनेक मृत्तिकाके घडे एक स्थानमें धरेहैं,किसी घटमें घृत है,किसीमें तेल है किसीमें अमृत है,किसीमें विषहै,किसीमें मल मूत्रहै,किसीमें शुद्ध गंगाजलहै। तिस जलमें सूर्यका वा आकाशका आभासभी पडता है। किसीमें शराब है,किसीमें उत्तम उत्तम औषधिहैं,अनेक घडोंमें शुद्ध जल भर रहाहै,तिनमें सूर्यकावा आकाशका समही प्रतिबिंब पडताहै। अनेक घट मलिन जलके भरे हैं, तिनमेंभी आभास स्पष्ट है। कोई घट बडे हैं,अनेक छोटे हैं,कोई मध्य भावी हैं,परन्तु आकाश सर्व घटोंमें एकही,निर्विकार,असंग सत्यरूप पूर्णहै;नाना आकाशनहीं और मृत्तिकारूप घटभी एकही सरीखे हैं,तिनमें जलभी एकही सरीखाहै,सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिंबभी सर्व घटोंमें एकहीस-रीखा है,परन्तु एक घटके हिलानेसे सब हिलते नहीं, एक घटके फूटनेसे सर्व घट फूटते नहीं क्योंकि,भिन्न भिन्न हैं परन्तुआकाशका आभास सर्वमें एकसा है जो आकाशका धर्म फूटनाहलना होता तो एकके फूटने हलनेसे सब फूटते हलते,परन्तु आकाश आभासका धर्म फूटना हलना नहीं। तैसेही पंचभूतरूप मृत्तिकाके यहअण्डज, जरायुज,उद्भिज्ज, स्वेदज,देहरूप घट हैं तिनमें अंतःकरणरूप जलभी एकही सरीखा है,तिस अंतःकरणरूप जलमें चैतन्यका

आभासभी एकसरीखा है। कोई अंतःकरणसात्त्विकी है, कोई राजसी है, कोई तामसी है, कोई मिश्रित है, कोई क्रोधी है, कोई लोभी है, कोई अंतःकरण भोगी है. कोई वैरागी है, कोई अंतःकरण शांतिमान् है, कोई धन कमानेमें (रति) प्रीतिवान् है, कोई फकीरीमें रहताहै; कोईका अंतःकरण सुखी है और कोईका अंतःकरण दुःखीहै कोईका अंतःकरण सर्वज्ञ है, कोईका अल्पज्ञ है इत्यादि अनेक स्वभावोंवाले अंतःकरणहीहैं परंतु सर्व देहोंमें आत्मा भगवान् एकही, निर्विकारनिष्क्रिय, सर्वकासाक्षीरूप करके स्थित है। जो सुखदुःखादि आत्माके धर्म होवें तो एकके सुखसे वा दुःखसे सर्व सुखी और दुःखी होने चाहिये, इसलिये आत्माके धर्म नहीं, किंतु अंतःकरणके धर्म हैं। सो अंतःकरण विशिष्ट चैतन्यके देह अनेक हैं इससे एकके दुःख सुखसे सर्व सुखी दुःखी नहीं होते। जैसे वृक्षरूपऔषधियोके स्वभाव जुदे हैं परन्तु तिनको प्राप्त जल एक है। हे याज्ञवल्क्य ! असली विचार करे तों जब अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्माहीहै तो भोक्ता, भोग, भोग्य, कर्ता, कर्म, क्रिया, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, ध्याता, ध्यान, ध्येय, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, पूजक, पूजा, पूज्य, इत्यादि त्रिपुटीरूपभी आप है और त्रिपुटीका प्रकाशभी आपही है। जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नके पदार्थरूपभी आपही हैं और तिनका प्रकाशक भी आपही हैं याज्ञवल्क्यने कहा जब प्राणायाम कर प्राणको दशवें द्वार चढाता है, तब भगवान् मिलता है और आनंद प्राप्त होताहै। यमराजने कहा प्राणायामसे दशवें द्वारमें परमेश्वर मिलता है, यह व्यवहार जिसकर सिद्ध हुआ, सोई भगवान् है, सो पूर्ण है। क्या भगवान् दशवें द्वारमेंही बैठाहै और जगह नहीं ? सो नहीं। जिसका मिलाप होगा उसका विछोह भी होगा। जो भगवान्की योगसे प्राप्ति होती है तो ऐसे योगकी हमको इच्छा

नहीं और न मिलाप बिछोहेवाले भगवान्की इच्छा है क्योंकि, व्यापक, चैतन्य, सुख, नित्य, मुक्ति, बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मासे पृथक्, असत् जड दुःखरूप परिच्छिन्न अनात्मावंध्याके पुत्र समान भगवान् है जैसे मधुरता द्रवता शिथिलतारूप जलसे भिन्न समुद्र अत्यंत असत् है। ऐसे भगवान्को मिलकर क्या कार्य सिद्ध होगा? कुछ नहीं। जिसकी योगसे प्राप्ति होवेगी तिसकी अयोगते अप्राप्तिभीहोगी. अपनेसच्चिदानंदस्वरूप आत्माकोसम्यक् जाननारूप योग करो, जो खाने, सोने, बैठने, चलने, भोगने, अभोगने, ध्यान, अध्यान, योग, अयोग, ग्रहण, त्याग, शांति, अशांति, ज्ञान, अज्ञान। तात्पर्य यह कि, कायिक, वाचिक, मानसिक सर्व व्यवहारमें एकसाहै, न्यूनाधिक भावको नही प्राप्त होता। बालकोकी लीलाके पीछे क्यों फिरतेहैं? तुझ चैतन्यसे पृथक्, भगवान् स्वप्नतुल्य शशशृंगवत् है इससे आपको त्याग कर क्यो भटकता है? इस अनात्मयोगको त्याग। याज्ञवल्क्यने कहा इस नामरूप जगत्का उपादान कारण अज्ञानहै, जब ज्ञानकर अज्ञान नाशहुआ तो ज्ञानीको अपने शरीर सहित जगत् कार्यकी प्रतीति क्यों होतीहै न होनी चाहिये। क्योंकि, उपादान कारणके नाशसे कार्य नही रहता, यह नियमहै। जैसे मृत्तिका सुवर्णके नाशसे घट भूषण नहीं रहते।

दोप्रकारका भ्रम।

धर्मरायने कहा अन्य शास्त्रोमें यह प्रकरण विस्तृत कर लिखा है, (यह केवल सिद्धांत ग्रंथ है) परन्तु संक्षेपसेसुन। भ्रम दोप्रकारका होता है एक निरुपाधिक भ्रम होता है दूसरा सोपाधिक भ्रम होता है। जैसे रज्जुमें सर्पादिक भ्रम तथा स्वप्न भ्रम निरुपाधिक भ्रम हैं क्योकि, रज्जु ज्ञानसे तथा निद्रारूप कारण(निद्रारूपअविद्या) के नाशसे, सर्पादिककार्यतथास्वप्नकार्यकी, तिसीकालमेंअत्यंतअप्रतीति होतीहै, बाकी शेषकार्यकीप्रतीतिहोतीनही, इत्यादिस्थानोंमेंनि-

रूपाधिक भ्रमहै। तथा जैसे शुद्धस्फटिकमणि किसी जगहमें पडीहै तिसके पास लाल पुष्पभी धराहै, तिस स्फटिमणिमें लाल पुष्पकी शुद्ध लालीकी दमक पडतीहै, परन्तु स्फटिकमणिके अज्ञात पुरुषको शुद्ध स्फटिकमणि लाल प्रतीत होतीहै। कदाचित् उपदेशसे वा अपनी बुद्धिके विचारसे, किसी पुरुषको शुद्ध स्फटिक मणिका ज्ञानहो भी गया हो तथापि जबलग लाल पुष्प स्फटिकमणिके समीप पडा है, तबलग स्फटिकमणि लालही प्रतीत होताहै। पुष्पके अभावसे लालीका अभाव होगा अन्यथा नहीं इत्यादि सोपाधिक भ्रमके अनेक दृष्टांतहैं। तैसेही-यह संसार सोपाधिक भ्रमहै, यद्यपि आत्मवेत्ता विद्वानने, कार्यकारण रूप संसारका अत्यंताभाव, अपने स्वरूप विषे सम्यक् जानभी लियाहै, तथापि जबलग प्रारब्धरूपी पुष्प पडा है, तबलग सम्यक् विद्वान्कोभी, अपने शरीरसहित संसाररूप लालीकी, अपने शुद्ध-स्वरूप आत्मामें प्रतीतिहोतीहै। जैसे-जलके समीप वृक्षोंके सम्यक् ज्ञाता पुरुषकोभी, जलविषे उलटे वृक्षदीखतेहैं जैसे वस्त्र जलाभी जबलग वायुका संबंध नहीं हुआ, तबलग वैसेही दीखताहै परंतु कार्य नहीं देता केवल देखने मात्रकोहीहै। तथा कैसाभी कपड़ा वाकोई और पदार्थ हो पर अग्निके संबंधसे बदलकर काला होजाता है तैसेही इस पुरुषका ज्ञानरूपी अग्निके संबंधसे पूर्व, मैं देहहूँ, कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी, पापी, पुण्यवान्, वर्णी, आश्रमी हूँ मैं जन्ममरणवानहूँ इत्यादि देहाध्याससे मिलकर, जो निश्चयहै, सोई सफेद कपडेकी मुवाफिकहै। जब ज्ञानरूपी अग्निका पुरुषरूपी सफेद कपडेको संबंधहुआ, तब "मैं शुद्ध, चैतन्य, नित्य, मुक्त, सुखस्वरूप, व्यापक आत्मा हूँ,। न जन्मता हूँ, न मरता हूँ, न मैं खाता, पीता, लेता, देता, सोता, जागता हूँ, न मैं देहहूँ, न वर्णी आश्रमी

हूँ इत्यादि" सर्व देहके धर्महैं, मेरे नहीं । यही पूर्वसे विलक्षण निश्चय पुरुषरूप सफेद कपडेका रंग बदलकर काला होताहै। तथा ज्ञानरूपी अग्निकर, कारण उपादान अज्ञान सहित यह देह संसाररूपकार्य दग्धहोभी गया परंतु जबलग प्रारब्धके नाशरूप वायुका देह सहित संसाररूप कपडेको संबंध नहीं हुआ, तबलग कार्यकारण देह सहित, संसाररूप कपडा ज्ञांनीको वैसेही प्रतीत होताहै, परंतु भावी जन्मरूप कार्यको नहीं देता । जैसे, भूना चना पूर्ववत् प्रतीत भी होताहै, भक्षणसे क्षुधाका नाशरूप कार्य भी करता है, परंतु भावी अंकुरको नहीं देसक्ता तैसेही, दार्ष्टान्त जानलेना तथा जैसे पुरुष मनविशिष्ट देहसे भुवाटी (चक्कर) लेताहै। तिस भुवाटी कर सर्व पृथिवी आदि पदार्थ फिरते मालूम होतेहैं, तिन पदार्थोंके घूमनेका उपादान कारण अन्तःकरण विशिष्ट देहका घूमना था। पुनः देहके न घूमनेसेभी किंचित् काल पीछेभी, सर्व घूमते प्रतीत होतेहैं। तैसेही ज्ञानसे संसारके उपादान कारण (अज्ञान) के नाश हुयेभी प्रारब्धके नाशपर्यन्त, किंचित् काल इस देहसहित,जगत्के;(ज्ञानीकोभी) प्रतीति होतीहै

याज्ञवल्क्यने कहा हे वशिष्ठ । नाम तेरा योगवसिष्ठहै तुझको चाहिये योगका पक्ष करना । वसिष्ठने कहा क्रियारूप योग कर्ताके अधीनहै, चाहे करे चाहे न करे, इसीसे मिथ्याहै । जिस कर योग अयोग दोनों अन्तर सिद्ध होतेहैं, सोई सत्रूप है। तेरा मेरा तथा सर्व जगत्का स्वरूपभी वही है। जो कर्ता न होतो योग अयोग कहांहै ? याज्ञवल्क्यनेकहा व्यासकी प्रसन्नतानिमित्त योगको त्यागकरज्ञानको निश्चय करता है। व्यासने कहा मेरा पक्ष अपक्ष नहीं, परन्तु जो अकृत्रिम, स्वतःसिद्ध, सत् वस्तु, सर्वके अनुभव सिद्धहोवे,तिसीको निश्चय मानता हूँ कहो योग आपसे आप है कि, कर्तासे प्रकट होता है ? याज्ञवल्क्यने कहा

करनेसेही योग होता है। व्यासने कहा योगके करनेवाले सत् आत्माको जान कि, योग अयोगते मुक्त होवे ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मैं भी तिस सभामें गया और कहने लगा, सब नहीं है,एक मैंही हूँ,वशिष्ठने कहा ऐसे मत कह;जो तू है तो सब भी हैं। मैंने कहा मैं आपसे आपहूँ मुझविषे पर अपर नहीं। वशिष्ठने कहा सभासे निकस जा,क्या पर अपर मुझसे भिन्न है ? जैसे पंचभूत कहैं पर अपर भौतिक पदार्थ हमारेमें नहीं तिनका कहना सभामें हाँसी योग्यहै।मैंने कहा मैं किसीकी सभामें नहीं बैठाहूँ, आपसे आप स्वयंप्रकाश स्वरूपहूँ;यदि बैठा भी हूँ तो अपनी सभामें बैठाहूँ क्योंकि,पंच ज्ञानेंद्रिय पंचकर्मेंद्रिय पंचप्राण,मन,बुद्धि, चित्त, अहंकार, इत्यादि कार्य कारण, नाम रूप, प्रपंच मुझ अधिष्टान समुद्रविषे,फेन बुद बुदे तरंगादिकोंके समान कल्पितहैं मुझ चैतन्यकी सत्तासे पृथक् श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकी पृथक् सत्ता नहीं, मुझसेही चैतन्य हो रहे हैं। जैसे दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रूप अग्नि करही लोहा उष्ण, प्रकाश, दाहक होता है स्वतः नहीं । इससे पूर्वोक्त इन्द्रिय मनादि मुझ चेतन्यके गुलाम हैं, तिनमें मैं चक्रवर्ती राजाके समान विराजमान हूँ । इससे यह अन्य किसीकी सभा नही किन्तु मैं अपनी; सभामें बैठा हूँ । जैसे फेन, बुदबुदे, झाग तरंगादिकोंकी सभामें जल बैठे ।जैसे अनेक घटोंकी सभामें मृत्तिका बैठे। जैसे अनेक भूषणोंकी सभामें सुवर्ण बैठे । जैसे स्वप्नके ऋषीश्वरों, मुनीश्वरों; सिद्धयोगीश्वरों,ब्रह्मवेत्तों,धर्मात्माओं,तथा अन्यस्वप्ननरोंकीसभामें स्वप्नद्रष्टा बैठे।तैसे मैं इस मायिक प्रपंचरूप संघात सभामें बैठा भी अमायिक स्वरूप हूँ । हेयाज्ञवल्क्य। जो योग सत् होता तो, आपसे आप क्यों न होता।योग करनेसे होता है। काया मन वाणीसे जो जो कर्म होते हैं और जो तिन कर्मोंका फलहै,सो सर्व अनित्य

मायामात्र है।तेरा योगभी कायिक, वाचिक, मानसिक, कर्म रूप है इससे अनित्य है। मुझ योगसे जाननेवाले सत् आत्माको, तेरे अनित्य योगकी इच्छा नहीं।

विष्णु।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तिसी समय बिष्णु भी आया और कहा कि, विष्णु नाम व्यापक, नित्य,सुख, चैतन्यके साथ,अपने आत्माको अभेद समक् जानेगा,सो कालके भयसे छूटेगा क्यों कि,जो देश, काल, वस्तु, भेदवान् पदार्थ होता है, सोई परिच्छिन्न अनित्य पदार्थ होता है, तिसीको काल भक्षण करता है इससे मुझ चैतन्यके साथ अभेद हो,जोअज्ञानरूपीकालसे छूटे।जैसेघटाकाश,जब आपको महाकाशसे,अभेद सम्यक् जानताहै तब भ्रमरूप, पर अपर परिच्छिन्न प्रतीतरूपी, मृत्युसे मुक्त होता है। मैंने कहा हे विष्णु! मुझ चित् सुख नित्य व्यापकके साथ जो अभेद होगा, सो कालसे मुक्तहोगा, जिसकर यह मन वाणीका कथन किंचित् सिद्ध नहीं होता है, सो मैं अवाङ्मनसगोचर, स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ। मुझविषे भेद अभेद दोनों नहीं जिसमें अभेद होगा तिसमें भेद भी होगा और जो भेद अभेदवान् पदार्थ हैं, सो मिथ्या दृश्य मायामात्र हैं।विष्णु नाम मायाकाहै, मायासे रहितही विष्णुका परमपदहै,कहो मायिक अमायिकका अभेद कैसे होगा।दूसरा यह बडा आश्चर्यहै कि, तुझ नित्यसुख, चित् व्यापक स्वरूप विष्णुको "यह मुझसे भिन्नहै, जब मुझसे अभिन्न होगा, तब कालकी फांससे मुक्त होवेगा" यह भेद अभेद कैसे प्रतीत हुआ? जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप जल फेन, बुदबुदे, तरंगादिकोंको उपदेश करे कि, तुम सब मुझसे अभिन्न होगे, तो कालसे बचोगे,भिन्न रहोगे तो कालका ग्रास होगे।यह तिसका उपदेश हांसी

योग्यहै क्योंकि,फेन,बुद्बुदे तरंगादिक,मधुरता,द्रवता; शीतलता रूप जलसे पृथक हैंहीं नहीं। वा जलरूपही हैं, तिन तरंगादिकोंको जलसे भेद अभेदका उपदेश, जलको लज्जाका कामहै । तैसे जब नित्य, सुख, प्रकाश, व्यापक, कालादिक स्वरूपभी तूही है, तब तुझसे कहो. कौन भिन्नहै? जो तुझसे अभिन्न होके कालसे बचे? इससे यह सब कहनेमात्रहैं । विष्णुने कहा—तुझ अवाङ्मनसगोचरने, मन वाणीका चिंतन कथन कैसे जाना ? मैंने कहा मैं चिद्घन देव अवाङ्मनसगोचर होकरभी सर्वका आत्मा होनेसे स्वतःही सर्वको अनुभव करताहूँ, जो मैं अनुभवस्वरूप नहीं होऊं तो, यह जड,चैतन्यहै, यह, नहीं, इत्यादि दृश्यके व्यवहारकी सिद्धि कैसे होवे। जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नसृष्टिसे अवाङ्मनसगोचर हुआहुआभी सर्व स्वप्नसृष्टिकोअनुभव करताहै,जो स्वप्नद्रष्टा.स्वयंप्रकाश, स्वप्नका अनुभव करनेवाला नहीं होता; तो स्वप्न सृष्टिका तथा तिसके व्यवहारोंका भिन्न भिन्न हाल कैसे जाना जाता, किन्तु नहीं जाना जाता।

शिव ।

तिसी समय ज्ञानके समुद्र शिव आये और कहा—शिवनाम कल्याण स्वरूप तथा मंगलस्वरूप एक चिद्रूपमैंही हूँ मुझसे पृथक् यह सर्व नामरूप दृश्य अकल्याण अमंगल स्वरूपहै,मुझ करही यह मंगल स्वरूप होरहाहै अन्यथा नहीं। जैसे सूक्ष्म शरीर करही स्थूल शरीर मंगलरूप होरहाहै क्योंकि , तिस अमंगलस्वरूप दृश्यका मैं शिव मंगल स्वरूप आत्माहूँ। धर्मरायने कहा स्वरूप मंगल अमंगलसे न्यारा है, मंगलअमंगल दृश्य माया कोटिमेंही है जैसे स्वप्नमें कोई पदार्थ मंगलरूप प्रतीत होताहै, कोई अमंगलरूप प्रतीत होताहै(मंगलनाम सुखकाहै अमंगलनाम दुःखकाहै) परन्तु स्वप्नद्रष्टा दोनोंसे अतीतहैं । शिवने कहा हे धर्मराय!

अपेक्षित दृश्यरूप मंगल अमंगलको प्रकाश करनेहारा मैं शिव स्वयं सिद्ध मंगलस्वरूप हूँ। व्यासने कहा जो मंगलस्वरूप है, सो अमंगलभी होगा। शिवने कहा मंगलस्वरूप चैतन्यकोअमंगल किसने किया है ? कहो ? जीव, वा ईश्वरने वा ब्रह्माने वा मायाने वा मायाके कार्य प्रपंचने ? जीव ईश्वर, ब्रह्म तो मुझ शिवसे भिन्न होकर मुझको अशिवकर नहीं सक्ते, मुझ शिव चिद्घन देवसे भिन्न अशिव होनेके भयसे और मायाके कार्य प्रपंच मुझ सद्रूप शिवसे जुदे अशिव, असत् रूप हैं, सत् असत्का एक कालमें और एकही स्थानमें इकट्ठा संबंध होता नहीं। जैसे स्वप्न जाग्रत्का संबंध होता नहीं। संबंध विना शिवको अशिव कैसे करसकेंगे किन्तु नहीं करसकेंगे इसकारण मैं एकही अनंत नित्य ज्ञानरूप शिव हूँ। जैसे ~ निमकके डलेको कोईभी मधुर नहीं करसक्ता, स्वभावसेही लवण स्वयंसिद्धहै। यमकिंकरने कहा जब तुम एकही शिवहो तो अशिव कहां है। जिसका निरूपण करतेहो? शिवने कहा जिसने मुझ शिवसे भिन्न होकर मुझे शिवका निरूपण सुनाहै, सोई अशिवहै। हे यमकिंकर! जब मैंही हूँ, तू हैही नहीं, तूने मेरा निरूपण कैसे सुना इससे तूही अशिवहै। यमकिंकर तूष्णीं हुआ।

योगविषयक-संवाद।

पराशर कहतेहैं-मैंने कहा हे याज्ञवल्क्य! रूप तेरा क्याहै? याज्ञवल्क्यने कहा, मैं पूरक, कुम्भक, रेचक करताहूँ, ईश्वरका योगविषे स्थित होकर ध्यान करताहूँ परंतु आपको नहीं जानता कि, मैं कौनहूँ? तूही कह मैं कौन हूँ? मैंने कहा हेयाज्ञवल्क्य! जिससे पूरक कुंभक रेचक, प्राणायामका न्यूनाधिक भाव जाना जाताहै, जिसकर योगविषे स्थित हुआ "मैं ईश्वरका ध्यानकरता हूँ वा नहीं" यह मनका धर्मरूप ध्यान अध्यान जिसनेसिद्धकिया, सोई तू निर्विकार

निर्विकल्प,स्वतःसिद्ध,मनका ध्यानरूप योग,वा प्राणोंकी क्रिया रूप योगका द्रष्टा, चैतन्यहै। हे याज्ञवल्क्य! तू बन्धरूप दुःख-की निवृत्तिवास्ते और मोक्षरूप सुखकी प्राप्तिवास्तेही योगादिक साधनोंमें प्रवृत्त होता है। और तो कुछ योगादि साधनोंसे मत-लब नहीं। सो तू पक्षपातसे रहित होकर सूक्ष्म विचारसे देख।मन-की वृत्तिरूप सुख दुःखके सिद्ध करनेवाले तुम द्रष्टा, साक्षी, चैत-न्यमें सुख, दुःखकहांहै? अंतर मनकीएकाग्रतारूपसमाधिकेसुखको और मनके विक्षेपरूप दुःखोंको वा शारीरक दुःखोंको;जिसने अनु-भव किया,सोई तू अनुभव स्वरूप; सुख दुःखसे रहित आत्मा है। क्योंकि विना कीचड लागे कीचडके दूर करनेका यत्न करताहै। आत्मविज्ञानवान् पुरुषोंके मध्यमें क्यों अपनी हांसी कराताहै। योग,अयोग, सुख, दुःखरूप बन्ध, मोक्ष और बन्ध मोक्षकी नी-वृत्ति प्राप्ति वास्ते यत्न,विद्या,अविद्या,ग्रहण त्यागादि,सब अनात्म धर्म तुझ आत्माके दृश्य हैं। दृश्यके धर्म अपनेमें मानकर क्यों विक्षेपवान् होता है?

श्रवणादिका स्वरूप।

याज्ञवल्क्यने कहा हे पराशर! श्रवणमननिदिध्यासन,साक्षा-त्कारका स्वरूप कहो,मैं तो तूष्णीं हुआ। शिवने कहा हे याज्ञव-ल्क्य! सुन श्रवण करनेवाला चैतन्यके आभाससहित अंतःकरण और श्रवण नाम अंतःकरणकी वृत्तिऔर श्रवण करने योग्यशब्द का अर्थ,इस त्रिपुटीका प्रकाश करनेवाली जो चैतन्य वस्तु है सोही मैं हूँ, अन्य नहीं। इस दृढ निश्चयका नाम श्रवण है। व अंतर,प्राणरूप वायुके संचारसे साधारणशब्द होतारहताहै जिसको अनहदशब्द बोलते हैं,सो मनकी भावनारूप, दश प्रकारके शब्द की कल्पना होती है उसीमें एकाग्रता वास्ते मनको जुडना होता है

सो दश प्रकारके शब्द तथा तिन दशप्रकारके शब्दोंमें मनका जुडना न जुडना, जिसकर यह सर्व व्यवहार जाना जाताहै, सोही मैं निर्विकार, निर्विकल्प वस्तु हूँ, अन्य मैं नहीं । इस निश्चयका नाम श्रवण है। श्रवणका सिद्ध करनेवाला आत्माही श्रवणी है इससे आपको आत्म श्रवणी जान । इसीका नाम श्रवणहै तात्पर्य यह कि, श्रोत्र इंद्रिय सहित मनका धर्म श्रवण है, मुझ चैतन्यका धर्म नहीं, किंतु मैं असंग चिद्घन देव हूँ । हे याज्ञवल्क्य ! तैसेही चैतन्यके प्रतिबिंब सहित मनन-कर्ता मन, मनकी वृत्ति तथा (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,) मनन करने योग्य पदार्थ, इस त्रिपुटीके सर्व व्यवहारको अनुभव करनेवाला मैं नित्यमुक्त ज्ञान-स्वरूप आत्मा हूँ । सारांश यह कि, मन और मनके मननको जाननेवाला मैं हूँ इस निश्चयका नाम मननहै, तैसे ध्याता, ध्यान, ध्येय, सारांश यह कि; साक्षी चैतन्यके आभास सहित अंतःकरण ध्याता बालकके समान वा तालावके जलके समान जानना, ध्यान डोरके समान वा तालाबमें छिद्रद्वारा निकले जलकूलके समान जानना और गुण वा निर्गुण परमेश्वरसे आदिलेकर, सर्व, नाम रूप कार्य कारण प्रपंच, ध्येयकोटिमें जानना। तथा कनकौवा क्यारीके तुल्य दृष्टांत जानना । तात्पर्य यह कि, ध्याता, ध्यान, ध्येयरूप त्रिपुटीके न्यूनाधिक भावाभावका पहचान करनेवाला, अपनी महिमामें स्थित, साक्षी आत्मा मैं हूँ, यह त्रिपुटी दृश्यरूप मैं नहीं । जैसे--सूर्य वा आकाश लडकेको, डोरको, गुडीको निर्विकार असंग हुआ (पूर्वोक्त त्रिपुटीको) प्रकाश करता अवकाश देता है, तिस त्रिपुटीको अपना स्वरूप नहीं जानता है, इस दृढ निश्चयका नाम निदिध्यासन है । जैसे संशय विपर्ययसे रहित सर्व अज्ञानी जीवोंकी, देहविषे आत्मबुद्धि अपरोक्ष है। तैसेही--श्रवण मनन निदिध्यासनका जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति

आदिका, तिन मेंवर्तने वाले प्रपंचका, जो प्रकाशक है सो अनंत नित्य चिद्घन देव निश्चय कर मैंहीहूँ। इस अपरोक्ष बुद्धिका नाम आत्मसाक्षात्कारहै। परंतु इस बुद्धिके निश्चयरूप साक्षात्कारको भी मैं जाननेवाला इस साक्षात्कारसे परे, अवाङ्मनसगोचर, स्वयं-प्रकाश स्वरूप हू, इससे परे और कुछ नहीं। यही अनुभवही परम अवस्था है, यही परमपद है, यही परमसाक्षात्कार है, आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर। हे याज्ञवल्क्य ! जब इस अनुभवका अनुभव होता है तब प्रह्लादके समान अनेक संकटोंमें प्राप्तहुआ भी अपने, अस्ति भाति प्रियरूप, सर्वात्मस्वरूपके निश्चयसे चलायमान नहीं होता, जिधर किधर अपनाही स्वरूप देखता है। बाहरसे तिसका व्यवहार जैसे पूर्व श्रेष्ठाचरणवाले विद्वान् पुरुषोंका हुआहै तैसे-ही होता है परंतु वास्तवसे अन्तर तिसका, जड चेतनका, तथा जीव ईश्वर, स्त्री, पुरुष, शुभाशुभ, बंध मोक्षादि भेद निवृत्त होजाता है। याज्ञवल्क्य तूष्णीं हुआ। यमकिंकरने कहा, मन इंद्रियोंका प्रकाशक, गोविन्द आत्मानेही अनेक नामरूप होकर प्रकाश किया है, कैसे एकात्मा जानूँ ? शिवने कहा हे यमकिंकर! जैसे एकही सुवर्णसे अनेक नाम रूप भूषणोंका प्रकाश होताहै, परंतु सुवर्णही है अन्य कुछ नहीं। जैसे अनेक नामरूप करके वृक्ष प्रकाशमान भीहैं, परंतु विचारसे सर्व काष्ठरूपही है; तैसे यह अनेक नामरूप जगत् भासताभी है परंतु सम्यक् विचारनेसे सर्व नामरूप प्रपंच अस्ति, भाति, प्रियरूप, आदि, मध्य, अंत तूही सर्वात्माहै, तुझसे, पृथक् कुछ नहीं यमकिंकर तूष्णीं हुआ क्योंकि, जब समुद्र लहर मारे तब हँसली कूप तालाब कहां रहे।

भजन किसे कहतेहैं ?

गौतमने कहा--मुक्ति भजनसे होतीहै, भजन यहीहैकि, "नारायण नारायण कहना" मैंने कहा भजन सब करतेहैं

कि अप्राप्ति है। हे गौतम! भज नाम भंज जानेका नाम त्यागजानेकाहै न अर्थ निषेधकाहै। तात्पर्य यहकि,इस कार्यकारणरूप संघात देहविषे अनहुये अहंकारका त्याग करनेका नाम भजनहै। पुनः तिसदेह विषे,अहंकार बुद्धिके त्यागकाभी अभिमान न करनेका नाम परम भजनहै। माया और मायाके कार्य स्वप्नवत् सर्व नामरूप प्रपंचका नाम नरहै सो नररूप गृहविषे अस्ति, भाति, प्रिय सर्वका आत्मारूपसेहै निवास जिसका, सो कहिये नारायण। जैसे फेन बुदबुदे तरंगादि रूप गृहविषे, मधुरता, शीतलता, द्रवता रूपसेहै निवास जिसका सो कहिये जल। वापूर्वोक्तनरकाअयन (आश्रय) जो नित्य जो नित्य सुख प्रकाश स्वरूप अधिष्ठानहै, सो कहिये नारायण। जैसे फेन बुदबुदे तरंगादिकोंका अधिष्ठान जलहै। सो पूर्वोक्त नारायण मुझ असंग,निर्विकार,बुद्धिआदिकोंके साक्षी, आत्मासे भिन्न नहीं; जो भिन्न मानोगे तो तुम्हारा नारायण अनात्मा घटवत् अनित्यहोजावेगा क्योंकि आत्मासे भिन्न अनात्माही होताहै; यह नियमहै। इससे क्या सिद्ध भयाकि,पूर्वोक्तरीतिसे इस संघातका तथा संघातके सुख दुःखादि धर्मोंका अहंकार त्यागना पुनः तिस अहंकारके त्यागकाभी अभिमान न करके,सच्चिदानंद नारायणको अपने आत्मासे अभेद जाननाही परम भजनहै। सब संतोंसे पूछ देखो ऊंचा, नीचा,अंतर,बाहर,सर्व नारायण आत्माहीहै।

विरक्त किसे कहते हैं ?

गौतमने कहा मैं सर्वको त्यागकर विरक्त होताहूँ। मैंने कहा विरक्त उसको कहतेहैं जो किसीसे हेत खेद न करे;परंतु तू गृहस्थादिक पदार्थोंको द्वेषसे त्यागकरताहै,किसी मोक्षादिकपदार्थकेलिये विरक्तता ग्रहण करताहै; इससे तू विरक्त न हुआ दूसरा यहहैकि

जिस अहंकारको त्यागवत् त्याग कर, आत्माकी प्राप्तिकी प्राप्ति जाननी थी, सो तो करता नहीं, जो अयत्नही सुखका हेतु है। कपासके वस्त्र सफेदतथा धातुके पात्रको त्यागके, सयत्न मृगछाला वा भोजपत्र तथा कमंडलुका ग्रहण करनेसे क्या त्याग और क्या ग्रहण किया। केवल जिस अभिमानसे संन्यास करना था उसीकी उलटी बुद्धिका हुआ, विरक्त वही है, जो ग्रहण त्याग बुद्धिरहित अपने स्वरूपमें स्थित है। जो एक वस्तुसे द्वेषपूर्वक संन्यास करताहै और अन्य वस्तुको रागपूर्वक ग्रहण करता है, सो विरक्त नहीं। वा निजस्वरूपसे पृथक् दृश्यमें रति नहीं करता, तिसका नाम विरक्त है वा नाम रूप दृश्यके मिथ्यात्व निश्चयपूर्वक, जो निजस्वरूपमेंही विशेष करके रति करता है, तिसीका नाम विरक्त है। गौतमने कहा भेष मेखली आदि विरक्त राखते हैं, तैसेही मैं भी होता हूँ। मैंने कहा तेरी बुद्धि हँसने योग्य है क्योंकि, विरक्तको भेष मेखलीसे क्या प्रयोजन है। जो अहंकारका त्यागी है सोई विरक्त है।

प्राणायामका फल वर्णन।

इतनेमेंअत्रिने आकर कहा कि, प्राणायामरूपी योग करकेही मुनींद्र; योगीन्द्र मुक्त हुयेहैं विना; योग मुक्ति नहीं। व्यासने कहा योग स्वयंप्रकाश है कि परप्रकाश है? अत्रिने कहा योग करनेसे होताहै इससे जाना जाता है परप्रकाश है। व्यासने कहा परप्रकाश योगसे, स्वयंप्रकाश, नित्यमुक्त, आत्माकी मुक्ति कैसे होगी, उलटा स्वयंप्रकाशकात्मासेही योगकी सिद्धि होती है। जो आगेही स्वरूपसे मुक्त है, सो किसी रीतिसे आपको भ्रमकरके अमुक्त माने, तिसी भ्रमकी निवृत्तिसे मुक्तकी मुक्ति होती है; अन्य किसी योग कर्मादि, अनेक क्रियारूप, साधनोंसे तिसकी मुक्ति नहीं होती

क्योंकि, कर्म योगादिभी भ्रमरूपहैं। जैसे स्वप्नमें राजा निद्रा दोषसे आपको दरिद्री मानता है, सो तिसकी दरिद्रता, निद्रारूप दोषकी निवृत्ति बिना, अनेक क्रियारूप योगादि साधनोंसे दूर नहीं होती। जैसे–परप्रकाश स्वप्न पुरुषोंके योगादि अनेक साधनोंसे, स्वप्नद्रष्टा स्वयंप्रकाश स्वरूपकी मुक्ति नहींहोती क्योंकि, स्वप्नपुरुषों सहित सर्वयोगादि स्वप्नके पदार्थ स्वप्नद्रष्टामें कल्पितहैं, कल्पित पदार्थ अधिष्ठानकी अनुकूलता तथा प्रतिकूलता कुछ कर नहीं सक्ते। किंतु विचारहीद्वारा भ्रमकी निवृत्तिसे मुक्त स्वरूप आत्मा पुनः आपको मुक्तस्वरूप मानता है। अत्रिने कहा योगसे शुद्धि होती है व्यासने कहा कितनेही आपको योगी माननेवाले थे तथा जगत्में भी तिनका योगीपना प्रसिद्ध था, परन्तु जब वे मुये हैं वा जीवित अवस्थामें भी, तिनके अंग, शरीर, मांस, त्वचा, रुधिर, अस्थि, नाडी, रोम, मल, मूत्र, जैसे सर्व अयोगी पुरुषोंकोहैं, तैसेहीतिन योगियोंके देखे गये हैं, विशेपता नहीं, रोज़ही नेती, धोती, जलका पखालना; मलके दूरकरने वास्ते करतेहैं परन्तु उलटीआगेसे दुगुणी होती है, न्यून नहीं। यह सब विद्वानोंका अनुभव है। तथा यह क्रिया-रूप योग तो नट मंगता लोकभी करसक्ते हैं, (पंजाबके राजा रणजीत सिंहके वक्तमेंयह प्रसिद्ध बात है, और पंजाब देशके निवासी विद्वान् जानते भी हैं कि, कोइक मंगताने लाहौरमें रणजीतसिंहके सन्मुख तथा अन्य हजारों पुरुष स्त्रियोंके सन्मुख, षट् मासका प्राणायाम करके समाधिनामा दशवें द्वारमें प्राण चढाया था पीछे सरकारसे इनाम माँगा) इससे योगक्रियाहै, करनेवाला सम्यक् चाहिये, सब हो सक्ता है। अन्य जगहमें भी सुननेमें आताहै। देखो। प्रसिद्धहै नट और नटनी लोगोंके शरीरकी कसरत देखकर सबको आश्चर्यहोताहै (नित्य अभ्यासका फलहै) परंतु तिनकी मुक्ति नहीं होती। जिन्होंने

अपने सम्यक् आत्मविचारसे, सम्यक् स्वरूपको अपरोक्ष जाना है, वे जीवित अवस्थामेंही कृतकृत्य हुये हैं।इससे हे अत्रि।आत्मविचारसेही भ्रम दूर होता है क्रियारूप योगसे भ्रम दूर नहींहोता। भ्रम छूटे विना सुख नहीं, आत्मविचारसे योग आपही आप होता है।अत्रिने कहा योगके विना अन्तर्दृष्टि कैसे खुले? व्यासने कहा अन्तर्दृष्टि आत्मविचारसे खुलती है, योगसे नहीं।योगसे उलटा अन्तर मलिन होता है क्योंकि, जब योग करता है, तब दृष्टि सर्व अंगोंपर करताहै, जिधर किधर रुधिर मांस ऊपर दृष्टि आती है और कुछ नहीं आती । शरीर अति मलीन है शारीरक दृष्टि भी मलीन है । जिसको सम्यक् आत्मविचार हुआ है, तिसको दिव्यदृष्टि कहते है क्योकि, जो पिंडे सोई ब्रह्मंडे, जो खोजे सो पावे । जैसे–एक घटका सम्यक् विचार करनेसे घटका मृत्तिकारूप, अपरोक्ष बोध पुरुषको होता है। तैसेही सर्व ब्रह्मांडके सर्व घटोंकाभी, विना यत्नसे तिसको मृत्तिकारूप, अपरोक्ष बोध होता है।तैसेही–जिस विद्वान् पुरुषने, इस व्यष्टि शरीरको,दृश्यरूपता वा पंचभूतरूपता वा मायारूपता वा अनात्मरूपता वा अपने आत्मस्वरूपमें कल्पित स्वरूपता और अपने आत्माको अवाङ्मनसगोचरता, वा अस्ति, भाति, प्रिय सर्वरूपता,सम्यक् अपरोक्षरूप जाना है।तिसको समष्टिका विना यत्न अपरोक्ष बोध होता है, जो पिंडे सोई ब्रह्माण्डे।जिसको भूत, भविष्यत्,वर्तमान कालका ज्ञान है;वह कालदृष्टि कहलाता है,सो ज्योतिषी आदिक बने हैं; कोई परमपदको नहीं प्राप्त होते । मोक्षके हेतु आत्मदृष्टि वास्ते आत्मविचार ही कर्तव्य है । इससे हे अत्रि।अन्तर बाहर सर्व गोविंद आत्मा मैंही हूँ, मुझ आत्मासे भिन्न कुछ नहीं। इस दृढ निश्चयका नामही योग है।जो अपने स्वरूपसे पृथक् देखना है, सोई मलीनता है, जैसे--जलसे भिन्न बुद्बुदे तरंगादिकोंकी प्रतीतिभ्रम है । अत्रि तूष्णीं हुआ ।

इन्द्र ।

तिसी समय इन्द्रने आकर कहा "मैं नित्य सुख चिद्रूप इंद्र, इस संघातरूप स्वर्गविषे मन चक्षु इंद्रियादि देवतोंका साक्षीरूप होकर स्थित हूं । सत, रज, तम गुणरूप त्रिलोकीका मैं चैतन्य साक्षी ही प्रेरकहूं" वा स्थूल शरीर समष्टिव्यष्टि तथा समष्टिव्यष्टि सूक्ष्म शरीर तथा समष्टि व्यष्टि कारण शरीररूप, त्रिलोकीका व्यवहार मैं चैतन्य इंद्रही सिद्ध करनेवाला हूँ । वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप त्रिलोकीका प्रकाशक, मैंही तुरीय चैतन्यरूप इंद्र हूँ । मायारूप मुझ आत्मा इन्द्रकी इन्द्राणी इस त्रिलोकीका उपादान कारण है ! श्रोत्रादिक देवतारूप इंद्रिय, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आप अपने विषयोंमें मुझ द्रष्टा साक्षी चैतन्य इन्द्रकी आज्ञारूप सत्ताकरही प्रवृत्त होते हैं अन्यथा नहीं । पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, मुझ चैतन्य इंद्रके आगे प्रधान देवता है, मैं चैतन्य साक्षी इन्द्र सर्व नामरूप त्रिलोकीमें पूर्ण हूँ, मैं चैतन्यही त्रिलोकीको प्रकाश करता हूँ जैसे--स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न सृष्टिमें पूर्ण है, तथा सर्वको प्रकाश करता है; जो मैं पूर्ण नहीं होऊं तो तिनको सिद्धी कैसे होवे? मुझ सत्‌रूप चैतन्यको त्रिलोकी तथा त्रिलोकी अंतर्वर्ती पदार्थ कोई भी जान नहीं सक्के मैं सबको जानता हूँ। इसीसे मैं स्वयंप्रकाश हूँ व्यासने कहा स्वयंप्रकाश और परप्रकाश, मन वाणीका कथन चिंतनरूप धर्म है। मैं आत्मा इससे भी परे हूँ, मुझ आत्मामें पूर्ण अपूर्ण दोनों नहीं । स्वतःही निर्विकल्प हूँ । इन्द्र तूष्णीं हुआ ।

ब्रह्मा ।

तिसी समयमें ब्रह्माने आकर कहा-मैं व्यापक ब्रह्म, चैतन्य, अंतर्यामी, परमेश्वर, सर्व ब्रह्मलोकरूप देहोमें साक्षी रूप होकर स्थित हूँ परंतु जिस अधिकारीको मुझ व्यापक चैतन्य परमेश्वरके दर्शन कर

नेकी इच्छा हो, सो "इस मनुष्य देहरूप ब्रह्मलोकविषे, जो सर्व मनादिकोंका हरवक्त सदा अपरोक्ष साक्षीरूप चेतन्य आत्मा है सोई मेरा स्वरूप है और इसते पृथक् नहीं, सो साक्षी चैतन्य आत्मा मैं हूँ" यही निश्चय करे, यही मेरा दर्शन है। ऐसा वहम (भ्रम) नहीं करना कि, पूर्वोक्त स्वरूपसे भिन्न परमेश्वरका स्वरूप किसी स्थानमें है वा किसी कालमें मिलेगा परन्तु हे अधिकारी जनो! मैं तुम्हारा आत्मा मन आदिकोंका साक्षीरूप होकर सदा अपरोक्ष स्थितहूँ। व्यासने कहा हे देवनके देव! वचन तुम्हारा अमृतके समान है, तुम नित्य, सुख, अनंत, साक्षी, आत्मा, मन वाणीके अगोचर हो, तुम-को कैसे जाना जावे? ब्रह्माने कहा हे व्यास! मुझ सुख, चित, नित्य, साक्षी, आत्माका अवाङ्मनसगोचर कर जो अनुभव होना है, यही मुझ परमेश्वरसाक्षीका सम्यक जानना है, अन्य प्रकार असम्यक् जानना है। व्यास तूष्णीं हुआ।

महादेव।

महादेव कहते भये हे सभा! जो तुम्हारे अंतर सच्चिदानंदरूप, मन आदिकोंका साक्षी, आत्मा है तथा मन वाणीके चिंतनकथनसे परे है तथा स्वरूपसेही बंध मोक्षसे रहित है, परन्तु सदा हाजिर हुजूर है, सोई वस्तु तुम आपको जानो। इसवस्तुसे जुदा, परमेश्वर परमात्मा, ईश्वर, नारायण, गोविंद, विष्णु, शिवादिक नामोंसे प्रतिपादित परमात्मा भिन्न नहीं। जो भिन्न होवेंगे तो असत्त जड दुःखरूप होवेंगे तथा मन वाणीके गोचर अनात्मा दृश्य होवेंगे, जो जो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है, सो सो दृश्य, दुःख, जड, अनित्य, अनात्माहै, तिनको तुम सम्यक् अपना स्वरूप मत जानो, कायिक वाचिक मानसिक कर्म करते भी

आपको अकर्ता, अभोक्ता, जानो। तुमको तिन कर्मोंका स्पर्श सुख दुःख न होगा। जैसे, चकोरकी चंद्रमाके साथ अतिप्रीति होनेसे, अग्निका भक्षण करता हुआ भी अग्निका दाह तिसको नहीं होता।

शुक्र।

तिसी समय शुक्र आये और कहने लगे--जबलग त्रिपुटीविषेन बैठे तबलग सुख नहीं पाता। उससे तुरीया श्रेष्ठ है। व्यासनेकहा हे शुक्र! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिके प्रकाश करनेवाले आत्माका नाम तुरीया है, तिसकीही श्रेष्ठता है, अन्यकी नहीं। सो आत्मा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिमें भी हरवक्त अपरोक्ष है, जो आत्मा तिनमें पूर्ण न होवे तो तिनका प्रकाश कैसे होवे? इससे "जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिको त्यागकर तुरीयामें स्थित होवे" यह वचन हँसीके योग्यहै; 'हाँ! जाग्रतादिकोंमें पूर्ण हुआ तिनका प्रकाशक सुखरूप तुरीयआत्मा मैं हूँ, यह निश्चय तो ठीक है तैसेही सुखरूप आत्मा सर्व अंगोंमें पूर्ण है, जो आत्मा सर्व अंगोंमें पूर्ण नहीं होवे तो सर्व अगोंका ज्ञान न होना चाहिये क्योंकि, ज्ञानस्वरूप आत्माही है अन्य नहीं। सर्व अंगोंको त्यागकर त्रिपुटीमें स्थित होवे यह तेरा कहना लज्जाका काम है। क्योंकि, सुखरूप आत्मा पूर्ण है, त्रिपुटी तो रुधिर मांस अस्थिरूप है; तिसमें सुख कहां है? आत्मा सर्व अवस्थामें सम है और आत्मामें सब अवस्था सम हैं।

मैत्रेयने कहा हे पराशर! मैं कौन हूँ? नेत्र, त्वचा, कान, रसना, घ्राण हूँ वा हाथ, पाँव, वाक्, शिश्न, गुदा हूँ? वा शब्दादिक पंच विषयहूँ? वा सत् रज तम तीन गुण हूँ? वा प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार हूँ वा पंचभूत हूँ, वा जड माया हूँ? पराशरने कहा यह सब तुझ चिद्घनदेवसे प्रगटहुयेहैं; तुझेको कौन कहे जो तू अमुक है?

संसार सागर।

मैत्रेयने कहा--इस संसारसमुद्रजलसे मैं पार कैसेहोऊँ ? पराशरनेकहा-तुझ अस्ति भाति प्रियरूप वस्तुसे भिन्न संसार समुद्र जल हैही नहीं तो पार किससे उतरताहै? लज्जावान्हो,जो मृगतृष्णाके जलते पार होनेवास्ते नौकाकी इच्छाकरताहै,पहले संसारविषे जलको निश्चय कर पीछे पार हूजियो।मैत्रेयने कहा तुमहीं कहो जल कौनहै?पराशने कहा जैसे जलके बिना समुद्र आसारहै,तैसे तुझ सुख,अनन्त, चिद् आत्मारूप जलसे, यह नामरूप संसार तरंग असारहै। इससे तूही चैतन्य आत्मा जलरूपहै, जब तूने आपको अस्तिभाति प्रियरूप सार जल जाना तो,विचार देख संसाररूप समुद्र कहांहै?किंतु कुछनहीं,यही मुख्यपक्षहै।गौण अर्थ यहहै कि,संसाररूप समुद्रमें जल,अहंकार रूपवासनाहै। मैत्रेयने कहा-वासनाका रूप क्याहै ? पराशरने कहा वासनाका रूप;मैंने देखा नहीं मैत्रेयने कहा जब रूप देखा नहीं तो संसार समुद्रविषे वासना जलहै,यह कैसे कल्पा ? जब अहंकाररूप वासना नहीं राखता तो, मुझको वासनासे क्या भयहै ? क्योंकि, रूप रहित आकाश किसीको दुःख नहीं देता।

गणेश।

तिस समय गणेश आये और कहा गणनाम मन सहित चक्षु आदि इंद्रियोंकाहै,वा गणनाम इस नामरूप मूर्ति सहित सकारण समूह प्रपंचकाहै,तिनको जो नियमनकरे नाम प्रेरणा करे, तिसका नाम ईशहै, वा ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक सर्व मूर्ति अमूर्तिमान् प्रपंचगणका, जो मालिक होवे तिसका नाम गणेश है।सो यह पूर्वोक्त गणोंका ईशपना चैतन्य वस्तुमेंही घटसकताहै,अन्य किसी सूक्ष्म वा स्थूल मूर्तिमान् वस्तुमें घटसकता नहीं क्योंकि, चेत-

न्यसे भिन्न सर्व संसारके अंतर्भूतहै। इससे गणेशनाम मन आदि-
कोंके साक्षी चैतन्य आत्माकाहै।सो पूर्वोक्त गणेश तुम्हारा तथा
सर्व जगत्का स्वरूप है यह नहींकि,ब्रह्मा विष्णु, शिवादिक देव-
तोंका पूर्वोक्त गणेश आत्माहै और चींटीका आत्मा नहीं चींटीका
स्वरूप औरहै, ऐसा नहीं । चाहे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सत् वक्ता
यथार्थ स्वरूपके ज्ञाता बैठेहैं तिनसे पूछलो । पुनः सबने कहा
यथार्थदृष्टि यहीहै,स्वरूपमें भेदनहीं,व्यवहारमें भेदहै । पुनःगणे-
शजी कहनेलगे-हे सभा ! असली विचार करे, तो व्यवहारमें भी
भेद नहीं क्योंकि, व्यवहार नाम कथन प्रतीतकाहै,सो भी एक-
साहै । पंच ज्ञानेंद्रिय , पंच कर्मेंद्रिय, पंचप्राण, मन, बुद्धि, चित्त,
अहंकार,यह तो ग्राहक और शब्दादिक विषय ग्राह्य सो यह ग्राहक
ग्राह्यभाव करके प्रीति सर्व शरीरोंमें तुल्यहै । इंद्रिय विषयके
संयोग वियोगजन्य सुख दुःखकी प्रतीत भी पुरुषोंकी तुल्यही
है तथा पंच भूतोंकी प्रतीतिभी तुल्यही है । चक्षु आदिक इंद्रियों-
के दर्शनादिक व्यवहार, स्वतः सिद्धही भिन्न भिन्न सर्व शरीरोंमें
होरहेहैं,यहभी तुल्यही है । इससे हे सभा । सम्यक् गणेश अपने
आत्माको जानो और संसारके पदार्थोंमें न्यूनाधिकभावं मत
देखो, यह दृश्यमान प्रपंच मायामात्रहै,यह कहकर गणेश तूष्णी
हुये सर्व सभाने गणेशजीका अनुमोदन किया ।

चन्द्रमा ।

फिर चन्द्रमा आये और कहने लगे-भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षरूप
तमसे रहित विष्णु है सोई शांतिरूप मुख्य चन्द्रमाहै तथा जो स्वत
ही ज्ञान अज्ञानसे, जन्म मरणसे,हर्ष शोकसे सर्व संसारके धा
रूपी तमसे रहितहै सोई चन्द्रमाहै।जो स्वतःही काम क्रोधादिकों
तथा उदय अस्त भावरूपी तमसे रहितहै, सोई शांतिरूप मुख्य

चन्द्रमा है। जो न्यूनाधिकभावसे रहित, सदा एकरस निर्विकार, दृश्य, संबंधसे रहित, सदा अपरोक्ष,मनादिकोंका साक्षी, आत्मा हृदयरूप आकाशमें स्थित है,सोई चन्द्रमा है। नित्य, चित्सुख, आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शनसेही अध्यात्म,अधिभूत,अधिदैव,ताप मिटजाते हैं। तथा सर्व दर्शन अपनाही होजाता है, दर्शन योग्य अन्य कोई पदार्थ रहता नहीं। ब्रह्मलोक,विष्णुलोक,शिवलोकादिकोंके सुख जिस चन्द्रमाके नजदीक,समुद्रमें एक किनकेकी समान हैं, उसी आत्मारूप चन्द्रमाके सम्यक् दर्शनसे जो कुछ करना था सो होचुकता है तथा जहाँ जाना था सो जा चुकता है,सर्व करता भोक्ताभी आपको अकरता अभोक्ता मानता है। उसी आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शनसे वास्तवसे आप अकरता अभोक्ताभी अपनी मायासे सर्वका कर्ता भोक्ता आपको जानता है। उसी आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शनसे इस अनित्य सर्व नाम रूप जगत्का आपकोही अधिष्ठान, प्रकाशक,नियामक, उत्पत्ति,पालक, संहारक,सम्यक् संशय रहित अपरोक्ष जानताहै। उसी आत्मारूप चन्द्रमाको जानकर अस्ति भाति प्रियरूपसे आपको सम्यक् सर्वात्मा जानताहै। उसी अनंत,नित्य,चिद् आत्मरूपी चन्द्रमाके आनंदसे सर्व आनंदमान् होरहेहैं। यदि आनंदस्वरूप (सर्वके हृदयविषे) आत्मरूप चन्द्रमा न होवे तो सर्व जीवोंका कैसे जीवन होवे;किन्तु नहीं होवे। देखो मुझ चैतन्य चन्द्रमारूप आत्मा आनंदकी पूर्णता कि, मेहतर अपने हालमेंही मस्त है,जब मलसे निपटकर अपने बाल बच्चोंमें निवास करता है,तब राजाको भी कुछ गिनता नहीं;अन्यकी क्या बात है?तैसेही शूकर कूकरभी अपने बालबच्चोंमेंही प्रसन्न हैं। इंद्राणी सहित इंद्रादिकोंके भोगोंकी इच्छा नहीं करते। देखो! मजदूर सारा दिन मजदूरी करता है,परंतु जब रात्रिमें अपने बाल बच्चोंमें निवास करताहै,तब धनियोंको स्वप्नमें भी याद नहीं करता।

आप लोग ख्याल करो मलका चींटा, मलमेंही(अपनी सृष्टिमें) प्रसन्न है,अपनेसे भिन्न सृष्टिके भोग विलासको मंजूरही नहीं करता। तैसेही पक्षी अपनी सृष्टिमें खुश रहते हैं, बनोंके वृक्षोंमेंही रहना मंजूर रखते हैं (महलोंका नहीं)। अन्य सृष्टिके भोग विलासोंको तृणकी समान जानते हैं। सारांश यह कि, एक दूसरेकी दृष्टिसे सुख दुःख न्यूनाधिक भाव प्रतीत होता है, नहीं स्वदृष्टिमेंही सुख है। तैसे मृगादि पशुभी आप अपनी सृष्टिमें आनंदीहैं, अन्य सृष्टिमें नहीं। देखो! मच्छरादि हमारी दृष्टिसे तुच्छ जीवभी एक दिनमेंही बालक, युवा, वृद्धादि अवस्था अपने बालबच्चों सहित भोगकर नष्ट होजाते हैं, परंतु अन्य सृष्टिके सुखोंको तुच्छ जानते हैं इत्यादि सर्व सृष्टिमें सूक्ष्म अंतर विचार करनेसेही, अपने स्वरूप आनंदकी पूर्णता मालूम होती है, अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि, जहाँ कोई जिस किस योनि वा स्थानमें, जातिमें, मंत्र, तंत्र, औषधी, शास्त्र, वेद, पुराण, षट् शास्त्रादि विद्यामें, विषयलंपटतामें तथा धर्म, अधर्म, लड़ाई, चोरी, यारी, ठगी, दंभ, जिमींदारी, नौकरी, व्यापार, स्त्री, पुरुष, राज्य, वर्ण, आश्रम, ज्ञान, अज्ञान, फकीरी, अमीरी, ध्यान, पूजा, जप, तप, योग, वेदांत, समाधि, व्रत, तीर्थ, यम नियम, तमाशे, जादूमें कविता, धूर्तता, तथा परमहंसीसे आदिलेकर जहाँ जो स्थितहै वहांही आनंदमान रहा है क्योंकि, आनंद स्वरूप चैतन्य साक्षी आत्मा सबके हृदयमें पूर्ण है, इसीसेही सर्व आनंदमान होरहेहैं। जो चैतन्य, सुख अनुभव आत्मारूप, अलौकिकचंद्रमा, सर्व प्राणीमात्रके हृदयदेशमें नित्य स्थित नहोवे, तोयहसुखदुःखरूपसंघातमेंएकदिनभी कटना कठिन होजावे। उलटा जिस शरीरमेंहै उसशरीरको अन्यशरीरोंसे सुखरूप उत्कृष्ट मानताहै। जोआपको निकृष्ट मानेतोजीवनाकठिन

होवे। इस हेतु आत्मारूपी चंद्रमाकी महिमा अवाङ्मनसगोचरहै। किसकी उपमादेवें? मन वाणी आदिक सर्वका तथा पट् प्रमाणोंका वही प्रकाशक है। जो अनंत चित् सुखात्मारूप अलौकिक चंद्रमाके पूर्वोक्त विशेषण कहे हैं, सो लौकिक दृश्यरूप आकाशज चन्द्रमाविषे एकभी घटते नहीं अथवा और मन आदिक दृश्य पदार्थोंमें भी घटते नहीं। यह सूक्ष्म भाव बुद्धिके विचारसे जाना जाताहै, स्थूलतासे नहीं। इससे पूर्वोक्त विशेपणोंयुक्त, नित्य, सुख मन आदिकोंका साक्षी चिदात्मारूप, चन्द्रमाही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यन्त सर्वका स्वरूप है। तिसी चन्द्रमाको मैं अपना आत्मा जानकर सर्व संसार, भ्रमसेरहित, संतुष्ट हुआ सुखसे जीवता हूँ। कोई भी संसार धर्म मुझको स्पर्श नहीं करता, सदा आकाशमें गमनरूप क्रिया करता भी अकरता हूँ।

आत्मप्राप्तिका साधन।

व्यासने कहा तिसके जाननेका साधन कौनहै? चन्द्रमाने कहा हे व्यास। तुमरीखे सत्यवक्ता, ब्रह्मनिष्ठ, पक्षपातसे रहित हस्तामलकवत्, अपरोक्ष स्वरूपके विद्वान गुरुपोंका संगही परमसाधनहै; आत्मा साक्षीरूप चन्द्रमाके देखनेको सत्संग नेत्रहै। शमदमादि अन्य सर्व साधन सत्संगके अंतर्भूत हैं। इस हेतु निःसंग पुरुपोंको सत्संगही कर्त्तव्य है अन्य नहीं। व्यास तूष्णीं हुये।

कुवेर।

तिसी समय कुवेर आये और कहने लगे हे सभानिवासी! धन नाम प्रसिद्ध, निजकार्यसहित जड मायाकाहै, कईएक महात्माओंने धननाम स्त्री पुत्र पैसा गृह पशु आदिकोंका कहाहै, तदुपलक्षित सर्व संसार लेलेना, इस व्यक्ति सहित सर्वनामरूप जगत्का जो स्वामी होवे सो कहिये धनेश वा धननाम है कृतकृत्यका सो

कृतकृत्य धर्म मनका है क्योंकि,जो अकृतकृत्य होताहै वही कृत-
कृत्य होताहै,सो मनआदिकोंको कृतकृत्यतारूप मोक्ष देवे अथवा
अपनी सत्तास्फूर्तिरूप धन देकर जड मनआदिकोंको ऐश्वर्यवान्
नाम चैतन्यकरे तिसका नाम धनेशहै। सो यह धनेशका अर्थ किसी
माया तथा मायाके कार्यरूप दृश्यवान् मूर्तिविषे घटतानहीं साक्षी
चैतन्य आत्माविषेही घटता है, सो पूर्वोक्त धनेशही सर्वका
आत्मा है। इस बुद्धि आदिकोंके प्रकाशक धनेश (साक्षी आत्मा)
कोही सम्यक् जानकर कृतकृत्य हुआ संसारभ्रमसे रहित होताहै
और तब संसारमें स्थित भी,जलकमलवत् संसारधर्मोंसे असंग
रहता है इससे यह दृश्यमान व्यक्ति धनेश कहनेमात्रहीहै, असली
धनेश चैतन्य आत्माही है। मैं आत्मारूप धनेशही सर्वको स्फूर्ति-
रूप धन देता हूँ, मुझको कोई दृश्य पदार्थ सत्ता स्फूर्ति दे नहीं
सक्ता । इसहेतु तुम मुझ चैतन्य धनेशकोही अपना आत्मारूप
जानो कि, जिससे तुमभी आत्मधनरूप धनके ईश(धनेश)होओ।
वसिष्ठने कहा मैं चैतन्य आत्मा कर्तव्यसे धनेश नहीं होता,किंतु
स्वतःही धनेश हूँ जैसे घटाकाश महाकाश रूप बनानेसे नहीं
होता, किन्तु आगेही महाकाशरूप है ।धनेशने कहा तू कौन है?
वसिष्ठने कहा तू है।धनेशने कहा मैं कौन हूँ? वसिष्ठने कहा जो
मैं हूँ। धनेशने कहा जहां मैं तू है वहां माया है,मैं मायासे परे हूँ।
व्यासने कहा जो तू चैतन्य सर्वरूपहै, कि असर्वरूपहै ? यदि तू
चैतन्य धनेश सर्वरूपहै तो मायाभी तूहीहै,परे डरेभीही है।जो जो
तू असर्वरूपहै जो असर्वरूप होताहै,सो परिच्छिन्न जड,उत्पत्ति-
मान् अनित्य, दृश्य होताहै । धनेशने कहा सर्व असर्व दोनोंरूप
मैं चैतन्य आत्माही हूँ, क्योंकि, अस्ति भाति प्रियरूप दृष्टि
द्वारासर्व,माया,अमाया,जड,चेतन,नित्य,अनित्य मैंही सर्वरूप
हूँ और अवाङ्मनसगोचर दृष्टिसे कल्पित सर्व संसारसे परे अधि॰

ष्ठान हूँ। कल्पित अधिष्ठानकी यही रीति है, जैसे–स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नका पदार्थ रूपभी है और स्वप्न पदार्थोंसे अगोचर भी है क्योंकि स्वप्न पदार्थ कल्पित हैं और स्वप्नद्रष्टा अधिष्टन सत् है। व्यासने कहा "वाङ्मनसगोचर और अवाङ्मनसगोचर" तुझ चैतन्यमें यहभेद कहाँसे आया ? धनेशने कहा भेद अभेद तूने कल्पाहै; मुझ चैतन्यमें नहीं। जैसे–सूर्यमें दिन रात्रि नहीं, औरोंने दोनों कल्पे हैं। व्यास तूष्णीं हुये।

ध्रुव।

तिस समय ध्रुव आये और कहा-हे मैत्रेय! विचार और शोच कर देख। यह जगत् अनादि कालका चला आताहै, इस जगत्के व्यवहारकी मर्यादा स्थापन करने वास्ते, सच्चिदानंद आत्मा ध्रुव ईश्वरने, जैसे सूर्य चन्द्रमा लोक रचेहैं तैसेही ध्रुव(उत्तर और दक्षिण) दो रचे हैं; कोई पीछे होनेवाला उत्तानपाद राजाका पुत्र ध्रुव नहीं हुआ। ध्रुव सूर्यादिअनादि हैं। उत्तानपाद राजाके पुत्रका नामभी ध्रुवही था, नाम नामकी तुल्यतासे लोगोंने अनादि आकाशज ध्रुवही कथामें लिख दिया। सो उत्तानपाद राजाका पुत्र ध्रुव भी अपने तपके प्राभावसे माता, पिता सहित वा एकलाही निश्चित बहुत कालस्थायी लोगोंको प्राप्त हुआ अथवा ध्रुव लोकही प्राप्त हुआहै। यहां ध्रुव नक्षत्रका प्रकरण है।

ध्रुव कहने लगा हे सभानिवासी उत्तम जनो! ध्रुव नाम निश्चयका है, तथा अचलकाहै, निश्चय करके जो अचल होवे तिसका नाम ध्रुव है। सो ऐसा निश्चय अचल नित्य, सुख, चिद्रूप, आत्माही है अन्य नहीं क्यों कि, ये नक्षत्र ध्रुवसे आदिलेके सूर्य, चन्द्रमा, सुमेरु समुद्र, पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाशादि जो अचल महान् पदार्थ दीखतेहैं, सो महाप्रलयतकही हैं, महाप्रलयमें चलरूप होजावेंगे।

अपनी उत्पत्तिसे पहले थे नहीं औरअंत रहेंगे नहीं,मध्यमेंही इनकी अचलता प्रतीत होतीहै, सो भी भ्रममात्रहै;इसीसे चल हैं। जिस चैतन्यद्वारा चल भी प्रपंच अचल प्रतित होता है, सो आत्माही अचल है क्योंकि,जिसका जो स्वरूप आदि अंत होताहै,वैसाही तिसका मध्यमें होता है, यह न्याय प्रसिद्ध है। आदिअंतमध्यमें तथा भूत भविष्यत्वर्तमान कालमें,जाकाबोध ज्ञानसेवाअन्य साधनसे न हो, किन्तु एकरस रहे सो अचल होता है।ब्रह्माविष्णु,शिवभी महाप्रलयमें अपने नित्य, चित,सुख,ध्रुवस्वरूप आत्मामें आगेही स्थित होनेपरभी उपाधिके अदृश्यताके कारणसेपुनः स्थित होतेहैं जैसे घटाकाश महाकाशरूप होनेपर भी घट उपाधिके अभावसे यह घटाकाश महाकाशरूप होगया है, ऐसे प्रतीत होता है। यह ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि भी अध्रुव दृश्यरूप शरीरोंको त्यागदेतेहैं, अन्यकी क्या बातहै।इससे यह सर्वनामरूप प्रपंच अध्रुवरूप है। ध्रुव नहीं। नित्य सुख चिद्रूप आत्माही एक ध्रुव है अन्य नहीं। सोई सर्वका आत्मा है। अपने ध्रुवस्वरूपके अज्ञानसे, आपको अध्रुव मानते हैं।अपने ध्रुवस्वरूप आत्मासेही अध्रुव मन आदिक संघातकी तथा संघातके धर्मोंकी सिद्धिहै ।बडा आश्चर्यहै। जिस अध्रुव नामरूप मनआदिकोंको यहध्रुवात्मा सिद्ध करता है,उसीको अपना स्वरूप मानता है,परन्तु वास्तवसे अध्रुवरूप होता नहीं मुझ ध्रुव स्वरूप आत्मा द्वाराही यह अध्रुवरूप संसार ध्रुवरूप प्रतीत हो रहा है।जैसे अग्नि करही लोहा प्रकाशमान होताहै,स्वतः अप्रकाश रूप है । इससे जिस अधिकारीको भ्रमरूप बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा होवे, सो मुझ चैतन्य ध्रुवको अपना साक्षी आत्मा जाने।सारांश यह कि,"मैं नित्य,सुख,चित रूप बुद्धि आदिकोंका द्रष्टा, साक्षी आत्मा हूँ" सत्य संभापणादि धर्मपूर्वक सम्यक् ऐसा जाननाही कर्तव्य है और कोई भ्रम निवृत्ति

वास्ते कर्तव्य नहीं। जैसे आकाशज ध्रुवके चौफेर शिशुमार चक्र फिरता है परन्तु ध्रुव नहीं फिरता, जो ध्रुव भी फिरेगा तो ध्रुव संज्ञासे रहित होवेगा। तैसे सर्वके अंतर, साक्षीरूप होकर जो मैं ध्रुव हूँ, सो मेरे चौफेर भी जाग्रत्,स्वप्न,सुषुप्ति तथा सत्व,रज,तम शुभ अशुभ संकल्पादिक,तथा बालक युवा वृद्धादि,सर्व पदार्थोंका न्यूनाधिकभाव होनाही शिशुमार चक्र फिर रहा है। तात्पर्य यह कि कभी जाग्रत् होता है,कभी स्वप्न होता है,कभी सुषुप्ति होतीहै,कभी तुरीया होती है, कभी सत्त्व, कभी रज, कभी तम होता है, कभी शुभ संकल्प विकल्प होता है,कभी अशुभ संकल्प विकल्प होताहै, कभी बालक, कभी युवा,कभी वृद्ध अवस्था होतीहै.(ऐसेही सर्व पदार्थ जानलेने)परन्तु मैं चैतन्य ध्रुव निर्विकार स्थितहूँ।जो पूर्वोक्त चक्रवत् मेरा भी चक्र होवे,मेरी भी अध्रुवता होवेगी।इससे मुझ चैतन्य रूप ध्रुवसे भिन्न; सर्व नामरूप जगत् अध्रुव जडरूप है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! ध्रुवकी वाणी सुनकर यमकिंकरनेकहा "ध्रुव अध्रुव द्वैतमें हैं,मैं अद्वैत हूँ"। ध्रुवने कहा मुझ चैतन्य ध्रुवसे अभिन्न होकर तू अद्वैत सिद्ध होगा नहीं,तो अध्रुव होगा।यमकिंकरने कहा जब अद्वैतहै तो भिन्न अभिन्न क्या?ध्रुवने कहा भिन्न अभिन्नभी अद्वैत ध्रुवही है।धर्मरायने कहा ध्रुव है तो चलभी है। ध्रुवने कहा लौकिक ध्रुव अध्रुवसे रहित मैं अलौकिक ध्रुव हूँ,वास्तवसे अस्ति भाति प्रिय सर्व चल अचल नामरूप मैंही आत्मा हूँ।धर्मरायने कहा लौकिक, अलौकिक-ध्रुव,तीन पद हुये। बुद्धिमान् एक कहते भी लज्जायमान होते हैं,तुम तीन कहते हो?ध्रुव तूष्णीं हुआ।

दक्षप्रजापति।

तिस समय दक्षप्रजापति आये और कहने लगे दक्षनाम चतुरका है; चतुराई बुद्धिसे होती है, बुद्धि नाम ज्ञानका है;

दक्ष नाम ज्ञान स्वरूपका है।सर्व नाम रूप प्रजाका पति (स्वामी) ज्ञानस्वरूप होवे तिसका नाम दक्षप्रजापति है।वा सर्व प्रजा जिससे होवे सो प्रजापति है।सो यह अर्थ ज्ञान स्वरूप आत्मामेंही घटताहै। इससे हे साधो! इस ब्रह्मासे आदिलेके चींटी पर्यन्त,सर्व प्रजाका ज्ञानस्वरूप मैं आत्माही पति हूँ। मनकरकेभी अचिंतनीयहैरचना जिसकी, ऐसे सर्व नामरूप,सर्व प्रजाकी उत्पत्ति पालना संहार करता हूँऔर मननादि प्रजाविषे मैं निवास कर सर्वको आपअपने व्यवहारमें नियमनभी करता हूँ(मेरा नियमन कोई नहीं करता)और तिनके कर्मोंसे अस्पर्शभी हूँ, यही मेरी चतुराई है। जैसे आकाश सर्वमें स्थित हुआ हुआ अस्पर्श (अलग) है, यही आकाशकी चतुराईहै। इस कारण तुम सर्व प्रजा मुझे, ज्ञान स्वरूप अनंत चिदात्माकोपति जानो क्योंकि,मैं ज्ञान स्वरूप आत्माही सर्वका स्वरूपहूँ। जो जिसका स्वरूप होताहै सोई तिसका पति होताहै; जैसे सर्प दंडमालादि कल्पित पदार्थोंका रज्जुही पति है क्योंकि, रज्जुके अधीन ही तिन सर्पादिकोंकी प्रतीति होती है, अन्यथा नहीं। तैसे--मुझे चैतन्यसेंही मुझविषे कल्पित इस दृश्य जडकी प्रतीति है, अन्यथा नहीं। चंद्रमाने कहा मुझ आनंद स्वरूपसे भिन्न तू दुःखरूप है । दक्षने कहा जो ज्ञान स्वरूप है सोई आनंदस्वरूप है, तथा सद्रूप है; मुझ ज्ञानरूपसे तुम जुदे हुये, असत् जड होजावोगे। ज्ञानके भीतर सबको आना पडेगा। चन्द्रमा तूष्णीं हुआ और सूर्य भगवान् आये।

सूर्य्य ।

सूर्य्य भगवान्ने कहा कि,मैं एकही चित्सुख नित्य स्वरूप आत्मा, सर्व सूर्यचंद्रमा आदिकज्योतियोंकातथामायासेआदिले-कर देहपर्यंत सर्वका प्रकाश हूँ,मैं आपही स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ,मेरा

कोई प्रकाशक नहीं। जैसे वारह सूर्यसेही चैत्रादि बारहमास पट् ऋतु, तीन चातुरमास, सिद्ध होतेहैं; तैसेही अंतर बाहर पंचभूतोंको सात्विकी साँझी एक एक अंशसे होनेवाले ज्ञानेंद्रिय तथा अंतःकरण पांच जानना। तैसेही भूतोंकी, राजसी सांझी एक एक अंशसे प्राण तथा कर्मेंद्रियोंकी उत्पत्ति होती है इससे पांच यह जानने, देवता ११ विषय १२ तात्पर्य यह कि पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेन्द्रिय, साधारण वायुरूप प्राण और अंतःकरण, तिन अंतःकरणादिकोंके देवता, तथा श्रोत्रादिक इंद्रियोंके विषयरूप बारामहीने मुझ चैतन्य साक्षी आत्मा सूर्यकर प्रकाशक हुये सिद्ध होतेहैं। मुझ चैतन्य विना इनकी सिद्धि कोई नहीं करसक्ता। तैसेही मनादिकोंके साक्षी मुझ चैतन्य सूर्य करही देहके पट्भाव विकार रूप पट्ऋतु जाननेमें आतीहैं वा पृथिवी आप तेज वायु आकाश तथा तिनका कारण माया यह पट्ऋतु सिद्ध होतीहैं वा पट् शास्त्र रूपी पट्ऋतु भी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होती हैं वा मनसहित श्रोत्रादिक पट्इंद्रिय तथा पट्ही तिनके विषय ये दोनों प्रकारकी पट्ऋतु, मुझ बुद्धि आदिकोंके साक्षी नित्यसुख चैतन्य आत्मा सूर्य करही सिद्ध होती हैं। वा अन्नमयादि पंचकोश और एक अविद्या, यह पट्ऋतुभी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होती हैं। वा पट् दोष रूप पट्ऋतु भी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होतीहैं। वा १ अविद्या २ अस्मिता ३ राग ४ द्वेष ५ अभिनिवेश यह पंच क्लेश तथा पंचक्लेशोंके भोक्ता ६ जीव (सूक्ष्मशरीर) यह पट् ऋतुभी मुझ साक्षी चैतन्य अंतर सूर्यसेही प्रकाशमान होतेहैं। वा जाग्रत, स्वप्न, सुपुप्ति, तुरीया और तुरीयातीत, ये पांच बुद्धिकी अवस्था तथा एकबुद्धि, यह पट् ऋतु। वा स्थूल, सूक्ष्म कारण, तथा महाकारणशरीर तथा तिनका उपादानकारण माया और तिन शरीरोंके निमित्त कारण कर्म, यह पट्ऋतु। वा जाग्रत स्वप्न, सुपुप्ति, मूर्छा, मरण समाधि यह पट्ऋतु हैं। वा तीन व्यष्टि

शरीर तथा तीनसमष्टि शरीर यह षट्ऋतु हैं वा समष्टि व्यष्टि षट् शरीरोंके अभिमानी विश्व वैराटादि षट्ऋतु हैं इत्यादि । अनेकऋतु मुझ सम्यक् आत्मा सूर्यकरही सिद्धहोतीहैं बाहरकी भी मधु, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् हेमन्त, वसंत, यह षट् ऋतुभी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होती हैं क्योंकि जो सर्वका स्वरूप चैतन्य साक्षी, सूर्यादिकोंकाभी प्रकाशक है सोई वसंतादिकष-ट्ऋतुका भी प्रकाशक है ।

चातुर्मास ।

तैसेही-जैसे बारह सूर्यकर तीन चातुरमाससिद्ध होतेहैं तैसेही मुझ चैतन्य अंतर साक्षीआत्मारूप सूर्यकरही, सत्, रज, तमतीन गुणरूप तीन चातुरमास सिद्ध नाम जानेजाते हैं तथा जाग्रतस्वप्न सुषुप्ति तथा तिनके अभिमानी विश्व, तैजस, प्राज्ञरूप तीन चातु-रमास मुझ तुरीयरूप सूर्यकरहीजाने जातेहैं । तथा समष्टिव्यष्टि स्थूल तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म तथा समष्टि व्यष्टि कारण तीन शरीररूपी, तीन चातुरमासभी, मुझ चैतन्य तुरीयरूप सूर्यकरही प्रकाशमान होते हैं । तथा बालक युवा वृद्ध अवस्थारूप तीनचा-तुरमासभी मुझ चिदात्मारूप सूर्यसेही सिद्ध होते हैं क्योंकि, जिस शरीरको अवस्था है सो शरीररूप जड सर्व संघात अपनी अवस्था सहित आपको जान नहीं सक्ते, बाकी शेषमें मैं ज्ञानस्वरूप आत्मा ही सर्वको असंग होकर सिद्ध करताहूँ । तथा जीव, ईश्वर ब्रह्मशब्दरूप तीन चातुरमासभी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होते हैं । अर्थ सहित जो शब्द रूप ऋक्, यजुः सामवेद रूपी तीन चातुरमास तथा ब्रह्मादिक अभिमानी सहित जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहाररूपी तीन चातुरमास, मुझ चैतन्य सूर्यसेही सिद्ध होते हैं । तथा मरण मूर्छा समाधि तथा द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि त्रिपुटीरूप तीन चातुरमास

भी,मुझ ज्ञानस्वरूप द्रष्टा साक्षी सूर्य करही जाने जाते हैं।त्रिलोकीरूपी तीन चातुर्मास मुझ चैतन्य सूर्य आत्मा करही प्रकाशमान है । त्रिलोकीरूपी मंदिरका मैं चैतन्य आत्माही दीपक हूं ।

तीन प्रकारकी वृत्ति ।

सुषुप्तिमें १ प्रिय २ मोद३प्रमोदरूप तीन वृत्तिरूप चातुर्मास भी मुझ निर्विकार साक्षी आत्माकरही सिद्ध होतेहैं, अन्यसे नहीं किसीका कोई मित्र वा पुत्र;बहुत कालसे परदेशगयाहोवे,सो अकस्मात् आजावै, तिसको व मित्रके देखतेही जो तिस कालमें आह्लादकार अन्तःकरणकी वृत्ति होतीहै, तिसका नाम प्रियवृत्तिहै। जब परस्पर नजदीक हुये तिस कालमें जो वृत्ति होतीहै, तिसका नाम मोदवृत्तिहै । जब भुजा पसारकर आपसमें मिले तिस कालमें जो वृत्ति होती है,सो प्रमोद नाम वृत्ति है,पूर्व पूर्व वृत्तिसे उत्तर उत्तर वृत्तिमें एकाग्रता और वृत्तिजन्य सुखकी अधिकता जानलेनी । यही हाल सुषुप्तिमें भी जानलेना ।

अयन ।

जैसे बाहर सूर्यकर दक्षिणायन उत्तरायण दो अयन सिद्ध होतेहैं तैसेही बंधरूपी दक्षिणायन अयन, मोक्षरूपी उत्तरायण अयनभी अन्तर बाहर मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होते हैं । पुरुषोंके अंतर बंध मोक्षतातो बाहरकेहजार सूर्यसेभीप्रकाश नहीं होता मैं चैतन्य सूर्यतो,पुरुषके अंतर मनकर कल्पित बंध मोक्षको अपरोक्ष साक्षी रूपसे प्रकाश करता हूँ और बाहरके अयनोंको सूर्य मण्डल होकर प्रकाशमान करताहूँ।इससे मैं चैतन्यही प्रकाशमानहूँ, अन्य जड दृश्य नहीं।तैसेही जैसे ब्रह्मांडविषे आकाशजसूर्यकरही दिन और रात्रि सिद्धभी होतीहै तथा दिन रात्रिविषे वर्तनेवाले साठ चौसठ

मुहुर्त्त भी तिसी सूर्य कर सिद्ध होतेहैं, परन्तु सूर्य विषे दिन रात्रिका तथा साठ मुहुर्तोंका अत्यंताभाव है । तैसेही अंतर अज्ञान नाम रूप दिन रात्रिका, तिनविषे वर्तनेवाले दैवी आसुरी गुण दोषरूप घटिका, मुझ सत् सुख, चिद्रूप आत्मा, सूर्यकरही सिद्ध होतेहैं परंतु मैं चैतन्य आत्मा सूर्य, पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंसे रहित अवाङ्मनसगोचर स्थित हूँ। मुझ चैतन्य सूर्यकीही यह सर्व नामरूप किरणेंहैं कोई किरण ब्रह्मारूप कोई किरण जटाधारी शंकररूप, कोई किरण विष्णुरूप, कोई देवता, दैत्य, कोई जड; कोई चैतन्यरूप होकर स्थित हुईहैं । कोई किरण पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाशरूप होकर स्थित हुईहैं । कोई किरण स्त्री, कोई पुरुष, वर्ण-आश्रमरूप होकर स्थित हुई हैं। कोई किरण सप्तव्याहृतिरूप कोई अतलादि सप्त नीचेके लोकरूप; कोई स्वर्गरूप, कोई नरकरूप होकर स्थित हुई हैं। कोई इन्द्र, यम तथा मनुष्य देहरूप कोई माया प्रकृति महत्तत्त्वरूप होकर स्थित हुईहैं । बहुत क्या कहूँ ? अस्ति, भाति, प्रियरूप, सर्वात्मा मैं ही हूँ, मेरा मुझकोही नमस्कार है। मैं चैतन्य अपनी महिमाविषे आपही स्थितहूँ जैसे स्वप्नद्रष्टाही स्वप्नमें सर्वरूप होताहै । हे यमकिंकर ! कह तू कौन है ? यमकिंकरने कहा मैं आपको नहीं जाताकि, कौन हूँ क्योंकि, अवाङ्मनसगोचर हूँ । तुम भी कहो मैं कौन हूँ? सूर्यने कहा "मैं आपको नहीं जानता" यह मन वाणीका कथन चिंतन अंतर जिसने जाना, (मैं) सोई तू है। यमकिंकरने कहा ऐसे मेरे स्वरूपको तुमने कैसे जाना, सूर्य तूष्णीं हुआ क्योंकि जो जो मनवाणी कथन चिन्तन करेंगे, तिस कथन चिंतनकी अनुत्पत्तिको, तथा तिनके लयको, मानो पास बैठा देख रहाहै जैसे दाई बालककी [illegible]त्तिको पुनः उत्पत्तिको; तथा तिसके अभावको जानती है।

जैसे अंकुरकी अनुत्पत्तिको, तथा तिसकी उत्पत्तिको तथा तिसके नाशको अवकाश आकाश देता है। इससे अंकुर आकाशके हालको क्या जाने।

बृहस्पति।

तिस समय बृहस्पति देवतोंकागुरु आया और कहा "गु नाम है इन्द्रियोंका वा पृथिवीका वा अज्ञानका और रुनाम है प्रकाशका। तात्पर्य्य यह कि,जो कारण अज्ञान सहित,सर्व नामरूप प्रपंचको, काँटे (तराजू) के समान परिमाण करे वा प्रकाशे नाम जाने सो कहिये गुरु"। सो ऐसा अनंत,चित,सुखरूप, यह आत्माही गुरु शब्दका अर्थ बन सक्ता है। माया तथा मायाके कार्य्य दृश्य वस्तुमें गुरु शब्दका अर्थ घटता नहीं। सोई पूर्वोक्त गुरु आत्माही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का अपना स्वरूप है, अन्य नहीं। चाहे इस संघात ब्रह्मांडमें खोजदेखो। इससे हे अधिकारी जनो। पूर्वोक्त अपने आत्मा स्वरूपकोही,तुम सर्व सूर्यादि दृश्यप्रपंच,नीतिपूर्वक आप अपने व्यवहारमें, आज्ञा चलानेवाला जानो। तथा सर्व दृश्यसे अपने गुरु स्वरूपकोही महान् जानो तथा पूज्य जानो। तुम्हारे गुरुरूप आत्मासे भिन्न सर्व प्रपंचतुच्छ,अपूज्य,असत,जड, दुःखरूप है यह प्रत्यक् चैतन्य आत्माही लौकिक गुरु मूर्ति; धारण करके अपने सत्,चित्,आनंद स्वरूपका,सत् उपदेश कर मुमुक्षुओंका उद्धार करता है। इस हेतु प्रत्यक् चैतन्य तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का इष्टदेव है। इसीको अपना स्वरूप सम्यक् जाननेसे संसारसे मुक्त होता है। संसारके तरनेका यही जहाज है,अन्य तृणोंका आलंबन करना है।

पृथ्वी।

तिस समय मनुष्याकृति धारण कर,भूमि आई और कहने लगी- हे सभाके निवासी सज्जन पुरुषो! देहको देहीही धारण करता है,यह

अतिप्रसिद्ध बातहै । यह दृश्यमान,पर्वतोंसहितकठिनरूप पृथिवीसे आदि लेकर,माया पर्यंत सर्व नामरूप,जगद्रूप, देहको मैं सुख-स्वरूप,प्रत्यक् आत्मा, चित् सत्ता,देही धारण कररहा हूँ। जैसे फेन बुद्बुदे तरंगादिक देहोंको जलही धारण करता है,यह नहीं कि तरंग बुद्बुदेको वा बुद्बुदा तरंगको धारण करता है,क्योंकि,रज्जु-विषे सर्पवत् कल्पित होनेसे,परस्पर आधाराधेयभाव नहीं बन-सक्ते तैसेही, इस पृथिवीसे आदि लेकर मायातक,सर्वको मुझ अनंत चित् सत्ताविषे कल्पित होनेसे,इन कल्पितपृथिवी आदिकों का परस्पर आधाराधेयभाव नहीं बन सक्ता। जो कहो सर्व जग-त्कोपृथिवी धारणकरतीहै,परन्तु पृथिवीको कौन धारण करता है ? इसका भी विचार किया चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि, जो पृथिवीको धारण करता है, सोई सर्व जगत्को धारण करताहै,अन्य नहीं। हे साधो!देह अनेक हैं परन्तु मैं अनंत प्रत्यक् चित् सत्ता देही एक हूँ ,जैसे घट अनेक हैं परन्तु देही मृत्तिका वा आकाश एकहीहै । सारांश यह कि, सर्व नाम रूप जगत्का मैं प्रत्यक् अनंत, चित् सत्ता आत्मा स्वरूप हूँ इसीसे पृथिवीके विकारभूत शस्त्रोंसे भी कटनेमें नहीं आता हूँ क्योंकि, तिन शस्त्र आदिकोंका आत्मा हूँ, अपने आत्माको कौन नहीं काटसक्ताहै इसीसेही सर्वका आधाररूप हूँ,क्योंकि, आप अपना स्वरूपही कल्पित सर्वका आधारअधिष्ठान होता है। यह प्रसिद्ध है; जैसे घटका स्वरूप मृत्तिका है,सोई तिस घटका आधार अधिष्ठान है। जैसे,पटका स्वरूप तंतु है;सोई तिसका आधार अधिष्ठानहै,इससे मुझ अनंत चित् सत्ता सर्वके अधिष्ठानको अपना आत्मा सम्यक् जाननेसे ही भ्रमकी निवृत्ति होगी । भ्रम दूर हुये बंध मोक्षभी जाते रहैंगे, आगे जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो।

वरुण ।

पुनः जलोंका राजा वरुण आया और कहा। माया और तत् कार्य मलसे रहित, मैं शुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ । सर्व वस्तुका गीलापन भी मैंही करता हूँ। गीला नाम द्रवणा, द्रवणा नाम सर्व पदार्थोंको आप अपने कार्यके सन्मुख करना। यमकिंकरने कहा जो मैं चैतन्य तुझ देह सहित जलको गीला कर रहा हूँ, सोई मैं सर्वको गीला कर-रहाहूँ क्योंकि, तू जल मुझ चैतन्य आत्मासे भिन्न किया हुआ हैही नहीं, गीलापना किसको करेगा ? हे वरुण ! जैसे तुझकर सर्व वृक्ष हरियालीको पाते हैं, तैसे मुझ चैतन्य आत्मासेही तुझसे आदिलेकर सर्वजगत् हरियाई नाम स्फुरण होरहाहै, अन्यथा नहीं। हे जलराज! जो तेरा चैतन्य स्वरूप है, सोई शुद्ध है, अन्य नहीं इससे परिच्छिन्न अभिमानको त्याग, पुनः तिसका भी त्यागकर । पीछे निर्विकल्प तेरा स्वरूप है । वरुण तूष्णीं हुआ ।

अग्नि ।

अग्निदेवता आया और कहनेलगा, मैं सर्वको भक्षण करता हूँ। धर्मरायने कहा सर्व कहां है ? तूही है । अपने आपको भक्षण कर वा न कर। अग्निने कहा यह सर्व, प्रकाश मेरा है। यमकिंकरने कहा तेरे प्रकाशसे हमें क्या मतलब है? हम अपने प्रकाशसे प्रकाशमान हैं। तू अपना प्रकाश अपने पास रख। अग्निदेवने कहा मैं सर्वको दाह करूंगा गणेशने कहा तेरी क्या ताकत है कि, मुझ चैतन्य विना एक तृणको भी दाहकरे। मुझ साक्षी चैतन्यसे पृथक् तू अनग्निरूप है, दाह क्या करेगा ? हे अग्नि! तू अपनेसे भिन्न पृथिवी जलको, तथा तिनके कार्य पदार्थोंकोही दाह करसक्ता है, आकाश वायुको भी दाह नहीं करसक्ता। तो आकाशसे अतिसूक्ष्म तेरा चैतन्य साक्षी स्वरूप है तिसको तू दाह नहीं करसक्ता इसमें

कहना है ? अग्निने कहा तू कौन ? गणेश बोले हे अग्नि ! तेरे अंतर, तुझसे अज्ञात और तेरे सर्व व्यवहारको जाननेवाला,सदा अपरोक्ष साक्षी, तेरा आत्मा स्वरूप मैं हूँ। अग्नि तूष्णीं हुआ ।

वायु ।

तब वायु देवता आया और कहा,अबही मैं सर्वका शोषणकरता हूँ । व्यासने कहा पहले अपने अहंकार अंतर शत्रुको शोषण कर जो तुझको दुःखदायक है,पीछे सबको शोषण करियो।वायुने कहा तूही मेरा शत्रु है जो मुझ निर्विकार निर्विकल्प चैतन्यमें अहंकार आरोपण करता है। व्यासने कहा जब तू निर्विकल्प है, तो मेरे अहंकार आरोपणका तुझेको ज्ञान कैसे हुआ ?

आकाश ।

वायु तूष्णीं हुआ और आकाश मनुष्य मूर्ति धारणकर आया और कहा कि,मैंही सर्वमें पूर्ण होरहा हूँ निर्विकार हूँ,तथा अक्रिय हूँ पृथ्वी,आप, तेज,वायु तथा इनके कार्य मुझमें ही समारहे हैं परंतु मैं निर्लेप हूँ । वसिष्ठने कहा हे आकाश ! लोकदृष्टिसे तथा पृथिवी,जल, तेज, वायु इन चार भूतोंकी दृष्टिसे जैसा तूने कहा है तू वैसेही है,परन्तु तेरा जो साक्षी चैतन्य अपना स्वरूप है,सो नित्य सुख चिद्रूप है।तू असत् जड दुःखरूप है तथा उत्पत्तिमान् है, इससे विकारी है । तेरी और आत्माकी उपमा एक कैसे होवे ? किंतु नहीं होती ।जो चैतन्य तुझकोभी अवकाश देता है नाम स्फुरण करता है, सोई सर्वको अवकाश देता है । चैतन्य आत्माने इस संसार बगीचेके निर्वाह वास्ते,तेरा देह अवकाशरूपही रचा है,वायुका देह वैसेही रचाहै, अग्निका प्रकाशमयही देहरचा है, आगेभी ऐसेही जानलेना, परंतु देही सबका एक

चैतन्य आत्मा है। कहो सुषुप्तिमें तेरा स्वरूप कहां रहता है? इससे अपने प्रत्यक् चैतन्य आत्माको अपना स्वरूप सम्यक् जानकर मौन रहो। आकाश तूष्णीं हुआ।

दुर्वासा।

पुनः दुर्वासा ऋषि आये और कहने लगे सर्वको मैं अभी भस्म करता हूँ। धर्मरायने कहा हे दुर्वासा! जो शरीरको भस्म करताहै तो इसको तो भस्म कृमि विष्टारूप होनाही है,तो भस्म करनेकी बडाई कुछ न हुई,केवल तेरा अभिमान ही है कि,मैं सर्वको भस्म करता हूँ।यह शरीर पंचभूतोंका है व स्वप्नवत् मायाका कार्य है, इनके भस्म करनेवालेके साथ मायाका वा पंचभूतोंका मुकद्दमा होगा, उनहीको इन शरीरोंके भस्म होने और नाश होनेमें हर्ष शोक होगा,हम संघातके साक्षी चैतन्यको हर्ष शोक नहीं। एक वक्त नहीं,लक्ष वक्त भस्म करो वा न करो, अपना जोर किसको दिखलाते हो?जोतुमकहो मैं चैतन्यको भस्म करता हूँ,सो चैतन्य तुम्हारा आत्मा है, उलटा अपने आत्माको कोई भस्म कर नहीं सक्ता और होताभीनहीं।साक्षी चैतन्यसेही तुम सहित जगत्की तथा तुम्हारे भस्म करनेके संकल्पादिक सर्वकी उपलब्धि हो रही है।इससे किसको भस्म करता है? तुझको लज्जा नहीं आती? पहले भस्मकरनेवाले अपने अहंकार दुःखदायक शत्रुको भस्म कर। पीछे दूसरेको भस्म करियो।आपको महान् तपस्वी तेजस्वी और पण्डित मानकर,लोगोंको वर-शाप भय देता फिरता है।लोगभी यही कहते हैं,"जहां दुर्वासा जाता है वहां शापरूप भयही देताहै और अभय नहीं देता"तू अपने नामके अर्थको स्मरण कर।

दुर्वासा नाम सच्चिदानंद आत्माकाहै।तू आपको शरीरमानके दूसरेको भस्म करा चाहताहै।विचारे तो तू शिवरूपहै क्योंकिजन्य

रणरूपी दुर्नाम दुःखकादेनेवाला संसार,वा अहंकार वा अज्ञान तिसते परे होवे वाका नाम स्थिति जिसकी,सो कहिये दुर्वासा। वादुर्नामदुःखअसत्;जड,माया,विकाररूपसंसारकाहै तिस विषे उलटा सत्,चित्,आनंद,अमाया, असरूप करके होवे निवासजिसका,सो कहिये दुर्वासा। वा कठिनता करके होवे स्थिति जिसमें सो कहिये दुर्वासा वा दुर्नाम कठिन है सहन जिनका, ऐसे जो काम क्रोधादिकों विषे और दुर्वासना विषे तथा मायाविषे तथा सर्व मायाके कार्य मनादिको विषे जो असंग,निर्विकारनिर्विकल्प अक्रिय रूप होवे निवास जिसका सो कहिये दुर्वासा। सारांश यह कि,"अवाङ्मनस गोचर पदविषे मनकी स्थिति अत्यंत कठिन है। इससे तुम अपने पूर्वोक्त स्वरूपमें स्थित हो। और सर्वको अभयदान दो।

नारद।

दुर्वासा तूष्णीं हुआ, सभामें नारद आये और कहने लगे, जो भक्तिकरेगा,सोईकालकेभयसेछूटेगा, अन्यथानहीं। यमकिंकरने कहाभक्तिकास्वरूपकहो। नारदनेकहा"आपसहितसर्वको हरिरूप सम्यक् जानना"यही भक्तिका स्वरूप है।यमकिंकरने कहा हे नारद तुम सर्वस्थानमें गमन करते रहते हो,सबसे उत्तम स्थानकौनहै? कहीं परमात्माभीआपनेदेखा कि,नहीं।तिसकाभी वर्णन करो नारद कहने लगे हे साधो! मैं दशोंदिशा फिराहूँ परन्तुमायाकेकार्यरूप, सर्वपंचभूतरूपही,सृष्टिदृष्टिआईहै,कहींभी इनपंच भूतोंसेपृथक्सृष्टि दृष्टि नहीं आई।यही पंचज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेंद्रिय पंच प्राण,चतुष्टय अंतःकरण,यही श्रोतादिक इंद्रियोंके शब्दादिकविषयऔर विषय इंद्रियोंकेसंयोगवियोगजन्यसुखदुःख,सर्वत्रवैकुंठादिस्थानोंमें भी समहीदृष्टिआयाहै काम क्रोधादिकभीसर्वत्रहीन्यूनाधिकभावकर

देखेहैं। कहीं जलका स्नानहै,कहीं धातुमय वा पाषाणमय मूर्तिका दर्शनहै। जैसे इंद्रिय अंतःकरणादिकोंका स्वभाव अस्मदादिकोंके शरीरोंमें वर्तता है, तैसेही सर्वत्र देखा है। सारांश यह कि स्त्री, पुरुषादि व्यवहारभी सर्वत्र एकसरीखाही देखाहै और सर्वत्र असत् जड दुःखरूप पंचभूत भौतिक सृष्टिही देखनेमें आईहै, कहूँ भी सच्चिदानंद स्वरूप परमात्माकी मूर्ति देखनेमें नहीं आई क्योंकि, परमात्मा व्यापक सर्वके हृदयमें है,बाहर कहां देखनेमें आवे।विचार रूप दिव्यदृश्यसे भी अंतर बाहर सर्वात्माही भान होताहै।

सनकादिक।

इतनेमें सनकादिक आये और कहनेलगे कि, हे नारद! सो नित्य चिद् अनंत परमात्मा अंतर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का आत्माहै,बाहर देखनेमें कहां आवे। यद्यपि अस्ति,भाति,प्रिय रूप,आत्माही अंतर बाहर,भेदरहित, सर्वदा सर्वको प्रत्यक्ष दर्शन होताहै तथापि सम्यक् विचार दिव्यदृष्टिसे जानाजाताहै। सम्यक् विचाररूपी दिव्य दृष्टिसे रहित पुरुषोंको पूर्वोक्त स्वरूपजाना नहीं जाता, किंतु मिथ्या,नामरूप माया तथा मायाके कार्य,असत् जड़ दुःखरूप,प्रपंचही तिनको प्रत्यक्ष दर्शनहोताहै। आत्मा अधिष्ठान ज्ञानी अज्ञानी सर्वको प्रत्यक्षहीहै,जानने नजाननेका भेदहै।सारांश यह कि, अधिष्ठान तथा कल्पितका विचार करनेसे प्रथम अपरोक्ष अधिष्ठानके प्रतीति पूर्वकही, मिथ्या कल्पित नामरूपकी, पश्चात् प्रतीति होतीहै सर्वको; परंतु जानने न जाननेका भेदहै, दर्शनका नहीं। जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप, जल अधिष्ठानकी प्रथम अपरोक्ष प्रतीति पूर्वकही,पश्चात् नामरूपमिथ्या तरंगादिकोंकी प्रतीति होतीहै। जैसे सुवर्ण अधिष्ठानकी,प्रथम अपरोक्ष,प्रतीति पूर्वकही,मिथ्या नामरूप भूषणोंकी पश्चात् [illegible]

रणरूपी दुर्नाम दुःखकादेनेवाला संसार,वा अहंकार वा अज्ञान तिसते परे होवे वाका नाम स्थिति जिसकी,सो कहिये दुर्वासा । वादुर्नामदुःखअसत्‌,जड,माया,विकाररूपसंसारकाहै तिस विषे उलटा सत्‌,चित्‌,आनंद,अमाया, असरूप करके होवे निवासजिसका,सो कहिये दुर्वासा। वा कठिनता करके होवे स्थिति जिसमें सो कहिये दुर्वासा वा दुर्नाम कठिन है सहन जिनका, ऐसे जो काम क्रोधादिकों विषे और दुर्वासना विषे तथा मायाविषे तथा सर्व मायाके कार्य मनादिको विषे जो असंग,निर्विकारनिर्विकल्प अक्रिय रूप होवै निवास जिसका सो कहिये दुर्वासा । सारांश यह कि,:अवाङ्मनस गोचर पदविषे मनकी स्थिति अत्यंत कठिन है। इससे तुम अपने पूर्वोक्त स्वरूपमें स्थित हो । और सर्वको अभयदान दो।

नारद।

दुर्वासा तूष्णीं हुआ, सभामें नारद आये और कहने लगे, जो भक्तिकरेगा,सोईकालकेभयसेछूटेगा, अन्यथानहीं। यमकिंकरने कहाभक्तिकास्वरूपकहो। नारदनेकहा"आपसहितसर्वको हरिरूप सम्यक् जानना"यही भक्तिका स्वरूप है।यमकिंकरने कहा हे नारद तुम सर्वस्थानमें गमन करते रहते हो,सबसे उत्तम स्थानकौनहै? कहीं परमात्माभीआपनेदेखा कि,नहीं।तिसकाभी वर्णन करो नारद कहने लगे हे साधो ! मैं दशोंदिशा फिराहूँ परन्तुमायाकेकार्यरूप, सर्वपंचभूतरूपही,सृष्टिदृष्टिआईहै,कहींभी इनपंच भूतोंसेपृथक्सृष्टि दृष्टि नहीं आई।यही पंचज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेंद्रिय पंच प्राण,चतुष्टय अंत:करण,यही श्रोतादिक इंद्रियोंके शब्दादिकविषयऔर विषय इंद्रियोंकेसंयोगवियोगजन्यसुखदुःख,सर्वत्रवैकुंठादिस्थानोंमें भी समहीदृष्टिआयाहै काम क्रोधादिकभीसर्वत्रहीन्यूनाधिकभावकर

देखेहैं। कहीं जलका स्नानहै,कहीं धातुमय वा पाषाणमय मूर्तिका दर्शनहै। जैसे इंद्रिय अंतःकरणादिकोंका स्वभाव अस्मदादिकोंके शरीरोंमें वर्तता है. तैसेही सर्वत्र देखा है। सारांश यह कि स्त्री, पुरुषादि व्यवहारभी सर्वत्र एकसरीखाही देखाहै और सर्वत्र असत् जड दुःखरूप पंचभूत भौतिक सृष्टिही देखनेमें आईहै,कहूँ भी सच्चिदानंद स्वरूप परमात्माकी मूर्ति देखनेमें नहीं आई क्योंकि, परमात्मा व्यापक सर्वके हृदयमें है,बाहर कहां देखनेमें आवे।विचार रूप दिव्यदृश्यसे भी अंतर बाहर सर्वात्माही भान होताहै।

सनकादिक।

इतनेमें सनकादिक आये और कहनेलगे कि, हे नारद! सो नित्य चिद् अनंत परमात्मा अंतर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का आत्माहै,बाहर देखनेमें कहां आवे। यद्यपि अस्ति,भाति,प्रिय रूप,आत्माही अंतर बाहर,भेदरहित, सर्वदा सर्वको प्रत्यक्ष दर्शन होताहै तथापि सम्यक् विचार दिव्यदृष्टिसे जानाजाताहै। सम्यक् विचाररूपी दिव्य दृष्टिसे रहित पुरुषोंको पूर्वोक्त स्वरूपजाना नहीं जाता, किंतु मिथ्या,नामरूप माया तथा मायाके कार्य,असत् जड़ दुःखरूप,प्रपंचही तिनको प्रत्यक्ष दर्शनहोताहै। आत्मा अधिष्ठान ज्ञानी अज्ञानी सर्वको प्रत्यक्षहीहै,जानने नजाननेका भेदहै।सारांश यह कि, अधिष्ठान तथा कल्पितका विचार करनेसे प्रथम अपरोक्ष अधिष्ठानके प्रतीति पूर्वकही, मिथ्या कल्पित नामरूपकी, पश्चात् प्रतीति होतीहै सर्वको; परंतु जानने न जाननेका भेदहै, दर्शनका नहीं। जेसे मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप, जल अधिष्ठानकी प्रथम अपरोक्ष प्रतीति पूर्वकही,पश्चात् नामरूपमिथ्यां तरंगादिकोंकी प्रतीति होतीहै। जैसे सुवर्ण अधिष्ठानकी,प्रथम अपरोक्ष,प्रतीति पूर्वकही,मिथ्या नामरूप भूषणोंकी पश्चात् प्रतीतिहोतीहै।जैसे रज्जु

शुक्ति प्रथम ठूँठादिक अधिष्ठान अपरोक्ष प्रतीति पूर्वकही, कल्पित सर्पादिक नामरूपकी पश्चात् प्रतीति होतीहै इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। तैसे तुम्हारे हमारे तथा सर्व जगत्के स्वरूप, सच्चिदानंद आत्मा अधिष्ठानके प्रथम अपरोक्ष दर्शनपूर्वकही, सर्वनामरूप घट पटादिकोंका पश्चात् दर्शनहोताहै। पूर्व अज्ञानी लोगोंकी दृष्टिसे जहां कहीं नामरूपप्रपंचकाही दर्शन कहाहै जैसे–तू नारदको बाहर तलाश करे सो कहां मिले किंतु नहीं मिलेगाक्योंकि, नारद आप ठहरा इससे हे सज्जनो! देश काल, वस्तु, भेदरहित; मन वाणीका अगोचर, अपरोक्ष तुम्हारा साक्षी आत्माहै, सोई आनंद नित्य चिद्रूपहै।जो मन वाणीका गोचर, देश काल, वस्तु, भेदवान, पदार्थहै। सो दुःखरूप दृश्य जडरूपहै। इससे बाहर मत खोज "जो पिंडे सोई ब्रह्मांडे" नारद तूष्णीं हुआ।

कागभुशुण्ड।

पुनः कागभुशुण्ड आये और कहा, हे साधो!मैंने कोटानकोट ब्रह्मांडोंकी उत्पत्ति, लय, स्थिति, सम और विलक्षण भी देखीहै अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंके, राम कृष्णादिक अवतार देखेहैं परंतु सब प्रतीतिमात्रहैं, सत् नहीं। आत्माही सतहै जैसे समुद्रमें अनेक फेन बुद्बुदे तरंगादि होतेहैं, पुनःमिट जातेहैं, जल ज्योंका त्यों स्थितहै। हे साधो! मेघोंसे जो चातुर्मासमें बूंद पडती हैं तिनकी गिनती होनी कठिनहै समुद्रके किनारे बालूकी गिनतीहोनी कठिनहै, पर तिनकी गिनतीभी कोई बुद्धिमान् करसके तो होसके, परंतु सत्, चित्, आनंदरूप; निज स्वरूप आत्मासे यह मायामात्र अनंत ब्रह्मांड उत्पन्न होतेहैं पुनः मिट जातेहैं, तिनकी गिनती नहीं हो सक्ती. जलतरंगोंवत्। जब अपने स्वरूपको जानताहै, तब सर्व

कल्पित ब्रह्मांडोंका अत्यंता भाव प्रतीत होता है।जैसे जलके जाननेसे अनंत फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंका अत्यंताभाव प्रतीत होताहै, किन्तु जलसे पृथक् सत्ता तिनकी नहीं प्रतीत होती । जैसे भौतिक पदार्थ अनंत हैं,परंतु तिन पदार्थोंका स्वरूप जो पंचभूत हैं,तिन पंचभूतोंके ज्ञाता पुरुषको भौतिक पदार्थोंविषे अनंतता किंचित् मात्रकी प्रतीत होती नहीं।

वसिष्ठने कहा हे कागभुशुंड! अपने स्वरूपका स्वरूप क्याहै? कागभुशुंडनेकहा हे साधो! किसी निमित्तसे दुःखाकार वा सुखाकार अंतःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होकर निमित्तके अभावसे वा स्वभावसेही मिटगई पुनः दुःखाकार वा सुखाकार उत्पन्न हुई नहीं वा उत्पन्न हुई है इस व्यवहारको जिसने अनुभव किया है सोई अपने स्वभावका स्वरूप है ।

तैसे ही-पुण्य वा पापरूप संकल्प उत्पन्न होकर मिटगया है। पुनः पुण्य पापका संकल्प उत्पन्न हुआ नहीं वा हुआ है इन सर्व व्यवहारोंको अंतर जिसने देखा है सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है ।

तैसेही-सात्विकी वा राजसी वा तामसी अंतःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होकरमिटगई,जबलग पुनःसात्विकी वा राजसी वा तामसी वृत्ति उत्पन्न हुई नहीं, वा उत्पन्न हुई है, यह सर्व व्यवहार अंतर जिसने जाना है सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है।

तैसेही जाग्रत् वा स्वप्न वा सुषुप्ति अवस्था होकर मिटगई है, जबलग दूसरी अवस्था प्राप्त हुई नहीं वा प्राप्त हुई है, इन सर्व संधियोंके संधियोंमें स्थित हुआ जो स्वयंप्रकाशमान वस्तुहै तथा पूर्वोक्त जाग्रतादिक संधियोंकी जिससे सिद्धि होती है सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है ।

तैसेही-कमर पर्यंत कोई पुरुष जलमें स्थित होवे, सो कमर नीचे शीतलताका तथा कमरऊपर उष्णताका, जिससे अनुभव होता है, सोही निर्विकल्प अपना स्वरूप है।

तैसेही-कामाकार, क्रोधाकार, लोभाकार, मोहाकार तथा अहं-कारादिक वृत्तियां उत्पन्न होकर नष्ट होगई हैं पुनः कामाकारादिक वा अकामाकारादिक वृत्तियां जबलग उत्पन्न हुई नहीं वा हुई हैं, तिनके मध्यमें जो निर्विकल्प निर्विकार, तिन कामाकारादिक वृत्तियोंके भावाभावको तथा अन्य वृत्तियोंकी अनुत्पत्तिको वा उत्पत्तिको जानताहै सो द्रष्टा साक्षी वस्तु अपना स्वरूप है।

तैसे-शांति आदिक वृत्तियां उत्पन्न होकर नष्ट होगईहैं। अन्य शांतिरूप वा अशांतिरूप वृत्तियां उत्पन्न हुई नहीं वा उत्पन्न हुई हैं, तिनके भावाभावको प्रकाश करनेवाला साक्षी चैतन्यवस्तु अपने स्वरूपका स्वरूप है।

तैसेही-हर्षाकार वा शोकाकार वृत्ति उत्पन्न होकर समाप्त होगई और अन्य उत्पन्न हुई नहीं वा हुई हैं इन सर्व व्यवहारकी पहँचान करनेवाला अपना स्वरूप है।

तैसेही-प्राणोंके बाहर कुंभकको, प्राणोंके रेचक पूरकको अंतर कुंभकको, प्राणोंके गमनागनमको, प्राण अपानकी संधिको जो सिद्ध करता है, सोई अपना स्वरूप है।

ज्ञान, अज्ञान, बंध, मोक्षकी कल्पना जिसकर सिद्ध होती है, सोई अपना स्वरूप है इत्यादिक अनेक संधियां हैं।

योगी अयोगी और परमयोगी।

वसिष्ठने कहा हे कागभुशुंड! तुम योगी हो और दीर्घ आयुवाले हो, जो अलौकिक देखा हो सो कहो। भुशुंडने कहा योग (चित्तकी एकाग्रता)के करनेवालेका नाम योगीहै और चित्तकी एकाग्रताके न करनेवालेका नाम अयोगी है। सो चैतन्यके आभाससहित,

मनरूपी जीव, योगकर्ता है । इससे मनरूपजीव योगीहै । मनके धर्म एकाग्रता, न एकाग्रतारूप, योग अयोगके, भावाभावसहित, जो मनके सर्वव्यवहारको अंतर जानताहै, सोई परमयोगीहै । सो ऐसा परमयोगी अनत, नित्य, चिद्रूप; प्रत्यक् आत्माहै । तिस पूर्वोक्त प्रत्यक् आत्माको, सम्यक् जो अपना स्वरूप जानताहै; सो पुरुप परमयोगी है । नेति धोती जल पखालके करनेवालेका नाम, न समान योगीहै और न परमयोगीहै, अयोगीहै। हे वसिष्ठजी! अनंत ब्रह्मांड होगयेहैं और अनंत होवेंगे परन्तु चैतन्यके दृश्यरूप वा मायामत्र रूप पचभूत रूप, शब्दादि पंचविपयरूप, श्रोत्रमनादि इंद्रियरूप, सात्विकादि त्रिगुणरूप, कामक्रोधादिरूप, जैसेयह ब्रह्मांड वर्तमानमेंहै, तैसेही अतीत ब्रह्मांड होगयेहैं । तथा आगे होवेंगे । कदाचित् विलक्षणता होतीभीहै, तो भौतिक पदार्थोंमें होती देखी है। पूर्वोक्त प्रकारसे नहीं देखीहै । हे वसिष्ठजी । वहुत जीनेसे कुछ लाभ नहीं और थोडाजीनेसे कुछ हानि नहीं, परंतु सम्यक्; आत्म बोध पूर्वक जीनाही सफलहै, अन्य नहीं । वास्तवसे पूछा तो यह सर्व अज्ञानी जीवभी चिरंजीव हैं क्योंकि अनेक प्रलय इन्होंने देखेहैं और अनेकदेखेंगे अनेक वार अनेक ब्रह्मांडोंमें इनकीउत्पत्ति हुई है और होवेगी इसीसे सर्व अज्ञानी जीव चिरंजीवीहैं । परंतु अविद्या आच्छादित होनेसे इनको ज्ञान नहीं । इस विद्यमान शरीरकाअनेक (महाप्रलयतक) प्रारब्ध कर्महै । स्वरूपके सम्यक् ज्ञानपूर्वक इस शरीरका जीनाहै। ईश्वरकी नियति ऐसेहीहै इतनाही जीवोंकीचिरजीवितामें तथा मेरेमेंभेदहै, अधिक नहीं । जैसे स्वप्नमें सर्व जीवोंकी आयु समानहीहै । न्यूनाधिक भाव नहीं एक स्वप्न-द्रष्टाही चिरंजीवीहै अन्यनहीं। तोभी अविद्याने किसी स्वप्न नरमें चिरंजीविताप्रतीति कररक्खीहै किसी स्वप्ननरमें अचिर

प्रतीति करारक्खीहै,वास्तवसे नहीं।अविद्याकी विचित्र महिमा है एककालावच्छेदकर स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्तिहोतीहै ।निद्रारूप अविद्याके अभावसे एकही कालावच्छेदकर नाशहोता है,कहोचिरंजीवी और अचिरंजीवी कौन हुआ ? परंतु तिसी स्वप्न सृष्टिमें किसीस्वप्न नरको तो युगोंकी तथा कल्पोंकी पंगती व्यतीत होती प्रतीत होती है, किसीको उसी कालमें चार घटिकाही व्यतीत होती प्रतीत होतीहै,किसीको उसी क्षणकही प्रतीत होताहै,किसीको वहीकाल चित्तदेशविषे होनेवाले स्वप्नमें अनंत योजनों सहित अनंत ब्रह्मांड प्रतीत होते हैं इत्यादि । अविद्याकी महिमा कहांतक कहूँ ? इससे चिरंजीवी एक चिद्वस्तु है अन्य सर्व मायामात्रहै ।

लोमश ऋषि ।

काकभुशुण्डि चुप हुआ और लोमश ऋषि आये और कहा हे साधो ! यह मिथ्या मन वाणीका गोचर,परिच्छिन्न दृश्य वस्तु द्रष्टासाक्षी चैतन्य निर्विकार आत्माका रोम मात्रभीकुछ विगाड नहीं करता । जैसे-पृथिवी, आप, तेज, वायु तथा तिनके कार्य आकाशमें स्थित हुये आप अपना व्यवहार करते हुयेभी,आकाशका किंचित् मात्रभी बिगाडनहीं करसक्ते।तैसे सर्व देह इन्द्रिय मनादिकोंके व्यवहारमें साक्षी आत्मा निर्विकार रहता है, कदाचित्भी अपने असंग स्वरूपको नहीं त्यागता ।

यमकिंकरने कहा हे रोमशऋषि ! सुनतेहैं कि,ब्रह्मा मरता है तो रोमशऋषि एक रोम उखाड कर फेंक देताहै,यह बात कैसी है ? रोमशने कहा यह लौकिक व्यवहार है वैदिक नहीं । इससे केवल आत्माकी तथा दृश्य वर्गकी अनंतता बोधनहै और कुछ तात्पर्य्य नहीं है।हेसाधो । जैसे तुच्छ आयुवाले जीव;सदा जीवनेकी इच्छा

रखते हैं, जीनेसे तृप्त होते नहीं तथा जैसे अज्ञानी मरनेते भय करतेहैं, चक्षु आदिक इन्द्रियोंसे रूपादिकविषयोंको ग्रहण करनेमें धापते(अघाते)नहीं। शरीरकी आरोग्यता चाहते हैं इत्यादि, अनेक व्यवहारोंमें पश्चात्ताप तथा विलाप करते हुयेही जैसे शरीरको त्यागते हैं।तैसेही अज्ञानी दीर्घआयुवालोंका हालभी सम्यक् तैसेही जानना।यह व्यवहार सब विद्वानोंका अनुभवसिद्ध है, बल्कि ज्ञानीकोभी जीना अच्छा लगता है; मरना बुराही लगताहै। इससे नित्य चिद् अनत निज स्वरूप अत्माका सम्यक् बोधही श्रेष्ठहै, न्यूनाधिक जीवना श्रेष्ठ नहीं।हे यमकिंकर ! असली विचारकी बात सुन।जिसे स्वप्न नर किसी स्वप्नके ऋषिपुरुषको कहें "हे ऋषि।अमुक (स्वप्नका) ऋषि स्वप्नावीके मरें वा स्वप्नावीके जागेसे एक अपना रोम उखाडके फेंक देता है" क्योंकि,स्वप्नावी, (हमारे पिता) को रोज मरना ठहरा,हम रोज कैसे क्षौर कराते, तकलीफको पाते हैं । हे साधो ! तुम अपने मनमें शोच देखोकि स्वप्नावीके मरनेसे वा स्वप्नावीके जागनेसे, स्वप्नपुरुष पीछे कहां रहेंगे ? किंतु नहीं रहेंगे। क्योंकि,स्वप्नसृष्टि स्वप्नावीके संकल्पमें है,अन्यमें नहीं।तैसेही समष्टि हिरण्यगर्भ परमेष्टीके वा शबलब्रह्म विष्णुके,माया विशिष्ट चैतन्य ईश्वरके संकल्पमें अस्मदादिकोंसहित सर्वसृष्टि है,तिसके संकल्पके अभावसे अस्मदादिकोंका शरीर पीछे रहना कैसे होगा।और शरीर विना रोम उखाडना कैसे होगा? जो कहो,हिरण्यगर्भ समष्टीके संकल्पसे अस्मदादिकोंके शरीर बाहरहैं;तो जैसे--दूसरे स्वप्नद्रष्टाकी सृष्टिको स्वप्नद्रष्टाको, स्वप्नद्रष्टाके मरनेको तिसके हर्ष शोकको,सारांश यह कि,तिसके सर्व न्यूनाधिकव्यवहारको, दूसरे स्वप्नके स्वप्ननर जान नहीं सक्ते; तैसेही हिरण्यगर्भकी संकल्पित सृष्टि सहित,[illegible]

र्भकी कल्पित सृष्टिके बाहर,अस्मदादिकोंके शरीर जान नहीं सक्ते। जो हिरण्यगर्भके संकल्पमें अस्मदादिकोंके शरीर हैं तो, पूर्वोक्त रीतिसे हिरण्यगर्भको,निज आयुके क्षयसे,सर्वसंकल्पको त्यागके, विदेह कैवल्यको प्राप्त होतेही अस्मदादिकोंके शरीरही पीछे न रहेंगे।रोम उखाडनादि व्यवहार कैसे बन सक्ता है, अर्थात् नहीं बन सक्ता । इसहेतु यह सब आत्मभिन्न लौकिक बात है। जब रोमशने कहा तो सबने सच्ची बात सुनकर श्लाघा की और बहुतहर्षितहुये।

अश्विनीकुमार ।

तिसी समयमें अश्विनीकुमार आये और कहने लगे हे सभासदो।अनंत चित् सत्यरूप निजात्मा साक्षी सूर्य है,यह ब्रह्मांडरूप संघात, साक्षी चैतन्यरूपसूर्यका रथ है,समष्टि बुद्धिसे अभिन्नहीयह व्यष्टि बुद्धिरूपी अश्विनी(घोडी)तिस रथके आगे जुडी हुई है,तिस पूर्वोक्त बुद्धिरूपी अश्विनीसे नाम रूप अश्विनीकुमार हमदोनोंकी उत्पत्ति हुई है,इसीसेही नामरूप हम दोनों अश्विनीकुमार इकट्ठे रहते हैं।यमकिंकरने कहा हेअश्विनीकुमारो । तुम कहाँ कहाँ रहते हो।अश्विनीकुमारोंने कहा हे यमकिंकर।मन वाणीसे अगोचर जो प्रत्यक् आत्मा अपरोक्ष है,तिसविषे हम नहीं रहसक्ते,तिससेपृथक् माया और मायाके सर्वकार्यमें हम पूर्णहोकर रहतेहैं। यद्यपिपृथिवी आदिकोंकी अपेक्षासे, वायु आकाश मायामें शास्त्रदृष्टिसे तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणसे रूप प्रतीत नहीं होता,परन्तु चेतनकी अपेक्षासे वायु आकाश मायादिरूप रहित नहीं। क्योंकि, चैतन्यकी दृश्य है ।जो जो दृश्य होता है, सो सो नाम रूप स्वरूपही होता है ।जैसे अस्मदादिकोंकी दृष्टिसे,परमाणु सूक्ष्मरूप रहित हैं,परन्तु आकाशकी दृष्टिसे नहीं ।तथा सूर्य जैसे सुमेरुको प्रकाशताहै,तैसे मणियोंको प्रकाशता है ।हम देव वैद्य हैं, समष्टी ब्रह्माण्डसे अभिन्न जो

यह व्यष्टि संघातरूप स्वर्ग है, तिसमें हम मूर्तिधारकर विशेष रहते हैं। प्रत्यक् साक्षी चैतन्य इस स्वर्गका महान् इन्द्र है मन गुरु बृहस्पति है। श्रोत्रादिक इन्द्रिय देवता है। जीव केवल इन्द्र है। हे यमकिंकर! जो पुरुष हमारी विचाररूप (मृत्युसंजीवनी) औषधी अंतर खावेगा, तिसका अज्ञानरूप रोग चला जावेगा।

विचार।

यमकिंकरने कहा विचाररूपी औषधी कहो? अश्विनीकुमार कहने लगे हे यमकिंकर! एक द्रष्टा पदार्थ है एक दृश्य पदार्थहै, तीसरा पदार्थ हैही नहीं। द्रष्टा दृश्य नहीं होता, दृश्य द्रष्टा नहीं होता। दृश्यका कोई भी धर्म द्रष्टाको स्पर्श नहीं करता, यह नियम अति प्रसिद्धहै। चक्षु, दीपक, सूर्यादिकों विषे सर्वलोकोको देखनेमें आते है, जोजाननेमें आतेहैं सो दृश्यहैं, जाननेवाला द्रष्टाहै। सारांश यह कि, जो जो ज्ञानका विषय है, सो सो दृश्य असत्, जड, दुःखरूप, कोटिमेंहै और जो स्वयंप्रकाश ज्ञानहै, जिस ज्ञानद्वारा मायासे आदि लेकर, देह पर्यंत सर्व दृश्य जाना जाताहै; सो ज्ञानस्वरूपके ज्ञान एकहीहै। सो ज्ञान सत् चित् आनंदस्वरूप आत्मा साक्षी द्रष्टा है। सो साक्षी द्रष्टासे परमात्मा परमेश्वर, ईश्वर, गोविन्द, नारायणादिक, भिन्न माने तो सर्वको असत्, जड, दुःखरूपता तथा दृश्यरूपता बलात्कार आवेगी क्योंकि, सत्से भिन्न असत् है चैतन्यसे भिन्न जड है, सुखसे भिन्न दुःखहै, द्रष्टासे भिन्न दृश्य है। इससे सत्, चित्, सुखरूप, द्रष्टा साक्षी, आत्मवस्तुके अंतर्गतही, ईश्वरादि नामोकरके प्रतिपादित वस्तु होगी, पृथक् नही। जो पृथक् मानो, तो पूर्वोक्त उनकी असत् आदि गति होगी। इसहेतु इस प्रकरणमें महावाक्योंविषे जीव ईश्वरका भिन्न भिन्न लक्ष वाचकता कथन तथा वाच्य वाचक भागत्यागसे लक्ष लक्ष्यकी एकता, लक्षणासे

केवल परिश्रमही है। हे यमकिंकर। पूर्वद्रष्टा साक्षी आत्मा कैसा है,सर्वके अन्तर स्थित होकर भी स्वरूपसेही बंध मोक्षादि धर्मोंसे रहित है। जैसे-आकाश स्वरूपसे हीं, सर्वमें स्थित भी,अस्पर्शहै हे यमकिंकर। यह अधिकारीपुरुप अपनी शुद्ध बुद्धिसे वा संतोंके संगसे विचार करे कि,इन द्रष्टा,दृश्य,दोनों पदार्थोंमें मैं कौन हूँ? द्रष्टा हूँ वा दृश्य हूँ? जो मैं दृश्य हूँ तो दृश्यको मैं जानूँ कैसे? जो दृश्यको जानताहै सो दृश्यनहीं होता। जैसे-चक्षु रूपको जानते हैं तो स्वयम् रूपको नहीं होते; तैसेहीमैं सुपुप्तिमें अज्ञानसे आदि लेकर जाग्रतमें देह पर्यंत सर्व नामरूप दृश्यको प्रकाश करताहूँ अर्थात् जानताहूँ,इसमें मैं दृश्य कदाचित् भी नहीं बनसक्ता। बाकी शेप द्रष्टा ही मैं सम्यक् निश्चय करकेहूँ,अन्य दृश्यनहीं। हे यमकिंकर। जब इस अधिकारीने अपनेको सम्यक् द्रष्टा जाना, तो बंध मोक्षादि सर्व कर्तव्योंसे रहित,निष्कलंक स्थित होकर विराजमान होवेगा क्योंकि,द्रष्टामें कोईभी बंध मोक्षहै नहीं, बंध मोक्षादि प्रपंचकी अपने स्वरूप द्रष्टाविषे,निवृत्ति प्राप्तिवास्ते कर्तव्य भी कछु नहीं। जो बंध मोक्षकी निवृत्तिवास्ते कर्तव्य करताहै, सो भ्रमजन्य है जिसने अपने द्रष्टास्वरूपको सम्यक् जाना है सो बन्ध मोक्षके फिक्रसे रहित हुआ व्यवहार परमार्थ दोनोंमें आनन्द लूटता है।

जो ऊपरसे बन्धमोक्ष भ्रमसे रहित आपको कथन करताहै.अंतरसे सम्यक् भ्रमदूर नहींहुआ,सो अनधिकारी पुरुप,व्यवहार परमार्थदोनों विषे तपायमान दुःखी रहताहै। यमकिंकरने कहा तपायमानक्योंरहताहै? अश्विनीकुमारने कहा-मायाके कार्य जो वैराग,शम दमादिदैवीगुण हैं और काम क्रोधादिक जो आसुरी गुण हैं, सो स्थूल सूक्ष्म शरीरोंमें,न्यूनाधिक भावसे अनात्मधर्महै, तिसको

अपनाधर्ममानके तपायमान होताहै क्योंकि, सम्यक् अपने द्रष्टा प्रत्यक् आत्माका अनुभवउससेनहींहै। "स्वभावसेही सर्वदृश्यऔर दृश्यके धर्मोंसे रहित अलिप्त साक्षी द्रष्टा आत्मा है,कर्तव्यसे नहीं" इसकेप्रतिपादनकरनेवालेशास्त्रमें सम्यक् तिसकाविश्वासनहींहोता। हे यमकिंकर! जिसको सम्यक् अपनेस्वरूपकाअनुभव हुआ है, सो किसीभी शास्त्रकी कुछ अपेक्षा नहीं रखता क्योंकि आँखोंदेखी चीजमें संशयनहींहोता।मायासेलेकरदेहपर्यंत,सर्वद्रष्टा आत्माकी दृश्यका स्वभावसेही कोई भी धर्मद्रष्टाको स्पर्श नहीं करता। सम्यक् जाननाही कर्तव्य है,करनाकुछनहीं । सम्यक् अपने स्वरूपको न जाननाही तपनेका हेतु है,दूसरा नहीं । जैसे भेदवादियोंकोवानि-ष्कपट श्रद्धालु स्थूलशरीरको,गुरुशास्त्र जो परोक्ष बातभी पकडा देते हैं,सोमृत्युपर्यंत छोडते नहीं;वैसेही तपनेवाला जो वेदांती है,तिसकी सिद्धांतमें श्रद्धा नहीं है । यह नहीं विचारता कि; जो परोक्षविष्णु, शिव,गणेशादिकोंके प्रतिपादक शास्त्रतथामीमांसादिक पंचशास्त्र जो सत् हैं, तो वेदांतशास्त्र भी छठवां सत् है,जो वह असत् हैं, तो यह भी असत् है । इससे "आप सहित सर्व हरि है" इस दृढ़ श्रद्धा-पूर्वक, भावनारूप उपासनासे भी ताप नहीं होता ।

अंगिरा ।

तिस समय अगस्त्य और अंगिरा ऋषि आये । अंगिरा कहने लगे हे साधो ! चार वेद, चार उपवेद, षट् तिनके व्याकरणादिक अङ्ग षट्शास्त्र और पुराण इत्यादिक सर्वविद्या अपर-विद्याहै,इन्हें निकृष्ट विद्या कहते हैं, साधारण भाषा वाणीद्वारा, चाहे फारसी द्वारा, चाहे अंग्रेजी,चाहे संस्कृत,चाहे दक्षिणी भाषा,चाहे बंगाली भाषा, चाहे किसी भी देशांतरकी भाषाद्वारा भ१.

सर्वाधिष्ठान जगद्विध्वंसप्रकाशक, अवेदत्व, सदापरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंदका सम्यक् बोध होवे सोई परमविद्या है नाम उत्कृष्ट विद्याहै। इससे येनकेन भाषाद्वारा वा संस्कृतद्वारा सम्यक् अपने स्वरूपका बोधकही परमविद्या है।

अगस्त्य।

तिस सभामें अगस्त्य आकर बोले कि,अगस्त्य नाम प्रत्यक् अभिन्न परमात्माका है।सारांश यह कि,अगस्त्यनाम अक्रिय पदार्थकाहै, वा सूर्यकाहै, सो अगस्त्य नाम (परमात्मा) प्रलयकालके आदिमें, सूर्यरूप होकर,सर्व समुद्रादिकोंके जलको पान करलेताहै, पुनः- कोईकाल पीछे महाप्रलयके आरंभकालमें हाथीके शुंड तुल्य जलधाराको त्याग देताहै वा हमेशा सालके साल ग्रीष्मऋतुमें अगस्त्य नाम सूर्य जलको अपनी किरणोंद्वारा जलपानकरलेताहै, चातुर्मासमें त्याग देता है। वा सर्व जीवोंके सुख दुःखका अनुभवरूप भोग देनेवाले कर्मोंके उपराम होनेसे,अगस्त्यरूप परमात्मा, सर्वनामरूप प्रपंचरूप जलको अपनी माया शक्तिमें खैंच लेता है, पुनःजब भोग देनेके,सन्मुख कर्म होतेहैं,तो अगस्त्यरूप परमात्मा नामरूप प्रपंचरूप जलको त्याग देता है अर्थात् सूक्ष्मसे प्रगट करता है।इसीसे तिस प्रत्यक् अभिन्न परमात्माका नाम अगस्त्यहै जो ऐसा नहीं माने परन्तु-अगस्त्यऋषिकेही समुद्र(जोपहलेहीमधुरथा)किसी निमित्तसे पानकरके पुनःलघुशंकावाले रास्तेसेनिकालनेसे खारा होगया है, ऐसे माने तो धाता जो ईश्वर है, सो जसे पूर्वकल्पमें जगत्की मर्यादाथी,तैसेही उत्तरकल्पमें मर्यादा रचताभया,इस मंत्रकी व्यवस्था नहीं लगेगी। जोऋपिसेही माने तोमंत्रका अर्थ ऐसा लगे कि,हमेशह कल्पके कल्प पहले ईश्वर इस समुद्रको

शुद्ध मधुर जलको रचता है,पीछे अगस्त्यऋषि पीकर लघुशंका करदेता है,इससे खारा होजाता है । सो यह बात विद्वानोंके अनुभवसे मिले नहीं और सत् शास्त्रसे भी मिले नहीं । बृहदारण्यके पंचम अध्यायमें, याज्ञवल्क्य भुज्युके प्रसंगमें,तथा जगत्की अनेक उत्पत्ति प्रसंगमें,इस समुद्रको पहलेसेही खारा लिखतेहैं।यह नहीं लिखते कि,पीछे अगस्त्य ऋषिने खारा कियाहै । इससे अगस्त्य नाम सूर्यका भी है, सो महाप्रलयके आदिकालमें वा हमेशह सालके सालमें, जल खेंचलेता है, पुनःत्याग देता है ।

क्षीरसमुद्रमथन और चौदहरत्न।

यही हाल क्षीरसमुद्र मथनेका तथा चौदहरत्ननिकालनेका जान लेना क्योंकि,पूर्वसमुद्र प्रकरणके समान हरेक कल्पमें,पहले चंद्रमादि रत्नों रहित जगत् उत्पन्न होताहै,पीछे देवता, दैत्य क्षीरसमुद्रको मथके चन्द्रमादि रत्नोंको निकालतेहैं,सो वेद अनुभवसे विरुद्ध है । वेदमूलमें, ब्राह्मणमें, धर्मशास्त्ररूप स्मृतियोंमें,सम्यक् जगत् की उत्पत्ति पालना प्रकरणमें यह बात कहींभी लिखी नहीं। श्रुतिमें रयीरूप चन्द्रमाको भोग्य लिखा है और सूर्यको भोक्ता लिखा है । भोक्ता भोग्यमय ही यह सर्व संसार है,जो पुरुष सूर्य चन्द्रमाको,भोक्ता भोग्यमय सब संसार रूप जानकर, उपासना करता है,सो उत्तम सुखको प्राप्त होता है, ऐसे लिखा है । जो चन्द्रमा पीछे होवे तो चन्द्रमासे प्रथम होनेवाले वेद वाक्यकी व्यवस्था न होगी। तथा भोग्य-विना भोक्ताकी सिद्धि नहीं होगी, इससे सूर्यभी जगत्की उत्पत्तिके प्रथमही उत्पन्न होना चाहिये-सारांश यह कि,भोक्ता भोग्यमयही संसारहै।अगस्त्यनाम भी ईश्वरका है तथा ऋषिनामभी ईश्वरका है । सो अगस्त्यऋषिनाम [illegible] रका है तथा महान् तपस्वी ब्राह्मण अगस्त्यकी न.[illegible]

होनेसे ऋषिका नाम लेते हैं॥ इससे तपकी महिमा प्रगट होती है। इससे जगत्के पीछे जगत्हुआ,यहअर्थअनुवशास्त्रसे मिले नहीं। इसहेतु यह अर्थ जानना कि,शुद्धि माया वा अज्ञान क्षीरसमुद्रहै, जगत्रचनेकीईश्वरइच्छा,मंदराचलपर्वतहै।ईश्वरकी क्रियाशक्तिशेष नाग कूर्म है। जीवोंके पुण्य पापरूप देवता और दैत्य हैं। ईश्वरकी ज्ञानशक्तिकोकूर्म (कछुवा) जानना,जिनने मंदराचलको धारण किया था क्योंकि,ईश्वरकी ज्ञानशक्तिसेही यथायोग्य यह जगत् धारण होरहा है। पूर्वोक्त क्षीरसमुद्र मंथन करनेसे,पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रिय, चतुष्टय अंतःकरण,(प्राण कर्मेन्द्रियोंके भीतरही जानलेने क्योंकि कर्मेंद्रिय तथा प्राण भूतोंकी रजो अंशते उत्पन्न हुये हैं) तिनके देवता तथा तिनके विषय, यह चौदह प्रकारकी त्रिपुटीरूप चौदह १४ रत्न, भोक्ता भोग्यमय संसारमें उत्पन्न हुये, यथार्थवक्ता अगस्त्यका वाक्य सुनकर सर्व सभा प्रसन्न हुई।

काल।

तिसी समय काल भगवान् आया और कहने लगा—हे सभासद्! विद्वान्लोको! काल तीन प्रकारकाहै—१एककानाम केवलकालहै२ एक महाकाल है३एक अतिकाल है।तीन प्रकारका सत् चित् आनंदस्वरूप,प्रत्यक् आत्माके अज्ञानसे उत्पन्न हुआ, जो काल देश सहित भूत, भौतिक,सूक्ष्म,स्थूल, जगत् है, तिस जगत्के मध्यमें मैं केवल काल हूँ। कैसा मैं हूँ कि,जबलग अज्ञानरूप पिता मेरा जीता है,तबतकही मेरी,भाइयों सहित आयुहै,पीछे नहीं।हेविद्वानो! मुझे केवल काल करकेही जगत्कीउत्पत्ति,पालना तिरोभावहोता है,मुझ करही जीवोंके स्थूलशरीर जीर्ण होते हैं,पुनःनवीन उत्पन्न होते हैं;परन्तु मुझ केवल कालसे सूक्ष्म शरीर न जीर्ण होते न उत्पन्न होते हैं। पूर्वोक्त सर्वके निजस्वरूप अधिष्ठानके अज्ञा-

नने स्थूलसूक्ष्म संसाररूप वगीचा रचा है, तिस स्थूल वगीचेका मुझको मालीपना सिपुर्द किया है। जैसे माली जीर्ण झाडोंको काटके नवीन लगा देता है; कदाचित् नवीनभी झाड शोभादायक नहीं होते, तो तिसको भी काटके अन्य स्थानोंमें लगा देता हैपरन्तु बीजका नुकसान नहीं करसक्ता क्योंकि बीजविना झाड़ कहाँसे होगा ? सारांश यह कि, मालीही वगीचेकी सफाई तथा गुलजार रखता है तथा जब वगीचा देखें तब वैसेका वैसाही दीखताहै, नदी-प्रवाहवत्। तैसेही पिता अज्ञानने मुझे केवल कालको स्थूल संसा-रूप वगीचेका माली किया है, सो मैं मालीकी न्याई जीवोंके कर्मोंके अनुसार स्थूलशरीरोंको तथा अन्य स्थूलपदार्थोंको तोड फोडकर तथा नवीन पैदाकर वैसेकावैसाही गुलजार प्रतीत कराता रहता हूँ।जैसे-माली झाडोंको तोडे फोडे नहीं तथा नवीन लगावे नहीं तो वगीचेकी शोभा जाती रहती है। जैसे बहुत प्राचीन झाड, कोई सूख जाताहै, कोई फल नहीं देता है। तैसे मैं स्थूल पदार्थोंको जीर्ण पुनःनवीन नहीं करूं तो संसाररूप वगीचेकी शोभा जाती रहे। इससे मैं इस स्थूल संसार वगीचेकी सफाई करनेवाला केवल कालरूप माली हूँ। ब्रह्मा, विष्णु शिवादिकोंकी स्थूल मूर्तियोंको भी नाश करता हूँ। मैं नहीं छोड़ता चाहे ब्रह्मा दिकोंसे पूछलो, अन्यकी क्या बात है?पूर्वोक्त अज्ञान पिताकाही पुत्र और हमारे भाई सर्व नामरूप कल्पित संसारका अधिष्ठान जो अनंत चित् सत् स्वरूप बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्माहै, तिसका जो सम्यक्बोधरूप ज्ञानहै, सो महाकालहै क्योंकि, अपने अज्ञान पिताका तथा पिताके कार्यरूप मुझे केवल काल भाई सहित परिवारका एक कालावच्छेदकर नाश करदेता है। सारांश यह कि, सर्व कार्य कारण प्रपंचमें सम्यक् मिथ्य दृष्टि करादेता है। इससे पूर्वोक्त सर्व कल्पित संसारके अधि

ज्ञानही महाकाल है । यमकिंकरने कहा हे देव! परिवारसहित अपने पिताको ज्ञानरूप महाकाल क्यों मारताहै? कालने कहा हे यमकिंकर! वस्तुका स्वभाव अपना बिगाना नहीं देखता; जैसे अग्नि अपने उत्पत्तिकर्ताको, अपने पूजकको, तथा अपने अपकारीको स्पर्श करनेसे दग्ध कर देती हैं;जैसे–बिच्छु अपनी माताको नाश करही उत्पन्न होता है। जैसेबाँसोंसेही अग्नि उत्पन्न होती है, पुनःबाँसोंकोही जलाती है।जैसे कोईराजाका दुष्टनौकर राजासे ही वृद्धिको प्राप्त होकर पुनःराजाकोही नाश करताहै,इत्यादिअनेक दृष्टांत हैं । तैसे यह ज्ञानभी अपने कारणको नाश करता हुआही उत्पन्न होता है।इससे ज्ञान महाकालरूप है,मुझ काल सहितसर्व कारण कार्य जगत्के मिथ्यात्व निश्चयका नामही भक्षणहै। तैसेही सत् चित् आनंद स्वरूप प्रत्यक आत्मा अतिकाल रूपहै क्योंकि ज्ञानरूपमहाकालको भी यह पूर्वोक्त साक्षी आत्मा भक्षण करजाता है जैसे अग्नि सर्वको दाहकर;आपभी समानरूप महाअग्निमें लीन होजाती है। जैसे निर्मल, जलकी मलीनताको दूर करके आपभी नीचे बैठ जाती हैं। इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं,विस्तृत भयसे लिखतेनहीं। तैसेही ज्ञानरूप महाकाल मुझसहित सर्व कल्पित जगत्की निवृत्ति करके अर्थात् मुझ सहित सर्व नामरूप जगत्में मिथ्यात्व निश्चय कराके वा अभाव निश्चय कराके प्रारब्ध प्रतिबंधकके नाश हुये पीछे, वृत्तिरूप ज्ञान आपभी साक्षी चैतन्यमें लीन होजाताहै।इससे हे विद्वान् लोगो।सच्चिदानंद प्रत्यक मनादिकोंका साक्षी आत्माही अतिकाल है।सो अतिकाल आत्माही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्वका निजस्वरूपहै। जो अधिकारी अपने अतिकाल स्वरूपको, सम्यक् स्वतःही बंध मोक्षसे रहित ऐसा जानता है कि,मैं बुद्धि आदिक सर्व दृश्यका द्रष्टा साक्षी चेतन्य निर्विकार निर्विकल्पहूँ। ऐसे अपरोक्ष दृढनिश्चय करता

है, सो मुझ केवल स्थूलके नाशकरनेवाले कालके भयसे भय नहीं करता। जैसे स्वप्नावीके निद्रारूप अज्ञानसे, देशकाल सहित सर्व स्वप्नसृष्टि उत्पन्न होतीहै और स्वप्न नर सत् जानताहै सो स्वप्न स्थूल सृष्टिकोही स्वप्नका काल नाश करताहै, तिस कालसे स्वप्न पुरुष भय करतेहैं। कदाचित् स्वप्नके गुरु शास्त्रसे, स्वप्न पुरुषको अपने स्वप्नावी स्वप्न अधिष्ठानका सम्यक् ज्ञान होताहै तो अज्ञान देशकाल सहित सर्व स्वप्नसृष्टिको मिथ्या निश्चय जानता है। वा स्वप्नावी अधिष्ठानविषे अत्यंताभाव निश्चय जानताहै यही तिस ज्ञानका सर्वको भक्षण करनाहै। कोई दृश्यकी अप्रतीतिका नाम भक्षण नहीं। जैसे घट कंबुग्रीवावान् प्रतीतहोता हुआभी, घटनाम उच्चारण होता हुआभी, जलका धारणरूप वा जलका लावनारूप क्रिया देताहुआभी सम्यक् मृत्तिकाके ज्ञानवाले पुरुषको, पूर्वोक्त घटकी मृत्तिकामें अत्यताभावहै। यह सवविद्वानोंको अनुभवहै और ठीक ठीक ऐसेहीहै। घटको चूर्ण करके वा किसीरीतिसेघटकी अप्रतीति होवे, तवही घट मृत्तिकारूप होताहै वा अभाव होताहै यह नहीं। इसी प्रकार सुवर्णादि अनेक दृष्टांतहैं। अपनी अक्लसे जानलेना सारांशयह कि, जैसे-स्वप्नद्रष्टाकाज्ञान, स्वप्नसृष्टिको मिथ्यात्वनिश्चयरूप वा अभाव निश्चयरूप भक्षण करजाताहै, इसीसे महाकाल है। पुनः वह ज्ञान सहित पुरुष तथा ज्ञानकर बाधित हुई हुई सर्व स्वप्नसृष्टि, किसी निमित्तसे निद्रारूप प्रतिबंधके दूर होनेसे, जिस स्वप्नद्रष्टाको अज्ञानसे हुईथी तिसी स्वप्नद्रष्टामें लीन होजाती है, यही तिसका भक्षणहै। इससे स्वप्नद्रष्टा अतिकालहै। तैसेही सांगोपांग अपनी अक्लसे, दार्ष्टान्त(विद्वानोंको)जानलेना। हे सभानिवासी पुरुषो! मैं लौकिक केवल काल ब्रह्मासे लेकर चींटीतक, सर्वकी स्थूलताको ही नाश करताहूँ, पुनः नवीन पैदा करताहूँ परंतु सूक्ष्म सृष्टि मुझसे नाश पैदा नहीं होती। वह ज्ञानरूप

कालसेही,मिथ्यात्व निश्चयरूप वा अभाव निश्चयरूप नाश होता है,अन्यथानहीं। मुझ केवल काल करही अनंतबार स्थूल सृष्टि उत्पन्न होतीहै,पुनःलीन होतीहै।तात्पर्य यह कि,लौकिक वैदिक सर्व व्यवहार मुझ कालकरही होतेहैं,पुनः लीन होतेहैं. परंतु यह नहीं कि,सृष्टि मिथ्याहै और मैं सतहूँ, किंतु सृष्टिके साथही मेरी सत्ताहै,पृथक् नहीं। अतिकालरूप आत्मामें मुझ सहित सर्वसृष्टि कल्पित मिथ्याहै परंतु नित्य सुखं चिद्रूप प्रत्यक् आत्माने किसीको कोई भाव सिपुर्द कियाहै, किसीको कोई सूर्यादिकोंको उदय अस्तदिकोंका कार्य सौंपाहै,वह वैसाही करतेहैं।जैसे जिसको जो व्यवहार राजाने सिपुर्द कियाहै सो तिसी हुकुमको तामील करतेहैं, मुझको सर्व जीवोंके स्थूल शरीरोंका नाश,उत्पन्न करना आदिक काम सिपुर्द कियाहै,सो मैं तिसी हुकुमकी तामीली वजाताहूँ कोई मुझमें बडाई नहीं।काल सर्व स्थूलको नाश उत्पन्ना दिक करता है इससे काल बडाहै, सो नहीं, जैसे-स्वप्नका काल और सृष्टितुल्यहीहै।यमकिंकरने कहा हेयथार्थवक्तादेव ! कई एक शास्त्रोंमें अज्ञानको मृत्युनाम काल लिखाहै तथा शब्दादिक विषयोंको अतिकाल लिखाहै वा काम क्रोधादिकोंको काल लिखा है परन्तु आपने महाकालका स्वरूप औरही कहाहै। कालने कहा हे किंकर ! विचार देख। अज्ञानसे तो सुख दुःखरूप जगत्की उत्पत्ति होतीहै,कोई अज्ञान जगत्का नाशक नहीं, लौकिक पितावत्।जैसे रज्जुका अज्ञान सर्पादिकोंकी उत्पत्तिका कारणहै, कोई सर्पादिकोंका नाशक नहीं । स्वप्नादिक अनेक दृष्टांतहै, तैसे शब्दादिक विषयही तो संसारहै,सो विषय दुःख देनेवाले होनेसे काल कहाहै।सो विषय अपरोक्ष आत्मज्ञानीको तथा भ्रमज्ञानसे विषयलंपटकोभी तथा ब्रह्मादिक ईश्वरोंकोभी,दुःखनहीं देसक्तेऔर यहज्ञानरूपमहाकालतोसर्वदृश्यकोमिथ्यात्वनिश्चयरूपवा अभाव

निश्चयरूप भक्षण करजाता है। इससे ज्ञानही महाकाल है। आगे जैसी इच्छाहो तैसे मान। ऐसे कहकर काल चुप हुआ।

माया (प्रकृति)।

तिस सभामें जगज्जननी माया, जिसको प्रधान, प्रकृति, अविद्या, अज्ञानशक्ति भी कहते हैं, सो मूर्ति धारकर आई और कहने लगी। हे पुत्रो! मैं सत्व, रज, तम, त्रिगुणात्मक रूप हूँ। नित्य शुद्ध चिद्रूप प्रत्यक् आत्माकी मैं शक्ति हूँ, मैं आत्मासे भिन्न हूँ, न अभिन्न हूँ। न सावयव निरवयवहूँ, उभयरूपभी नहीं। न मैं सतहूँ, न असत् हूँ, न उभयरूप हूँ (क्योंकि, विरोधी धर्म एकही स्थानमें नहीं हो सक्ते) किंतु अनिर्वचनीय हूँ। जैसे—अग्निविषे दाहक शक्ति, अग्निसे भिन्न अभिन्न तथा उभयरूपता नहीं। जैसे स्वप्नद्रष्टामें निद्रारूपअविद्यासे भिन्नाभिन्न कुछ नहीं कह सक्ते; परन्तु साक्षात् स्वप्न प्रपंच कार्यद्वारा निद्रारूप अविद्याका अनुमान होता है। यह नहीं कि, स्वप्नद्रष्टामें निद्रारूप-अविद्या नहीं। यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं दीखती, तौभी निद्रारूप अविद्या विना स्वप्न प्रपंच होता नहीं। जो स्वप्न प्रपंचको अनुभव करनेवाला स्वप्नद्रष्टा चैतन्य वस्तु है, सोई जाग्रत् अवस्थाको अनुभव करनेवाला चैतन्य वस्तु अब भी वर्तमान हाजिर हुजूर है, परन्तु अब जाग्रतमें स्वप्न प्रपंच नहीं है। इससे प्रमाणित होताहै कि, स्वप्नजगत्का उपादान कारण, निद्रारूप अविद्याही, स्वप्न प्रपंचकी उत्पत्ति पालना संहारका कारणहैऔर स्वप्नद्रष्टा निर्विकार असंगरूप है। यद्यपि निद्रारूप अविद्या अबभीहै तथापि, कार्यके सन्मुख नहीं। तैसे तुम मुझ मायाको जगत्की उत्पत्ति पालन संहारादि सर्व व्यवहारका निर्वाहक जानो, चैतन्य असंग पुरुष निर्विकार जानो। मैं माया चैतन्यके भासको ग्रहण करकेही जगत्की उत्पत्ति

आदि सर्व व्यवहार करनेको समर्थ होतीहूँ, स्वतःनहीं क्योंकि, स्व-
तः जड हूँ। मैं माया और मेरे ये सर्व नामरूप कार्य, चैतन्य द्रष्टाकी
दृश्य होनेके कारण मिथ्या मृगतृष्णाके समान केवल प्रतीत
मात्र है। मेरा और मेरे कार्यका स्वरूप पृथक् नहीं। मैं माया अनेक
अपने हाव भाव कटाक्ष करती हूँ। तथा मोहित करनेवाले अनेक
विचित्र कार्य उत्पन्न करती हूँ। सारांश यह कि, मैं अपना सर्व
बल इस मनादिकोंके साक्षी चैतन्यके मोहित करने वास्तेकरतीहूँ।
सतको अपने बलसे असत्, असत्को सत्, जडको चैतन्य, चैतन्य-
को जड, सुखको दुःख, दुःखको सुख, पूर्णको अपूर्ण, अपूर्णको
पूण, इत्यादि अनेकरूप अवास्तव इंद्रजालकी समान कर दिख-
लाती हूँ वास्तवसे नहीं। तौभी प्रत्यक् आत्मा प्रसन्न अप्रसन्न
नहीं होता। तथा प्रसन्न करने वास्ते अनेक प्रकारके शांति आदि
रस उत्पन्न करती हूँ, परन्तु नित्य सुख चिद्रूप यह साक्षी आत्मा
मुझ सहित मेरे चरित्रोंका (ऊपरका ऊपर) द्रष्टाही रहता है,
कदाचित्भी साक्षी आत्मा हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता। जैसे-
इन्द्रजाली पुरुप अपनी मायाद्वारा रच अनेक सुंदर असुदर
पदार्थोंसे आप हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, अन्य होते हैं।

देखो मेरी अवस्था नवीन यौवनवान हूँ, अत्यंत सुन्दररूप
हूँ, पतिव्रता हूँ क्योंकि, अनंत चित् सत्स्वरूप प्रत्यक् आत्मा (मेरे
स्वामीसे) भिन्न सर्व नामरूप प्रपंच; मेरा कार्यनाम बाल बच्चाहै,
शेप एक चैतन्यही मेरा पति है। परन्तु वह मुझ स्त्रीसे कदाचित् भी
स्पर्श नहीं करता, जो मैं लीला रचूँ तिससे पहलेही स्थिर होकर मेरा
तथा मेरी लीलाका द्रष्टा रहता है। मैं क्षणमात्रभी तिससे भिन्न
नहीं करसक्ती। हेपुत्रो! चैतन्य, तुम सर्व नामरूपका पिता है और
मैं माया तुम्हारी माता हूँ। इससे तुमको योग्य है कि, अपने
माता पिताका सम्यक् स्वरूप जानो। जो अपने माता पिताका

सम्यक् स्वरूप नहीं जानता सो पुत्र नालायक है अर्थात् द्रष्टा दृश्यका सम्यक् स्वरूप जाननाही कल्याणका हेतु है। वर्त्तमान साक्षात् मातापिताके पुत्रको कोई अधिकारी पूछे कि,तुम अपने मातापिता को जानतेहो? जो वह कहे कि,मैं सम्यक् जानताहूँ तो उत्तमता सिद्ध होती है और जो कहे मैं नहीं जानता तो नीचता सिद्ध होती है। तैसे--जो दृश्य,द्रष्टारूप माता पिताको जानता है सो उत्तम है,जो नहीं जानता सोनीच है।इससे तुम लोग अपनी नीचताके दूरकरने वास्ते सम्यक् अपने माता पिताको जानो।

व्यासने कहा हे मातेश्वरी! तूही यथार्थवक्ता अपना तथाअपने पतिका सम्यक् स्वरूप कह ? मायाने कहा हे पुत्रो!मुझ सर्वकी जननी मायाका तथानामरूप आकाशादि प्रपंचमेरे बालबच्चोंका सम्यक्असत् जड दुःख परिच्छिन्नरूपही स्वरूप जानना अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि,जोस्वरूपसे होवे नहीं और अधिष्ठानके अज्ञानसे प्रतीति होवे सो अपने कार्य सहित मायाका स्वरूपहै स्वप्नवत् तथा मृगतृष्णाके जलवत् है।तैसेही सत् चित् आनंद स्वरूप ब्रह्मसाक्षी आत्मा (मेरेसे पति और अपने पिता) का सम्यक् स्वरूप जानना,अन्यथा नहीं।सारांश यहकि,आपको सर्वदृश्यका द्रष्टा जानना।मायासे लेकर देह पर्यंत अपनी दृश्य जाननी:। द्रष्टास्वभावसेही बंध मोक्षसे रहितहै क्योंकि,बंध मोक्षकाभी द्रष्टा है। इस हेतु बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते प्रयत्न भ्रमसिद्धहै सम्यक् नहीं। यह कहकर माया चली गई।

कश्यपऋषि।

(देवतादैत्यकी उत्पत्ति,सुरासुर लडाई स्वर्गनरक बन्धमोक्ष तथा मनोनाशका वर्णन)

कश्यपऋषि आये और कहने लगे हे सभासद् जनो!दैवी आसुर गुणदोषरूप जो देवता दैत्यहैं,मुझ कश्यप नाम चैतन्यसेही उत्पन्न

होतेहैं और मुझमेंही लय होतेहैं, परंतु मैं चैतन्य निर्विकारही रहताहूँ, जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नप्रपंचको उत्पन्न करताभी निर्विकारहै, जैसे अनेक अँधेरी वर्षादिक उत्पन्न लय होतेभी आकाश निर्विकारहै; इससे मैंही चैतन्य सर्वाधिष्ठानहूँ; मुझ चैतन्यको अपना स्वरूप जानो । तब कालके भयसे छूटोगे अन्यथा नहीं। वा मन रूप कश्यपजानो, प्रवृत्ति निवृत्ति तिस मनरूप कश्यपकी दिति अदिति दो स्त्रियां जानो तिनसे दैवी आसुरी गुण देवता दैत्यहुये। जिसके शरीरमें दैवीगुण अधिकहै,सो शरीर स्वर्गवत् जानो । जिसके शरीरमें आसुरीगुण अधिकहै,सो शरीर पातालवत् जानो। वा यह एकही शरीर स्वर्गपातालरूप जानो क्योंकि, जब इसी शरीरमें अमानित्व अहिंसादिक दैवीगुणरूप देवतोंकी अधिकता तथा बलिष्ठता और क्रोधादिक दैत्योंकी निर्बलता तथा न्यूनता होतीहै तब यही शरीर स्वर्गरूप जानना और जब इसी शरीरमें काम,क्रोध,लोभ;मोह,अहंकार;दंभादिक,आसुरीगुणरूपदैत्योंकी अधिकता,बलिष्ठता,अमानित्व,अहिंसा,ब्रह्मचर्यादिक दैवी गुणरूप देवतोंको न्यूनता तथा निर्बलता होतीहै,तब यही शरीरपाताल रूप जानो वा नरकरूप जानो।जब दैवी आसुरी गुणरूप देवता दैत्य इस शरीरमें सम रहें,तो तब इस शरीरको भूमिलोक जानो हे साधो।पूर्वोक्त इस शरीरमें दैवी आसुरी गुणरूप देवता दैत्योंकी लडाई होती रहतीहै तथा सर्वदा विरोध रहताहै । जब कभी दैवी गुणरूप देवता बली होजातेहैं,तब शरीररूप स्वगमें यह जीवरूप इन्द्र परम शोभाको पाताहै और आसुरी गुणरूप दैत्य शोभारहित होकर मलिन भावको प्राप्तहोतेहैं।जब आसुरीगुणरूप दैत्यबलीहो जातेहैं,तब इस शरीररूप पातालविषदैत्यशोभायमानहोतेहैं।देवता

शोभा रहित होते हैं। हे विद्वान्लोगो। यह दैवी आसुरी गुण दोनों इस जीवको बंधनके हेतु हैं। जैसे सुवर्णकी वेडी तथा लोहेकी वेडी दोनों बंधनके हेतु हैं। ये सव दैवी आसुरी मनके धर्म नाम वालवच्चे हैं, प्रत्यक् साक्षी आत्माके यह धर्म नहीं। मन अनित्य है क्योंकि, सुषुप्तिमें अपने वालवचों सहित इसका अभावहोजाताहै, पुनः जाग्रत स्वप्नमें अपने वालवच्चे सहित उत्पन्न होताहै, एक रस नहीं रहता; इसीसे अनित्यहै। जब यह पुरुप मनको नाश करता है तब सर्व बंधनोंसे छूट जाता है। मन और किसी भी उपाय कर नाश नहीं होता, जिस नित्य सुख चैतन्यरूप आत्मासे यह फुरनारूप मन उत्पन्न हुआ है तिसीमें डालनेसे नाश होताहै। सारांश यह कि, सूर्यकी किरण सूर्यरूप है, लालकी दमका लालरूप है। तैसेही चैतन्यरूप सूर्य लालकी मनरूप किरणें दमकाहैं पृथक्नहीं यही जाननाही मनका नाश करना है। जैसे घटको तथा भूपणोंको मृत्तिका सुवर्ण रूप जाननाही घट भूपणोंका नाशहै जैसेकोयला किसी भी उपायसे सफेद नहीं होता परन्तु जिसके वियोगसे काला हुआ है, तिसीमें डालदेनेसे तिसकी कालखता मिटतीहै, अन्यथा नहीं। सारांश यहकि, मनको मिथ्या जाननाही मनका नाशहै। आपसहित सवकोवासुदेवजाननायहीपरम उपदेश मुमुक्षुओंकोहै; अन्य नहीं पूर्वोक्त दैवीगुणोंसे संयुक्त जो पुरुप हैं सो देवता हैं और [पू]र्वोक्त आसुरी गुणोंकर जो पुरुप संयुक्त हैं सो दैत्य हैं। दोनोंइस [भू]लोकमेंही रहते हैं, तिनका परस्पर विरोध हमेशह वना रहता है [क्]योंकि, सच्चे पुरुपका और झूठे पुरुपका एकत्व कैसे होगा? किंतु [न]हीं होगा। इत्यादि दृष्टांत अपनी बुद्धिसे जानलेना। इन मनुष्योंमें [ह]ी देवता दैत्य दोनों संज्ञा हैं। धर्मात्मा राजाहीइंद्रहै अ[ध]र्मात्मा राजाही दैत्यराज है। ऐसे कहकर कश्यपऋपि ७

मनु।

पश्चात् मनु भगवान् आये और कहा कि,हे साधो । यह जगत् मनोमात्रहै,जैसे—संकल्प मन दृढ़ करता है, तैसेही भासताहै । जो देह सहित जगत्का सत् संकल्प करता है, तो सत् भान होता है असत् संकल्प दृढ करता है,तो असत् भासता है।जैसे—एकहीस्त्रीमें अनेक पुरुषोंके अनेकही संकल्प होते हैं।तिन पुरुषोंको एकहीस्त्री अपनेर संकल्पके अनुसार,अनेक रूप प्रतीति होतीहै।"मैं देह नहीं किन्तु मैं प्रत्यक् साक्षी आत्मा हूँ"यही निरन्तर दृढसंकल्प करे तो काल पाकर वैसेही होजावेगा ।

सृष्टि उत्पत्ति।

मनुने कहा हे सभासदो ! चूना मट्टीसे ,यह संसार किसीने बनाया नहीं और न बनसक्ता है । केवल समष्टि वा व्यष्टि मनके फुरनेसे हुआ है । जबलग फुरना है तबहींतक जगत् है,जब फुरन नहीं तब सुषुप्ति आदिकोंमें जगत्भी नहीं । अपना सत्, चित्, आनंदरूप,प्रत्यक्आत्मा एकरस,विकारशून्यहै और सर्वमनवाणीके गोचर पदार्थ एक रस नहीं।जिसे स्वप्नका प्रपंचकेवल मनोमात्र है,एकरस नहीं, स्वप्नद्रष्टाही एक रस नाम एकरूप है । तैसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि सर्व पदार्थ, परस्पर व्यभिचारी हैं, एक आत्माही अव्यभिचारी है, आत्मा व्यभिचारी नहीं ।

यमकिंकरने कहा हे मनु ! शास्त्रमें लिखा है कि मनु शतरूपासे सृष्टि हुई है,सो कैसेहै ? मनुने कहा हे साधो।मनुनाम चैतन्यपुरुषका है शतरूपा नाम प्रकृतिका है । सो प्रकृति पुरुषके संयोगसे यह सृष्टि उत्पन्न होती है,नहीं तो मनु शतरूपा कहांसे उत्पन्न हुये जो कहो ब्रह्मासे, तो ब्रह्मा कहाँसे उत्पन्न हुआ ? जो कहो ब्रह्म

विष्णुसे, तो विष्णुकी व्यक्ति किससे हुई? जैसे तरंगसे तरंग नहीं होता, जलसेही तरंगादिक होते हैं। जैसे स्वप्नद्रष्टाके और निद्रारूप अविद्याके संयोगसेही स्वप्नसृष्टि होती है, अन्य हेतुसे नहीं। स्वप्न-सृष्टिसे स्वप्नसृष्टि नहीं होती। सो चैतन्य पुरुषही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का साक्षी आत्मास्वरूप है, यह कहकर मनु तूष्णीं हुये।

परमात्मा।

इतनेमें सर्व जगत्का स्वामी जो परमात्मा है सो मुमुक्षुओंके निःसंदेह अपरोक्ष, अपने स्वरूपको बोध करने वास्ते, दिव्यमूर्तिको धारणकर तिससभामें आया। सर्व सभा उठ खडी हुई और सब दंडवत् प्रणामकर स्तुति करने लगे। हे परमेश्वर! सर्वरूप तुमहीहो और असर्वरूप भी तुमही हो। सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार करते भी आप निर्विकार हो तथा आकाशके समान असंग हो, स्वप्नद्रष्टावत्। करते भी अकरता हो। हे भगवन्! आप हम सर्व अधिकारियों प्रति उपदेश करो। यद्यपि "आपकी यथार्थ वेदरूप वाणी सर्व अधिकारियोंको उपदेश प्रसिद्ध है, अब नवीन मैं क्या कहूँ" जो ऐसे कहो तथापि वही वेदरूप उपदेश पुनः हम अधिकारियोंके प्रति कथन करना योग्य है क्योंकि आपका इस सभामें उपदेश सर्वके कल्याणका कारण होगा। हमको पूछो तो आज हम कृत-कृत्य हुये हैं क्योंकि, जिसकी प्राप्ति वास्ते कर्म, उपासना, ज्ञान-कांडरूप, वेद साधन कहते हैं सो आप हमको अपरोक्ष प्राप्त हुये हो, इससे हमको अब करना कुछ नहीं रहा परन्तु, अन्य अधि-कारियोंको अपने सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका उपदेश करो।

परमेश्वर कहने लगे—हे अधिकारी जनो! मैं सत्, चित्, आनंद स्वरूप परमात्मा, देश, काल, वस्तु भेदसे, रहित परिपूर्ण हूँ। ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्वके हृदयविषे, मनादिकोंका साक्षी रूप करके नित्य प्राप्त अपरोक्ष स्थित हूँ। मुझ नित्य प्राप्त साक्षीकी प्राप्तिवास्ते जो यत्न करना है सो भ्रम है।

संसार उत्पत्तिके (वेदादिमें) कथन करनेका आशय ।

हे अधिकारी जनो! मुझ परमात्माने जो त्रिकांडरूप वेद रचे हैं सो संसाररूप भ्रमकी निवृत्ति निमित्त रचेहैं, कोई संसारकी अनेक प्रकारकी रचना विषे मेरा तात्पर्य नहीं। वेद विषे सृष्टिका अध्यारोप करके पुनः अपवाद किया है जो संसारकी रचनामेंही तात्पर्य होता तो अपवाद पुनःवेद नहीं कहता । इससे जिस परमात्मासे यह भूत भौतिक सृष्टि हुई है, पुनः तिसमें लीन होतीहै, सो परमात्मा तुम्हारा स्वरूप है । जैसे—कोई तरंगको उपदेश करे कि, हे तरंग । तुम सहित जिससे यह तरंग बुदबुदा फेनादि उत्पन्न होकर पुनः लीन होतेहैं, सो तुम्हारा स्वरूप है । जैसे—स्वप्नजीवको कोई उपदेश करै, हे जीव! तुम सहित यह स्वप्नप्रपंच जिस स्वप्नद्रष्टा चैतन्यसे उत्पन्न होकर पुनः तिसीमें लीन होताहै, सो स्वप्नद्रष्टाही तुम्हारा स्वरूप है। सो स्वप्नप्रपंचकी तथा तरंगादिकोंकी उत्पत्ति लीनताके कथनमें वेददेशिकका तात्पर्य नहीं, किन्तु जल (स्वप्नावी निर्विकार निर्विकल्प) के बोधमें है। कोई तरंगादिकोंकी सृष्टि कथनमें तात्पर्य नहीं तो संसार तथा संसारके पदार्थोंके कथनमें जीवको तथा वेदको क्या लाभ है ? उलटा संसार कथनमें दुःखकी प्राप्तिरूप श्रमही फल है । इससे बंधरूप संसार भ्रमकी निवृत्तिकी निवृत्ति और सत् चित् आनंद मोक्षरूप ब्रह्मकी प्राप्तिमें, वेदका तात्पर्य है।

वेदमें त्रिकाण्डकथनका आशय ।

उपरोक्त गुह्य तात्पर्य्यके अज्ञात भ्रमी पुरुषोंके भ्रम दूर करने वास्ते,वेदमें कर्म उपासना ज्ञानकथनकियाहै,कोई बंध मोक्ष यथार्थहै,इस अभिप्रायसे नहीं कथन किया। हे अधिकारी जनो! जैसे महाकाशहीघटउपाधिसेघटाकाशसंज्ञाकोपाताहैतैसेमैंपरमात्माही

देहरूप उपाधिसे सांक्षी आत्मा संज्ञाको प्राप्त हुआ हूँ; जैसे एकही आकाश ब्रह्मलोकादिकोंमें तथा ब्रह्मलोक निवासी पुरुषादिकोंमें तथा इस भूमिमें, अंतर, बाहर, व्यापक एकरस है, तैसे मैं सत् चित् आनंदरूप परमात्मा, सर्वके हृदयदेशमें मनादिकोंके साक्षीरूपसे स्थित हूँ।

परमात्मा कहां रहताहै ?

हे अधिकारी जनो! यह संशय नहीं करना कि, "यह बुद्धिआदिकोंका प्रकाशक आत्मा, परमात्मारूप नहीं, परमात्मा तो ब्रह्म वैकुंठादिक लोकोंमें रहता है" बरन् मैं परमात्मा तो तुम्हारा प्रत्यक् आत्मा स्वरूप हूँ, इसीसे पूर्ण हूँ। जो ऐसा मुझ परमात्माको नहीं मानोगे तो जो देश काल वस्तु भेदवान् पदार्थ हैं, सो अनित्य हैं। अनित्यके जाननेसे अनित्यही फल होता है। इससे अपने प्रत्यक् आत्मासे पृथक् करके जो मुझ परमात्माको जानेगा तो मानोमेरा तिसने खंड खंड किया है और असत्में सत् बुद्धिवान् भ्रमी है। इससे तुम भूलकर भी अपने प्रत्यक् आत्मासे मुझको भिन्न नहीं जानना।

परमात्मा कहां मिलेगा ?

मुझको अपने अंतर सम्यक् अपरोक्ष स्वरूप, विद्वान् पुरुषोंके साथ मिलके, आत्मा अनात्माके विचाररूपी उपाय, निरहंकारसे करोगे तो अवश्यमेव मुझ परमात्माका तुमको दर्शन होगा, दर्शन नाम मुझको निःसंशय साक्षी आत्मारूप जानोगे। बाहर कोई हठ क्रियासे वा अंतर हठक्रियासे वा अभिमानसे मुझको ढूंढोगे तो लाखों वर्षतक न मिलूंगा। जैसे कंठस्थित माला बाहर कभी भी नहीं मिलती।

कर्मउपासना और ज्ञानकाण्डसे क्या फल है?

हेअधिकारीजनो! कर्मकांड अंतःकरणकी निर्मलताके लिये है निर्गुण वा सगुण उपासना अंतःकरणकी निश्चलताके लियेहै। ज्ञान-कांड अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्ति वास्ते है। जब मुझपरमात्माको सम्यक् अपना आत्मारूप जाना तो कृतकृत्य होता है। इससे आगे कुछ जानना नहीं। वेदसहित सर्व संसारको स्वप्नवत् जाननाहै जो इससे आगे भी कर्तव्य माने सो भ्रमी पुरुष है।

परमात्मा पूर्ण है।

हे अधिकारीजनो! मुझ सत, चित, आनंद रूपब्रह्मात्माकी भेद उपासना तो बेशककरो, परन्तु मुझ पूर्णको अपूर्ण मत करो। जो अपूर्ण है सो अनित्य है। अपने प्रत्यक् आत्मासे जुदा मुझको मत मानो क्योंकि, आत्मासे भिन्न अनात्मा होता है। इससे आत्मासे मुझे भिन्न मानोगे तो मुझ परमात्माको अनात्मा पना सिद्ध होगा, दूसरी परिच्छिन्नता होगी। मुझ सत, चित, आनंदरूप परमात्मासे प्रत्यक् आत्माको भिन्न मानोगे तो प्रत्यक् आत्माको असत् जड दुःखरूपता सिद्ध होगी। प्रत्यक् आत्माकी असत् जडदुःखरूपता किसीको इष्ट नहीं और अनुभव शास्त्रसेभी प्रत्यक्आत्माकी असत् जड दुःखरूपता जानी जाती नहीं। इससे मुझ ब्रह्मा-त्माके स्वरूपको सम्यक् जानो, असम्यक् मत जानो। क्योंकि सम्यक्रूप जाननेसेही लाभ है अन्य नहीं।

परमात्माका स्वरूप।

हे विद्वान् पुरुषो! जो मैं चैतन्य आत्मा तुम्हारे अंतर प्रकाशक नहोऊं तोमनादिक जड पदार्थोंकी सर्वचेष्टाकैसेजानीजावे? क्योंकि जडको स्वपरका ज्ञान नहींहोता। औरकिसीदेशमेंपरमात्मा कच-हरी लगाकर नहीं बैठा। हेअधिकारीजनो! इस नामरूप संसार-रूपी, जड पुतरीको, मैं चैतन्यदेवने रचा है मैं औरही इसमें प्रवेश

कर;इसकी चेष्टा करताहूँ.क्योंकि मुझ परमात्मासे भिन्न और कोई चैतन्य है नहीं। और स्वतःसिद्ध जडभी चेष्टा होती नहीं।इससे यह विचारना चाहिये जो इसमनादिक जड संघातकी चेष्टाकरता है तथा जो चेष्टाका प्रकाशक है सो ईश्वरकारूप है।सुषुप्तिकालमें जो केवल अज्ञानका द्रष्टाहै और जाग्रत स्वप्नमें जो अज्ञानसहित अज्ञानके कार्यका द्रष्टाहै, सोई ईश्वरका स्वरूप है। जो प्रिय मोद प्रमोद वृत्तियोंके भावाभावको अनुभव करनेवाला है, तथा सात्विकी राजसी तामसी मनके स्वभावोंको जाननेवालाहै तथा समाधि आदि जन्य सुखका,तथा विक्षेपजन्य दुःखका जो अंतर अनुभव करताहै और आप किसीसे अनुभव नहीं होता सोई ईश्वरका रूप है।जिसकर ध्याता,ध्यान,ध्येय;ज्ञाता,ज्ञान,ज्ञेय,प्रमाता प्रमाण, प्रमेय,द्रष्टा,दर्शन;दृश्यादि,अनेक त्रिपुटियां अंतर बाहर निरंतर सिद्ध होतीहैं सो ईश्वरका स्वरूपहै। ज्ञान, अज्ञान, बंध मोक्षहै। उपादेयादिक मनकी कल्पनाको तथा मनादिकोंका जो द्रष्टा है सो ईश्वरका रूप है।

स्वरूप कैसे प्राप्त होगा।

हे विद्वानलोगो। पूर्वोक्त ईश्वरही तुम्हारा स्वरूप है, में सत् कहताहूँ। ब्रह्मचर्यादि व्रतोंपूर्वक सत्संगमें तुम आत्मविचार निरंतर करोगे (श्रद्धापूर्वक) तो अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जानोगे।जो मन वाणीकागोचर वस्तुहै,सो ब्रह्मात्माका स्वरूप नहीं किंतु सो दृश्यकारूपहै। जो मन वाणीसे अतीतहै और मन वाणी सहित मन वाणीकी कल्पनाकों जो सदा परिमाण करताहै सो ब्रह्मात्माका स्वरूपहै। देश देशांतरको मन जाताहै, पुनः आता है पुनः आयकर दूसरे कार्यमें लगताहै,कभी शुभाशुभकी कल्पना करताहै; यह सर्व मनका व्यवहार जिससे जानागया स तुम्हारा स्वरूपहै।

स्वरूप अपरोक्षके हेतु कर्तव्य ।

हे साधो । अपने स्वरूप अपरोक्षके लिये प्रथमअंतःकरणकी शुद्धि वास्ते तुम निष्काम कर्म करना और अंतःकरणकी निश्चलता वास्ते तुम सगुण वा निर्गुण वा अन्य कोई वेदरीति अनुसार उपासनाकरनी, इन दोषोंको दूरकरके पश्चात् ज्ञानमार्गमें पडना पूर्वजन्मोंमें करे जो कर्म उपासनासे पूर्वोक्त दोष अंतःकरणमें नहीं देखे तो प्रथमही ज्ञानमें प्रवृत्ति करे और वासना त्यागे।इसप्रकार परमात्मा सर्व अधिकारियों प्रति उपदेशकर अन्तर्धान होगये ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय।चैतन्यस्वरूप आत्मामें पृथक् देहादिकोंमें आत्मबुद्धि होनी यही अहंकाररूप वासनाका स्वरूप परमात्माने कहा है,क्योंकि इस अहंकार पूर्वकही आगे सुख दुःख रूप संसार पसरताहै,जैसे बीजसेही वृक्ष पसरताहै,मैत्रेयने कहा अहंकार संसार समुद्रका मूल नाम बीजहै, तो मुझ असंग चैतन्यको क्या प्रयोजन है ? जैसे वृक्षका बीज पृथ्वीमेंहै आकाशको तिससे क्या प्रयोजनहै? इससे अहंकारभी मैंनेकियाहै,त्यागनाभी मुझकोहीहै। पारभी मुझकोहीं होनाहै । भ्रमकर बंध मोक्षभी मैंने ही मानाहै और विचार कर बंध मोक्षको भी मुझको ही छोडना है, तो और किसीका क्या कामहै ? आपही आप हूँ ।

संसारसागरसे पार उतरनेकी नौका ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय। जो तू संसारसमुद्रसे पारहुआ चाहता है तो आत्मविचाररूपी नौकाकर, जोअयत्नही पार होवे। विचार यहीहै कि,अनविचारे मिथ्यापरिच्छिन्न अहंकारको त्यागकर देख, संसारसमुद्र कहांहै ? जिससे पारहोताहै, आप मुये जगत्प्रलयहै,

हे मैत्रेय! तूने कभी चाहनासे रहित स्वरूपको न जाना, यही दृढ किया कि, किसीका ग्रहण करना, किसी वस्तुका त्याग करना। जो तुझे धनकी उत्पत्तिकी बात कहै, उसीकी तरफ तेरे मन इंद्रिय प्राण तद्रूप होजाते हैं, स्वरूप चिंतनमें आलस्य करता है। पर कह तू कौन है? मैत्रेयने कहा मैं चैतन्यस्वरूप ब्रह्महूं। पराशरने कहा तू जीवत्व अहंकारमें मिथ्याबंध है, मैं चैतन्यरूप ब्रह्म हूं, यह कैसे जाना जावे? मैत्रेयने कहा-जानाजावे चाहे न जानाजावे, मुझको अपने निश्चयका फल होना है, परन्तु तुमने भला कहा है; ब्रह्म पूर्णको कहते है। जब मैं ब्रह्म चैतन्य हूं, जीवत्व मिथ्या अहंकार बंधमें भी व्यापकहूं, तबही तिनकी सिद्धिहोती है जो मैं पूर्णनही होऊँ तो तिनकी सिद्धि कैसे होवे? पराशरने कहा हे अभाग्य! तुझको कालसे भय नहीं? यह सर्व देवता ऋषि मनुष्य कालके भयमें हैं। मैत्रेयने कहा जब मैं दृश्यके अंतर बाहर अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्माहूं तो कालका भी मैंही आत्माहूं। अपने आत्मासे भय किसीको होता नहीं वा अपने आत्माको कोई भी भय देता नहीं, भय द्वैतसे होताहै, मैं आत्मा अद्वैत हूं। भय अभय सर्व चिद्रूप है। वर्तमानमेंही; स्वरूपसेही; मुझ असंग चैतन्य साक्षी आत्माका काल, रोममात्रभी छेदन नही करसक्ता, पीछे क्या भय देवेगा? हां! जब मैं चैतन्य असंग भ्रमसे संगी दृश्यरूप होजाऊँ तो काल भय बेशक देवे परन्तु मुझ कालादिक दृश्यके द्रष्टा असंग चैतन्यका कभी भी संगीस्वरूपसे दृश्य होना नहीं। इससे विचारदेखो मैं असंग चैतन्य कालसे भय कैसे करूं? जिसका स्वभावसे जो स्वरूप होताहै, अन्यथा सो किसीसे भी नहीं होसक्ता। जैसे अग्निकास्वभाव अन्यथाकिसीभी प्रकारनहीहोसक्ता तथा जैसे स्वभावसे असगी आकाशको कोईभी पृथिवी आपतेज वायु; तथा इनके कार्य देशकाल अंधेरीआदिक ५ संगी

भय नहीं करसक्ते। हे पराशर! मैं भयसे रहित हूँ,उलटा कालादिक दृश्य मुझ चैतन्यसे भय करते हैं। कालकाभी यह नियम है"संगवान् मन वाणीके गोचर दृश्य वस्तुकोही भक्षण करना" तो अंसग मन वाणी अगोचर आत्माको कैसे भक्षण करेगा, किन्तु कदाचित् भी करेगा नहीं। पराशरने कहा अब मैं तुझको परब्रह्म कहूंगा। मैत्रेयने कहा तुम्हारी कल्पनाहै,कोई नाम राखो; मैं चैतन्य नामरूप तथा पर अपरसे परे हूँ। पराशरने कहा ऐसे मत कह, आप नामरूपमें फँसा पडा है और कहता है मैं नाम रूपसे परे हूँ। मैत्रेयने कहा ठीक है; जैसे मृत्तिका सर्व नाम रूपमें फँसी पडी है (घटादिकोंका स्वरूप होनेसे) तैसे-मैं नित्य सुख प्रकाशस्वरूप आत्मा,सर्व नामरूप प्रपंचमें फँसापडाहूँ,(सब नाम रूपका स्वरूप होनेसे)। पराशरने कहा तू इंद्रियोंकीपालनामें तत्पर है और बातें अतत्परकी कहता है। मैत्रेयने कहा जो मैं सत् अधिष्ठान चैतन्य आत्मा, इंद्रियादिक अनित्य जड प्रपंचकी पालना नाम चेष्टा प्रतीतिका,तत्पर नाम कारण नहीं होऊँ तो इनकी चेष्टाकी प्रतीति कैसे होवे,किंतु नहीं होवेगी। इससे मैं चैतन्य इंद्रियोंकापालकठीक ठीकहीहूँ। जैसे स्वप्नद्रष्टा नहीं होवे तो स्वप्नके इंद्रियादिक प्रपंचकी चेष्टाकी प्रतीति कैसे होवे? इससे स्वप्नद्रष्टा ठीक स्वप्न प्रपंचका पालकहै। तथा जैसे पुरुष नहीं होवे तो जड पुतलियोंकी चेष्टा कौन करावे। इससे पुरुषही जड पुतलियोंका पालक है। इसमें जलतरंगादि अनेक दृष्टांत हैं।

अनेक अनात्म साधनोंके नाम।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! कहने मात्र बात और होतीहै, धारणकी बात और होती है मैत्रेयने कहा पूर्व तुम आपही कहचुकेहो, "अपने स्वरूपका अधिष्ठानविषे भ्रमसिद्ध जो बंधमोक्षादि प्रपंचहै, तिसकी

निवृत्ति प्राप्ति वास्ते, केवल अधिष्ठान आत्माका, सम्यक् जानना ही कर्तव्य है;शरीरादिकोंके कर्तव्य कुछ नहीं करना" अब कुछ शारीरिक कर्तव्य अन्य बतलाते हो, जो आप कहो, तो बन्धमोक्षवान् आपको मानूं,मोक्ष सत् मानू बंध वा बंध मोक्षरूप भ्रमकी निवृत्ति वास्ते मैं तीर्थपर्यटन करूं, कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रत करूं अन्न नहीं खाऊँ दूधही पिया करूँ वा फलाहारही करूं वा नग्न होऊं वा हठकर एक मकानमें ही पडा रहूँ वा मौनी होजाऊँ वा पचधूनी तापूँ वा पूजा करूं,वा गृहस्थी त्यागकर जङ्गलमें चला जाऊं वा शरीरको अनशन व्रत कर नाश करूँ, वा अनेक न्यायादि शास्त्र पढूँ, मन्त्र यन्त्र विद्या सीखूं,वैद्यक शास्त्र पढूं,मंडली चलाऊँ वा अनेक अनात्म उपाय कर लोगोंको वा रईसोंको चिताऊँ, किसीकी माला कंठी छापा मारकर अर्थात् तिलक करूं वा जप करूं वा अपनी सामर्थ्यके अनुसार मानसी वा शारीरक यज्ञ दान होमादि करूं, वा विभूत्यादि लगाऊं इत्यादि अनेक साधन जो तुम कहो अपनी सामर्थ्यके लायक सोई करूं और करेभी हैं। परन्तु "यह सब भ्रममात्र संसारही हैं विना भ्रमके अधिष्ठान सम्यक् जाने विना भ्रमकी निवृत्ति नहीं होती, अन्य अनेक साधनोंसे भी जो यह ठीक है तो आप हमकोअन्य जंजालमें क्यों गेरतेहो ? आगे हम अनेक जन्मोंमें तथा इस वर्तमान शरीरसे भी बहुत भटके हैं,आप सत्यवक्ता हो यह बात ठीक नहीं तो आप पुनः पुनःयह बंध मोक्षादि प्रपंच भ्रममात्र है,क्यों उपदेश करते हो ? जो ठीक नहीं उसको ठीक कहना विप्रलिप्सादि दोष होता है। तथा वेदांत उपनिषदोंमें इस भ्रमरूप संसारकी निवृत्ति और परम आनंद मोक्षरूप आत्माकी प्राप्ति केवल अधिष्ठानके ज्ञानसेही,वारंवार डोंडी पिटाकर कहा है, सो निष्फल होजावेगा। यह बात अप्रमाण है।इसीलिये मैंने तुम्हारी कृपासे इस संसार भ्रमका अधिष्ठान अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्माको सम्यक् अ ०जज.

भय नहीं करसक्ते। हे पराशर ! मैं भयसे रहित हूँ,उलटा कालादिक दृश्य मुझ चैतन्यसे भय करते हैं। कालकाभी यह नियम है "संगवान् मन वाणीके गोचर दृश्य वस्तुकोही भक्षण करना" तो अंसग मन वाणी अगोचर आत्माको कैसे भक्षण करेगा, किन्तु कदाचित् भी करेगा नहीं। पराशरने कहा अब मैं तुझको परब्रह्म कहूँगा। मैत्रेयने कहा तुम्हारी कल्पनाहै,कोई नाम राखो; मैं चैतन्य नामरूप तथा पर अपरसे परे हूँ। पराशरने कहा ऐसे मत कह, आप नामरूपमें फँसा पडा है और कहता है मैं नाम रूपसे परे हूँ। मैत्रेयने कहा ठीक है; जैसे मृत्तिका सर्व नाम रूपमें फँसी पडी है (घटादिकोंका स्वरूप होनेसे) तैसे-मैं नित्य सुख प्रकाशस्वरूप आत्मा,सर्व नामरूप प्रपंचमें फँसापडाहूँ,(सब नाम रूपका स्वरूप होनेसे)। पराशरने कहा तू इंद्रियोंकीपालनामें तत्पर है और बातें अतत्परकी कहता है। मैत्रेयने कहा जो मैं सत् अधिष्ठान चैतन्य आत्मा, इंद्रियादिक अनित्य जड प्रपंचकी पालना नाम चेष्टा प्रतीतिका,तत्पर नाम कारण नहीं होऊँ तो इनकी चेष्टाकी प्रतीति कैसे होवे,किंतु नहीं होवेगी। इससे मैं चैतन्य इंद्रियोंकापालकठीक ठीकहीहूँ। जैसे स्वप्नद्रष्टा नहीं होवे तो स्वप्नके इंद्रियादिक प्रपंचकी चेष्टाकी प्रतीति कैसे होवे ? इससे स्वप्नद्रष्टा ठीक स्वप्न प्रपंचका पालकहै। तथा जैसे पुरुष नहीं होवे तो जड पुतलियोंकी चेष्टा कौन करावे। इससे पुरुषही जड पुतलियोंका पालक है। इसमें जलतरंगादि अनेक दृष्टांत हैं।

अनेक अनात्म साधनोंके नाम।

पराशरने कहा हे मैत्रेय। कहने मात्र बात और होतीहै,धारणकी बात और होती है मैत्रेयने कहा पूर्व तुम आपही कहचुकेहो, "अपने स्वरूपका अधिष्ठानविषे भ्रमसिद्ध जो बंधमोक्षादि प्रपंचहै,तिसकी

निवृत्ति प्राप्ति वास्ते, केवल अधिष्ठान आत्माका, सम्यक् जानना ही कर्तव्य है;शरीरादिकोंके कर्तव्य कुछ नहीं करना" अब कुछ शारीरिक कर्तव्य अन्य बतलाते हो, जो आप कहो, तो बन्धमोक्षवान् आपको मानूं, मोक्ष सत् मानूं बंध वा बंध मोक्षरूप भ्रमकी निवृत्ति वास्ते मैं तीर्थपर्यटन करूं, कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रत करूं अन्न नहीं खाऊँ दूधही पिया करूँ वा फलाहारही करूं वा नग्न होऊँ वा हठकर एक मकानमें ही पडा रहूँ वा मौनी होजाऊँ वा पचधूनी तापूँ वा पूजा करूं, वा गृहस्थी त्यागकर जङ्गलमें चला जाऊँ वा शरीरको अनशन व्रत कर नाश करूँ, वा अनेक न्यायादि शास्त्र पढूँ, मन्त्र यन्त्र विद्या सीखूं, वैद्यक शास्त्र पढूं, मंडली चलाऊँ वा अनेक अनात्म उपाय कर लोगोंको वा रईसोंको चिताऊँ, किसीकी माला कंठी छापा मारकर अर्थात् तिलक करूं वा जपकरूं वा अपनी सामर्थ्यके अनुसार मानसी वा शारीरक यज्ञ दान होमादि करूं, वा विभूत्यादि लगाऊँ इत्यादि अनेक साधन जो तुम कहो अपनी सामर्थ्यके लायक सोई करूं और करेभी हैं। परंतु "यह सब भ्रममात्र संसारही हैं विना भ्रमके अधिष्ठान सम्यक् जाने विना भ्रमकी निवृत्ति नहीं होती, अन्य अनेक साधनोंसे भी जो यह ठीक है तो आप हमको अन्य जंजालमें क्यों गेरतेहो ? आगे हम अनेक जन्मोंमें तथा इस वर्तमान शरीरसे भी बहुत भटके हैं, आप सत्यवक्ता हो यह बात ठीक नहीं तो आप पुनः पुनः यह बंध मोक्षादि प्रपंच भ्रममात्र है, क्यों उपदेश करते हो ? जो ठीक नहीं उसको ठीक कहना विप्रलिप्सादि दोप होता है। तथा वेदांत उपनिषदोंमें इस भ्रमरूप संसारकी निवृत्ति और परम आनंद मोक्षरूप आत्माकी प्राप्ति केवल अधिष्ठानके ज्ञानसेही, वारंवार डोंडी पिटाकर कहा है, सो निष्फल होजावेगा। यह बात अप्रमाण है। इसीलिये मैंने तुम्हारी कृपासे इस संसार भ्रमका अधिष्ठान अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्माको सम्यक् अपरोक्षजाना

है। इससे मुझ चैतन्य आत्माको भ्रमरूप बंध मोक्षरूप संसारकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं। चाहे तुम, चाहे शास्त्र, चाहे कोई और विद्वान भी अनेक उलट पुलट कहे भी, परन्तु जो मुझको सम्यक् अनुभव हुआ है, तिसको कोई भी दूर नहीं कर सक्ता। जैसे-किसी पुरुषने किसी स्पर्शादिक विषयका अपरोक्ष सम्यक् अनुभव किया है, तिसके शरीरको मारो, बांधो, तिरस्कार करो, अनेक पीड़ा दो परंन्तु तिसके अनुभवको नाश कोई भी नहीं करसक्ता जैसे ब्राह्मणको राजा वा राजपुरुष लोभ भयादि देके, निज ब्राह्मणत्वसे उलट पुलट कराया चाहेतो यद्यपि भयादि कारणोंसे मैं क्षत्रियादि हूँ ऐसा कहे भी तथापि भीतरसे क्षत्रियादि आपको नहीं जानेगा किंतु ब्राह्मणत्वही निश्चय रहेगा।

एक कथा ।

(ज्ञानविषयक अनेक संशय निवारण)

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! इसीपर एक सूक्ष्म कथा सुन । एक समय मैं वनविषेगया परंतु उस समय मेरे मनविषे पराशरकी लक्ष थीन दूसरेकी। न जानताथा कि, मैं कौनहूँ। जो मेरा नाम लेकर पुकारता तो मुझसेशब्द न निकसता था। उस वनमें तपस्वी वंसते थे। उन्होंने यह मेरी अवस्था देखकर जाना कि, मृतकहै। उन्होंने लकडी इकट्ठी कर मेरा शरीर चितामें डालदिया और अग्नि लगादिया परंतु लकडी जलती थी और मैं होशमें न था तथा कुछभी मुझको अग्निका स्पर्श नहीं हुआ। तू इन्द्रियोंके पालनेमें बंधहै, कहताहै, "मैं देहसे मुक्तहूँ" कैसे प्रतीत करूं ? मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्यका नामही, इन्द्रियोंकी पालनामें बंध है जो मैं चैतन्य इन्द्रियों सहित सर्व जड जगत्की पालना नाम सत्तास्फूर्ति नहीं करूं तो कौन करे ? जैसे तागे कर मणियां बन्धनमें रहती हैं; तैसे मुझ चैतन्य तागेकर यह

नाम रूप मणियां, ठीक ठीक बंधनमें रहती हैं अर्थात् मेरी सत्तास्फूर्तिसे स्फुरण होता है। हे पराशर! तुमही धर्मपूर्वक कहो--मैं साक्षी आत्मा देहसे भिन्न स्वतःसिद्ध स्वरूपसे हूँ वा यत्नसाध्य हूँ? जो स्वरूपसे हूँ तो मेरा कहना भी सफल है और न कहूँ तो भी सफल है। जो यत्नसाध्यहूँ तो मुझको यत्न कहो;देहनाशपर्यंत करूँगा।यह प्रकरण जैसे है तैसेही रहो परन्तु यह कहो तुम बेसुध कैसे हुये?क्या भाँग पीथी? वा तुमको सिरसाम रोग होगया था?वा ज्ञानसे बेसुध करदिया था?भाँग और रोगकी विशेषता होनेसे तो बेसुध सब होजाते हैं, इसमें तुम्हारी बडाई क्या? जो ज्ञानसे बेसुध हुये थे, तो तुमको ज्ञान न हुआ, एक महान् रोग हुआ। अन्य पुरुषोंकी प्रवृत्ति कैसे होगी?ज्ञानसे कोई भी वर्त्तमानमें विद्वान् बेसुध होता देखा नहीं;ना कोई सुना है। जान करके भलाही बेसुध होवे वा होश मन्द हो। कोई २ विद्वान् बावला देखनेमें आता है सो रोगकी वृद्धिसे होता है। ज्ञानसे नहीं उलटा ज्ञानसे अन्य पुरुषसे कई दर्जे बुद्धि अधिक होजाती है कहो तुम बेसुध कैसे हुये?दूसरे तुमको अग्निने दाह न किया इसमें कारण कौन है? तुम जन्त्री मन्त्री हो,वा अग्निने तुमसे भाईचारा किया जो तुम न जले?वर्त्तमान विद्वानोंका तो अग्निके सम्बंधते शरीर न जले ऐसे देखनेमें नहीं आता।वा तुमको वर्तमान विद्वानोंसे आत्मज्ञान अधिक है,इससे न जले?जो सम्यक् आत्मज्ञानको न्यूनाधिक भाव कहोगे,तो श्रुति अनुभव दृष्टिविरोध होगा,क्योंकि हजारों विद्वानोंका सम्यक् अनुभव एकहीहै(वस्तु एक होनेसे)जैसे एक घटकेहजार सम्यक् द्रष्टा पुरुषोंको मृत्तिका रूपही बोध होवेगा, अन्यथा नहीं, यह श्रुति कहती है। जो जानने योग्य वस्तु पुरुषोंको भिन्न भिन्न होवे तो पुरुषोंको शांति कदाचित् भी नहीं होगी;परन्तु ऐसा नहीं

ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत,सर्वका स्वरूप,अखंड सच्चिदानंद,साक्षी आत्मा,एकही,बंधमोक्षसे रहित, निर्विकार निर्विकल्प है, दूसरा नहीं।इसीसेही सर्व जीव अपने आनंदसे आनंद हैं, ब्रह्मादिकोंके आनंदकीइच्छाभी नहीं रखते,क्योंकि जिसआनंदस्वरूपआत्मासे ब्रह्मादिकभी आनंदी हैं, सो आत्मा सर्वके हृदयविषे साक्षीरूप होकर विराजमान होरहाहै।इससे सम्यक्आत्मज्ञानमें न्यूनाधिक भाव नहीं होसक्ता।तुम अग्निमें प्रवेश होकर कैसे न जले?पराशरने कहा, प्रह्लाद नहीं जला था, ऐसे हमभी नहीं। मैत्रेयने कहा प्रह्लाद भेदउपासक था,अपने इष्टको अपनी रक्षा करनेवाला अपनेसे भिन्न जानताथा इसीसे तिसकी रक्षा होतीथी, परन्तु तुम ज्ञानीलोग तो अपने आत्मासे भिन्न इष्ट मानते नहीं,तुम्हारी रक्षा किसने की?ऋषभदेव अग्निके संबंधसे जलगया,महाज्ञानी था। पराशरने कहा हे मैत्रेय! मेरे शरीरकी प्रारब्ध शेषथी तिसने रक्षा करी;जैसे भृगुके पुत्र शुक्रके शरीरकी शेष प्रारब्धने रक्षा की। जैसे बालक वा अन्य पुरुषभी तीसरे वा चौथे अंबालेसे वा कुवेमें तथा दीवालादिकोंके नीचे आजाते हैं, तिनके जीनेका कारण प्रारब्ध किंचित् मात्र भी चोट नहीं लगने देती। उलटा हँसते रहते हैं। तैसे हमारीभी प्रारब्धने रक्षा की। पराशरने कहा हे मैत्रेय! जैसे तू कहता है व्यवहारमें ऐसाही है,परन्तु इस प्रकरणका तात्पर्य औरही है। मैत्रेयने कहा सो कहो? पराशरने कहा हे मैत्रेय।सुषुप्ति वा समाधि अवस्थामें भोग देनेवाले प्रारब्धकर्मोंके उपरम हुये, मुझको जाग्रत् स्वप्नमें, सुख दुःखरूप भोग देनेवाले,प्रारब्धकर्मरूप तपस्वियोंने, विषय इंद्रियरूप काष्ठ इकट्ठा कर,विषय इंद्रियके संबंधरूप अग्निमें गेरदिया। अब मुझ चैतन्यको अपनी तथा परकी सुधि नहीं थी, इसका अर्थ सुन।हे मैत्रेय।मैं चैतन्य स्वयं प्रकाश स्वरूपहूँ, किसी मनादिक इंद्रियोंको

में विषय, नहीं अपने आप भी में अपने आपका विषय नहीं (आत्माश्रयादि दोष तथा अवाङ्मनसगोचर होनेसे) यही मुझको स्वपरकी सुधि न थी। मुझेको अग्निने नहीं दाह किया तिसका अर्थ सुन। "जो मैं चैतन्य समाधिकालमें तथा सुषुप्तिकालमें निर्विकार, निर्विकल्प, सर्व दृश्यसे रहित स्वयंप्रकाशरूप था, सोई मैं चैतन्यजाग्रत् स्वप्नादिक अवस्थामें तथा विषय इन्द्रियके संबंधरूप अग्निमें असंग निर्विकार हूँ। अन्यथाभाव मैं चैतन्य कदाचित्भी नहीं होता" यह मुझको दृढ निश्चय था यही अग्निका स्पर्श है। जैसे आकाशको यह निश्चय दृढ है कि, जैसे मैं ब्रह्मलोकादिक उत्तम स्थानोंमें, सर्व पदार्थोंसे अलिप्त व्यापक शुद्ध निर्विकार हूँ, तैसेही भूमिलोकविषे तथा पातालविषे तथा नरकादिक मलीन स्थानोंविषे मेरा वही स्वरूप है। यह बात ठीकहीहै सब जांने हैं। इससे हे मैत्रेय! जो तू चैतन्य आत्मा जगत्की उत्पत्तिसे आदि निर्विकार निर्विकल्प था, सोई तू चैतन्य अब वर्त्तमानमें भी वही है, अन्यथा नहीं हुआ। यह दृढनिश्चय कर। यह निश्चय ही जन्म मरण संसाररूप अग्निके दाहसे रहितहै।

दत्तात्रेयकी एक समयकी वार्ता।

हेमैत्रेय! इसीपर एक कथा सुन। एकसमय दत्तात्रेय स्वाभाविक वनमें विचरता था। तिस स्थानमें जो पक्षी थे तथा मृगादि पशु थे, वे सर्व शिव शिव पुकारते थे। दत्तने कहा शिव तो आप हैं, शिवके पुकारनेसे क्या प्रयोजनहै? उत्तर आया कि, जब सर्व शिव है तो पुकारना, नपुकारनाभी शिवहै। दत्त आगे चले-तब शीशकीजटा एक वृक्षसे अटकिगई तब विचारा कि, स्थावर जंगम सर्व शिवहै कैसे छुटाकर जाऊं। पुनः विचारा कि, जब सर्व शिवहै तब छुटाना न छुटाना तथा छुटानेवालाभी शिवहै। तिस वनके निकट एक नगर था। तिस देशके राजाको भवानीने स्वप्नदिया

कि,"मेरा तुझको तब दर्शन होगा, जब अपना मनुष्य शरीर बलि देवेगा" देवीके तात्पर्यको मूर्ख राजाने न जाना। अपने नगरमें ढंढोरा फेरा कि,जो अपना शरीर देवे तिसको धन बहुत मिलेगा परंतु किसीनेभी स्वीकार नहीं किया।तब प्रातःकाल राजा जिसवनमें शिकार खेलनेको निकसा;तिस वनमें दत्तभी विचरतेथे।कैसे दत्त हैं न हिंदू,नमुसल्मान प्रतीत होतेहैं। न वर्णी, न आश्रमी;न मूर्ख न पंडित मालूम होतेहैं, तिनको देखकर राजाने पूछाकि,तुम कौन हो? दत्तनेकहाशिवहूं। राजाने जाना यह मूर्खहै, इसके मारनेका कोई दोष नहीं। नौकरोंसे हुकुम किया कि इसको बांधलेवो तिनोंने वैसेही किया।दत्त जैसे अबन्ध अवस्थामें था तैसेही बंधमें रहा,हर्ष शोकको न प्राप्त हुआ क्योंकि बांधनेवाला, और बंधन करनेका साधन बंधन योग्य,सर्व त्रिपुटी शिव है, यह तिसको निश्चयथा इसीसे हर्ष शोक न हुआ। दत्तको देवीके देवलमें लेगये। राजाने पूछा तेरा मातापिता कौनहै? दत्तने कहा शिवहै। पुनः पूछा तेरा वर्णाश्रम कौनहै? दत्तने कहा शिवहै। राजाने कहा तेरा शीश देवीकी प्रसन्नता वास्ते काटतेहैं।दत्तने कहा शिवहै। राजाने कहातू कहांसे आयाहै? कहां जावेगा?दत्तनेकहासर्व शिवहै। राजाने कहा कछु खाता पीताहै? दत्तने कहा सर्व शिवहै। वह अशास्त्री जंगली देशका राजाथा,दत्तके गलेमें रस्सीडाली और खड्ग निकासकर चाहाकि,इसका शीशकाटूं।तिसी कालमें आकाशवाणी हुई हेमूर्ख! राजा! अबतक तूने जाना नहीं कि इसको आदिसे लेकर, मारने वास्ते मियानसे खड्ग (तेरे) निकासने तक एकसा है,हर्ष शोकको प्राप्त नहीं हुआ यह विद्वान्है इसको सुख देनेवाला तथा दुःख देनेवाला एकसाहै,किसीकोभी वर शाप नहीं देता।पूर्व जो तुझको मैंने स्वप्न दियाथा,तिसका तात्पर्य तूने नहीं समझा।राजाने दीनता पूर्वक कहा हे मातेश्वरी! सो तात्पर्यकहो? आकाशवाणीने कहा

कि,पूर्व जो मेरा तूने अनेक जन्मसे पूजन कियाहै,तिसका परमफल आत्मज्ञान है। तिस ज्ञानकी प्राप्ति वास्ते मैंने तुझको यह उपदेश किया था कि, मानस सूक्ष्म शरीर भेंट कर मेरा तुझको साक्षात् होगा। तात्पर्य यह कि शरीरसे आदि लेकर ब्रह्मादिक पर्यंत-बंध; मोक्ष, सुख, दुःख, हर्ष, शोकादिक, सर्व नाम रूप प्रपंच मनका मननहै,कोई अन्यरूप प्रपंचका नहीं। क्योंकि जब मन सुषुप्तिमें अपने कारण उपादान अज्ञानमें लीन होता है तब संसारकी गंधमात्रभी प्रतीति होती नहीं। जो यह प्रपंच मनकर रचित न होता तो उसके अभावसे जगत् प्रतीत होता। मनके अभावसे जगत् प्रतीत होता नहीं।इससे जाना जाताहै"जगत् मनोमात्रहै पृथक् नहीं"सो पूर्वोक्त मन मेरी भेंटकर,पीछे जो शेषरहेगा सोई तेरा बंध मोक्षसे रहित अवाङ्मनसगोचर स्वरूपहै। यही ज्ञानहै यही मेरा दर्शनहै। वा यह उपदेश किया था कि मैं देवी समष्टी फुरणारूपमनसे आदि लेकर देह पर्यंत सर्व जगत्का उपादान कारण हूँ; जैसे निद्रारूप अविद्या; मन देह सहित स्वप्न प्रपंचका, उपादान कारण है (घट मृत्तिकाके समान)इससे निद्रारूप अविद्या, स्वप्नप्रपंच है। जैसे स्वप्नद्रष्टा निद्रारूप अविद्यासहित स्वप्नप्रपंचका प्रकाशक,असंग निर्विकार,अपनी महिमामें स्थित है। तैसे मन शरीर सहित,सर्व जगत् मेरा है तेरा नहीं। मेरी चीज मेरेकोही सम्यक् भेंट दे देना, अर्थात् मन शरीर सहित,सर्व नामरूप जगत्,माया मात्र जानना। नाममिथ्या जानना (स्वप्नवत्)शेष जिस अधिष्ठानकी सत्तास्फूर्तीसे मिथ्याकी प्रतीति होतीहै,(जैसे स्वप्नद्रष्टा कर स्वप्नकी प्रतीति होती है) सो अधिष्ठान चैतन्य निर्विकार,बंध मोक्षादि रूप सुख दुःखसे रहित,स्वयंप्रकाश स्वरूप मैं हूं; यह भेंट देने का उपदेश किया सो प्रतिबंधके वशसे तूने तात्पर्य जाना नहीं।

हे मैत्रेय! दत्त सर्व पूर्वोक्त व्यवहारोंमें एकसा था, इसप्रकार पूर्वोक्त परमहंसोंकी अवस्था होती है। तू कहता है मुझमें नामरूप जगत् हैही नहीं, अभी तेरा नाक कान काटें तो कहै "मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ" इससे तेरी दृष्टि शरीर पर है। भक्ति गोविंदकी कर जो निर्मल होवे। मैत्रेयने कहा हे पराशर! जब सर्व जीव ब्रह्म ईश्वरादिक मैंहूं तो जीव कहनेसे शरीरादिकोंका उपद्रव मिटजावे तो क्या नुकसान है, किंतु कुछ नहीं। जब सर्व मैं हूँ तो जीवभी मैं हूँ, कहा तो क्या हानि है और न कहा तो क्या लाभ है? कुछ भी नहीं। जैसे एकही आकाशके घटाकाश, मठाकाश, महाकाशादिक, अनेक नाम उपाधिकर कल्पित हैं, तिस आकाशको, आपको घटाकाश कहनेसे उपद्रव मिटें तो क्या हानि है? क्योंकि, घटाकाशमठाकाशमहाकाशनाम आकाशकेही हैं। सर्व नामरूप अपनेही हैं एक नामीके नामोंका अर्थ एक नामीमेंही घटता है; जैसे गंगाधर, नीलकंठ, विश्वेश्वरादिक नाम महादेवकेहीहैं। जैसे एक पुरुषके दो नाम होवें और एकको छोडके दूसरा नाम लेनेसे उपद्रवसे मुक्त होता होवे तो क्या तिसको हानि है? तात्पर्य यह कि; सम्यक् अपने स्वरूपके विद्वान् पुरुषको मैं जीव नहीं ब्रह्महूँ वा ब्रह्मनहींजीवहूँ इत्यादि सर्व कायिक, वाचिक, मानसिक व्यवहारोंमें मनका आग्रह नहीं। अगर किसी व्यवहारमें मनका आग्रह होजावे, किसीमें न होवे, तिसमेंभी तिसको आग्रह नहीं क्योंकि आपको आवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस प्रकाशक अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष, सर्व दृश्यका साक्षी सच्चिदानंद, विशुद्धघन जानता है और सर्व कायिक, वाचिक, मानसिक व्यवहारोंको, आप चैतन्य दृश्य, मायामात्र नाम मिथ्या जानता है, वास्तवसे जानने अजाननेसे आपपरे हैं।

मैत्रेयने कहा कथा राजाकी कहो,पराशरने कहा हे मैत्रेय!इस प्रकार विद्वानोंकी स्तुतिपूर्वक,अनेक प्रकारके वाक्य,देवीने कृपा-दृष्टिसे राजाको कहे,और राजाके ज्ञानके प्रतिबंधका निमित्त भी यहांतकही था, सो इस निमित्तसेही दूर होना था,यही नीति थी। लज्जायमान होकर राजाने दत्तके मारनेका त्याग करके,नम्रतापूर्वक कहा "मेरे कर्मको मतदेख,मेरे अपराधको क्षमाकर, जो कुछ हुआहै सो अविद्यासे हुआ है".दत्तने कहा हे शिव ! तुझसे भिन्न कौन है,जो क्षमाकरे? राजाने कहा नामरूप इस संसारसे मैं कैसे छूटूं ? दत्तने कहा नामरूपको तूने आप पकडा है, नामरूपने तुझको नहीं पकडा इससे दूसरा कौन है, जो तुझको छुडावे ? बडा आश्चर्य है जो है तू आप मुक्त और छूटनेको इच्छा करता है, सो भ्रम है। सारांश यह कि, अपने स्वरूपके न पहिचाननेके कारणसे है। जैसे स्वप्नद्रष्टा कहे कि,मुझमें कल्पित स्वप्नप्रपंच, नाम रूपसे मुझको कोई छुडावे, सो न पछाननेअपने स्वरूपके निमित्तसे, यह स्वप्नद्रष्टाका फुरणा है। उलटा तुझ चैतन्य अधिष्ठान आत्मासे कल्पित,नामरूप संसारका छूटना मुश्किल है। तुझ चैतन्य अधिष्ठानका नहीं क्योंकि कल्पित पदार्थ अपने अधिष्ठानसे बिना नहीं होता और कल्पितबिना अधिष्ठान होताहै। जैसे सुषुप्तिमें और समाधिमें तथा जगत्की उत्पत्तिके आदिमें,तू चैतन्य कल्पित जगत्के विना स्थित है और जगत् तुझ चैतन्य बिना नहीं; जैसे भूषणोंकी कल्पना विना सुवर्णहैऔरसुवर्ण विना भूषणोंकी कल्पना नहीं;जैसे स्वप्नद्रष्टा विना स्वप्न प्रपंच नहीं और स्वप्न प्रपंच विना स्वप्न द्रष्टा चैतन्य जाग्रत्में भी है तथासुषुप्ति आदिकोंमें भी है परंतु स्वप्नप्रपंच नहीं।हे राजन् ! तू चैतन्य मनादिकोंका द्रष्टा है,मायासे लेकर देहपर्यंत यह तेरी दृश्य है,दृश्यको द्रष्टाका बांधना, न कभी किसीने देखा है और न शास्त्रमें सुना है कोई चैतन्य दूसरा हैही नहीं,जो तुझ चैतन्यको बाँधे तब किससे मैं

अपने सहित सर्व वासुदेवहै, यही मुझको अभिमान है,इससे मैं ठीक अभिमानीहूँ। पराशरने कहा-तू कौन है ? मैत्रेयने कहा मैं आपको नहीं जानता, जानना द्वैतमेंहै; मैं चैतन्य स्वयंप्रकाश अद्वैतहूँ । सर्व शास्त्रोंकर मैं चैतन्यही प्रतिपाद्यहूँ,सर्व ब्रह्मादिक मुझ चैतन्यको अपना आत्मा जानेहैं इससे तुमही कहो मैं कौन हूँ ? पराशरने कहा "मैं हूँ"

ब्रह्मलोक विषय-ऋषियोंका संवाद ।

हे मैत्रेय ! इसीपर एक कथा सुन--एक समय मैं ब्रह्मलोकविषे गया वहां ब्रह्मा, सर्व देवता,ऋपीश्वर,मुनीश्वर,योगीश्वर, गन्धर्वो संयुक्त बैठेथे.मुझको देखकर ब्रह्मा हँसा और कहा हे पराशर ! किस निमित्त यहां आया है ? मैंने कहा निजस्वरूप पानेवास्ते आया हूँ । ब्रह्माने कहा बड़ा आश्चर्य है,जैसे फेन बुद्बुदादिक अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन करें, जैसे घटाकाश अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन करे, जैसे प्रतिबिंब अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन करे, तो हँसने योग्यहै तैसे तेरा कथनभी हँसने योग्य है । योगियोंने कहा हे पराशर ! योगकर जो स्वरूपको पावे । मैंने कहा करता हूँ, पर योगके करने,न करनेवालेके जाननेवालेको, प्रथम पहँचान करनी चाहिये; जब तिसको जाना तो आपसे आप योग होगा । योगेश्वर तूष्णीं हुये सनकादिकोंने कहा बड़ा आश्चर्य है। हे पराशर ! अपने देखनेको यहां आयाहै, जैसे कोई अपने देहके ढूँढनेवास्ते देशान्तरको जावे । पर कहो जो सर्व अस्ति भाति प्रियरूपहै तो द्रष्टा दर्शन दृश्य कहांहै ? मैंने कहा जब सर्व स्वरूप है,तो द्रष्टा [illegible] स्वरूपहीहै । पुनः मैंने कहा--जो मैं हूँ तो अपने [illegible] नहीं जानता ? सनकादिकोंने कहा तू आपही [illegible]

तेरेको छुडाऊँ ?राजन् ! व्यावहारिक सत्तावाले;आकाश को भी व्यवहारक सत्तावाले,पृथिवी आप तेज वायु, तथा तिनके कार्य मनुष्य शरीरादिक भी रज्जु आदिक साधनोंसे बांध नहीं सक्ते क्योंकि,पृथिवीआदिकोंका कारण तथा सूक्ष्म,निराकार,व्यापक असंग स्वरूप आकाशहै; परंतु तू चैतन्य तो परमार्थद्रष्टा सत स्वरूपहै, यह नामरूप तुझ चैतन्यकी दृश्य असत् रूपहै;सत्को असत् कैसे बांधेगा किंतु नहीं बांधेगा।हे राजन्।वैराग अर्थात परिच्छिन्न आपा अहंकारको त्यागकर देख संसार कहां है ? यह परमवैराग्य है। जो तुझसे वैराग्य न हो तो जो नामरूप संसार भासताहै सो आपसहित तिन सर्वको वासुदेव जान। हे राजन् पंचभूतोंका विकाररूप जो यह महामलिन संघात है, तिसको आप मत जान।तूतो मनादिक संघातका साक्षीहै और मल मूत्ररूप संघात आपको मानता है, यही बन्धन है तुमको किसीने बांधा नहीं;अपने संकल्पसे आपही बांधागया है।जैसे घुरायण आपही अपना मकान बनाकर फँसमरती है। इससे हे राजन् ! तू आपको मनादिकोंका द्रष्टा जान द्रष्टामें बन्ध मोक्ष हैही नहीं।इससे बन्ध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते किंचिन्मात्र भी तुझको कर्तव्य नहीं। अपने स्वरूप आत्माको सम्यक् जाननाही कर्तव्य है। हे मैत्रेय !ऐसे कहकर दत्त चले गये, राजा जीवन्मुक्त होकर यथा लाभमें विचरने लगा।

पराशरने कहा, हे मैत्रेय।राजा यत्किंचित् सत्संग होनेसे अपने स्वरूपको सम्यक् जान गया और तुझ अभिमानीको सत्संगका स्पर्शही नहीं होता। मैत्रेयने कहा चारों ओर दृश्यके मानने योग्य जो मैं निर्विकार चैतन्य हूं सो मुझको ज्ञानसे प्रथम सत् है संज्ञा जिस दृश्यकी तिसका संगनाम स्पर्श नहीं होता क्योंकि,मैं साक्षी चैतन्य असंग हूं।इससे ठीक है मुझ अभिमानीको सत्संगका स्पर्श नहींहोतामनसहितवाङ्मनसगोचर मैं अवाङ्मनसगोचरहूं,अथवा

अपने सहित सर्व वासुदेवहै, यही मुझको अभिमान है,इससे मैं ठीक अभिमानीहूँ। पराशरने कहा-तू कौन है ? मैत्रेयने कहा मैं आपको नहीं जानता, जानना द्वैतमेंहै; मैं चैतन्य स्वयंप्रकाश अद्वैतहूँ। सर्व शास्त्रोंकर मैं चैतन्यही प्रतिपाद्यहूँ,सर्व ब्रह्मादिक मुझ चैतन्यको अपना आत्मा जानेहैं इससे तुमही कहो मैं कौन हूँ ? पराशरने कहा "मैं हूँ"

ब्रह्मलोक विषय-ऋषियोंका संवाद।

हे मैत्रेय । इसीपर एक कथा सुन--एक समय मैं ब्रह्मलोकविषे गया वहां ब्रह्मा, सर्व देवता,ऋषीश्वर,मुनीश्वर,योगीश्वर, गन्धर्वो संयुक्त बैठेथे.मुझको देखकर ब्रह्मा हँसा और कहा हे पराशर। किस निमित्त यहां आया है ? मैंने कहा निजस्वरूप पानेवास्ते आया हूँ। ब्रह्माने कहा बड़ा आश्चर्य है,जैसे फेन बुद्बुदादिक अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन करें, जैसे घटाकाश अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन करे, जैसे प्रतिबिंब अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन करे, तो हँसने योग्यहै तैसे तेरा कथनभी हँसने योग्य है । योगियोंने कहा हे पराशर। योग-कर जो स्वरूपको पावे । मैंने कहा करता हूँ, पर योगके करने,न करनेवालेके जानेनेवालेको, प्रथम पहँचान करनी चाहिये; जब तिसको जाना तो आपसे आप योग होगा । योगेश्वर तूष्णीं हुये सनकादिकोंने कहा बड़ा आश्चर्य है। हे पराशर। अपने देखनेको यहां आयाहै, जैसे कोई अपने देहके ढूँढनेवास्ते देशान्तरको जावे। पर कहो जो सर्व अस्ति भाति प्रियरूपहै तो द्रष्टा दर्शन दृश्य कहांहै ? मैंने कहा जब सर्व स्वरूप है,तो द्रष्टा [illegible] स्वरूपहीहै। पुनः मैंने कहा--जो मैं हूँ तो अपने [illegible] नहीं जानता ? सनकादिकोंने कहा तू आपही [illegible]

जानता है कि, हाथ, कान, नाक, नेत्र,शीश, उदर, छाती, और पांव मेरेहैं, मन बुद्धि मेरी व्याकुलहै वा नहीं है इत्यादि मनादिक इन्द्रियोंके तथा जाग्रत्,स्वप्न, सुषुप्ति आदिकोंके सर्व व्यवहारोंको जानताहै, कह, आपको कैसे नहीं जाना ? परंतु तेरेमें जाननेका मार्ग नहीं। मैंने कहा जो दृश्यहै सो मिथ्याभ्रमहै जो दृश्यका प्रकाशक दृश्यसे परे है तिसको कौन जाने ? जोजाननेमें आता है सो दृश्यभ्रम है। उन्होंने कहा जो दृश्यहै सोही अदृश्यहै,क्योंकि आदि अंत मध्य अव्यक्तरूप तेराहै।मैंने कहा जो मैं ब्रह्महूँ तो चाहान करताहूँ क्यों नहीं पूर्णहोती ? उन्होंनेकहा चाहनाधर्म चित्तकाहै तू चैतन्य अचिंत्यहै, तेरी चाहना कैसे पूर्णहोवे पुनःमैंने कहा मैं कौनहूँ ? ब्रह्माने कहा, "सो"मैंने कहा"सो"कौनहै ब्रह्माने कहा"अहं"पुनः मैंने कहा"अहं"कौनहै?ब्रह्मानेकहा"सो" मैंने कहा"सो"कौन है ? पुनःब्रह्माने कहा "अहं"। मैंने विचार किया कि, मैंने सो को पूछा, तो अहं और अहंको पूछा तो सो। इससे अब क्या पूछूं,जैसे"सोयं देवदत्तः"इस शब्दका अर्थ पुरुषकाशरीरमात्रहै, तैसे सोहंका अर्थ अखंड सच्चिदानंद प्रत्यक् आत्मा मैंहूँ,अन्य दृश्यजगत् मैं नहीं।तब ब्रह्माने कहा हे पराशर। सो कौनहै ? मैंने कहा जिस अखंड सच्चिदानंद पूर्णसे इस जगतकी उत्पत्ति होतीहै सो सो है। पुनः ब्रह्माने कहाकि, अहं कौनहै ? मैंने कहा अहं साक्षी चैतन्य मैंहूँ,परंतु अहं,और सो,शब्द तथाशब्दके अर्थसे रहित अवाङ्मनसगोचर हूँ। तात्पर्य्य यह कि, "मैं अवाङ्मनसगोचरहूँ"इसमनके चिंतनसे भी परेहूँ,ब्रह्मा तूष्णींहुआ।

वसिष्ठने कहा हे पुत्र ! योग कर जो स्वरूपको पावे। मैंने कहा हे पिताजी ! विना अपने पहचाने योग कैसे करूँ ? स्वरूप जोसर्वका मूलहै;तिससे तो अज्ञात रहूँ और अनात्म योग करूँ तिससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? अनात्मताकी प्राप्तिही सिद्ध

होगी, अन्य नहीं। भृगुने कहा योग, अभ्यास, कर्म, सर्व शरीरसे होते हैं और शरीर अनित्य है। इससे शरीरके कृत्यका जो फलहै सो भी अनित्यही है; अनित्य फलकी प्राप्तिवास्ते बुद्धिमान् यत्न नहीं करते। वसिष्ठने कहा देखनास्वरूपका योगसे होताहै, कहनेसे नहीं। मैंने कहा स्वरूपसेही योग अयोग देखनेमें आता है। योगसे स्वरूप देखनेमें नहीं आता, क्योंकि, जब योग नाम चित्तकीएकाग्रताको तथा चित्तके आदि अंत मध्य को जो देखता है सोई सर्वको देखता है। वसिष्ठने कहा जो देखना योगसे नहीं तो यहां क्यों आयाथा? और क्यों पूछता है कि, मैं कौन हूँ? मैंने कहा इस कारण आयाथा कि, ये क्या अनुभव कहैंगे, पर देखा तो सम्यक् आत्माका अनुभव एकही है, असम्यक् अनुभव अनेक हैं। ब्रह्माने कहा जब तूही है तो क्यों अन्य उपाय करता है? सर्व जगत्को मृगतृष्णाके जलवत् जान और अपनेको अधिष्ठान जान। पुराशरने कहा जब सर्व जगत् मृगतृष्णाका जलहै, तो तुझसे क्या काम है? क्योंकि, तूभी जगत्कोटिमेंही है।

ब्रह्माने कहा हे पुत्र! अपने आत्मासेही हेत कर, जो सत् है। जान कि, मैं शरीर नहीं, शरीररूप वस्त्रसे नग्न हूँ, अर्थात् आपा अहंकार त्याग, जो सुखी होवे। यह जो अतीत वनोंमें फिरते हैं तथा नगरोंमें फिरते हैं, इनसे पूंछ तुम किससे अतीत हुये हो, तो कहेंगे गृहस्थसे। सो यह आपसे आप सिद्ध है क्योंकि, स्त्री मुई भर्तारहा और भर्तामुआ स्त्री रही। हे पुत्र! तू ऐसा अतीत हो कि, इस संघातरूप गृहस्थमें स्थितभी, संघात तथा संघातके धर्मोंके अहंकारका त्याग कर यद्यपि तू साक्षी आत्मा स्वतःही संघातसे अतीत नाम जुदा है, परन्तु जुदे को जुदाही जानना यही अतीत होना है। जब तू परिच्छिन्न पराशर नहीं, तब देख जगत् कहां है। पाप पुण्य

तबतकही है जबतक मायाके गुणोंके साथ मिलके कुछ बनता है। जहां बीज है तहाँ वृक्ष भी है,तैसे जहां परिच्छिन्न अहंकारहैतहांही संसार है। जहां अहं नहीं तहां संसार नहीं । मैंने कहा हे ब्रह्मा ! पराशर नहीं तूही है? क्यों कहता है "पराशर जीव है" ब्रह्मानेकहा जीव, ईश्वर,ब्रह्मको मैं चैतन्य सिद्ध करता हूँ और जीव ईश्वर ब्रह्म सर्वरूपभी मैंही हूँ तथा कर्मभी मैंही हूँ;जैसे स्वप्नद्रष्टा,स्वप्न के जीव ईश्वर;ब्रह्म,सर्व स्वप्न जगत्का सिद्ध करता भी आप है और सर्व स्वप्न जगत रूपभी आपही है।

मीमांसा ।

पुनः मीमांसा आया और कहा कि,जैसे कर्म करे तैसेही कर्मका फल पाताहै। इससे कर्मही प्रधान है। हे प्रजापते ! यह बातसत्यहै कि,झूठ ब्रह्माने कहा सत् है;अंतःकरणकी शुद्धि वास्ते कर्मोंकीही प्रधानता है । मैंने कहा हे ब्रह्मा! तू कहता था, कि मैं हूँ तो कर्म कौन करे? ब्रह्माने कहा जब सर्व हूँतो कर्मभी मैं हूँ।

वैशेषिक ।

वैशेपिकने आकर कहा, सब झूठ कहता है, कालही सर्वका आत्मा है कालकरही जगत्की उत्पत्ति पालना संहार होता है, कालही ईश्वर है अन्य ईश्वरका प्रकाश है । हे ब्रह्मा! कहो मैं सत् कहता हूँ कि, झूठ कहता हूँ ? कालका किसवक्त अभाव है । भृगुने कहा स्वप्नका काल, स्वप्नसे भिन्न, पूर्व उत्तर नहीं, स्वप्नके अंतरवर्ती होनेसे स्वप्नवत्मिथ्या है, स्वप्नके कालका जाग्रत्में अभाव है और जाग्रतके कालकासुषुप्तिमें अभाव है। परन्तुकालही सत्है, कालही ईश्वरहै कालही उत्पत्ति आदि करता है, यह बात जिसकर सिद्ध हुई सोई सत्है, काल सत् नहीं उसमें कालका अभाव है । हे वैशेपिक ! सुषुप्ति काल

करके होवे,परंतु कहो अनुभव सिद्ध सुषुप्तिमें काल है ? नहीं इससे काल मिथ्या हुआ,अज्ञानके भावका और कालादिकोंके अभाव का सुषुप्तिमें सिद्ध करने वाला, साक्षी चैतन्य आत्माही सत् है, तथा ईश्वर है अन्य कालादिक नहीं।

न्याय।

पुनः न्यायने आकर कहा कि,सर्व जगत् ईश्वरके अधीन हैं, कर्मबीज है,कालसे प्रगट होताहै,पर ईश्वर चाहे तो नाश होजाय इससे सब ईश्वरसे है। मैंने कहा मुझ सत्,चित्;आनद,प्रत्यक् आत्मासे भिन्न,ईश्वर नर शृङ्गवत् है;स्वप्नद्रष्टासे भिन्न स्वप्न ईश्वर-वत्। स्वप्नमें राजा तथा प्रजा भासती भीहै,परंतु सब प्रतीतमात्रहै, पूर्वउत्तर नहीं,स्वप्नद्रष्टाही तीनों कालोंमेंसत्है।स्वप्नसृष्टिकेसंगही स्वप्नके ईश्वरादिक हैं।तैसेही दार्ष्टांत जानलेना।न्यायने कहा ईश्वर वह है, जिसने तुझको उत्पन्न किया। मैंने कहा-मैं चैतन्य स्वयं-प्रकाशरूप हूँ, मेरी उत्पत्ति करनेवाला कोई नहीं। न्यायने कहा हे पराशर!ईश्वररूप सूर्यसेही सर्व जगत्की तथातेरे संघातकी चेष्टा होतीहै। मैंने कहा सो चैतन्यरूप सूर्य मैं हूँ।हे न्याय! वेद सत् कहते हैं"एक नारायण अद्वितीय हैं" न्यायने कहा सबको भक्षण करूँगा। भृगुने कहा सर्व-श्रुतिस्मृतिप्रतिपाद्य;ईश्वर तेरा स्वामी उपास्य है तिसको भक्षण कर कि,तेरा स्वामीदासपना सिद्ध होवे हे मूर्ख!जल और बुद्बुदे विषे क्या भेदहै।न्यायने कहा जीव ईश्वर नहीं होसक्ता क्योंकि,यह पराधीनादिगुणोंवालाहै,ईश्वर स्वतंत्रादि गुणोंवालाहै।अगस्त्यने कहा मैं नहींजानता--जीवईश्वर क्यावस्तुहै भिन्न है वा अभिन्न है?परंतु मैं सत् चित् आनंद,प्रत्यक् आत्मा हूँ यह मैं जानता हूँ। जोजीव ईश्वर सत् चित् आनंद,आत्मासे भिन्न है;तो ऐसे असत् जड,दुःखरूप,अनात्मा जीव,ईश्वरको हम क्या

करें? चाहे भिन्न रहे चाहे अभिन्न रहे। जो सच्चिदानंद आत्मा है सो मेरा स्वरूप है,स्वरूपविषे भिन्नाभिन्न क्याहै?जैसे स्वप्न जगत्के जीव ईश्वर भिन्न होवें वा अभिन्न होवें, स्वप्नद्रष्टाको क्या? स्वप्नद्रष्टासे भिन्न जीव ईश्वरका अत्यंताभाव है।हे न्याय।कहो जीव ईश्वर तूने देखाहै? न्यायनें कहा देखा नहीं। भृगुने कहा हे मूर्ख! देखा नहीं तो भिन्न अभिन्न कैसे कल्पा है?न्यायने कहा जीव ईश्वरका अंश है। भृगुने कहा अंशका अर्थ क्या मृत्तिकाका जैसे घट अंश है? वा जलका जैसे बुद्बुदा तरंगादिक अंश है? वा सुवर्णके जैसे भूषण अंश हैं? जैसे महाकाशका घटाकाश अंश है? तबभी अंशअंशीभाव नहीं होता है। पितापुत्रकी न्याईं जीव ईश्वरको कहे सो बनता नहीं, क्योंकि, श्रुति स्मृतिसे विरोध होनेसे,अंश-अंशीभाव,पितापुत्र दोनों अनित्य हैं।और जीवको नित्य कथन किया है।न्यायने कहा-जगत् परमाणुओंसे होताहै।बृहस्पतिने कहा हे न्याय! धर्मसे कहि स्वप्नप्रपंच किन परमाणुओंसे होताहै। एक क्षण विषे परमाणुओंसहित,स्वप्न जगत् निद्रारूप अविद्याने उत्पन्न कियाहै। किसीभी पुरुषके अनुभवमें नहीं घटे कि, स्वप्न जगत् परमाणुओंसे उत्पन्न हुआ है।तद्वत् जब घटको कुलाल मृत्तिकासे बनाताहै वा नाश होताहै,तो परमाणु विखरते मिलते किसीसेभी नहीं देखा। हे न्याय! पृथ्वीका गर्दा,वायुसे आकाशमें देखकर परमाणुओंको कारणरूपतासे नित्य और कार्यरूपतासे अनित्य कथन हांसी योग्य है। हे न्याय! इन्द्रजालकर रंचा हुआ जगत् कह किन परमाणुओंसे रचा जाता है.? और किन परमाणुओंके विखरनेसे नाश होता है? तैसेही रज्जुविषे, सर्प दंड मालादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति नाश किन परमाणुओंसे हुई है? किंतु किसी परमाणुओंसे नहीं हुई, केवल रज्जुके अज्ञानसे सर्पादिकोंकी उत्पत्ति हुई है, रज्जुके ज्ञानसे सर्पादिकोंका नाश देख

नेमें आता है।तैसे--यह जगत् जिस सच्चिदानंद साक्षी आत्माके अज्ञानसे उत्पन्न होताहै,तिसीके सम्यक् ज्ञानसे लीन होता है,बीचमें परमाणुओंकी टांगडी अडानी केवल मूर्खता है ? न्यायने कहा सप्त वा पोडश पदार्थोंके सम्यक् ज्ञानसे मोक्ष होता है।मैंने कहा हे न्यायं ! जिस अधिष्ठानके अज्ञानसे बंध होताहै तिसीके ज्ञानसे मोक्ष होता है,अन्यथानहीं। तात्पर्य यह कि,अपने स्वरूप के अज्ञानपूर्वक आपको जन्म मरणवान्, बंधवान् तथा पंचक्लेशादिकों सहित संसारी मानता है, ज्ञान पश्चात् आपको नित्यमुक्त चैतन्य रूप मानता है, यही मोक्ष है और कोई मोक्ष पदार्थ नहीं। केवल मननरूपही बंध मोक्ष है। हे न्याय ! स्वप्न पदार्थोंके ज्ञानसे वा निर्णयसे पुरुषको क्या सिद्धिहै? निद्रारूप अविद्याके नाश विना, स्वप्नभ्रमरूप पदार्थोंका हजारों वर्षतक निर्णय करे तो भी अंतनहीं होता यह अनुभवसिद्ध है इससे मायामात्र पदार्थोंके अंतके हेतु, अधिष्ठान, चैतन्य, आत्माका सम्यक् जानना ही कर्तव्य है, न भ्रमरूप पदार्थोंका निर्णय।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मैंने कहा. हे ब्रह्मा!जब सर्व तूही है तो न्याय कहां है ?ब्रह्माने कहा,जब सर्व मैं हूं,तो न्याय भी मैंही हूं?मैंने कहा न्याय कर्म पर है वह कौन कर्म है,जिसपर न्याय करेगा ? ब्रह्माने कहा अपना आप न्याय करताहूं।वास्तवसे असंग निर्विकार हूं;जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नका व्यवहार भी आपही करताहै और वास्तवसे असंगभी है।

पातञ्जल।

पुनः पातंजल योग शास्त्र आया और कहा कि,जोप्रणवकोलेकर योग करे सो जीवन्मुक्तहै। मैंने कहा प्रणव शब्दमात्रहै, प्रणवको लेकर मनको योग करना है,मनप्रणवको सिद्ध करनेवाला, प्रत्यक् चैतन्य आत्मा,स्वतःसिद्ध, जीवन्मुक्त है, योग करनेसे नहीं

जो कर्तव्य सिद्धहोता है सो अनित्यहै। पुनः मैंने कहा योगीका क्या स्वरूपहै याज्ञवल्क्यने कहा जिसने अहंकारको जलाकर उसीकी भस्म शरीरपर लगाईहै और मन परमेश्वरमें जोडाहै,सो योगीहै। मैंने कहा जब अहंकार भस्म हुआ तो जीव ईश्वर मन कहांहै ? जो जोडना होवे।परमेश्वरका स्वरूप क्याहै।याज्ञवल्क्यने कहा सत् चित् आनंदरूपहै, परंतु वास्तवसे अवाङ्मनस गोचर है। मैंने कहा जब सच्चिदानंद परमेश्वर आत्मा मन वाणीके अगोचर है तो मनका जोडनारूप योग कैसेहोगा ? किंतु किसी दृश्य अनित्य पदार्थोंमेंही मनका जुडाना नामरूप योग होता, परमेश्वरमें नहीं।

मन किसप्रकार वश होताहै ?

पराशरने कहा हे मैत्रेय। तब पतंजलिने कहा खाना पीना सोनादिव्यवहार अल्पकरनेसे इंद्रिय अपने वश होतेहैं पश्चात् योग होताहै।अगस्त्यने कहा खाने पीने सोनेसे इन्द्रियां वश नहींहोतीं, वरन् संसारमें सम्यक् मिथ्यात्व ज्ञानपूर्वक स्वस्वरूपके सम्यक् बोधसे इंद्रियें वश होतीहैं, अन्यथा नहीं। जैसे इंद्रजालद्वारा रचे जो स्त्री आदिक पदार्थहैं तिनके सम्यक् ज्ञाता पुरुषके इन्द्रिय,तिन पदार्थोंकी तर्फ भोगबुद्धिकर नहीं प्रवृत्त होते किंतुविलासपूर्वकहोते हैं,हे पतंजली। खाने आदिकोंके अभावसे तो रोगीकेभी इंद्रिय वश होते हैं परंतु पदार्थोंका सूक्ष्म राग बनारहता है और क्रोध अधिक हो जाता है। याज्ञवल्क्यने कहा तू निगुराहैतुझको कहना योग्य नहीं। परंतु मन योगसे शुद्ध होता है। मैंने कहा--गो नाम अज्ञान तत्कार्यकाहै, रूनाम प्रकाशकका है। इससे नाम रूप अज्ञान तत्कार्यको जो अपने स्वयंप्रकाशसे प्रकाशे,तिसकानाम गुरुहै तिस स्वयंप्रकाशका और कोई प्रकाशकहै नहीं, इससे मैं चैतन्य ठीकही निगुराहूँ। पुनः मैंने कहा दयालुहोकर कहो योगसे

मन कैसे शुद्ध होताहै। पतंजलिने कहा प्राणायाम करके, प्राणोंको रोके पीछे, अनाहत शब्द सुने। मैंने कहा यह करनेसे नहीं अनाहत शब्द आपसे आप होता रहताहै क्योंकि, अन्तर अवकाश रूप आकाशहै, तिसमें प्राणवायुका संचाररूप शब्द यत्न बिना हमेशह होता रहताहै। प्राणरूपवायुका संचाररूप, दश प्रकारका अनाहत शब्द तिस शब्दमें मनका जुडना वा न जुडना, तिन दोनोंको जो चैतन्य साक्षी, आत्मा जानता है सोई शुद्ध है, तिसको अपना आप जाननेसे ही मन शुद्ध होता है।

इतना कहकर फिर मैंने कहा कहो योगके वास्ते और क्या करना चाहिये? याज्ञवल्क्यने कहा जब गुरुशास्त्र अनुसार, प्राणायामका अभ्यास करते करते, सुषुम्ना नाडीद्वारा, प्राण दशवद्वार स्थित होवे, तब जिह्वाको लंबी कर तालुमें लगाके, प्राणोंको ऊप रही रोके, नीचे आने नहीं देवे, तब योगी अमृत पीता है। मैंने कहा हेविद्वान्! आपलोग विचारो कि, शीशमें कोई अमृत पडाहै नहीं केवल मिञ्झ, मज्जा, मांस, अस्थि, रुधिर है (यह सबको अनुभव है) शीशमें योगी अमृतपान कैसे करता है? हां प्राणके रुकनेसे अग्नि प्रज्वलित होतीहै, तिस अग्निके तेजसे मिंझ, मज्जा, मांस, पिघिल २कर शीशसे नीचे गिरता है, तिस अमृतको योगी पान करताहै। इससे भिन्न अमृत कोई अनुभवमें नहीं आता। याज्ञवल्क्यने कहा परमेश्वरका माराहो जो तुझसे वचन करे। मैंने कहा परमेश्वर और आपमें जो बीच अहंकारहै तिसका नाश करे सोई परमेश्वरका माराहै पर मैं तेरा चेलाहूँ मुझको त्याग मतकर। पर कहो तिससे आगे योगी किससे जुडे? याज्ञवल्क्यने कहा दशवां द्वार कैसा हैकि वहां सूर्य, चंद्रमा, बिजली, तारागण, बिनाहीप्रकाशहै और ईश्वरका वहांही निवास है तथा प्रकाशहै। मैंने कहा झूठ मत कहो दशवें द्वारमें प्रकाश कहां है? शीशमें तो अंधकारही है; यह बात

सबको अनुभवसिद्धहै। हे याज्ञवल्क्य! साक्षी आत्मा इस शरीर के नखशिख पर्वत पूर्ण है,इसीसे दशवें द्वारमें भी आत्माकाही प्रकाशहै,अन्यका नहीं इसीसे आत्मासेही दशवें द्वार तथा सर्व प्राणोंका न्यूनाधिक्य व्यवहार जाना जाता है। इतने काल प्राण मेरे दशवें द्वारमें स्थित रहता है, इतने काल, नहीं रहता इन विचारोंको आत्मा जानता है इससे आत्माही सर्वका प्रकाशकहै हे याज्ञवल्क्य ! जसे स्वप्नद्रष्टाकी प्राप्तिवास्ते स्वप्ननर प्राणायाम करके प्राणोंको दशव द्वार चढावे सो तिसकी मूर्खता है क्योंकि, स्वप्नदृष्टा स्वप्ननरका आत्मा है ।

योगका अधिकारी कौन है ?

अपने आत्माके ढूंढनेवास्ते क्रियारूप प्राणायाम योग करना नहीं,केवल विवेक द्वारा जाननाहीहै। जिसका चित्त अति स्थूलहै,विचार करनेमें असमर्थहै, तिसके वास्ते" स्थूलारुंधती" न्यायकर हठयोग है,अन्यके लिये नहीं । याज्ञवल्क्यने कहा योग सनातनहै, एक तेरे न माननेसे योगका खंडन नहीं होता मैंने कहा-जैसे और सब शास्त्र तथा पृथिवी,आप; तेज,वायु, आकाशादिक अज्ञानपूर्वक सनातनहैं,तैसेही योगशास्त्र भी संसार अंतःपातीहोनेसे सनातन है।इससे सर्व शास्त्रोंको तथा प्रत्यक्षादिप्रमाणोंको सिद्ध करनेवाला तथा सर्व दृश्यको सिद्ध करनेवाला आत्माही असली सनातन है अन्य नहीं।

सांख्य ।

पुनः कपिलदेव आये और कहा कि,जो स्वरूपको प्राप्तहुआ चाहे, तो नित्य अनित्यका विचारकरे। मैंने कहा हेकपिल! नित्य क्या और अनित्य क्या? कपिलने कहा-तीन गुणोंसे उत्पन्न होनेवाला शरीरसहित संसार अनित्यहै। तीन गुण अहंकारसेहैं जिससे यह सर्व प्रकाशमान हैं सो नित्यहै। प्रकृतिपुरुषके अविवेकसे बंध

है और विवेकसे मोक्ष है। पुरुषके सुख दुःखके भोगवास्ते प्रकृति स्वतंत्र जगत्को रचतीहै। पुरुष असंग है, अनेक हैं और चोवीस तत्त्व हैं। यह संक्षेपसे सांख्यशास्त्रका सिद्धांतहै। मैंने कहा हे कपिल! तेरा वचन सब ठीक है, परंतु पुरुष असंगको अनेकता तथा प्रकृतिको स्वतंत्रता, जगत्की रचकता यह ठीक नहीं। कपिलने कहा भिन्न भिन्न पुरुष नहीं माने तो एकके सुखसे सुखी और एकके दुःखसे दुःखी, सबको होना चाहिये? मैंने कहा जैसे एकही आकाश अनंत घटोंमें स्थित है, घृततैलादिक अनेक पदार्थ तिन घटोंमें पडे हें और सर्व मृत्तिकाके घटभी एक हैं, परंतु एक घटके फूटने तथा एक घटमें क्रिया होनेसे, सर्व घट फूटते तथा क्रियावान् नहीं होते, आकाश सर्व घटोंमें एकही असंग निर्विकार स्थित है। तैसे सत्से भिन्न, प्रकृति असत् जड है। जड पदार्थमें स्वतंत्र क्रिया होती नहीं, जैसे पुतलियोंमें स्वतंत्र चेष्टा होती नहीं। इससे चैतन्यके आभासयुक्तही प्रकृति जगत्को रचती है, स्वतंत्र नहीं। हे कपिल! सद्विचारसे देख पक्षपात न कर। सुखदुःखके संकारवास्तेही, असंग पुरुषको, अनेक माननाथा सो पूर्वोक्त प्रकारसे बनसक्ता है, तब तो असंग पुरुषको नाना मानना व्यर्थ है, कपिल चुप हुआ।

वेदांत।

व्यासने कहा एक अद्वितीय नारायण है, द्वैत नहीं। मैंने कहा एक है, तो दूसरा भी है। व्यासने कहा नारायणविषे दूसरा कहां है? स्वयंरूपहै। मैंने कहा दूसरा नहीं तो एक क्यों कहा? व्यासने कहा द्वैत अंगीकार विना वचन नहीं चलता। इससे तेरे कहनेसे ऐसा जाना जाताहै कि, मुख बंधही राखना भला है। मैंने कहा संत पदको वेद क्या जाने? क्योंकि वेद त्रिगुणरूप है और संत पद त्रिगुणातीत है, इससे कुछ कहो कुछ सुनो। व्यास भी चुपहुआ।

सिद्धांत।

तब ब्रह्माने कहा हे पराशर ! तूने आपको सबसे बडा मानाहै मल मूत्रका यह शरीर कालका ग्रासहै,जो जगत्की उत्पत्ति पालना संहार करतेहैं,वहभी अहंकार नहीं करते,क्योंकि चैतन्य पाल इस नामरूप जड मनादिक दृश्यसे,स्वतंत्र कोई कार्य नहीं होता। विद्या आदिकोंका अभिमानभी विद्वान् नहीं करते क्योंकि, एकदिन ज्वर ठाढ होवै,वा छिदामकी भांग पीनेसे,सर्व विद्या विस्मरण होजाती हैं वा कोईक औषधी सूंघनेसे सर्व विद्या नष्ट होजाती हैं।इन अनित्य पदार्थोंका क्या अभिमान करना है । अभिमान करे तो यह करे कि,मैंदेहादिक संघात नहीं, किन्तु "मैं अवाङ्मनसगोचर,सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस, प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंद स्वरूप हूँ" यही निरंतर चिन्तन करे।मैंने कहा हे ब्रह्मा।वास्तवसे विचारेतो,शुद्ध,अशुद्ध, अभिमान तुल्यही अनात्म धर्म है।जैसे सोनेकी वेडी और लोहेकी वेडी पुरुषके संसार निरोधमें,तथा दुःख देनेमें तुल्यही हैं,क्योंकि अभिमान किसी मायाके गुणके लिये देह अध्यासपूर्वक होता है । तुम अंतर्यामी होकर देखो ! मुझमें पराशरकी रेखमात्र भी नहीं । मैं स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ । मुझ साक्षी चैतन्यमें बडाई भी होवे तो छुटाई भी होनी चाहिये।यथार्थ वस्तुके निरूपणमें अभिमान और निरभिमानका क्या प्रयोजन है।हे ब्रह्मा। भ्रममात्र सिद्ध बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते, बन्ध मोक्षसे रहित मुझ चैतन्यमात्रको, योगादिक साधन किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं। यही मुझको वेशक अभिमानवत् अभिमान है, तुम सद्वक्ताहो, कहो । यह वात ठीक है कि, नहीं ? जैसे स्वप्नद्रष्टाका, सर्व स्वप्न प्रपंचसे रहित तथा स्वप्नके बन्ध मोक्षसे रहितता, तथा स्वप्नके जीवईश्वरकी कल्पनासे रहितता तथा निष्कर्तव्यताका चिन्तन ठीकहैकि,

नहीं ? तुम कहो। ब्रह्माने कहा-कहो ब्रह्मकारूप क्या है?मैंने कहा अन्तर बाहर जिसकर सर्व मनादिकोंका व्यवहार जाना जाताहै, तिसको ब्रह्म साक्षी चैतन्य कहते हैं,वा यह सर्व ब्रह्मही है। ब्रह्माने कहा जो दृश्यमान है सो नाशी है और ब्रह्म नाम रूपसे रहितहै, कैसे इसको ब्रह्म जानिये ? मैंने कहा हे ब्रह्मा! वस्तुके सम्यक् स्वरूप विचारे विना जो प्रतीत होवे सो भ्रममात्र जानिये. जैसे मधुरता,द्रवता,शीतलता रूप,जलके स्वरूप विचारे बिना,जोफेन बुद्बुदा तरंगादिकोंकी प्रतीति है,सो भ्रममात्रहै।तैसे अस्ति,भाति, प्रियरूप ब्रह्मकेस्वरूप विचारे विना,जो नामरूप संसारकी प्रतीति है सो भ्रममात्र है। इत्यादि मृत्तिका स्वर्णादिकोंके अनेक दृष्टांत हैं।भ्रमी पुरुषकी दृष्टि प्रमाण नहीं होती। ब्रह्माने कहा तूने देखा है?मैंने कहा मायासे लेकर देहपर्यंत सर्वको देखनेवाले मुझ ब्रह्मको कौन देखे ? क्योंकि,माया और मायाके मनदेहादिक कार्यदृश्य, अपने द्रष्टाको देख नहीं सक्ते क्योंकि इस साक्षी चैतन्यके पृथक् और कोई द्रष्टाहै नहीं। इससे इस ब्रह्म चैतन्यको कौन देखे स्वयंप्रकाश है। जैसे सूर्य सर्वको प्रकाशता है, परन्तु सूर्यको कोई प्रकाश्य पदार्थ प्रकाशता नहीं।

ब्रह्माने कहा भजन कर ? मैंने कहा भजनका रूपक्याहै?ब्रह्माने कहा-आप सहित सर्व भगवद्रूप जाननाभजन है परंतु तू वर्णाश्रममें तथा शुभ अशुभमें तथा इंद्रियोंके विषयोंमें बंध है, भजनका रहस्य क्योंकर देखे ? मैंने कहा यह सर्व दृश्य मुझ चैतन्य कर बँधा हुआ है, मैं चैतन्य इनकर बँधाहुआ नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टाकर सर्व स्वप्नपदार्थ बांधेहुये हैं। ब्रह्माने कहा हेपराशर! जिससमय तू कर्मसे निष्कर्महोवेगा, सर्व आशासे निराश होकर आत्मविचारके सम्यक् सन्मुख होवेगा, तब देवता शोकवान् होवेंगे क्योंकि देह

अभिमानीही देवतोंकापशु है। देह अभिमान रहित सम्यक् विद्वान् पुरुष देवतोंका गुरु नाम आत्मा होता है। उससे काल भी कांपता है क्योंकि आत्माविद्वान् पुरुष कालकाभी काल होताहै। मैंने कहा जो आशामें बँधाहुआ है सो निराश होवे, मैं चैतन्य सर्व दृश्यरूप आशासे नित्य मुक्त हूँ।

निर्वाणवैराग्य।

ब्रह्माने कहा आपा अहंकारको त्याग और निर्वाणवैराग्य कर, जो शांतिमान् होवे। मैंनेकहा निर्वाणवैराग्यका क्या रूप है? ब्रह्माने कहा-वाण नाम देहादिकोंका है "मैं देह मनादिक यह संघातनहीं किन्तु मैं चैतन्य इन देह मनादिक संघातका साक्षी हूँ" इस सम्यक् निश्चयका नाम निर्वाणवैराग्य है मैंने कहा हे ब्रह्मा। जो पूर्व तुमने भजनका रूप कहा था कि "आप सहित सर्वगोविंद है" सोई मैं भजन करता हूँ। ब्रह्माने कहा जब सर्व गोविंद है तब तू कौन है? मैंने कहा जब सर्व गोविंद है तो मैं भीगोविंद हूँ। ब्रह्माने कहा गोविंद स्वयंप्रकाशरूप है, मैं तू कहां है मैंने कहा जब सर्वगोविंद है, तब मैं तूभी गोविंदही हैं। हेब्रह्मा। मैं पराशर नहीं हूँ ब्रह्माने कहा जब तूं नहीं तो भजनसे क्या प्रयोजन रखता है? मैंने कहा आपको जानता नहीं सुनकर कहता हूँ कि जीव हूँ। ब्रह्माने कहा जब आपको नहीं जानता तो जीव, ईश्वर, कैसे थापा? इससे यह जानाजाता है कि, जीव ईश्वरको तुझ चैतन्यने सिद्धकियाहै। मैंने कहा जो मैं भगवान् चैतन्य हूँ तो आपको क्यों नहीं जानता? ब्रह्मानेकहाजाननेका तुझमें मार्गनहीं क्योंकि, जो तूहीहैतो किसको जाने? कौन है जो तुझको जाने? तू स्वयंप्रकाशहै। जब तुझेको यह निश्चयहुआ तो आवागमनसे मुक्त हुआ। सर्व कर्म कर तिनविषे अहंकार मत कर आपसहित सर्व गोविंद जान और सर्व चाहनासे

अचाह हो। गोविंद भी कहां है? जो मुझ चैतन्यको अपना आत्मा जानता है सो अचिंत्य मेरा रूप होता है। हे पराशर! आप कुछ मतकर, करने अकरनेको देखता रह।

विष्णु आये।

पुनः विष्णु आये और कहा हे ब्रह्मा! मैंने अपनेरूपको नहीं देखा, कहो रूप मेरा क्या है? ब्रह्माने कहा रूप तेरा शिव है, तुझको कौन देखे? तुझविना कुछ नहीं। मैं चुपकर बैठा था। विष्णुने कहा हे पराशर! तू चिंता मतकर। ब्रह्माने कहा हे विष्णु! पराशर तूने अकार्थ माना है, सर्व तूही है तो पराशर कहां है? विष्णु हँसा और कहा हे ब्रह्मा! जो सर्व मैं हूँ तो पराशर भी मैंही हूँ, तुझको पराशर और मैं दो भासते हैं। जानता हूँ तेरा द्वैतभेद गया नहीं। ब्रह्माने कहा जब सब तूही है, द्वैतभेद भी तूही है, तुझको लज्जा नहीं आती जो अपनेमें अपना देखता है; जैसे स्वप्नद्रष्टा कल्पित स्वप्नभेदकर अपनेमें भेद नहीं मानता। विष्णुने कहा लज्जा तो करूं तब जो द्वैत राखूं, जब सर्व मैंही हूँ तो लज्जा किससे करूं? ब्रह्मा चुप हुआ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तू भी सत् है कुछ कह। मैत्रेयने कहा सर्व मैंही चैतन्य कहताहूँ, सुनता हूँ, देखताहूँ, देता लेताहूँ सर्वरूप मेराहै, स्वप्नद्रष्टावत्। कहो मुझ चैतन्यसे भिन्न वह कर्ता कौन है, जो कथन करे? पराशरने कहा तुझको मूर्ख कहा चाहिये जो तू एक कर्ता है तो भेद क्यों किया? मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्यमें भेद अभेदका मार्ग नहीं तेरे वचनका उत्तर दिया है।

ब्रह्मयज्ञ।

पराशरने कहा ब्रह्मयज्ञ! सुन, मैंने कहा हे विष्णु! तू भजन किसका करता है? विष्णुने कहा—ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत, सर्वका स्वरूप सत्, चित्, आनंद आत्मा है, सो स्वतः बंधमोक्षरूपी सुख

दुःखसे रहित,अजन्मा व्यापक अद्वितीय मैं हूँ--यह दृढ निश्चयही भजन करनाहै । वा मन वाणी शरीरकर जो कुछ प्रवृत्ति निवृत्ति करनी है,सो सुखकी प्राप्ति वास्ते और दुःखकी निवृत्ति वास्ते हैसो सुखकी प्राप्तिरूप और दुःखकी निवृत्तिरूप,पूर्वोक्त आत्मा स्वतः सिद्ध नित्य सर्वको प्राप्त है । भजन करनेसे वा कोई और प्रवृत्ति निवृत्ति करनेसे प्राप्त नहीं होता। इससे अपनेसे भिन्नका भजन करना भ्रममात्र है । यह स्वयंप्रकाश है, भजन त्रिपुटीमें होता है मैं चैतन्य त्रिपुटीसे रहित हूँ; क्योंकि त्रिपुटीरूप भजनका द्रष्टाहै मुझ द्रष्टाका द्रष्टाहै नहीं;जैसे स्वप्नद्रष्टाको,सुख दुःखादि स्वप्नपदार्थोंकी निवृत्ति वास्ते,किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं।जो मुझको अपने आत्मासे भिन्न जान मेरी उपासना करता है सो निजस्वरूप ज्ञानसे भ्रष्टहै, क्योंकि उपासना करनेवालेका मैं आत्मा हूँ।

शिव आये (शिवके विष खानेका आशय)

पुनः शिव आये और कहा ब्रह्मा, विष्णु,पराशरादि हैंही नहीं मैं चैतन्य अद्वितीय शिव हूँ । विष्णुने कहा जो सर्व शिव है, तो विष्णु भी शिव है । शिवने कहा विष्णु विश्वको कहते हैं मेरे विषे विश्व कहां है ? मैं निर्मल हूँ । विष्णुने कहा विश्वको जो अपना स्वरूप जाने वही शिव है । शिवने कहा ऐसी विचाररूपी निर्मल विष खाई है कि तुझ विष्णुरूप विश्वको विचाररूप विषके साथ मिलाकर निगल गया हूँ । सारांश यह कि; अपने चैतन्यस्वरूपमें विश्वका अत्यंताभाव अनुभव करता हूँ। विश्वविषे विश्वपना कहाँहै ? शिव है । जैसे-सुवर्णज्ञाता पुरुषको भूषणोंविषे भूषणपना कहाँ है ? सुवर्णही है । विष्णुने कहा विष्णुविषे शिव हैही नहीं क्योंकि शिव नाम आनंदका है, विष्णुविषे सुख दुःख दोनों नहीं । ब्रह्माने कहा विष्णुपना तथा शिवपना मुझ चैतन्य ब्रह्मस्वरूपमें दोनों नहीं । प्रगट है कि, सर्वके

आदि ब्रह्म है, विष्णु शिवादिक मुझ चैतन्यसे प्रकाश रखते हैं, मुझ अवाङ्मनसगोचर साक्षी चैतन्यविषे पूर्णापूर्ण तथा भेदअभेद दोनों नहीं। ब्रह्माने कहा मैं सर्वसे अतीत हूँ यहभी भूलकर कहाहै। नहीं तो अतीत किससे हूँ सर्वसे अतीत भी सर्व मैंही हूँ जैसे स्वप्नद्रष्टा कहे मैं स्वप्नप्रपंचसे अतीतहूँ परन्तु स्वप्नद्रष्टाही सर्वरूपहै अन्य वस्तुका अभाव होनेसे। शिवने कहा हे विष्णु! रूप अपना कहो। विष्णुने कहा किसको कहूँ! मुझ चैतन्यसे भिन्न सर्व दृश्यजात जड है श्रोता कोई नहीं, पर कहताहूँ जो यह दृश्यमान है सर्व मैं हूँ। शिवने कहा जो दृश्य है सो नाशी है। विष्णुने कहा अस्ति भाति प्रियसे भिन्न दृश्य कहां है? जो नाशी होवे। मैंही सर्वते अतीतही हूँ और सर्वरूपभी मैंही हूँ,जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नप्रपंचसे अतीतभी है और सर्व स्वप्नप्रपंचरूपभी है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! मनको सचेत कर सुनो मैत्रेयने कहा-मन कहां हैजो सचेत करूँ! शिव है। पराशरने कहा चित्तविना चैतन्य कैसे कहेगा? मैत्रेयने कहा जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नमें चित्त बिना चिंतन करता है, वाणी बिना कहता है,तात्पर्य यह कि, संघात बिना संघातका व्यवहार करता है, तैसे मैं चैतन्य चित्त वाणी बिना सर्व व्यवहार करताहूँ। इससे वास्तव अचिंतभी माया-कर सचिंत हूँ,सचिंतभी वास्तव आचिंत हूँ। शिवने कहा माया रूप विश्वसे रहित तुम्हारे स्वरूपका स्वरूप क्या है? विष्णु चुप हुये क्योंकि, मायासे रहित अवाङ्मनसगोचर पदमें वचनका अवसर नहीं।

शिवने कहा हे विश्वरूप! बोलना न बोलना निजस्वरूपमें तुल्य है, परन्तु वचनसे संशय नाश होता है, जो संशयसे छूटा है वही मौनी है। विष्णुने कहा सत् तुमने कहा है, पर क्या कहूँ बुद्धि नहीं रही। शिवने कहा जिसने शरीर वाणी को स्थिर कररक्खा है

और मन स्थिर नहीं किया तो मौनी होना निष्फलहै। मन,आत्मबोधसे, वा पदार्थोंमें दोषदृष्टिके विचारसे,वा योगसे वा किसी अन्य विचार साधनसे स्थिरहै अर्थात् संघातविषे अहं नहींकरता और शरीर वाणीसे लौकिक शास्त्रीय व्यवहार करताहैतिसकोभी मौन होना निष्फलहै, क्योकि तिस विज्ञानीकेवचनसे अनेक जीव कल्याणको पातेहैं और मौनी पुरुष दूसरे वास्ते भीततुल्यहै उपदेश विना कल्याण सम्यक् होतानहीं इससे विद्वानोंको मौन, अमौन तुल्यहै। विष्णुने कहा सत्य कहा है। प्रथम जिज्ञासूको योग्यहै कि,ज्ञानका मुख्य साधन विद्वानों(संग मिलकर)आत्मविचार करे। जब स्वरूप जानेगा तब मन स्थिर होगा। विना विचार स्वरूपप्रकाश नही होता। इससे मुमुक्षुको तूष्णी होकर प्रथम विचार करना भलाहै। शिवने कहा जब आप चैतन्य स्वरूप हैं तो कर्तव्य करनेसे क्या प्रयोजन है। क्योकि, चैतन्यरूप परमात्माकी प्राप्ति वास्तेही सब साधनहैं वाक् इन्द्रियकावचनकरना धर्महै वाक्इन्द्रिय केवल भजन वास्ते प्रगटहुईहै, वा भ्रमके निवृत्तिद्वारा निज चित् सुख नित्य आत्माके दर्शनवास्ते,सम्यक् आत्मदर्शी पुरुषोंके आगे, प्रश्नवास्ते प्रगटहुईहै। भजनसे अंतःकरणकी शुद्धि होतीहै, अंतःकरणकी शुद्धि विना ज्ञान नही होता, ज्ञान विना सुख नहीं। इससे हे मित्रो। आपा त्यागकर भजन गोविंदका करो जो आवागमनसे छूटो। ग्रहण त्याग बुद्धि केवल दुःखहै। जिह्वा जो मुखमें चामका टुकडा है, भजन विना राखनी योग्य नहीं। चाहनासे अचाह होकर भजन करो क्योकि, शरीर स्वप्नके समान क्षणभंगुरहै और भजन संसारसे तारनेकी नौका है। यदि पूंछो भजन क्या ? तो "आप सहित सर्व हरिहै वा मैं परिच्छिन्ननही" पीछे जो शेष रहा सो अवाच्यपदहै,वही सर्वका स्वरूप है इस निश्चयहीका नाम मुख्य भजन है। विष्णुने कहा गोविंद जिह्वासे उच्चारण करना, इसीका नाम भजन है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञव्याख्या।

शिवने कहा हे विष्णु! क्षेत्र कौन है? विष्णुने कहा जो सुख व्यापक चैतन्य क्षेत्रज्ञसे आपको भिन्न मानता है वही क्षेत्र है। शिवने कहा भिन्न क्या? विष्णुने कहा यही भिन्नहै कि, आप व्यापक चैतन्यहै विष्णु और कहता है "मैं देहवान्, वर्णी, आश्रमीहूँ"

विष्णुने कहा हे पराशर! कहो तेरा निश्चय क्याहै? मैंने कहा क्या कहूँ, निश्चय बुद्धिसे होता है, मैं चैतन्य बुद्धिसे रहित बुद्धिका साक्षी हूँ; पर जो तुम कहो सोई निश्चय करूं। विष्णुने कहा तू निर्लज्ज है, तुझको कहना योग्य नहीं। मैंने कहा शरीरके पहरावसे नग्नहूँ; इसीते निर्लज्ज हूँ। हे विष्णु! रूप तुम्हारा क्या है? विष्णुने कहा शिव। मैंने कहा हे शिव! रूप तुम्हारा क्याहै? शिवने कहा विष्णु। अगस्त्यने कहा नशिव न विष्णु आपसे आप अवाच्यपदहूँ। हे मैत्रेय! तिस सभामें यही निश्चय हुआ कि; आत्माविना और कुछ नहीं। तूभी शरीरके पहरावेसे नग्न हो। मैत्रेयने कहा मैं तो हैही नहीं तो नग्न होऊँ क्या? मनकल्पित नवीनबनतेही नग्न होनाहै पर कहो नग्न किसको कहते हैं? पराशरने कहा वही नग्न है जो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरके पहरावेसे तथा सर्व पदोंसे मुक्त है। मैत्रेयने कहा तू सबसे बडा भासता है, मानो दूसरा ब्रह्माहै। पराशरने कहा द्वैत अद्वैतसे रहित स्वयं हूँ। ब्रह्मा विष्णुके देहसे लेकर सर्व नामरूप विकारको मैंने उत्पन्न किया है; परंतु मैं विकारी नहीं होता; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नविकारको अविद्यारूप निद्रासे उत्पन्न करता है परंतु आप विकारी नहीं होता।

अतीत अर्थात् भेषधारियोंके विषयमें।

हे मैत्रेय! तू अतीत हो जो सुखी होवे। मैत्रेयने कहा अतीत होनेकामार्ग बतावो? पराशरने कहा वस्त्र उतार दे और रे

दाढीको मुंडाडाल, सब कहेंगे मैत्रेय बडा परमहंस सिद्ध है, तेरी कृपासे मेरा नामभी चलेगा। हे मैत्रेय ! किसी अतीतसे पूछिये "तू किससे अतीत हुआहै कहेगा गृहस्थसे"। पूछिये "गोविंदके मिलनेका मार्ग कौनहै? तो कहेगा भक्ति"। पुनः पूछे "भक्ति क्या है?कहेगा रामनाम भजन करना" पुनःपूछे "रामनामका स्वरूप क्या ? तो कहेगा चल लंडी नामका स्वरूप ऐसे नहीं बताया जाता, गुरुनकी बारावर्ष सेवाकर" हे मैत्रेय! तूभी लंबी माला लेकर भजन कर और राजा बाबुओंको चिता, स्वांग विरक्तताका धारण कर निज भोगोंके लिये वैद्यकके बहानेसे द्रव्य इकट्टा कर अपनी भेषवृद्धिके वास्ते यत्नकर और जगत्के ठगने वास्ते अतीतोंकी मंडली बाँधकर विचर।

सच्चे वैरागीका स्वरूप।

हे मैत्रेय। सच्चे दिलसे अतीत हो, इस लोक परलोकके भोगोंकी इच्छाको त्याग, शरीररूप पहरावेसे नग्न हो और कुछ मतकर।रक्षा तेरी इसीमें है। मैत्रेयने कहा भक्तिका रूप कहो। पराशरने कहा "आप सहित वासुदेव जानना सर्वमनादिकमायापर्यन्तसर्वको अपनीदृश्य जाननी और आपको द्रष्टा जानना, सो द्रष्टा आत्मा, एकरस, निर्विकार, नित्य, मुक्त, चैतन्य, आनंदस्वरूपहै, कालसे रहितहै तिस आत्माको जो अपना रूपजाननाहै सोई भक्तिहै" सोईकालके भयसे रहित होनाहै। जो कालके भयसे रहितहै तिसका सुख रसनासे नहीं कहा जाता क्योंकि सर्व जगत् कालके भयसेहै, अकाल वस्तुको अपना स्वरूप जानेबिना कालका भय दूरनहीं होता। हे मैत्रेय। अपरोक्षसे तथा विद्यत अविद्यतमनके धर्मोंसे तथा सर्व देहादिक संघातसे भिन्न आपको जानना अथवा स्वयंप्रकाशस्वरूप आपको जानना, यही अतीतहोनाहै, कोई स्वांग बदलनेका तथा रोमकटानेका नाम अतीतनहीं।यह अनेकता जो भासतीहै सो

भी अपना स्वरूपही जान,क्योंकि जो आदि अंत होता है, सोई मध्यमें भी वही होताहै । जो आदि अंत नहीं होता,सो मध्यमें भी नहीं होता । इससे अपने स्वरूपमें तो अनेकता किसी कालमें भी नहीं, जो है तो वही रूप है, जैसे स्वप्न द्रष्टामें, अनेकता आदि अंत नहीं,मध्यमें अर्थात् स्वप्नकालमें जो अनेकता भासतीहै सो स्वप्नद्रष्टारूपहीहै, प्रत्यक् नहीं। ऐसा अपने स्वरूपका सम्यक् दृढ जिसको निश्चयहै वही पुरुष सर्व कायिक,वाचिक,मानसिक व्यवहार करताभी अकर्ता है । स्वरूपसे अकर्ताभी मायारूप उपाधिकर सर्व कर्ता है। जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वरूपसे अकर्ता असंगभी निद्रारूप अविद्या कर सर्व करता है । सर्वकरताभी अकरताहै । हे मैत्रेय! वही नग्नहै,जो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर रूप वस्त्रों के अभिमानसे नग्न है,यह सब तुझसे प्रगट हुयेहैं,नहीं तो कहां हैं ? तूनेही बंध, मोक्ष,ज्ञान् अज्ञानादि प्रपंचकी कल्पनाकी है,आपहीको तिनमें बध्यमान हुआ है सोभी कबतक ? जबतक तूने आपको नहीं खोजा,जैसे नट अपनेको सम्यक् जानताहुआ अनेक स्वांग करता हुआभी बंधमान नहीं होता हे मूर्ख! भली प्रकार देख जो तुझ विना यह नाम रूपजगत् कुछ नहीं,जैसे सुवर्णसे विना भूषण कुछ नहीं। हे मैत्रेय । कहनां मेरा अकार्थ है क्योंकि,तुझको निश्चय नहीं। वचन मेरा अद्वितीयहै जो अद्वितीय होवे तिसको ही मेरे वचनोंका सुख है, अन्यको नहीं। मैत्रेयने कहा--निश्चय अनिश्चय बुद्धिका धर्म है और मैं मन बुद्धिसे परे हूँ।पराशरनेकहा श्वानके समान असत् विषे बंधहै,तुझको क्या सुख-है मैं मूर्खोंके ठगने वास्ते नहींहूँ। मैत्रेयनेकहा-मैं पूर्ण हूँ इसीसे मैं असत्में भी पूर्ण हूँ । मैत्रेयनेकहा उपदेश करो । पराशरने कहा-यही उपदेश है "न तू, न मैं,यह जगत् एक अद्वितीय आत्मा मैं हूँ वा सर्व नामरूप जगत् अस्ति भाति प्रियरूप मैंही आत्माहूँ" हे मैत्रेय । ।

परमार्थ जाना है-वे मौन हुयेहैं, पर मौन होना यहीहै कि आपको मन वाणीसे परे सम्यक् जानना वा "मौन अमौन" में आपको निर्विकार एकरस चैतन्य मात्र जानना।वेद और संत सत्य कहते हैं कि, सर्व नारायण है मैत्रेयने कहा--नारायण कोई छिपा हुआ नहीं क्योंकि, सर्वके हृदयविषे,मनादिकोंके साक्षीरूपसे प्रगट है जो साक्षी,चैतन्य, नित्य, आनंदस्वरूप, आत्मासे नारायणको भिन्न मानतेहैं,मानो वे नारायणके घातक हैं क्योंकि, सत् चित, आनंदसे भिन्न, नारायण, असत् जड दुःखरूप होगा । पराशरनेकहा-हे मैत्रेय । आत्मारूप नारायणविषे जाननेका मार्ग नहीं है, इसीसे छिपाहुआ है । इसीहेतु भजन गोविंदका कर। भजन पूछे क्या है तो "आपसहित सर्व हरिहै" इस भजनको निरंतर चिंतन कर क्योंकि जीवना श्वास मात्र है जबतक श्वास है तब-तक सब वस्तु अपनी हैं नहीं तो सब स्वप्न समान है। चाहनाते अचाह हो और प्रसन्न रह। देखो जगत्का राजा मुआ क्या साथ लेगया। इससे देहाभिमान त्याग और चाहना से निर्भय हो। जो प्रारब्ध है सो अमिट है, चाहना करै अथवा न करै । हे मैत्रेय। जिस शरीरकी प्रारब्ध है तिसने तो कभी चिंता करी नहीं तू काहेको चिंता करता है । इससे अचिंत होकर भजन कर कि, मैं परिच्छिन्न नहीं तो तू और जगत् कहां है? मैत्रेयने कहा-भजन कैसे करूं? मन भजनका मार्ग रोकता है,कहा नहीं मानता।पराशरने कहा-तू इसीसे पाखंडी है कि, मनके कहे चलता है । विचारे मन कुछ वस्तु नहीं जो तुझको रोके । पर कहो मनका रूप क्या है? मैत्रेयने कहा-रूप मनका नहीं देखा।पराशरने कहा-हेमूर्ख! जिसका रूप नहीं देखा सो तुझे क्या करैगा? जैसे आकाश रूपरहित होनेसे किसीको रोकता नहीं पर जान कि संकल्प विकल्प मनका रूप है

तू आपको संकल्प विकल्पका साक्षी जान, यही परमभजनहै। हे मैत्रेय! मैने तुझको अनेक रीतिसे उपदेश कियाहे जब तू आप न विचारेगा तोस्वरूपका जानना कैसे होगा? इसीपर एक इतिहास सुन।

एकसंशयात्मक ब्राह्मणतपस्वीकी कथा।

एक ब्राह्मणनेविष्णुका अतिदारुण तप किया और विष्णुने दर्शन दिया और कहा हे ब्राह्मण! मैं विष्णु व्यापक, चैतन्य ,तेरे हृदय विषे,साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप हूँ, मुझ व्यापक विष्णुको अपने आत्मासे भिन्न मतजान।यह दुःख तपस्याका मुझको मतदे क्योंकि, अंतर बाहर मेंहीहूँ, मुझको अपना आत्माजान। अपने आत्माको मुझको जान, जैसे घटाकाश आपको महाकाशरूप जानना और महाकाश सर्वघटाकाशोंको अपना स्वरूप जानताहै यह वाक्यसुनकर ब्राह्मणने मनमें विचारा कि, यह कोई भजनमें विघ्न करनेवाला देवतोंका दूतहै, यह विचारकर बोला कि, मैमूर्ख नहींहूं, जो तेरे कपटमे निश्चयका त्याग करूं, जहांसे आयाहै, तहां चलाजा; नही तो तप अग्निसे तुझको भस्म करदूंगा। विष्णुने कह सुन, जब अपने कर्मसे आप न फिरे, तबतक कहना गुरुशास्त्रका व्यर्थहै। विष्णुयह बात कहकर चलेगये।

हे मैत्रेय! आपको पहचान अपने कार्यका करता आपहै अन्य नही।

कच तथा बृहस्पतिका संवाद।

हे मैत्रेय! एक समय कचने बृहस्पति पितासे पूछा कि, हेपिता! सर्व विद्यामें मैं कुशलहूँ, पर यह नही जानता कि,मैं कौन हूँ? बृहस्पतिनेकहा यह सर्व नाम रूप, दृश्य जगत्, तुझ चैतन्यसेही प्रकाशमान है और तू साक्षी चैतन्यस्वयंप्रकाश अविनाशीहै।

हे पुत्र! अन्नमयादिक पंचकोशरूप देहतेरा स्वरूप नहीं, यह पृथिवी आदिक पंचभूतोंका विकाररूपहै। तू चैतन्य निर्विकारहै क्योंकि, जन्म नाशादि विकारोंका तू साक्षीहै। हेपुत्र! सर्व दृश्यकी प्रतिष्ठातू भूमा सुखरूपहै, जैसे सर्व स्वप्नप्रपंचका स्वप्नद्रष्टाही प्रतिष्ठा है।

पक्षियोंके आत्मनिरूपणकी कथा।

(कच तथा बृहस्पति संवादान्तर्गत)

इसीपर एक कथा सुन? हंस अवतारने पक्षियोंको ज्ञान उपदेश कियाथा, सो परंपरा ज्ञानसंप्रदायरीतिसे चली आतीहै। सोई ज्ञान एकसमय सारस पक्षीने अपनी बोलीमें अपनी स्त्रीको ज्ञानउपदेश किया। सारसने कहा हे रूप! मेरेयहजो अनेकप्रकारकादृश्यमान जगत्‌है केवल नाशी और मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्याहै विचारे विना प्रतीत होताहै। तेरा स्वरूप इस दृश्यमानसे परे नाम भिन्नहै। स्त्रीने कहा हे प्रभो! दृश्यमानतो नाशीहै और द्रष्टा इन्द्रियोंसे अगोचर है, पर निश्चय कैसे करिये? सारसने कहा हे रूप! मेरे यह साक्षी आत्मा मन वाणीसेअगोचर होनेपर भी मन वाणीके साक्षीरूपसे प्रगटहै छिपानहीं। पर निश्चय तब हो जब दृष्टि मूलपर पडे, जैसे पत्र फूल फल मूलके अंतर्भूतहैं। स्त्रीने कहा सो मूल कौनहै? सारसने कहा "मूल कौनहै। इस मनके चिंतनको तथा कथनको जिसने जाना वही मूलहै" स्त्रीने कहा सो तो मैंहूं, पर नहीं जानती कि कौन हूं! सारसने कहा सत्, चित्, आनंद, तेरा रूपहै। स्त्री सुनकर हँसी और कहा हे निर्बुद्धि! यह सर्व लक्षण द्वैतसे मिलेहुयेहैं क्योंकि, सत् तब कहिये जब असत् होवे चैतन्य तब हो जब जड हो और आनंद तब हो जब दुःख होवे, सो मैं इन पदोंसे मुक्त हूँ। अवाङ्मनसगोचर मेरे स्वरूपमें, सत्, चित्, आनंद; यह क्यों कल्पताहै? पर कहो रूप मेरा क्या है?

गरुड़।

पुनः गरुड आया और कहा सर्व जगत्विषे एक विष्णुही है द्वैत नहीं। सारसने कहा जो केवल विष्णुही है,तो जगत्कहां है? परन्तु हमको क्या लाभ है दूसरेके धनसे? गरुडने कहा जब सर्व विष्णु है, तो तूं भी विष्णु है। सारसने कहा इस तेरे वचनको मेरी स्त्री प्रतीत न करेगी। गरुडने कहा तेरी स्त्री स्वरूपसे अप्राप्त है। "एक दो कहां है? और विष्णुंही सर्वहै" ऐसे कथन चिंतन करता है, पर अपनें साक्षी चैतन्य आत्मासे विष्णुको भिन्न मानता है, तब मानो विष्णुका घाती है क्योंकि, आत्मासे पृथक् अनात्मा है। इससे विष्णुको अपने आत्मासे अभेद जानना, कथनसे अद्वितीयपना नहीं सिद्ध होता। सारसने कहा जब सर्व विष्णु है, तो आपको आप कहे तो क्या हानि है? गरुडने कहा मेरा वचन ज्ञानियों प्रति है, अज्ञानी प्रति नहीं। सारसने कहा-अबतक तेरी द्वैतदृष्टि नहीं गई, यह अस्ति भाति प्रिय रूप विष्णु चैतन्य आत्माही है, द्वैत नहीं तो ज्ञानी मूढ कहां है? तुझको मूलकी अप्राप्ति है और मलीनताविषे बंध है।

काकभुशुण्ड।

एतेमें कागभुशुण्ड आया और कहा ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत एक रामहीहै। गरुडने कहा जब रामही है तब तू कौन है?भुशुण्डने कहा मैं रामका दासहूँ गरुडने कहा तब राम पूर्ण न हुआ क्योंकि, आदि अंत मध्य जब राम है तथा अंतर बाहर परोक्ष अपरोक्ष सर्व रामही है, तब तूने अकार्थ आपको दास मानाहै?भुशुंडने यह वचनसुनकर मनमें विचारा और खोजा कि, जो कुछ मैंने पूर्ण राम विषे अहंकार कर आपको माना है, सो मैं नहीं क्योंकि, मानना केवल मनका मननहै,जैसे स्वप्नमेंस्वप्नद्रष्टासे जो कुछ पृथक्मानना

है, सो भ्रम है, जैसे स्वर्णसे पृथक् कुछ भूपणोंकी सत्ता मानना है सो केवल भ्रम है। इससे जब सर्व राम है तो मैं जुदा कहाँहूं? मैंभी रामहूँ। ऐसे विचार कर कहा हे गरुड !मुझहीको रामकहते हैं, एक अद्वितीय राममें दास स्वामी भाव मानना केवल भूल है। गरुडने कहा अभी विष्णुको जाकर कहूँ कि, काकभुशुंड तेरी आज्ञासे बाहर हुआ है, "कहता है मैं विष्णुहूँ" । काकभुशुंडने कहा जो मैंने कहा है उसमें फर्क नहीं, जैसे घटाकाश यह कथन चिंतन करे कि, मैं महाकाश स्वरूप हूँ, तो ठीकही है।

हंस।

पुनः हंस आया और कहा "शुद्ध चैतन्य मैं ब्रह्मस्वरूपहूँ" भुशुंडने कहा हे गरुड! देख यह क्या कहता है कि, मैं ब्रह्म हूँ; जो मैंने कहा कि, मैं विष्णुरूपहूँ तो क्या भय है? अचिंत्य आपसे आप विष्णु है । गरुडने कहा जो मैं प्रभुके सन्मुख हंसको लेके कहूँ, कि यह हंस कहता है मैं ब्रह्महूँ, तो तूं साक्षी कैसे देवेगा? भुशुंडने कहा यह कहूँगा हे विष्णु ! तूने मुझ चैतन्यसे प्रकाश पाया है।

मयूर।

पुनः मयूर आया और कहा "सर्व जगत विषे प्रकाश मेरा है मैं स्वयंप्रकाशमान हूं" । भुशुंडने कहा हे मयूर! ऐसे मत कह, सर्व रामरूप है। मयूरने कहा-राम तेरा किस ठौरमें है ? भुशुंडने कहा मेरा सर्व ठौरमें है । गरुडने कहा जो राम एक ठौरमें है तो तूने उसमें त्रिपुटी किया। आत्मामें द्रष्टा दृश्य दर्शन तीनों नहीं। मोरने कहा हे गरुड! तुझको अपने स्वरूपकी अप्राप्ति है, जब सर्व रामहै तो त्रिपुटीभी राम है; जैसे स्वप्नकी त्रिपुटी स्वप्नद्रष्टारूपहै। भुशुंडने कहा हे मयूर! राम एक है कि दो ? मयूरने कहा हे बुद्धिखोय। जब सर्वराम है तो एक और दो क्या?

कुलंग ।

पुनः कुलंगने आकर कहा हे मयूर। जब तक तू त्रिगुणरूप प्रणवको नहीं त्यागता,तबतक तुझको सुख न होगा क्योकि, आत्मा प्रणवसे परे है। मयूरने कहा जो विचाररहित है सो ग्रहण त्यागकी इच्छा करते हैं जैसे मृगतृष्णाके जलको न जानकेही जलपानकी इच्छा करता है। हेकुलंग! कल्पितके अधिष्ठानके ज्ञाता पुरुष कल्पित पदार्थोंमें ग्रहण त्यागबुद्धि नहीं करते क्योकि, जो मूलसे कुछ है ही नहीं,तो किस वस्तुका ग्रहण त्याग करिये। हे कुलंग। जो मैंही हूँ, तो ग्रहण त्याग मुझमें अविद्यासे है प्रणव मुझ चैतन्य कर सिद्ध होता है,इसीसे दृश्य है। इससे रसना प्रणवका जप करो वा न करो,मुझ चैतन्यको हानि लाभ नहीं। हे कुलंग। जब तू स्वरूपको जानेगा तब तेरा ग्रहण त्यागका भ्रम दूर होगा; विचार कर देख। वक्ता श्रोतादिक आपही है। सारसने कहा हे मयूर! तुझको आत्मबोधकी अप्राप्ति न होती तो तुझको कैसे भासती कि कुलंगने कहा है। हंसने कहा हे सारस। तू भी आत्मबोधसे अप्राप्त न होता तो इनको आत्मबोधसे रहित क्यों कहता? सारस तूष्णीं हुआ। गरुडने कहा हे हंस! तू कह तूने स्वरूप देखा (जाना) है कि नही? देखा नाम जाना है तोभी कह और न जानाहै तोभी कह। हंसने कहा हे अंध! प्रगट तुझको स्वरूप ज्ञान नहीं क्योंकि, अपना आत्मस्वरूप जानने न जाननेसे परे है। न जानना रूप अज्ञान और जानना वृत्ति ज्ञानभी मायारूप है, वा मायाका कार्य रूप है। आत्मा, माया और मायाके विकारसे परे नाम भिन्न है; जानना न जानना आत्मामें कैसे होवे? जानना न जानना दूसरेमें होताहै। आत्मा तो जाननेवाले जीवका, तथा जानना न जानना बुद्धिरूप वृत्तिका आत्मा (स्वरूप) है। स्वरूपमें जानना न जानना नहीं होता, जुदेमें

होता है। आत्मासे पृथक् सर्व ज्ञान अज्ञानादिक कल्पित अनात्मा प्रगट है। कल्पित पदार्थ अधिष्ठानको विकार नहीं करसक्ते, जैसे निद्रारूप अविद्याका स्वप्नद्रष्टा चैतन्यकी सहायता कर रचा जो ज्ञान अज्ञानादि स्वप्न प्रपंच; सो स्वप्नद्रष्टाको स्पर्श नहीं कर सक्ता है। हे मूर्ख! देखना नाम जानना न जानना कहना मात्र है। सर्व सत् चित्-आनंदस्वरूप आत्मा मैं ही हूँ; कहो मुझसे पृथक् कौन है? जो मुझको देखे वा न देखे क्योंकि देखना न देखना नाम जानना न जानना त्रिपुटी विना होता नहीं, जब त्रिपुटी भी मैं चैतन्यही हूँ, तो जानने न जानने योग्यभी मैंहीहूँ और जानने न जाननेके अयोग्य भी मैंही चैतन्य हूँ। भिन्न भी तथा अभिन्न भी मैंही हूँ और सर्वसे असंगभी हूँ, जैसे स्वप्नद्रष्टाही सर्व स्वप्न सृष्टिरूप होता है और असंग निर्विकारसर्व स्वप्नसृष्टिसे अगोचरभी है। अविद्याकर किसी वस्तुकी जब जाननेकी चाहना करता है, तब तिस वस्तुको प्रथम स्थानापन्न करता है, पीछे दृष्टि जानने वास्ते उत्पन्न होती है पुनः पीछे तिस वस्तुको देखा है। जहाँ एककीभी समाई नहीं तहाँ तीन कैसे होवेंगी? किंतु नहीं होवेंगी। गरुडने कहा वचन मेरा सुन। हंसने कहा कान (श्रोत्र) नहीं रखता पर कानों बिना सुनता हूँ। कहो? गरुडने कहा रसना नहीं पर कहता हूँ। गरुडने कहा मैं चैतन्य आत्मा ही जब सब हूँ तो तू मैं जगत् त्रिपुटीरूप भी मैंही हूँ। हंसनेकहा जब मैं आत्मा हूँ, तो तीनों नहीं; द्वैत अद्वैतसे मुक्त हूँ, द्वैत अद्वैत कहना मात्रहै। दोनों तूष्णीं हुये। कुलंगने कहा हे मयूर! कुछ मुझको उपदेश कर? मयूरने कहा ऐसा उपदेश करता हूँ कि, तू न रहे। कुलंगने कहा जब मैं न रहा तब तीनोंलोक न रहेंगे।

मयूरने कहा सभी मेरा सत् वचन सुनो! सबोंने कहा हमारेविषे कहना सुनना दोनों नहीं पर कहो। मयूरने कहा कुछ नहीं कहता हुआ भी सर्वकहता हूँसबोंने कहा उपदेश उपदेष्टा उपदेशके योग्य

यह सर्व त्रिपुटी स्वप्न भ्रममात्र है । मयूरने कहा सबको निर्वाण उपदेश करता हूँ। सबोंने कहा हमारे स्वरूपमें वाण निर्वाण दोनों नहीं स्वयं रूप हूँ; सबने कहा नमस्कार हमारी हमको है। यह तीन लोक चैतन्य रूप हमकोही नमस्कार करते हैं तथा उपासना करते हैं । सर्वके कर्ता भी चैतन्यरूप हमही हैं और सर्वके भोक्ता भी हमही हैं । दिन रात्रि देवता मनुष्य यह सर्व दर्शन चैतन्य रूप हमाराही है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य, चन्द्रमा, यह कुबेरादिकोंने चैतन्यरूप हमारेसेही प्रकाश पाया है ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! संतोंका यही नमस्कार है कि; सर्वरूप हमही हैं ।

चकवी चकवा ।

एतेमें चकवी चकवाआये और कहा कि, यह दृश्यमान क्षेत्र है सो नाशी है और मैं चैतन्य क्षेत्रज्ञ अदृश्यमान हुआ सत् हूँ । सबने कहा तू कहां है ? हमहीं हैं ।

कचने कहा हे पिता ! वह संत कैसे थे जो ऐसी नमस्कार करते थे ? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! जो उन सन्तोंने कहा सो सत्ही कहा है. क्योंकि चैतन्यही सर्वको उपास्य है तथा सर्व कर्ता भोक्तादिक चैतन्यही है, तिससे पृथक् सर्व मायामात्र है । हे कच ! कारण ही कार्यका भोक्ता, कर्ता, उपास्यादिक होता है, कार्य कारणका नहीं । सो चैतन्यही सर्व नामरूप दृश्यकाकारण है; वे आपको चैतन्यदृष्टि लेकर कहते थे, उनकी शरीर दृष्टि न थी । उन्होंने जो कहा था "हे चकवा ! तू क्षेत्रज्ञ नहीं हमही हैं" सो क्षेत्रको उठाकर कहा था क्योंकि, क्षेत्रके अभावसे क्षेत्रज्ञ कहां है ? जैसे दंडके अभावसे दंडी कहां है ? कोई क्षेत्रज्ञके अभाव कहनेमें उनका तात्पर्य नहीं किन्तु, क्षेत्रज्ञ क्षेत्र शरीरसे है; स्वरूपमें नहीं बनसक्ता है ।

हे पुत्र ! सुन। चकवा कहने लगा कहनेमें तो नहीं आता पर सुनो। हे संतो! यह सर्व विकाररूप चकवी है और मैं चैतन्य विकारका द्रष्टा होनेसे निर्विकार हूं। यह चकवी प्रकृति है, मैं पुरुष हूं। सब ठाट जगत्का इसके मिलापसे है और मैं अक्रिय सर्वव्यापी सत् चित् आनन्द ब्रह्मरूप हूँ। जब मैं चकवीरूप प्रकृतिको अपने विषे लीन करता हूं, तब प्रकृतिका कार्य जगत् नाश होता है और मैं अद्वितीय सदा आपसे आप रहता हूं क्योंकि मैं निराश्रय हू और सब मुझ चैतन्यके आश्रय है जैसे स्वप्नद्रष्टा आप किसीके आश्रय नहीं स्वयं है; स्वप्नप्रपंच स्वप्नद्रष्टाके आश्रय है। तुम कहो प्रकृति रखते हो वा नहीं? सब पक्षियोंने कहा हे चकवा! जो तू चैतन्य है तो प्रकृति कहां है? जो प्रकृति है तो तू कहां? क्योंकि पद एक है प्रकृति कहो वा पुरुष कहो। चकवेने कहा एकताविषे बचन नहीं चलता, इसीसे प्रकृतिको संग लिया है। सबने कहा तू आत्मासे जुदा रहा है; अबतक दृष्टि मायामें राखता है। चकवेने कहा सत् है, मैं आत्मासे भिन्न रहा हूँ, क्योंकि आत्माको मिलना भ्रमसे है;मुझ अवाङ्मनसगोचर विषे, पावना मिलना जुदा होना न होना है. नहीं। तुम सबोने आत्मा पाया है, तुमको लज्जा नहीं आती? आत्मा तो अपना स्वरूप है भ्रम विना अपने स्वरूपका पावना मिलना जुदा नहीं होता; जैसे भूषणोंको तथा घटको तथा पटको सुवर्ण, मृत्तिका, तन्तुका, पावना मिलना जुदा होना नहीं होता। यह वचन सुनकर सब तूष्णीं हुये।

चकवेने कहा तुम सर्व मेरे शिष्य होओ। सबने कहा, जहाँ आत्माका पावना जुदा होना नहीं, तहां गुरु शिष्य कहां है? चकवेने कहा जो कुछ बचन मननसें आता है सो कर्म [illegible] सर्व नामरूप प्रपंचका प्रगट करनेवाला, मैं चैत[illegible] [illegible]ापनी [illegible] [illegible]ुसे क्या

मुझको बंध है? जैसे इंद्रजालीको अपनी मायाकर रचे पदार्थ. वध्य
मान नहीं करते जैसे नट अपनी विद्याकर अनेक स्वांग करता हुआ।
भी तिन स्वांगोंमें वध्यमान नहीं होता किन्तु, अपनेको, नटत्व
भावही जानता है; सर्व अपने स्वांगको मिथ्या जानता है। हंसने
कहा—जिस पदमें वचन नहीं तिस पदमें तू कहां है? तू चकवे-
पनेको और मैं हंसपनेको त्याग तब पीछे वचन करें। चकवेने
कहा- तू निश्चय कर कि; मैं हंस नहीं हूँ, जब हंस नहीं तब चकवा
आपसें आप न रहा। आप मुये जग-प्रलय होता है। हे हंस।
यह सर्व दर्शन मुझ चैतन्यका है,. मैं किसीका दर्शन नहीं, स्वयं-
प्रकाश हूँ। हंसने कहा तुझको इस वचनसे लज्जा नहीं आती जो
सर्व दर्शन तेरा हुआ तो तू भिन्न कैसे हुआ? जैसे राजा कहै सर्व
दर्शन मेरा है तो क्या राजा दर्शनसे भिन्न है? चकवेने कहा हे
हंस! ऐसे नहीं, जैसे सुवर्ण कहै यह सर्व भूषणदर्शन मेरा है, तो
द्वैतापत्तिदोष नहीं, जब सर्व में चैतन्य हूं तो कहनेसे क्या हानि
है? कहना और लज्जा भी मैं हूँ। अहंकारसे बंध होता है, देहा-
भिमान रहित मोक्ष है; परन्तु बन्ध मोक्षादि केवल मनका मनन
है, मैं प्रत्यक् चैतन्य निर्विकार हूँ। सारसने कहा हे चकवा।
जब तेरेमें बन्ध मोक्षरूप जगत् नहीं, तो तूने बंध मोक्षकल्पना
कैसे की? जैसे आकाश असंग निर्विकार है, तिसको विकार
संगकी कल्पना भ्रमविना नहीं होती। चकवेने कहा - मैं चैतन्य
अद्वितीय हूँ, सर्व कल्पनासे रहित हूँ परन्तु, जैसे नेत्ररोगसे
आकाशमें दो चंद्रमा भान होते हैं, तैसे तुझ जीवको अविद्यादो-
पसे, मुझ चैतन्य अधिष्ठान, निर्विकल्पमें, बंध मोक्षादि प्रपंच
प्रतीत होता है। जैसे स्वप्नरोंने स्वप्नद्रष्टामें बंध मोक्षकी कल्पना
की है, परन्तु स्वप्नद्रष्टा निर्विकार है। हे सारस! सोया पुरुष
जाग्रत पुरुषके हाल नहीं जानसक्ता। सारसनेकहा जोतू

है तो प्रश्न उत्तर किससे करताहै? चकवेने कहा प्रश्न उत्तरादि सर्व व्यवहार कल्पित मायासे करता हुआ, सद्वितीयभी वास्तवसे अकर्ता अद्वितीय हूँ जैसे निद्रारूप अविद्यासे अनेक प्रकारका स्वप्नप्रपंच प्रतीत होतेभी, स्वप्नद्रष्टा वास्तवसे अद्वितीय है।

मयूरने कहा यह सर्व प्रकाश मेराहै, जैसे सर्व किरणें सूर्यकी हैं। लोगोंको नेत्रदोषसे किरण लाल, सुफेद, नीली प्रतीत होती हैं परन्तु सूर्यको अपना रूपही भान होताहै। तैसे न चकवा न सारस न मयूर एक मैंही अद्वितीय हूँ । हे सभा ! अहं त्वंका त्यागकरो और निजस्वरूपको भजो, मुक्ति आनंदको पावोगे। सबने कहा हमारे प्रत्यक् चैतन्यस्वरूपमें ग्रहण त्याग है नहीं । हम आपही आनंदस्वरूप हैं, हमारे बंध मोक्ष हैनहीं, बंधमोक्ष केवल कहना मात्र है वास्तवसे नहीं. क्योंकि आत्मामें बन्ध हो तो मोक्षभी होवे । स्थिर अस्थिर रूपभी हमही हैं और स्थिर अस्थिरसे रहित भी हम हीहैं । आश्चर्य रूप हमारा है । मन वाणीके गोचर अगोचरसे रहित भी हमही हैं ऐसे चिंतन करते हुये सब तूष्णीं होगये कुछ बल न रहा जो वचन करे । सारांश यह कि, द्वैतके फुरनेसे रहित होगये ।

कोकिला ।

कुछ काल पीछे कोकिला आई और कहा हे सभा ! तुमने जाना है तूष्णीं होना मुक्ति है और वचन करना बंध है परन्तु यह नहीं। तूष्णीं और वचन दोनों अहंकार हैं । कुलंगने कहा हे कोकिला! जानना न जानना तथा अहंकार अनहंकारको त्याग । जो तुझको समस्वरूप आत्माकी प्राप्ति होवे, तूष्णीं वचनादि सर्वसंघातके धर्मोंका साक्षी निजस्वरूपमें माया और मायाके कार्य तूष्णीं और वचनादि सर्व व्यवहार कल्पित होनेसे सम है । अपरोक्ष आत्मा स्वरूपके ज्ञातावत्

ज्ञाता संत, चाहे तूष्णीं होवें चाहे वचन करें। हे कोकिला ! अहंकार जो तूने कल्पा है, तिसका रूप कह। कोकिलाने कहा अहंकारका रूप यही है कि, मनकी एकाग्रतामें वा तूष्णींमें सुख मानना और मनकी विक्षेपतामें वा वचनकरनेमें आपमें दुःख मानना। विना अनात्म अहंकार अनात्मधर्म अपनेमें मानने होते नहीं और पूर्व जो तूने कहाहै कि, अहंकारको त्याग, सो हे कुलङ्ग!मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा से भिन्नकुछ नहीं जिसका मैं ग्रहण त्याग करूं;जैसे पंचभूतोंसे भूतोंका कार्य भिन्न नहीं, इसीसे पंचभूतोंको अपने कार्यमें ग्रहण त्याग नहीं। मयूरने कहा हे कोकिला ! तू कौन है ? कोकिलाने कहा "तू कौन है ? जिसकर यह अंतर मन वाणीका कथन चिंतन अपरोक्ष जाना जाता है वही मैं हूँ,यह सब दर्शन मेराहै,मुझ विषे दर्शन नहीं" सब तूष्णीं हुये।

कोकिलाने कहा सबोंका गुरु मैं हूं। हंसने कहा तेरे विषे गुरु शिष्य कहां है ? कोकिला ने कहा जोसर्व मैं हूं, तो गुरु शिष्य भी मैं हूं; मुझ चैतन्यसे क्या भिन्नहै ? मयूरने कहा मैं शिष्य तेरा होता हूं पर पहले तेरा नाश करूँगा। कोकिलाने कहा, तुझ सहित सर्व नाम रूप दृश्य, मुझ सच्चिदानंद अधिष्ठान प्रत्यक् आत्माके शिष्य हैं पूर्व तुम दृश्यरूप शिष्यने मुझ अधिष्ठानका नाश न किया तो अब कैसे करेगा ? जैसे स्वप्नसृष्टि सर्व स्वप्नद्रष्टाके शिष्य हैं। सारांश यह कि, कल्पित पदार्थोंका अधिष्ठानही गुरु (आश्रय) होता है रज्जु सर्पवत्। हे मयूर ! यह सर्व कौतुक मेरा है; मैं चैतन्य कौतुकी किसीका कौतुक नहीं, जैसे मायारूप इन्द्रजाल, मायावी इन्द्रजालीका कौतुक नाम लीलाहै इन्द्रजाली किसीकी लीला नहीं। हंसने कहा मैं चैतन्य विना वाक् और कान वाणी वचन कहता सुनता हूँ; विना पांव हाथ, चलता लेता देता हूं; विना नेत्र नासिकासे, देखता सूँघता हूं, विना

त्वचा रसना स्पर्शरस लेता हूँ; विना मन, बुद्धि, चित्त अहंकारको संकल्प, विकल्प, निश्चय, चिन्तन, अहंपना करता हूँ, जैसे स्वप्र-द्रष्टा स्वप्नमें विना इंद्रियोंके व्यवहार शब्दादिकोंका प्रकाशकरता है यह बात प्रसिद्ध है कि, अंतर दश प्रकारके शब्दको अनुभव करता है, सो विनाकानों सुनता है तैसेही अंतर जो चैतन्य पदार्थ सर्व मनादिकोंके न्युनाधिक व्यवहारको अनुभव करताहै सो विना इंद्रियोंकेही करता है, इसीसे मैं चैतन्य आत्मा स्वप्रकाशरूप हूँ।

प्राणवाद।

कोकिलाने कहा, यह प्राणरूपी पवनही स्वप्रकाश है।सारसने कहा निर्बुद्धिकी समान मतकह, प्राणरूपी वायु जडहै तथा आ-काशका कार्य है। सुषुप्तिमें इसका अभाव हो जाता है तथा न उष्ण न शीत स्पर्शवाला है, चैतन्यका दृश्य है। इसीसे परप्रकाश है और आत्मा पूर्वोक्त प्राणोंरूप वायुके विशेषणोंसे रहित है इसीसे स्वयंप्रकाश रूप है, जो प्राणरूप वायु चैतन्य होवे तो सोया पुरु-षका धन तस्कर लेजाते हैं और प्राण ज्योंके त्यों चल रहे हैं क्यों नहीं चोरोंको वर्जित करते ? हे कोकिला! "पवन स्वप्रकाश है" इस कथन चिंतनको जिसने जाना, सो स्वप्रकाश है। कोकिलाने कहा सो अनुभव पवन ही करता है। सबने कहा तेरा कहा नहीं मानते। कोकिलाने कहा मैं एक अद्वितीय हूँ, मुझ विना कौन है जो वचन मेरा माने, "पवनही स्वयं है"। मयूरने कहा तुरीयामें पवन कहां है ? हे कोकिला! सर्व शास्त्रोंमें पंचभूत कहा है और पंचभूतोंका कारण माया-कहा है तथा पंचभूतोंमेंही वायु है। जो पवन स्वप्रकाश होवे तो भूत चार कह-ना चाहिये इससे जो सर्वका साक्षी है,सोई स्वप्रकाश है। कोकि-लाने कहा सर्वका साक्षी प्राणहै। सबने कहा वचन तेरा अयोग्यहै

कोकिलाने कहा योग्य अयोग्य सब पवन है । मयूरने कहा सत् कभी असत् नहीं होता, असत् कभी सत् नहीं होता । कोकिलाने कहा यह सत् असत्भी पवन है । मैं माया अनंत शक्ति रखता हूँ, सतको असत् और असत्को सत् करसकती हूँ । सभी कहो यह सर्व नाम रूप पवन है । मयूरने कहा जो कहनामात्रहै तिसका क्या प्रमाण है ? हंसने कहा ब्रह्मा कहता है, पवन परप्रकाश हैं, जड चेतनका क्या संयोग है ? कोकिलाने कहा, ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यन्त, सब जड चैतन्य, नामरूप पवनहीसे प्रगट है ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय । कोकिला आपको कभी मायारूप कहती थी, कभी प्राणकर अज्ञानरूप कहतीथी और आत्माको आवाङ्मनसगोचर कहतीथी क्योंकि मायारूप द्वैत विना आवाच्यपदमें कहना बनता नहीं, जो कथन चिंतन करेंगे सो मायाही है अवाच्यपदमें कथन चिंतन है नहीं ।

जलकुक्कुट ।

बृहस्पतिने कहा हे कच । पुनःजलकुक्कुट आया और कहा जब ईश्वर सर्व जगत्को अपनेमें लीन करता है तब पवनरूप अज्ञान कहांहै ? कोकिलाने कहा ईश्वरता जगत्की लीनतादि व्यवहार, पवनरूप अज्ञानकरही होताहै, आत्मा अवाच्यपद है । हे सभा । जितना तुम कथन चिंतन करोगे, सो पवनरूप मायामात्र है । माया अंगीकार करे विना अवाच्यपदका कभी कथन चिंतन नहीं होगा । सब तुष्णीं हुये ।

गरुडने कहा ब्रह्मविषे माया कहांहै ? कोकिलाने कहा माया विन अवाच्यपदका ब्रह्म नाम किसने रक्खाहै ? गरुडने कहा

भुशुण्ड ! तुमने हजारों वर्षोंसे भक्ति तप कियाहै, कोकिलाको उत्तर देओ । भुशुण्डने कहा असंतोंकी सभामें आया हूँ, बुद्धि नहीं रही, बुद्धिबिना कहा जाता नहीं इससे क्या कहूं ।

मैत्रेयने कहा हे गुरु ! भुशुंडने असंत सभा क्यों कही ? हे मैत्रेय ! संतनाम श्रेष्ठका है, जहां श्रेष्ठता है वहां अश्रेष्ठता भी है । इससे सापेक्षक श्रेष्ठअश्रेष्ठसे रहित जो पदहै सो असंत कहिये, अथवा नहीं है श्रेष्ठता परे जिसकें, तिसके अपरोक्ष निष्ठावान्, जिस जगहमें स्थित होवें तिसका नाम असंत सभा है ।

सबने कहा हे कोकिला ! मायारूप वायुकरही सर्व कथनचिंतन बनसक्ताहै और जिसका कथनचिंतन करता है सोभी माया रूपवान्है तिस कथन चिंतनका विषयभी माया तत्कार्य रूप पवन है । कथन चिंतनभी मायारूपहै । परंतु यह सर्व त्रिपुटीरूप माया तत्कार्यरूपपवन, चैतन्य, आत्माकी त्रिपुटी दृश्य होनेसे परप्रकाशहै चैतन्य आत्माही स्वयंप्रकाशहै । कोकिलाने कहा मैं तुम्हारा निश्चयही देखतीथी कोई पवनको स्वप्रकाश कहनेका मेरा तात्पर्य नहीं किंतु, आत्मवस्तुही, स्वप्रकाश है दृश्य परप्रकाशही है, जैसे निद्रारूप अविद्याकरही, सर्व स्वप्नप्रपंच तथा स्वप्नप्रपंचका व्यवहारहै तथा वायु आदित्यभी स्वप्नमें हैं परंतुस्वप्नद्रष्टा कर प्रकाशितहैं; इसीतें, परप्रकाशहै स्वप्नद्रष्टाही स्वप्रकाशहै ।

तिस समय ब्रह्मा, अपने मरीच्यादि पुत्रोंसहित आकाश मार्गमें किसी कार्यके वास्ते चले जाते थे, पक्षियोंका अपनी बोलीमें आत्मनिरूपण सुनने लगे ।

हंसने कहा ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सब प्रकार मुझे चैतन्यकाहे । गरुडने कहा मुझ अवाच्य पद आत्मामें प्रकाश्य प्रकाशक भाव दोनों नहीं; ब्रह्मादिक सर्व दृश्यका उपास्य मैंही हूँ ।

कुलङ्गने कहा उपास्य उपासकभाव द्वैतमें होताहै,मैं अद्वैत हूँ। ब्रह्मा सुनकर हँसा और मरीच्यादिकोंको कहाकि तुम आपको बडा मानतेहो पर आत्मविचार नहीं राखते जो आत्मविचाररूपी परम धर्मवान् है। वही बडा है अन्य नहीं हैं। ब्रह्माने कहा हे पक्षियो! तुम धन्य हो जो देहाभिमान त्यागकर अपने निर्विकार स्वरूपमें स्थित हुये हो। सबोंने कहा हे ब्रह्मा! तुम्हारेविषे समता न देखी क्योंकि सबको तुमनेही उत्पन्न किया है, भला बुरा क्यों कहतेहो? सर्वरूप आत्माही जब संसाररूप मढीमें स्थितहै तो भला बुरा कौन है? ब्रह्मानेकहा- जब सर्वात्माहै तो भला बुरा भी आत्मा है। हे कुलंग! जैसे पिता पुत्रों को उत्पन्न करता है और वही गुणोंके अनुसार भला बुरा भी कहता है।

प्रणव।

पुनः ब्रह्माने कहा-हे कुलंग! तू कौन है कुलंगने कहा- आत्मा हूँ। जिससे ब्रह्मा विष्णु शिवादिक दृश्य सर्व प्रगट हुआ है क्योंकि सर्व सृष्टि प्रणवरूप ह। अकार उकार मकार क्रमसे स्थूल सूक्ष्म कारण प्रंपचरूप है तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप है तथा विराट हिरण्यगर्भ ईश्वर रूप है। तथा विश्व तैजस प्राज्ञ रूप है तथा भूर्भुवःस्वःत्रिलोकी रूप है इन्द्रिय विषय देवता रूप है। तथा ऋक् यजुः साम रूप है तथा सत्त्व, रज, तम रूप है। तात्पर्य यह कि,सर्व जगत् प्रणवरूप है। माया यह मन शरीरादिक संघात रूप है और मैं नित्य चैतन्यरूप आत्मा इस मन शरीरादि संघातका द्रष्टा निर्विकार निर्विकल्प आप अपनी महिमामें स्थित हूँ। हंसने कहा नमस्कार मेरी मुझको है। कुलंगने मुझको त्रिगुण मायारूप प्रपंचसे अतीत जाना है इसकी उपासाना सफल हुई तीन गुण भी कहना मात्र है नहीं तो मैं चैतन्यही हूँ।

कुलंगने कहा हे गरुड। जो तूने विष्णुसे आत्म निरूपण सुना है सो कह। गरुडने कहा-सर्व विष्णु है। मयूरनेकहा- विष्णु नाम तूने प्रगट किया है नहीं तो विष्णु कहां है तूही है जो सर्व विष्णु होता तोसर्व चतुरभुज होते।

ब्रह्मा सबके यथार्थ वाक्य सुनकर बहुत प्रसन्न हुये। सबने कहा हे ब्रह्मा! पवन स्वप्रकाश है कि परप्रकाश है? ब्रह्मानेकहा-प्राणरूप पवनमें तुमने स्वप्रकाशता और परप्रकाशता सिद्ध किया है इससे तुमही स्वप्रकाश हो वायु नहीं। कोकिला प्राणरूप उपाधिकी लिये बोलती है परंतु प्राणउपहित चैतन्य आत्माको स्वप्रकाश कहनेका इसका तात्पर्य है। जैसे बत्तीरूपउपाधिको लियेही दीपककी स्वप्रकाशता कही जाती है पर जब वस्तु विचार करें तो दीपकमें ही स्वप्रकाशता है बत्तीमें नहीं क्योंकि प्राण और बुद्धि आत्माकी मुख्य उपाधि है। प्राण बुद्धिकी तथा आत्माकी किंचित् उपचारक समानता भी घटती है जैसे आत्मा शरीरमें व्यापक है तैसे बुद्धि और प्राण भी शरीरमें व्यापक हैं। जैसे आत्मा चैतन्य विना शरीर स्थित नहीं होता तैसे प्राण बुद्धिसे विनाभी शरीर स्थित नहीं होता। तथा आत्मा भी शरीर के अंतर है और प्राण बुद्धि भी अन्तर हैं इत्यादि अनेक तरहकी समता शास्त्र में लिखी हैं। हे कोकिला! उपाधि उपहितरूप कभी भी नहीं होती। कोकिलाने दोनों हाथ उठाकर पुकारा हे ब्रह्मा! आज तूने समता त्यागी और विषमता ग्रहण की क्योंकि मुझ निर्विकार निरुपाधि चैतन्य स्वरूपमें तूने उपाधि खडी की। ब्रम्हानेकहा-क्रोध मतकर। विचार प्राण कैसे? स्वप्रकाश हैं। कोकिलाने कहा- प्राण न होवे तो तुम बोलो कैसे? ब्रम्हानेकहा-प्राण इंद्रिय पंचभूत आत्मासे उत्पन्न हुयेहैं उत्पत्तिमान् पदार्थ स्वप्रकाश नहीं होते। कोकिलाने कहा मूल और शाखामें क्या भद है? प्राण जिससे उत्पन्न हुये हैं वही रूप है। इसके

भी प्राण स्वयंप्रकाश है। ब्रह्माने कहा प्राणोंकी स्थिति होनेसे शरीर स्थितहै,शरीरसेही नित्य स्वयंप्रकाश होता है; पर शरीर प्राण कर्म उपासना ज्ञान स्वप्नकी समान कथन मात्र हैं, स्वप्नद्रष्टाके समान मैं ब्रह्मरूप आत्माही नित्य स्वयंप्रकाश आक्रियरूप हूँ। कोकिलाने कहा जो तू अक्रिय है तो रूप अपना कह? ब्रह्माने कहा अज्ञानीको कहना योग्य नहीं, जो समझै नहीं, और ज्ञानीको भी कहना योग्य नहीं, जो कृतकृत्य है,. मुमुक्षुको कहना योग्य है। हे कोकिला। ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, जो सर्व जीवोंके हृदयविषे मनादिकोंका साक्षी रूप करके, नित्य, चैतन्य स्थित है,सोई मेरा स्वरूप है। कोकिलाने कहा यह तो सभीका स्वरूप है। ब्रह्मानेकहा जो सभीका स्वरूप है सोई मेरा स्वरूपहै और जो मेरा स्वरूप है सोई सभीका है,इसमें संशय नहीं। कोकिलाने कहा जब तूही है तो "स्वरूप किसीने जाना, किसीसे न जाना" यह व्यवहार त्रिपुटी विना नहीं होता। ब्रह्माने कहा जब सर्व मैं हूँ तो त्रिपुटीभी हूँ। ब्रह्मा उठखड़ा हुआ कहा यह उत्तर तुमको विष्णु देवेगा। तब सर्व संत वहां बैठेही बैठे विष्णुकी स्तुति करने लगे, "चतुर्भुज विष्णुकी मूर्ति सहित,सर्व जगत्,हमारे स्वरूप चैतन्य आत्मासेही प्रकाशमान है, उत्पत्तिमान है, तथा हमारे स्वरूप चैतन्य आत्माकी सत्तास्फूर्ति करही इस जगत्की स्फूर्ति है, स्वतःनहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टा करही सब स्वप्नकी स्फूर्ति होती है और हमारे स्वरूपमें आवागमन नहीं।

कोकिलाने कहा हे विष्णु। मैं तेरा आवाहन करतीहूँ जिसमें तू, मैं, आवाहन, तीनों नहीं और तीनों रूपहैं।

हंसने कहा मेरा आवाहन सुन। न कोई द्वेषी, न प्रीतम, न गमनागमन, न सुख, न दुःख, न हेय,न उपादेय, न बंध न मोक्षादि,केवल मैं एक चैतन्य आत्माही विष्णु हूँ नमस्कार मेरीमुझ-

को है। कुलङ्गने कहा ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि सर्व मुझ चैतन्य आत्माकी उपासना करतेहैं उपासन आवाहन अपना आपही करताहूँ।

इतनेहीमें विष्णु आये और कहा हे पक्षियो! तुम कौन हो ? कोकिलाने कहा मैं चैतन्य स्वप्रकाश तुम सहित सर्वका साक्षी आत्मा स्वरूपहूँ। हे विष्णु! तुमको लज्जा नहीं आईजो.मायाका कार्य पंचभूतरूप यह शरीर मनादि संघात तो जड है और आत्मा वचनसे अगोचर है; कौन तुमको उत्तर देवे कि, यह है। विष्णुने कहा तुम्हारा क्या प्रश्न है? कोकिलाने कहा आप उत्तर पूर्व देचुके हो।जो पूछा "तुम कौन हो?" जब तुमको अपने स्वरूपकी अप्राप्ति है तो तुमसे क्या पूछैं? शिवलोक विषे जाते है। सुना था विष्णुवेदांत देशमें हैं पर देखा वेदांत कहां है ? केवल भ्रम है। विष्णुने कहा मैंईश्वरहूँ वेदांत और अवेदांत मुझ चैतन्य आत्मामें दोनों नहीं। पर प्रश्न कहो। सबने कहा पवन स्वप्रकाश है कि, परप्रकाश है ? विष्णुने कहा पवनको स्वप्रकाश और परप्रकाश सिद्ध करनेवाला स्वप्रकाश है क्योंकि, प्राण चलते हैं वा नहीं चलते इत्यादि प्राणोंके व्यवहारको सिद्ध करनेवालाही स्वयं है, अन्य नहीं। सत्को असत् और असत्को सत् कैसे करें ? कोकिलाने कहा सर्वका सिद्धकरता पवन है। विष्णुने कहा हे कोकिला! सुषुप्ति मूर्छामें पवन तो है, पर जो पवन चैतन्य होवे तो सुषुप्ति मूर्छादिक वा अन्य कोई शरीरादिक संघातका व्यवहार बतलावे,सो कुछ संघातका व्यवहार नहीं बतलाता और न अपना, इससे पवन जड है। कोकिलाने कहा चेतन विभाग पवनमें नहीं।हे विष्णु! तेरी कल्पना है, पवन तो अखंडहै। विष्णुने कहा जीव मेरा अंश है।कोकिलाने कहा आप खंड खंडको क्यों करताहै? अंशअंशी भाव अनित्य होता है।जैसे पिता पुत्रअंश अंशी भाव है,इसीसे अनित्य है।इां। महाकाशका घटाकाश अंश

है,चिनगारा अग्निका अंश है,अर्थात् वहीरूपहै । विष्णुने कहा हे कोकिला! तेरा रूप क्या है?कोकिलाने कहा मैं रूपअरूपतेरहितहूँ, और सर्वरूप अरूप मैंही हूँ। विष्णुने कहा जब पंचभूत नाश होते हैं,तव पवन कहां है?पुरुषमें पवन नहीं । कोकिलाने कहा पुरुष चिदाभास किससे प्रकाश रखता है ? विष्णुने कहा मुझ पुरुषोत्तम चैतन्यसे । कोकिलाने कहा तू किससे प्रकाश रखता है? विष्णुने कहा मैं स्वयं हूँ।कोकिलाने कहा असत् मत कह यह आपसे आपही पवन ईश कथन चिंतनको सिद्ध करैहै।इससे पवन स्वयंप्रकाशहै।

तब ब्रह्मा विष्णु सहित सर्व विलासपूर्वकशिवलोकमेंशिवके पास गये । सबने कहा हमारे रूपको हमारा नमस्कारहै । शिवने कहा न तुम सब और न मैं,केवल शिव हूँ वा सर्व मैंही हूँ। सब तूष्णीं हुये। शिवने कहा हे रूप ! मेरे यह क्या कौतुक हैं ? सबने कहा आप मंगलरूप हो और अपक्षपात हो,कोकिला पवनको स्वप्रकाश कहता है और हम कहते हैं स्वप्रकाश हमारा स्वरूप चैतन्य है,सो आप कहो स्वप्रकाश कौन है ? शिवने कहा प्रथम तुम आपसमें प्रश्न उत्तर करो पीछे मैं उत्तर दूंगा।

हंसने कहा यह दर्शन अदर्शन, रूप अरूप मेरा है और मैं सर्व दर्शनादिकोंसे रहित हूँ,जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नरूपभी है और रहित भी है। इससे मुझ चैतन्यकी आश्चर्य महिमा है । कुलंगने कहा आश्चर्य होना, न आश्चर्य होना,सर्व रूप आपको जानना,असर्वरूप जानना,वा सर्व असर्वसे अतीत जानना, वा आपको सत् चित् आनंद जानना, वा असत् जड दुःखरूप जानना, तथा पवनको स्वप्रकाश मानना, अन्यको परप्रकाश मानना,तथाआत्मा ब्रह्मको स्वप्रकाश साक्षी मानना,अन्य दृश्यको परप्रकाश मानना,अहंत्वं परोक्ष अपरोक्ष मानना इत्यादि, मनकी मानिन्दी है; जो है

अवाच्यपद है। जो मनकी सर्व मानिन्दीसे परे है सोई अवाङ्मन-सगोचर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का, तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिकोंका स्वरूप है,तिसको अपना आत्मस्वरूप जानो।

शिव ब्रह्मा विष्णु आदिक यह अमृतरूप वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुये। शिव बोले हे कोकिला ! तू धन्य है निश्चय चाहिये तो पुरुषको तुझ जैसाही दृढ चाहिये झूँठभी सच कर दिखलाया।जोगुरु शास्त्र, अपने अनुभव विचारसे जो निश्चय हुआ है,सोई सत् है । तिससे परे सत्का निर्णायक कोई नहीं इससे पुरुषको सत् निश्चयता त्याग कदाचित् भी न करना चाहिये। हे कोकिला! तूपक्षपातसे रहित होकर विचार देख पवन तुझ चैतन्यसे प्रगट हुआहै,तूचैतन्य किसी पवनादिकोंसे प्रगट नहीं हुआ।इससे तूही चैतन्यस्वयंप्रकाशहै,अन्य नहीं।आपने स्वरूप ऊपर पवनको स्वप्रकाश क्योंराखता है।लज्जा तुझेको नहीं आती?कोकिलाने कहा अस्ति भाति प्रिय सर्व ब्रह्मरूप आत्मा है,सोई स्वयंरूपहै।इससे घटभी विधिपक्षमें स्वयंप्रकाश है,पटभी स्वयंप्रकाश है, तृणभी स्वयंप्रकाश रूप है, जब नामरूपभी अस्ति भाति प्रियरूप कर स्वयंप्रकाश रूपहैं,तो पवन क्या स्वप्रकाश रूप नहीं?किंतुस्वयंप्रकाशरूपही है क्योंकि अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्माही स्वयंप्रकाश है और पवनादिक अस्ति भाति प्रियरूप हैं पृथक् नहीं, जो पृथक्होवे तो परप्रकाश होवे।इससे पवनभी स्वप्रकाशरूप है। इस दृष्टिको लिये मैं पवनको स्वप्रकाश कहतीथी. पवनको आत्मासे भिन्न कर स्वयंप्रकाश नहीं कहतीथी। यह कहकर कोकिला तूष्णीं हुई।

पराशरने कहा हे मैत्रेय । इतनी कथा कहकर पुनः बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! निश्चय जो चाहिये ऐसाही दृढ चाहिये, निश्चय विना

जो कहता है सुनता है चिंतन करता है सो सब अकार्थ है। कहता है " मैं द्रष्टा सर्व दृश्यका हूँ, तथा निर्विकार बंध मोक्ष से रहित हूँ, मुझको किंचित्मात्र भी निवृत्ति और मोक्ष की प्राप्ति वास्ते कर्तव्य नहीं मैं चैतन्य निष्कर्तव्य निर्विकल्प हूँ" पर इस कथन चिंतनपर दृढ निश्चय नहीं तो व्यर्थ है, तिसने अपने स्वरूप अमृतको नहीं पान किया क्योंकि स्वभावसे बंध मोक्षसे रहित, जब आपको मन शरीरादिक संघात तथा संघातके धर्मोंसे जुदा सम्यक् जानता है, तब बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते सर्वका यत्नहै, तिस यत्नसे रहित हुआही शांत होताहै। अन्यथा नहीं, हे कच! तू आप सहित सर्व शिवरूप जान, कचने कहा हेपिता-दृढ निश्चय होना, न होना सर्वरूप जानना तथा न जानना यह अंतःकरणका धर्म है और मैं चैतन्य निश्चय अनिश्चयका प्रकाशक अवाङ्मनसगोचर हूँ, बुद्धिका धर्म निश्चय अनिश्चय मुझको स्पर्श नहीं कर सक्ता। बृहस्पति ने कहा हे पुत्र! सर्व इंद्रियों के व्यवहार होते वा न होते, सर्व कल्पित नामरूप संसारका अधिष्ठान होनेपरभी अवाङ्मनसगोचर संसारसे अपने प्रत्यक् आत्मा को; अवाङ्मनसगोचर सम्यक् जानना ही ज्ञान निश्चय है, यही परमभक्ति है। हे पुत्र! शरीर नाश हो तो भी अपना सत् निश्चय न त्यागना और पिता पुत्रका अहंकार भी त्याग। तू चैतन्य आत्मा है, न तू किसीका पुत्र है, न किसी का पिता है, यह संसार भ्रम मात्र है। [illegible] स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नप्रपंचरूप भी तिससे अगोचर ही है [illegible] पिता पुत्रादि रूपभी तू ही है। हे पुत्र! तेरा स्वरूप आत्[illegible] सिद्ध सुख दुःख रूप बंध मोक्ष से रहित निर्वि[illegible] कल्प है, आकाशकी समान। तुझ चैतन्य [illegible] को बंध मोक्ष वास्ते किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं

द्रष्टा चैतन्यको स्वप्नप्रपंचकी बंध मोक्ष की निवृत्ति प्राप्ति वास्ते, किंचित भी यत्न नहीं (भ्रम विना) जैसे किसीके कण्ठमें मालाहै और भ्रमसे खोई जानताहै और आपको दुःखी मानता हैं उसकी प्राप्ति वास्ते यत्न करता है, परंतु माला खोई जन्य दुःखकी निवृत्ति वास्ते और मालाकी प्राप्ति वास्ते, किंचित् मात्रभी भ्रम विना कर्तव्य नहीं।

कचने कहा हे पिता! जो तुम कहो सो मैं करूँ। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! आप सहित सर्वको आत्मस्वरूप सम्यक् जानना वा आपको पंचकोश रूप त्रिपुटी सहित, शरीरका तथा जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि सर्व प्रपंचका साक्षी जानना वा साक्षी असाक्षी भाव छोडने केवल आपको अवाच्यपद सम्यक् जानना। वा न तूहै नमैं हूँ, न जगत् केवल चैतन्य स्वयंप्रकाश मैं आत्मा हूँ यही परम तप है। वा इस तपका साधनभूत अन्नमयादि कोशोंका तथा आत्माका, अन्वय व्यतिरेक युक्ति करके, जाग्रतादि अवस्थासे आत्मा को भिन्न जानना; साधनरूप इस विचाररूपी तपको जब सम्यक् करोगे, तब पूर्वोक्त परम तपरूप फलको पाओगे। इस विचाररूपी तपके शम दम वेदाध्ययनादि अनेक साधन हैं, यही मेरा उपदेश यथार्थ जान और मनमें राख। पूर्ण तप अपने स्वरूपका पहिचानना है। जब देहाभिमान परिच्छिन्न दूरहुआ पीछे जो शेष है सो अवाच्य पद है। वही अपना रूप है। हे पुत्र! बंध मोक्षरूप कालका भयरूप तप मनसे दूर होजाना इस सम्यक् अधिष्ठान ज्ञानका नाम परमतप है। हे कच! त्वंपद नाम जीवपनेका अभ्यास तथा तत्पद नाम ईश्वरपनेका अभ्यासत्याग औरजहां जीवत्व ईश्वरत्वादि संज्ञा नहीं ऐसे असिपद, ब्रह्म रूप चैतन्य अवाच्यपद आत्मा आपको जान। जैसे जीव ईश्वर स्वप्नके, स्वप्नद्रष्टा चैतन्यमें समाप्त होतेहैं। जैसे घटाकाश मठाकाश, आकाश मात्रमें संज्ञा नहीं। कचने

कहा हे पिता । संत कहते है बुद्बुदा नदीरूप नहीं होसक्ता, जल कहें तो बनताहै,तुम कहते हो-अपने बुद्बुदेरूप जीवत्वंको त्याग ब्रह्मरूप समुद्रहो। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र । इन स्वप्नकी बातोंमें तू स्वप्नद्रष्टा बंधमत हो क्योंकि,त्वम्‌पद,तत् पद और असिपद,केवल मनका मनन तुझ चैतन्यसे पृथक् कथनमात्र है। जैसे नदी,तालाब, समुद्र जलसे भिन्न कथनमात्र हैं। जैसे स्वप्नका जीव ईश्वर ब्रह्म स्वप्नद्रष्टा चैतन्यसे पृथक् कहनेमात्र है।हे पुत्र ! तुझ चैतन्य लालकी जीव,ईश्वर,ब्रह्म,दमकां हैं । तू चैतन्य अपनी महिमामें आपस्थित है। कचने कहा हे पिता । जो यह तीनों कुछ नहीं,तो जीव,ईश्वर ब्रह्म, भेद संतोंने क्यों कहा है ? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! स्वप्नके संतोंने स्वप्नमें जीव ईश्वर ब्रह्मकी कथा कही, तो तुझ स्वप्नद्रष्टा चेतन्वकी क्या हानि है ? जो न कही, तो क्या लाभ है?न लाभ है न हानि है । हे पुत्र ! जीव ईश्वर ब्रह्मादिक शब्दका अर्थ,तुझ अनंत चिद्, सत् रूप आत्मामेंही घटता है इससे तूही जीव ईश्वर ब्रह्म है, अन्य नहीं। हे पुत्र ! संतोने जो कल्पना तत् त्वं असिपदकी की है, सो जीवोंके कल्याणवास्ते की है। इनके विचारसे निज स्वरूपको पाता है। कचने कहा हे पिता ! एकही चैतन्यके तीन भेद देखकर संतोंने कहा है कि,सुनकर बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! सबने सुनकर कहा है क्योंकि आपसे भिन्न कौन है ? जो एक और दो कहै । कहना चिंतन करना मन वाणीका कर्महै। देखना सुननादि श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियोंका कर्म है। तू चैतन्यस्वरूप आत्मा मनआदि सर्व इन्द्रियोंसे अगोचर है। तुझ चैतन्यको कौन देखे तथा कौन सुने ? कचने कहा तुम्हारे वचनसे आश्चर्यवान हुआ हूँ जो कुछ संतोंने कहा सो निर्बीज निकला,तिस स्वप्नके सत्संगते क्या लाभहै ? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र। संतोंमें असंभावना मतकर । संसारसमुद्रसेतर-

द्रष्टा चैतन्यको स्वप्नप्रपंचकी बंध मोक्ष की निवृत्ति प्राप्ति वास्ते, किंचित भी यत्न नहीं (भ्रम विना) जैसे किसीके कण्ठमें मालाहै और भ्रमसे खोई जानताहै और आपको दुःखी मानता है इसकी प्राप्ति वास्ते यत्न करता है, परंतु माला खोई जन्य दुःखकी निवृत्ति वास्ते और मालाकी प्राप्ति वास्ते, किंचित् मात्रभी भ्रम विना कर्तव्य नहीं।

कचने कहा हे पिता। जो तुम कहो सो मैं करूँ। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र। आप सहित सर्वको आत्मस्वरूप सम्यक् जानना वा आपको पंचकोश रूप त्रिपुटी सहित, शरीरका तथा जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि सर्व प्रपंचका साक्षी जानना वा साक्षी असाक्षी भाव छोडने केवल आपको अवाच्यपद सम्यक् जानना। वा न तूहै नमैं हूँ, न जगत् केवल चैतन्य स्वयंप्रकाश मैं आत्मा हूँ यही परम तप है। वा इस तपका साधनभूत अन्नमयादि कोशोंका तथा आत्माका, अन्वय व्यतिरेक युक्ति करके, जाग्रतादि अवस्थासे आत्मा को भिन्न जानना; साधनरूप इस विचाररूपी तपको जब सम्यक् करोगे, तब पूर्वोक्त परम तपरूप फलको पाओगे। इस विचाररूपी तपके शम दम वेदाध्ययनादि अनेक साधन हैं, यही मेरा उपदेश यथार्थ जान और मनमें राख। पूर्ण तप अपने स्वरूपका पहिचानना है। जब देहाभिमान परिच्छिन्न दूरहुआ पीछे जो शेष है सो अवाच्य पद है। वही अपना रूप है। हे पुत्र। बंध मोक्षरूप कालका भयरूप तप मनसे दूर होजाना इस सम्यक् अधिष्ठान ज्ञानका नाम परमतप है। हे कच। त्वंपद नाम जीवपनेका अभ्यास तथा तत्पद नाम ईश्वरपनेका अभ्यासत्याग औरजहां जीवत्व ईश्वरत्वादि संज्ञा नहीं ऐसे असिपद, ब्रह्म रूप चैतन्य अवाच्यपद आत्मा आपको जान। जैसे जीव ईश्वर स्वप्नके, स्वप्नद्रष्टा चैतन्यमें समाप्त होतेहैं। जैसे घटाकाश मठाकाश, आकाश मात्रमें संज्ञा नहीं। कचने

कहा हे पिता। संत कहते हैं बुद्बुदा नदीरूप नहीं होसक्ता, जल कहें तो बनताहै,तुम कहते हो–अपने बुद्बुदेरूप जीवत्वको त्याग ब्रह्मरूप समुद्रहो। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र। इन स्वप्नकी बातोंमें तू स्वप्नद्रष्टा बंधमत हो क्योंकि,त्वम् पद,तत् पद और असिपद,केवल मनका मनन तुझ चैतन्यसे पृथक् कथनमात्र है। जैसे नदी,तालाब, समुद्र जलसे भिन्न कथनमात्र हैं। जैसे स्वप्नका जीव ईश्वर ब्रह्म स्वप्नद्रष्टा चैतन्यसे पृथक् कहनेमात्र है।हे पुत्र! तुझ चैतन्य लालकी जीव,ईश्वर,ब्रह्म,दमकां हैं। तू चैतन्य अपनी महिमामें आपस्थित है। कचने कहा हे पिता। जो यह तीनों कुछ नहीं,तो जीव,ईश्वर ब्रह्म, भेद संतोंने क्यों कहा है? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! स्वप्नके संतोंने स्वप्नमें जीव ईश्वर ब्रह्मकी कथा कही, तो तुझ स्वप्नद्रष्टा चैतन्यकी क्या हानि है? जो न कही, तो क्या लाभ है?न लाभ है न हानि है। हे पुत्र! जीव ईश्वर ब्रह्मादिक शब्दका अर्थ,तुझ अनंत चिद्, सत् रूप आत्मामेंही घटता है इससे तूही जीव ईश्वर ब्रह्म है, अन्य नहीं। हे पुत्र! संतोने जो कल्पना तत् त्वं असिपदकी की है, सो जीवोंके कल्याणवास्ते की है। इनके विचारसे निज स्वरूपको पाता है। कचने कहा हे पिता! एकही चैतन्यके तीन भेद देखकर संतोंने कहा है कि,सुनकर बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! सबने सुनकर कहा है क्योंकि आपसे भिन्न कौन है? जो एक और दो कहै। कहना चिंतन करना मन वाणीका कर्महै। देखना सुननादि श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियोंका कर्म है। तू चैतन्यस्वरूप आत्मा मनआदि सर्व इन्द्रियोंसे अगोचर है। तुझ चैतन्यको कौन देखे तथा कौन सुने? कचने कहा तुम्हारे वचनसे आश्चर्यवान हुआ हूँ जो कुछ संतोंने कहा सो निर्बीज निकला,तिस स्वप्नके सत्संगते क्या लाभहै? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! संतोंमें असंभावना मतकर। संसारसमुद्रसेतर-

नेको सत्संग नौका है। सत्संगसे आत्मविचार होताहै। जब विचार कर आत्मा स्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाना तब सत्संग कहांहै।हे पुत्र। वास्तवसे तो ऐसे हैं,जैसे स्वप्नकेही गुरु शास्त्र संत हैं,तिनका संगभी स्वप्नकाही है,मुमुक्षु बोध लेनेवाला तथा बोधसे पूर्व अज्ञान और अज्ञान जन्मबंध तथा बंध मोक्ष स्वप्नकाही है। सारांश यह कि, अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्मासे जो कुछ पृथक् प्रतीत होता है, सो सर्व स्वप्न नाम मायांमात्र मिथ्या है, भ्रम है। हे पुत्र। भ्रमरूप स्वप्नसे जाग्रत् हो। कचने कहा हे पिता। कथा उन पक्षियोंकी कहो, जो अमृत समान है। बृहस्पतिने कहा तू निश्चय नहीं करता, कथा क्या कहूँ? कचने कहा तुम्हारे संगसे मेरी बुद्धि नहीं रही, निश्चय कौनकरे? परन्तु तुम्हारे संगसे मुझको यह अनुभव हुआ है सो सुनो, "मैं चैतन्यरूप ब्रह्मात्मा, निरुपाधि,अक्रिय, असंग हूँ शरीरका धर्म, बाल,युवा, वृद्धादि तथा शरीरसे असंग तिनका द्रष्टा हूँ। मेरे स्वरूपमें न दिन है न रात्रि है;उदय अस्तसे रहित हूँ। न हेय है, न उपादेय है,न जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति है। न मैं स्थूल सूक्ष्मकारण शरीर हूँ।"तात्पर्य यह कि,कार्य कारण संघातरूप जगत्में नहीं,मैं मन आदिक जगत्का द्रष्टाहूँ।वाअस्ति भाति प्रियरूप द्रष्टा दर्शन दृश्यरूप मैं चैतन्यही हूँ तथा द्रष्टादर्शनदृश्यसे परेभीमैं चैतन्यही हूँ। अवाङ्मनसगोचरभी मैंही चैतन्य हूँ और अवाङ्मनसगोचर भी मैं चैतन्यही हूँ। मुझ चैतन्यकी महिमा अवाच्यपद् है, वाणीसे क्या कहूँ? पर ब्रह्मयज्ञ कहो, मैं कानों विना सुनता हूँ, तुम वाणी बिना कहो। बृहस्पतिने कहा मेरे संगने तुझको फल दिया, जो आपा अहंकार तूने विचाररूप अग्निसे जलाया और आप हुआ अब ब्रह्मयज्ञ सुनो।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! बृहस्पति कहने लगा कि हे पुत्र! सब पक्षी एक भाषा कहने लगे कि हमारा स्वरूप है सो न ग्रहण किया जाता है न त्यागकिया जाता है। बंध, मोक्ष,ज्ञान, अज्ञान, माया अमाया, हमारे स्वरूपमें नहीं और सर्व हमही हैं।कुलंगने कहा, जो कुछ तुम कथन चिंतन करतेहो सो मेरा स्वरूप नहीं, तिससे में चैतन्य अतीतहूँ,जो तुम कथन चिंतन करते हो सो सब उपाधि है। सबने कहा उपाधि, अनउपाधि, धनी, दरिद्री पाप, पुण्य, हमहीं हैं और इनसे रहितभी हमहीं हैं।दिन, रात्रि, क्रिया, अक्रिया, कर्ता, अकर्ता, भोक्ता,अभोक्ता, योग, अयोग सब हमहीं हैं। भूत भविष्यत्, वर्तमान जो कुछ है सो सब हमहीं हैंऔर सर्वसेअतीतभी हमहीं हैं;जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नप्रपंचरूपभीहै और तिस स्वप्न जगत्से अतीतभी है। तैसे अस्ति,भाति, प्रियरूप, सर्व हमहींहैं; सर्व नामरूप कल्पितका अधिष्ठान साक्षी द्रष्टा होनेसे सर्वसे अतीत है। कोकिलाने कहा तुम सब वायुमें धरे घट शब्दके समान शब्द करते हो क्योंकि जो पूर्णहै सो क्या कहे?सबोंने कहा हे कोकिला! जो संतने कहा है सो क्या पूर्ण नहीं?कोकिलाने कहाकहना,चिंतनकरना, द्वैतमें होता है, संतपद अवाच्य है। संतअनिच्छित हैं,चाहना नहीं रखते, तो क्या कहे, कहनाचाहनामें है। सबने कहा आप्तकामवचन करता है कि, नहीं?कुलंगने कहा सम्यक् अपने ब्रह्मरूपआत्माके अपरोक्ष ज्ञाता पुरुषपर,शास्त्रकीविधिनहीं;वचन करेवान करे, तिसकाद्रष्टा कोई अन्य नहीं, आप स्वयं है। मयूरने कहा ब्रह्मा, विष्णु, शिव यह आप्तकाम हैं, इसीसे श्रेष्ठ हैं। कुलंगने कहा हे साधो !सर्वथा विचारेंतो मनआदिकोंकासाक्षी चैतन्य आत्माही आप्तकाम हैं क्योंकि आप्तकाम होना, और अनाप्तकाम होना, सब मनके स्वभाव हैं, तिनका साक्षी आत्मा निर्विकार निर्विकल्प है, तिसमें आप्तकाम अनाप्तकामादि नहीं ।

भी आप्तकामता तथा अनाप्तकामता नहीं क्यों जड विकारी है। इस कारण चाहना अचाहना मनविषे है और मन असत् है। इससे तिसका कर्तव्य भी असत् है। जबतक शरीर है, तबतक सर्व रीतिसे आप्त काम नहीं हो सकता, चाहे ब्रह्मा विष्णु शिवादिक होवें। देहधारी किसी काममें तो आप्तकाम होता है और किसीमें अनाप्त काम होता है, यह सर्वके अनुभव सिद्ध है। इस हेतु मन-के धर्म आप्त अनाप्त कामोंका साक्षी आत्माही सर्वरूपसे आप्त काम है। शिवने कहा हे कुलंग। माता पिता तेरे कौनहैं? कुलंगने कहा मैं चैतन्य आपही पिता माता पुत्र रूप हूँ, तिनसे रहित भीहूँ। सर्व नाम रूप दृश्यरूपी पुत्रका पिता नाम कारण मैं चैतन्यहीहूँ, मेरा पिता नाम कारण कोई नहीं स्वयं हूँ जैसे स्वप्नद्-ष्टाही स्वप्नके निद्रारूप अविद्या कारण माता पिता पुत्ररूपआपही है, निद्रारूप अविद्यासे रहित तिनसे अतीत भी है तथा सर्व स्वप्न प्रपंचका पिता नाम कारण भी आपही है, तिसका पिता नाम कारण और कोई नहीं। शिवने कहा तेरा गुरु कौन है? कुलं-गने कहा मैं चैतन्य गुरुशिष्य भावसे रहित, सर्वदृश्य जडका गुरु नाम शासन करनेवाला हूँ; तथा नियामक हूँ। गुरु शिष्य भी मैं चैतन्यही हूँ, स्वप्नवत्। हे शिव। यह सब दर्शन मेरा है, मैं ही चैतन्य अदर्शन नाम स्वयंप्रकाश स्वरूपभी हूँ। शिवने कहाजाति तेरी क्या है? कुलंगने कहा अजातिहूँ, जातिउपाधिहैतथा मलीन है, मैं चैतन्य निरुपाधि हूँ तथा माया तत्कार्यरूपी मलसे रहित हूँ। हे शिव। तेरा वचन केवल कथन मात्र है, मैं अवाच्यपद हूँ।

शिवने विष्णुसे कहा कुलंगक्याकहता है? विष्णुने कहायहसब-का मूल उखाडता है क्योंकि आदि हम तीनोंदेवतोंको उठाताहै, पीछे दृश्यको, इससे इसका वचन सुनना योग्य नहीं। शिवनेकहा क्या भय है? हम चैतन्य इसके आत्मा हैं, अपने आत्माको कोई

उखाड़ नहीं सक्ता। नामरूप दृश्यको तुम भी उठाते नाम असत् कहते हो आत्माको सत् कहतेहो, सोई बात यह कहताहै।धन्यहै! जो सम्यक् स्वरूपको जानताहै मैं सर्व त्रिलोकीको ग्रास (महाप्रलयमें) करताहूँ पर जिसको अहंकार रहित सम्यक् निजबोध हुआहै सो मुझको ग्रास करलेताहै।हे विष्णु।इसीपर एककथा सुनो।

राजा भरतकी कथा।

एक समय भरत राजा (जिसके नामसे यह भरतखंड नाम पड़ाहै सो)राज्य छोडकर वनको गया,वहां देखा कितनेक तपस्वी शरीर इन्द्रियोंको कष्टदेनारूप तपमें आरूढहैं, केते ध्यानमें लगेहैं। एक और संत देखा जो आत्मविचारमें है और शिष्योंको उपदेश करताहै कि, न तू, न मैं, न यह जगत्, एक चैतन्य आत्माही है। राजाने निकटजाकर हाथ जोडके कहा कि,हे विद्वन्। मुझको भी आत्मउपदेश करो ? इस असार संसारसे मुझको वैराग्य हुआहै तुम्हारी शरण आयाहूँ। संतने कहा ज्ञान उपदेश यही है कि, हूँ मैं अहंकार को त्याग, अर्थात् "न मैं हूँ, न यह जगत् है एक चैतन्य विष्णुही है" ऐसा जान। राजाने विचारा जो संत कहते हैं- सो सत्है, पर जब सर्व विष्णुव्यापक चैतन्य है,तो मैं कौन हूँ, अथवा मैं विष्णुहीहूँ। पुनः विचारा कि,विष्णुको मैंने जानाहै,मैं जाननेवाला कौनहूँ?पुनः राजाने संतको कहा हे विद्वान् पुरुष ! विष्णु शिवको जाननेवाला मैं कौन हूँ,सन्तने कहा तू ब्रह्म है यह वचन सुनकर विचारा कि,जैसे मैंने विष्णुको जाना था,तैसे ब्रह्मको जाना. पर आपको नहीं जाना कि, मैं कौन हूँ। संतने कहा हे भरत! तत्त्वं असिपद अर्थात् जीव,ईश्वर, ब्रह्म, तुझ चैतन्य आत्मासेही सिद्ध होतेहैं,जो तू चैतन्य आत्मा न होवे तो इनको कौन जाने। परंतु तुझ, चैतन्य आत्माका कोई सिद्ध-करनेवाला नहीं; तु स्वयंप्रकाश स्वरूप है क्योंकि, तुझ

चैतन्य आत्मासर्वके द्रष्टाका और कोई द्रष्टा है नहीं, इसीसे तू स्वयंप्रकाशहै । हे भरत। जो कुछ जीव ईश्वर,ब्रह्म, जगत् तत्कारण अज्ञान, मन वाणीका कथन चिंतनहै तिससे तू चैतन्य आत्मा अलगही निकलेगा, इसीसे तू मन वाणीका अगोचर है। जीव, ईश्वर, ब्रह्म, सब शेपहैं; तू चैतन्य मात्र निर्विशेपहै, जैसे घटाकाश, मठाकाश,महाकाश, निर्विशेप; (निरुपाधिक) आकाशमात्रसेही, सब शेप सिद्ध होते हैं क्योंकि सविशेष नामघट उपाधिवाला हैं इससे तू विज्ञानको प्राप्त हुआहै चुप हो। भरतने कहा तूष्णीं अतूष्णीं आदि सर्व व्यवहार, मनवाणी शरीर आदि संघातकाहै, मुझ चैतन्यका नहीं। सन्तने कहा तूष्णीं नाम निर्विकल्पकाहै, सो तू चैतन्य आत्मासे स्वतः सिद्धही निर्विकल्पहै क्योकि, मनादिकोंकी निर्विकल्पता और सविकल्पताका साक्षी द्रष्टा है. इससे अपने आत्माको स्वाभाविक निर्विकल्प जानना इसीका नाम तूष्णींहै। भरत यह संतका वाक्य सुनकर स्वरूपमें लीनहुआ।

शिवने कहा हे विष्णु। काल पायकर धर्मरायने दूतको भेजा, भरतको ले आओ। धर्मरायकी आज्ञासे जाकर दूतने देखा तो भरत नाम मात्रभी नहीं, अंतर बाहर केवल शिव है सारांश यह कि, "मैं भरत हूँ,इस परिच्छिन्न अहंकार से रहित अस्ति भाति प्रियरूप मैं चैतन्य आत्माहूँ, सर्व मनादिक दृश्य से रहित और मनआदिक सर्व दृश्यका द्रष्टा, अवाङ्मनसगोचर स्वप्रकाशरूपहूँ" यह तिसका दृढनिश्चयथा। अवाङ्मनसगोचर निश्चयभी मनवाणीका कथन चिंतन रूपहीहै सो मैं नहीं;जो मैं सोईहूँ, कथन चिंतन क्या करूं।दूतदेखकर आश्चर्यमें हो रहा कि, मैं किस वस्तुको शरीरसे निकासकर धर्मरायके पासलेजाऊं। पुनः धर्मरायके निकट गया और कहा—हे धर्मराय। तू सब सन्तोंको मार, जो लोकोंको हमारे हाथसे आत्म उपदेश करके छुडा

देते हैं क्योंकि तेरी आज्ञासे जब हम भरतके निकट गये उसके देह अभिमानको सर्व रूपकर खोजा, पर न पाया। देहाभिमान विना ल्यावें किसको ? हे धर्मराय ! तेरी फांसमें देहाभिमानीही पडताहै, अन्य नहीं। तात्पर्य यह कि, इस पंचभौतिक संघातको अपना अहं अभिमान करनेसेही, यह जीव स्वर्ग नरकको जाताहै, अन्य नहीं कि, जो दूसरेकी वस्तुमें, स्वत्व करताहै यह जगत्में प्रगट है न्याय-पूर्वक जेलखानेमें जाता है। हे विष्णु! मैं विचरता हुआ भरतकेपास गया, सूक्ष्मदृष्टिसे देखा तो यही कथन चिंतन करताथा सर्व मैं चैतन्यही हूँ और सर्वसे अतीतभी हूँ, पर यहभी कथन चिंतन मन वाणीका है, मैं चैतन्य इनसेभी अतीत हूँ, पुनःइस अतीतपनेसे भी अतीत हूँ। मैंने कहा हे भरत! तू धन्य है जो स्वरूपसे जुडा है। भरतने कहा जुडना न जुडना मुझ चैतन्यमें नहीं यहमायामात्रदृश्यमें है। मैंने कहा जब सर्व तूही चैतन्य है तो दृश्य अदृश्य जुडना अजुडना-दिभी तूही है। भरत तूष्णीं हुआ (तूष्णींनाम निर्विकल्प अवस्थामें प्राप्त होनेका है) पुनःमैंने दो तीन बार प्रश्नकिया कि, हे भरत! कौन तू है? उत्तर कुछ न दिया क्योंकि तिसकालमें परिच्छिन्न भरतभाव नहीं था किंचित् काल पीछे बोला बडा आश्चर्यहै कि है आप शिव और पूछता है तू कौन है? हे शिव! भरतको ज्ञानरूपी कालने खाया और कालको मैं चैतन्यस्वयंरूपने खाया क्योंकि भरतनाम अज्ञा-नकाहै और अज्ञानको ज्ञान नाश करताहै सो ज्ञान मुझ चैतन्य अ-धिष्ठानमें लीन होजाताहै, जैसे रज्जुके अज्ञानको रज्जुकाज्ञाननाश करता है और वृत्तिरूप ज्ञानभी मायाका कार्य होनेसे, कल्पित रज्जु सर्पवत् है। इससे सो ज्ञान भी ज्ञानस्वरूप चैतन्य अधिष्ठानरूप है। मैंने कहा हे भरत! मैं तेरे पास आया हूँ; कुछ आत्मनिरूपण कह। भरतने कहा निकट दूर मुझ चैतन्यमें नहीं। अवाच्यपदको क्या कहूँ ? और मुझसे भिन्न कौन है जो कहूँ, स्वयंरूप हूँ।

जीव दुःखी क्यों होताहै।

शिवने कहा हे विष्णु। जिस किस योनिमें स्थित हुआ२ यह बुद्धि आदिकोंका साक्षी चैतन्य आत्मा निर्विकार निर्विकल्प बंध मोक्षादि संसार धर्मोंसे रहितही स्थितहै, परंतु जबतक अपनीअद्भुत महिमाको नहीं जानता; तबतक (संसारी भ्रमकर)आपको दुःखी मानता है।जब पूर्वपुण्योंके प्रतापसे सत्संगद्वारा अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जानता है, तिस तिस योनि शरीरके अभिमानसे रहित होकर तथा सर्वविश्वका आत्माहोकर बंधमोक्षादि सर्व संसार धर्मोंसे मुक्त होता है, तिसकों कौन नाश करे ? विष्णुने यह इतिहास सुनकर कहा हे शिव। मैं सर्व जगत्‌की पालना करता हूँ, तू सर्व जगत्‌का संहार करताहै, ब्रह्मा सर्व जगत्‌की उत्पत्ति करताहै, पर जो आप्तकाम सम्यक् अपने आत्माका ब्रह्मरूप कर अपरोक्ष बोधवान्‌है, सो जगत् सहित हम तीनों देवतोंका पालन है अर्थात् अपनी सत् चित् आनंदस्वरूपस्फूर्तिकर, सर्व असत् जड दुःख रूप दृश्यको स्फुरना करता है नाम सत चित्सुखरूप प्रतीत होता है, जैसे स्वप्नद्रष्टा अपने स्वरूप प्रकाशकर अप्रकाश स्वप्न प्रपंचको प्रकाशमान करता है। इसीपर एक कथा सुन ।

एक राजपुत्रकी कथा।

विष्णुने कहा हे शिव। एकराजा था औरएकही तिसका पुत्र था सो बालपनमें मेरी उपासनाकरताथा।बैठतेउठते खातेपीतेसोतेजागते सर्व कालमें विष्णुविष्णु कहतारहताथा और राजविद्यादिकुछ सीखता नहींथा।पिताने कहा हेपुत्र।जबमैं शरीर त्यागूंगा तबराज्य कौन करेगा ? सर्व कालमें विष्णु विष्णु कहने और भूतके समान तिसके पीछे दौड़नेमें क्या लाभहै।जो कोई किसीका नामलेवारंवार बुलाते हैं वह क्रोध करताहै। तिसका तू दिन रात्रि नाम लेता

है क्या वह क्रोध न करेगा ? किंतु करेगाही।हे पुत्र ! विष्णु शब्द जो वाचक है सो किस नामी वाच्य अर्थका वाचक है, यह तुझको विचार करना चाहिये। विष्णु नाम सत्, चित्, आनंद, व्यापक वस्तुका है, सोई बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप है। सो अपने ऐसे स्वरूपकी प्राप्तिवास्ते जंगलमें जाना और आत्म-विचार विना और उपाय करना, पुनःपुनः अपना नाम लेना लज्जाका काम है। हे पुत्र ! विष्णु तेरा आत्मा है,जो तू विष्णुको अपने आत्मासे पृथक् जानेगा तो विष्णु अनात्मा सिद्ध होगा, तो तेरी भक्तिका लक्षण सिद्ध न होगा। इस प्रकार विद्वान् पिताने अनेक रीति कही पर पुत्र वैसेका वैसाही रहा।कछुक काल पायकर पिता तिसका कालवश हुआ। पीछे शत्रुओंने राज्य लेलिया, पर राजाके पुत्रको कुछ हर्ष शोक नहीं हुआ, मेरे स्मरणमेंही उन्मत्त रहा। हे शिव ! मैं तिसके पास गया और कहा हे पुत्र ! तू राज्य कर और प्रजाके पालनका बंदोबस्त मैं करूँगा। उसने कहा मैं तेरीभी चहाना नहीं रखता,तो राज्यकी क्या बात है,तुझसे विशेप क्या वस्तुहै,जो तुझको त्यागकर उसको लूँ।राज्य सहित त्रिलोकी को मैंने तृण समान जानाहै।उसकी तो यह अवस्था हुई वनोंविपे विचरने और आप सहित सर्व विष्णुही कथन चिंतनकरने लगा।

ज्ञान तथा उपासनादिका स्वरूप और फल।

कचने कहा हे पिता ! आप सहित सर्व विष्णु आत्मा चैत-न्यहीहै यही ज्ञानहै। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! "आप सहित सर्व विष्णु आत्माही मेरा स्वरूप है" यही अर्थ सम्यक् बुद्धिमें जच-जानेका नाम ज्ञान है। यह पूर्वोक्त अर्थ बुद्धिमें नहीं जाचना और विष्णु शिवादिकोंको अपने आत्मासे पृथक् मानके तिसका नाम और स्वरूप कथन चिंतन करनेका नाम भेद उपासना (भक्ति) है। आपसहित सर्व विष्णुही है, वा ब्रह्म है वासुदेवहै

जीव दुःखी क्यों होताहै ।

शिवने कहा हे विष्णु ! जिस किस योनिमें स्थित हुआ२ यह बुद्धि आदिकोंका साक्षी चैतन्य आत्मानिर्विकार निर्विकल्प बंध मोक्षादि संसार धर्मोंसे रहितही स्थितहै,परंतु जबतक अपनीअद्भुत महिमाको नहीं जानता;तबतक (संसारी भ्रमकर)आपको दुःखी मानता है।जब पूर्वपुण्योंके प्रतापसे सत्संगद्वारा अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जानता है,तिस तिस योनि शरीरके अभिमानसे रहित होकर तथा सर्वविश्वका आत्माहोकर बंधमोक्षादि सर्व संसार धर्मोंसे मुक्त होता है, तिसकों कौन नाश करे ? विष्णुने यह इतिहास सुनकर कहा हे शिव ! मैं सर्व जगत्की पालना करता हूँ,तू सर्व जगत्का संहार करताहै,ब्रह्मा सर्व जगत्की उत्पत्ति करताहै,पर जो आप्तकाम सम्यक् अपने आत्माका ब्रह्मरूप कर अपरोक्ष बोधवान्है,सो जगत् सहित हम तीनों देवतोंका पालन है अर्थात् अपनी सत् चित् आनंदस्वरूपस्फूर्तिकर,सर्व असत् जड दुःख रूप दृश्यको स्फुरना करता है नाम सत् चित्सुखरूप प्रतीत होता है,जैसे स्वप्नद्रष्टा अपने स्वरूप प्रकाशकर अप्रकाश स्वप्न प्रपंचको प्रकाशमान करता है । इसीपर एक कथा सुन ।

एक राजपुत्रकी कथा ।

विष्णुने कहा हे शिव ! एकराजा था औरएकही तिसका पुत्र था सो बालपनमें मेरी उपासनाकरताथा।बैठतेउठते खातेपीतेसोतेजा-गते सर्व कालमें विष्णुविष्णु कहतारहताथा और राजविद्यादिकुछ सीखता नहींथा।पिताने कहा हेपुत्र।जबमें शरीर त्यागूंगा तबराज्य कौन करेगा ? सर्व कालमें विष्णु विष्णु कहने और भूतके समान तिसके पीछे दौड़नेमें क्या लाभहै?जो कोई किसीका नामलेवारंवार बुलाते हैं वह क्रोध करताहै ।' तिसका तू दिन रात्रि नाम लेता

है क्या वह क्रोध न करेगा ? किंतु करेगाही।हे पुत्र ! विष्णु शब्द जो वाचक है सो किस नामी वाच्य अर्थका वाचक है, यह तुझको विचार करना चाहिये। विष्णु नाम सत्, चित्, आनंद, व्यापक वस्तुका है, सोई बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप है। सो अपने ऐसे स्वरूपकी प्राप्तिवास्ते जंगलमें जाना और आत्मविचार विना और उपाय करना, पुनःपुनः अपना नाम लेना लज्जाका काम है। हे पुत्र ! विष्णु तेरा आत्मा है,जो तू विष्णुको अपने आत्मासे पृथक् जानेगा तो विष्णु अनात्मा सिद्ध होगा, तो तेरी भक्तिका लक्षण सिद्ध न होगा। इस प्रकार विद्वान् पिताने अनेक रीति कही पर पुत्र वैसेका वैसाही रहा।कछुक काल पायकर पिता तिसका कालवश हुआ। पीछे शत्रुओंने राज्य लेलिया, पर राजाके पुत्रको कुछ हर्ष शोक नहीं हुआ, मेरे स्मरणमेंही उन्मत्त रहा। हे शिव ! मैं तिसके पास गया और कहा हे पुत्र ! तू राज्य कर और प्रजाके पालनका बंदोवस्त मैं करूँगा। उसने कहा मैं तेरीभी चहाना नहीं रखता,तो राज्यकी क्या बात है,तुझसे विशेष क्या वस्तुहै,जो तुझको त्यागकर उसको लूँ?राज्य सहित त्रिलोकी को मैंने तृण समान जानाहै।उसकी तो यह अवस्था हुई वनोंविषे विचरने और आप सहित सर्व विष्णुही कथन चिंतनकरने लगा।

ज्ञान तथा उपासनादिका स्वरूप और फल।

कचने कहा हे पिता ! आप सहित सर्व विष्णु आत्मा चैतन्यहीहै यही ज्ञानहै। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! "आप सहित सर्व विष्णु आत्माही मेरा स्वरूप है" यही अर्थ सम्यक् बुद्धिमें जचजानेका नाम ज्ञान है। यह पूर्वोक्त अर्थ बुद्धिमें नहीं जाचना और विष्णु शिवादिकोंको अपने आत्मासे पृथक् मानके तिसका नाम और स्वरूप कथन चिंतन करनेका नाम भेद उपासना (भक्ति) है। आपसहित सर्व विष्णुही है, वा ब्रह्म है वासुदेवहै

इत्यादि तिनको अपनेसे अभेद संभावना करके परमात्माकी सर्वरूपताका जो निरंतर कथन चिंतन है, सो अभेद उपासना भक्ति कहाती है। मैं चैतन्य ब्रह्मरूप आत्मा अस्ति भाति प्रिय सर्वरूपभी हूँ और असर्वरूपभी हूँ,सब जगत्‌की मैं चैतन्य आत्माही उत्पत्ति पालन संहार करता हूँ। तथा निर्विकार असंग हूँ। सारांश यह कि, त्रिपुटीरूपभी मैं हूँ,त्रिपुटीसे रहितभी मैं हूँ,अवाङ्मनसगोचरभी मैं हूँ वाङ्मनसगोचर भी मैंही हूँ। वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर शब्दसे अतीत भी हूँ,तिस अतीत शब्दसेभी अतीत हूँ इत्यादि अर्थ अपरोक्ष सम्यक् अंतःकरमें जच जानेका नाम ज्ञानहै। इसी अर्थकी अपने स्वरूपमें संभावना करनेका नाम अहंग्रह उपासना है और तत्त्वदर्शी अभेद उपासना कहते हैं।हे पुत्र!जब अहंग्रह उपासनाके निरंतर चिंतन करते हुये ज्ञान नहीं प्राप्तहो तो अत्यंत अश्वमेधादि यज्ञोंका फलरूप,वा अहंग्रह उपासनाका फलरूप वा अत्यंत पुण्योंका फलरूप जो ब्रह्मलोक सप्तमीव्याहृति है तिसको प्राप्तहोता है। तहां अनन्तब्रह्माकी आयुपर्यंत भोगोंको भोगकर, ब्रह्माके उपदेशसे वा सत्वगुणकी तहां प्रधानता होनेसे स्वतःही पूर्व अहंग्रह उपासनाके प्रतापसे सम्यक् अपने स्वरूपका अपरोक्ष ज्ञान होता है। पश्चात् ब्रह्माके साथ विदेह कैवल्य मोक्षको प्राप्त होता है; तिसकी पुनरावृत्ति नहीं होती इत्यादि शास्त्रोंका लेख है। जिसको अहंग्रह उपासना करते इसी वर्त्तमान जन्ममें अपने ब्रह्मरूप आत्माका सम्यक् अपरोक्ष बोध हुआ है, सो शरीर होतेही आपको, बंध मोक्षादि संसारसे रहित शिवरूप जानता है। जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति तिसको तुल्य है क्योंकि जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति आनात्म, मन शरीरादिक संघातके धर्म हैं आत्माके नहीं। जो पूर्वजन्मोंमें कृत्यउपासक है उनको श्रवणमात्रसे, वा स्वभावसेही,श्रवणविना वा वेदांत श्रवण मात्रसे,सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका,प्रतिबंधक रहित ज्ञान होता है।

हे पुत्र! वह राजाका पुत्र रात्रिको वनमें विचरताथा, तिस समय तिसी वनमें दत्त विचरते हुये स्वभावसे राजाके पुत्रके पास आये और कहा इस समय तू कौन है? राजपुत्रने कहा मैं विष्णुका दास हूँ। दत्तने कहा बडा आश्चर्य है वह स्वामी और तू सेवक परन्तु आपा अहंकाररूप मलिनता तेरी दूर न की, दास स्वामी भावरूप उपाधि दूर न हुई। राजपुत्रने कहा जब सर्व विष्णु है तो तूभी विष्णु है, मैं भी विष्णुहूँ, यह जगत् भी विष्णुहै दूर समीप भी विष्णु है। पर कहो उपाधि मलिनता (नामरूप) कैसे दूर होवे? दत्तने कहा जब सर्व विष्णु है, तो तू बीचमें कौन है, जो आपको दास माना है मानो विष्णुको तूने खंड खंड किया है। यही उपाधि मलिनताभ्रम है कि, एक अस्ति भाति प्रियरूप विष्णु आत्मा मैं दास यह दास स्वामी भाव बनानाही भ्रमहै। हे राजपुत्र! सत् चित् आनंदरूप विष्णु तेरा रूप है, आपा अहंकारको त्यागकर देख। पीछे शेष जो अवाच्यपद है, वही तेरा स्वरूप है। दास स्वामी भाव कथन चिन्तन संघातका धर्म, स्वप्नवत् है। तू स्वप्नद्रष्टा चैतन्य स्वप्न व्यवहारोंमें क्यों बन्धमान होता है। तथा क्यों भयमान होता है? जब विष्णुको तू, अपना आत्मा सम्यक् अपरोक्ष जानेगा तो विष्णु प्रसन्नहोगा क्योंकि, विष्णुका स्वरूप यथार्थ यही है, अन्य मायामात्रहै। मायाके भजन चिन्तनसे क्या लाभ है? जो लाभ होगा तो मायाकाही होगा क्योंकि जैसे कोई भावनारूप उपासना करता है, वैसाही तिसका रूप होता है। मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा हूँ। ऐसी दृढ निरन्तर भावना करेगा तो वही रूप होवेगा। जो इससे पृथक् भावना करेगा तो वही रूप होवेगा। राजपुत्रने कहा मुझको वैराग्य उत्पन्न हुआ है, ज्ञान उपदेश करो। दत्तने कहा नाम रूपको त्याग नाम मिथ्या जान। प्रतीति मात्रही नाम

रूपका स्वरूप है; भिन्न नहीं। अपनेको नामरूपका अधिष्ठान सत् चित् आनंद स्वरूप जान जो कुछ नाम रूपमें सार है सो तूही है;जैसे स्वप्न प्रपंचका सार स्वप्नद्रष्टा है।जैसे भूषणोंका सार सुवर्ण है;इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं,राजपुत्रने कहा हे दत्त!मैंने अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जाना है अर्थात् मैं मन वाणी आदि संघातका द्रष्टा मन वाणीसे अतीत हूँ और मन वाणीका विषयभूत त्रिपुटीरूप भी मैंही हूँ, स्वप्नद्रष्टावत्।दत्तने कहा हे राजपुत्र ! जबतक जानना न जानना तू अपने स्वरूपको जानेगा, तबतक स्वरूपकी अप्राप्तिहै,जब जानना न जानना तेरे स्वरूपमें न रहा, तो तुझको स्वरूपकी प्राप्ति हुई क्योंकि, तुझ अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मासे जानना न जानना भिन्न नहीं । जिसको तूने जाना और न जाना।जब तूही है किसको जाने और किसको न जाने? इतना सुन राजपुत्र स्वरूपविषे लीन हुआ ।

विष्णुने कहा—हे शिव ! मैंने अंतर्यामी रूपसे जाना कि, दत्तने राजपुत्रको अपना सत् उपदेश कर सम्यक बोधवान् कियाहै।तब तिस राजपुत्रके पास मैं गया और कहा हे राजपुत्र ! इस अपने शरीरको मुझको सौंप। मैं इसकी योग क्षेम रूप पालना करूँगा। राजपुत्रने कहा हे विष्णु!सर्व जगत्की पालना मैं चैतन्य आत्मा करता हूँ क्योंकि तुझ विष्णु नामरूप सहितसर्व जगत्,मुझ चैतन्य आत्मासे प्रकाश राखते हैं।मुझ चैतन्य आत्माका प्रकाशक कोई नहीं,मैं स्वयं हूँ;जैसे स्वप्नद्रष्टाहीसर्वस्वप्न जगत्कीपालनाकरताहै। स्वप्नके कल्पित पदार्थ कोई किसीकी पालना नहीं कर सक्ते तैसे मैं चैतन्यही सर्व इस नामरूप मिथ्या पदार्थोंकी पालना नाम स्फुरणा करता हूँ;मैं तू मिथ्या पदार्थ कोई किसीकी पालना नहीं करसक्ता। हे शिव ! मैं तिस राजपुत्रके वचन सुनकर आश्चर्यवान होरहा कि, इसको क्याहुआ है।दास दमन पुकारता था आप हुआ।यह कृपा

दत्तकी है। मैंने पूछा रूप तेरा क्या है ? कहा रूप मेरा तू है। मैंने कहा मैं कौन हूँ ? कहा मैं हूँ। हे शिव ! इत्यादि अनेक वचन परस्पर कहे, पर राजपुत्रको अचल बोध हुआ था अपने स्वरूपसे न चलायमान हुआ। यह अवस्था तिसकी देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और अपने वांछित स्थानको गया।

बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! इसप्रकार आपसमें आत्मनिरूपणकर ब्रह्म आदिक देवता और पक्षी आप अपने वांछित स्थानको गये।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय! तब कच अपने अवाच्य पद स्वरूपमें स्थितहुआ, तू भी तिसके समान हो। मैत्रेयने कहा मैं नहींहूं तो तिसकी समान क्या होऊं ? जहां कुछ क्रियाकर होना है सो ठीक केवलस्वांग मात्र मिथ्याहै, जो कुछ है सो आगेही स्वतः सिद्धहै, केवल जाननाही योग्य है। पराशरने कहा तू कौन है ? मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्यसे भिन्न कौन है ? जो कहे तू अमुकहै, मैं अमुक हूं। जो किसी रीतिसे मुझ चैतन्य आत्मासे भिन्न दृश्य कहोगे,तो तिसको असत् जड दुःखरूप होनेसे,अहं त्वं फुरणानहीं और मुझ अवाङ्मनसगोचरमेंभी अहंत्वं फुरणा नहीं। अब कौन कथन,चिंतन करै, कि,मैं अमुक हूँ। पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तू स्वरूपको प्राप्त हुआहै अपने दृढबोधके वास्ते एक कथा सुन।

भुशुण्ड राजाकी कथा।

(ज्ञानकी दृढताके हेतु)

एक समय स्वाभाविक विचरते हुये दत्त कागभुशुण्डके आश्रममें गये (कागभुशुण्ड एक राजा हुआहै जो सगुण विष्णुरूप रामका उपासक था) तिसके आसनसे बाहिर सो रहे। भुशुंडके कुमार नामा पुत्रने दत्तको देखा और पिताको कहाकि,एक सन्त नगरसे बाहर सोया पडाहै,आपको दर्शनकरना योग्यहै। पुत्रका वाक्य सुनकर कागभुशुंड अभिमानसे रहित दत्तके पास आया

देखातो सारा शरीर धूलिकर लिप्त है,नहीं जानजाता यह कौनहै? प्रश्न किया हे रामरूप! तू कौन है ? दत्तसुनकर हँसा और कहा बडा आश्चर्यहै ? कहताहै हे रामरूप! और पूछताहै तू कौनहै ? हे कागभुशुण्ड! जब सर्व राम है तो तू और मैंभी रामहैं। कागभुशुण्डने कहा जब सर्व रामहै,तो पूछना अपूछनाभी रामहै। दत्तने कहा हे कागभुशुण्ड! तेरे समान जो वर्ण आश्रम राखता होवे तिससे पूछ! तू कौनहै? कागभुशुंडने कहा हे दत्त! वर्णाश्रमकी पोटका बोझ किसीने लादानहींहै,वर्णाश्रम मानना न मानना केवल मनका मननहै, जबतक शरीरहै तबतक कोई नकोई वर्णाश्रममें रहेगा क्योंकि,वर्णाश्रम शरीरके धर्महैं,जब धर्मीहै तब धर्मभीहै। इन दोनों धर्म धर्मीसे राम रूप आत्मा रहितहै, शरीरनहीं। दत्तने कहा हे कागभुशुण्ड! यही तो मैंभी कहताहूँ कि,जो कुछ तूने अंतर वा बाहर कथन चिंतन मानाहै,सो सब मनका मनन है,तू रामरूप आत्मा इससे अतीतहै। पर तुझको चाहिये एकांतबैठकर राम राम जप। कागभुशुण्डने कहा हे दत्त! तू आपही कहचुका है, यह सर्व नामरूप मनका मननहै,तो रसना रामराम कथनकरे मन तिस राम शब्दके अर्थको चिंतन करे, पर रामरूप आत्मा इनसे परेहै,और उरेभी रामरूप आत्माहीहै। इससे राम वा अन्य कथन चिंतन करना न करना रामही हुआ। पुनः भुशुण्डने कहा हे दत्त! नगरको चलो दत्तने कहा स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि नगरका वा स्थूल सूक्ष्म कारण व्यष्टि नगरका तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों नगरोंका तथा नगरनिवासि विश्व तैजस प्राज्ञजीवोंका, मैं चैतन्य एकही आकाशके समान, (सर्वका) आत्माहूँ और सर्व मेरे आत्मा हैं। मैं कहां चलूँ। चल अचल संघातका धर्महै, मुझ चैतन्य आकाशका नहीं। मैं चल अचलसे अतीत सदा चल अचलका साक्षीहूँ। जो शरीरकी प्रारब्धहै।

सो ईश्वर की भी शक्ति नहीं जो बढ घटकरे । हे भुशुण्ड ! देहाभिमान त्यागे पीछे अवाच रामही तेरा स्वरूप है। भुशुण्डने कहा देहाभिमानसे रामकी भक्ति होतीहै,कैसे त्यागूँ ? दत्तने कहा सुनाथा कि,कागभुशुण्ड परमहंस है, पर देखातो काग है क्योंकि, स्याना काग विष्टा परही बैठता है, माता पिताका मलरूप यह शरीर मल है, शरीराभिमानी काग है । मैं शरीरादिक हूँ, तथा शरीरके जन्म मरणादिक धर्मवान् हूं यह चिंतनही मलका भक्षण है । हे कागभुशुण्ड ! जिस रामचंद्र अयोध्यावासीका तू भजन करताहै,तिसका स्वरूप चैतन्य आत्मा मैं हूँ, सो मेराही तू भजन करताहै । वास्तवसे हे भुशुण्ड ! मुझ चैतन्यके अनेक रामादिक नामहैं।भजन रामका यहीहै"आप सहित जाने सर्व वहीहै,न और पर"यह बुद्धि तुझको कहांसेप्राप्त होवे,पिता तेरा काग,और माता तेरी हंसनी । तूने जानाहै कि,माया मेरे निकट नहीं आती,पर मायारूप शरीरके साथतू एकमेक होकर मायारूपही है।तेरे निकट माया कैसे आवे ? इसीको माया कहते हैं जो स्वामी दासभावसे रहित चैतन्यमात्रमें स्वामीदासभाव कल्पना।हे भुशुण्ड !ज्ञानदृष्टिसे वा भक्तिदृष्टिसे देख, जब तू परिच्छिन्न कुछ बनता है; तो राम भी है,जब तू नहीं;शेप जो है सो अवाचपद है, तिसका अनेक रामादि (नामीके बोध वास्ते) नाम रखते हैं। पर कह माया किसको कहते हैं।भुशुण्डने कहा रामरूप आत्मासे पृथक् जो कुछ जानना है, सोई माया है।दत्तने कहा इसीसे नित्य चित सुख निज आत्मासे भिन्न तत् त्वं ब्रह्मकी प्रतीति करना माया है । भुशुण्डने कहा हे दत्त ! संत जो यह चिंतन करते हैं,"अहं ब्रह्मास्मि"यह कैसे है ? दत्तने कहा यह चिन्तन मनका मनन मायारूप है क्योंकि तत् त्वं ब्रह्मादिक पदोंकी इसने कल्पना की है, यह कल्पना नहीं करे तो तत् त्वं आदिक कहां हैं? ज्ञानके प्रथम कालमें मैं ब्रह्मनहीं जीव हूँ

और ज्ञान पीछे ब्रह्म हूँ; विचार देखें तो जीव ब्रह्मसे प्रथम ही इस साक्षी चैतन्यकी सिद्धि होतीहै और इस साक्षी चैतन्यनेही जीव ब्रह्मको प्रकाश किया है।जो यह प्रथम सिद्ध नहीं होता तोवृत्तिरूप ज्ञानसे पूर्व अपनेमें ब्रह्मका अभावपना,जीवका सत्पना और ज्ञान पीछे अपनेमें ब्रह्मका सत्पना और जीवको अभावपनेका कैसे अनुभव होता,किन्तु नहीं होता । इससे मनके मननरूप सर्व पद इस साक्षी चैतन्यसेही प्रकाश रखते हैं क्योंकि, ज्ञान पूर्वकालमें मनने आपको जीवमाना, ब्रह्म नहीं माना,इस व्यवहारकोभी साक्षी चैतन्यने प्रकाश किया और ज्ञान उत्तरकालमें मननेही आपको ब्रह्ममाना,जीव नहीं माना;यहभीव्यवहार साक्षी चैतन्यने सिद्धकिया। विचार देखो तो कभी जीवमानना,कभी ब्रह्म आपको मानना केवल मनका मनन है।प्रत्यक् आत्मा तो सर्व मनकी कल्पनाका साक्षी और मनके मननते परे है।जैसे स्वम तत्त्वम् असिपद तथा सर्व स्वप्नके पदार्थ एक स्वप्नद्रष्टासेही सिद्ध होतेहैं और स्वप्नद्रष्टा सर्वसे प्रथम सिद्ध है ।सुख दुःखते रहित यह पद विज्ञानसे प्राप्त होता है। भुशुण्डने कहा रामरूप आत्माविषे प्राप्त अप्राप्त दोनों नहीं।सबमें रमण करनेवालेको राम कहते हैं, तिसमें सुख दुःख दोनों नहीं।हे दत्त। अंतःकरणरूपी दर्पणके मलके दूर करनेके अनेक साधन हैं, साधनों विना साध्य नहीं प्राप्त होता राम सर्व साधनोंका साध्य है।

मीमांसा।

तहां मीमांसा आया और कहा कि, जो वेदोक्तकर्म नहीं करेगा रामरूप कैसेहोवेगा?दत्तनेकहा आत्मा अक्रियहै,शरीर जड है,कहा कर्म कौन करै?कर्मोंसे रामरूप होताभी नहींक्योंकिजोयहरामनहीं तो हजार वेदोक्तकर्मोंके करनेसे राम कैसे होगा? दो रामरूप आनेहीसेहै भ्रमसे रूप आपको मानता है भ्रमकी निवृत्तिसे वही रूप

होताहै जैसे चिनगारी भ्रमसे आपको अग्निरूप न माने तो भी भ्रमकी निवृत्तिसे वही अग्निरूप होताहै। अनेक कर्म करनेसेभी अग्नि शीतलरूप नहीं होता। जल अग्निरूप नहीं होता। मीमांसा तूष्णीं हुआ।

वैशेपिक।

तिस समय वैशेपिक आया और कहा सर्व जगत् कालके अधीन है। दत्तने कहा कर्म है, तो अधीनताभी है, जब कर्म नहीं तो अक्रिय अविनाशी स्वतंत्र असंग आत्मामें कालका क्या संबंध है? वैशेपिक तूष्णीं हुआ।

न्याय।

पुनः न्याय आया और कहा जो कुछ करता है सो ईश्वर करता है। दत्तने कहा कर्म है तो करता भी है, जो कर्म नहीं तों करता कहां है?दंडसे दंडीहै, दंडनहीं तो दंडी कहांहै? न्याय तूष्णीं हुआ।

पतञ्जली।

पतंजली आया और कहा योगसे मुक्ति होती है। दत्तने कहा योग स्वप्रकाश है कि, किसीका किया होता है? पतंजलीने कहा किसी कर्तासे योग होता है। दत्तने कहा कर्ताका क्या स्वरूप है, मन वा आत्मा? पतंजलीने कहाप्रत्यक् आत्माअसंग निर्विकारहै शेप जड चेतनकें मध्यवर्ती,साक्षी चेतनके आभास सहित,अंतःकरणही योगका करता है।आत्मा पुरुप योगका अनुभव करताहै। दत्तने कहा अधिकारी पुरुपको अपनेको क्या जानना चाहिये? आत्मा कि अंतःकरण? पतंजलीने कहा--आत्मा। दत्तने कहा आत्मामें योग है वा नहीं? पतंजलीने कहा नहीं। दत्तने कहा फिर योगसे क्या प्रयोजन है? पतंजली तूष्णीं हुआ।

सांख्य।

पुनः सांख्य आया और कहा,नित्य अनित्य विचार करे विना

स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती । दत्तने कहा नित्य अनित्यका विचार द्वैतमें होता है और मनके धर्म नित्य अनित्य विचारसे आत्मा असंग है साक्षी होनेसे । सांख्य तूष्णीं हुआ ।

राम ।

लक्ष्मण सीता। सहित राम आये । दत्तने कहा हे भुशुण्ड! कह मैं रामरूपहूँ, नहीं तो तुझको (तथाराम तुम दोनों जीवईश्वरको) भस्म करूँगा, जैसे स्वप्नके जीव ईश्वर स्वप्नद्रष्टाके जाग्रत् हुये नाश होते हैं ।राम सुनकर हँसे और कहा हे भुशुंड ! निःसंशय निर्भय होकर कह "मैं रामस्वरूप हूँ" क्योंकि,जब सर्वरामहै तो जुदा कहां हैतूभी रामहै।भुशुण्डने प्रसन्न होकर कहाराम कहनेसे नहीं होता दृश्य द्रष्टा नहीं होसक्ता द्रष्टा दृश्य नहीं होसक्ता, यह न्याय है । रामने कहा भुशुण्ड स्वप्नमें द्रष्टाही दृश्यरूप होता है और दृश्यका स्वप्नद्रष्टासे भिन्न स्वरूप कुछ नहीं । इससे वह निषेध पक्ष अपने स्वरूप आत्माकी असंगता तथा निर्विकारताके बोध अर्थ है । सर्व राम है, यह विधि पक्ष फलरूप है ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! राम और दत्तके वचनसे भुशुण्ड स्वरूपको प्राप्तहुआ । हे मैत्रेय ! तूने कभीभी वर्णाश्रम अभिमानका कारण जो देहाभिमान है, तिसको न त्यागा। मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्य विषे देह होवे वा मुझ चैतन्यका देह धर्महोवे तो त्याग भी करूँ,अनहुई वस्तुका त्याग कैसे करूँ ? दूसरा यह कि, मुझ चैतन्यको देहाभिमान किंचित् मात्रभी हर्ज नहीं करता जैसेस्वप्ननरकादेहाभिमान स्वप्नद्रष्टाको हर्ज नहीं करता क्योंकिमुझचैतन्यको असंग स्वप्रकाश होनेसे द्रष्टाका हर्जदृश्य कुछ नहीं करसक्ता, जैसे पृथिवी, आप, तेज, वायु तथा तिनके कार्य तिनमें व्यापक असंग आकाशकाहर्जा नहीं करसक्ते। देहाभिमान मन करता है तथा नहीं करताहै, इन दोनों अवस्थाका साक्षी मुझ असंग

चैतन्यकी क्या हानिहै? जो मुझमें अभिमान हो तो मैं त्यागूँ भी जो नहीं हो तो त्यागूँ कैसे? पराशरनेकहा--यह सब तू बातें बनाता है, तुझको निश्चय नहीं। मैत्रेयने कहा आपने कहा--सो ठीक है क्योंकि मुझ अवाचपदको बुद्धि निश्चय कैसे करे, बुद्धि तो नाम रूपकाही निश्चय करती है, मैं नामरूपसे रहित हूँ।

कपिल और एक राजाका संवाद।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इसपर एक इतिहास सुन। एक राजाथा वह नित्य कपिलमुनिके दर्शन करताथा। एकदिन प्रश्नकियाकि हे ऋषि! यह जगत् क्या है? तू कौनहै? मैं कौनहूँ? ऋषिने कहा न तू, न मैं, न यह जगत् एक ब्रह्मही है। तू मैं यह जगत् सब ब्रह्मस्वरूप है। राजाने कहा मैं तू जगत् नहीं तो ब्रह्म क्या है? ब्रह्मको नहीं जानता। कपिलने कहा ब्रह्म तुझसे प्रकाश रखता है क्योंकि जब तूने शास्त्र संतोंका वचन नहीं सुना था तब तू ब्रह्मशब्दके अर्थको जानताही नहीं था। ब्रह्म शब्द वा ब्रह्मशब्दका अर्थ ग्रंथोंमें लिखरक्खाहै; कोई तुझ चैतन्यसे पृथक् देशांतरमें वा सन्मुख देशमें ब्रह्म खेलता नहीं फिरता, जो जाना जावे अथवा न जानाजावे। परन्तुगुरुशास्त्रसे ब्रह्मादि शब्द और ब्रह्मादिक शब्दके अर्थ सुने पूर्व तू प्रत्यक् आत्मा था, जो तू पूर्व न होता तो ब्रह्मको सुनता कौन? पुनःसुनकर ब्रह्मको जाना अपने आत्मासे भिन्न करके वा अभिन्न करके; हे राजन्! जो वस्तु जानने न जाननेमें आई तो जानने न जाननेवालेका प्रकाशक सिद्ध होता है, जो जाननेमें आवे सो प्रकाश्य सिद्ध होता है; जैसे नेत्र नीलादि रूपके जाननेवाले प्रकाशक सिद्ध होते हैं और रूप प्रकाश्य सिद्ध होता है। इससे तुझ प्रत्यक् चैतन्य आत्माहीसे ब्रह्म प्रकाश रखताहै। राजाने कहा ब्रह्मको सिद्ध करनेवाला मैं कौन हूँ? कपिलने कहा सत् चित् आनंदरूप तेरा है। राजाने कहा "सत् ।"

आनंद रूप ब्रह्म है" ऐसे श्रुति कहती है । कपिलने कहा ठीक है यह पूर्वोक्त लक्षण तुझ बुद्धि आदिकोंके साक्षीमें ही घटता है, इससे तूही ब्रह्म है, जैसे निरुपाधि महाकाशमें अवकाश-दातृता, असंगता, अलिप्तता, व्यापकतादि लक्षण हैं, सोई घटाकाशमें घटते हैं इससे घटाकाश महाकाशरूपहीहै हे राजन्। सत् चित् आनंदरूप, स्वरूप वस्तुको ब्रह्म कहो, चाहे प्रत्यक् साक्षी कहो, नामांतरका भेदहै, नामीका भेद नहीं। राजाने कहा, मैं शरीरसे भिन्नहूँ कि शरीररूपहूँ ? कपिलने कहा, तू शरीर नहीं शरीर तुझसे प्रगट हुआ है; जैसे स्वप्नद्रष्टा शरीर नहीं, स्वप्नके शरीरादिक स्वप्नद्रष्टासे प्रगट हुये हैं। राजा यह वचन सुनकर हँसा और कहा—हे मुने ! मुझ एक चैतन्यविषे द्वैत पद कैसे कल्पते हो ? प्रथम मुझको अद्वैत कहते हो; पीछे कहते हो तू शरीर नहीं, जड चैतन्य दो पद हुये—मुझ चैतन्य अवाचपदमें एक पदकी भी समाई नहीं, तो दो कैसे होवेंगे ?

साधन ।

कपिलने कहा सम्यक् स्वरूप जाने विना हे राजन्। यह कहना मात्रही है स्वरूप जानना कठिन है । राजाने कहा हे गुरो ! वह कहना जानना क्या है? सो कहो। कपिलने कहा जो तुझ चैतन्यमें कहना जानना होय तो मैं कहूँ, दोनोंसे तू परे है। हे राजन् ! कहना जानना वही है, जिसके कहने जाननेसे मायासे लेकर देह पर्यंतवा ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वका कहना जानना होजावे। हे राजन् अपरोक्ष निश्चय तब होता है, जब विज्ञान होता है। विज्ञान परोक्ष ज्ञानसे होता है और ज्ञान उपासनारूप भक्तिसे होता है, भक्ति वैराग्यसे होती है वैराग्य शुभकर्मोंके अनुष्ठानसे होता है। इससे हे राजन्। इनको तू क्रमसेकर। राजाने कहा जब मैं आपहीहूँ तो अपनी प्राप्तिवास्ते निश्चयादि करनेसे क्याप्रयोजन है? कपिलनेकहाजो

है तो निश्चय भी तू कर। राजाने कहा निश्चय कल्पनासे होता है, मैं चैतन्य निर्विकल्पहूँ,निश्चयअनिश्चय मुझविषे नहीं,यह बुद्धि आदि संघातका धर्महै।अथवा किस वस्तुका निश्चयकरूँ,मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक् क्या है,जिसका निश्चय करूँ? कपिलने कहा वेद कहताहै,जाग्रतमें नेत्रोंविषे, स्वप्नमें कंठ विषे, सुषुप्तिमें हृदयविषे, तुरीयामें दशवें द्वारविषे,ब्रह्मरूप आत्मा निवास करता है सो यही निश्चय कर।राजाने कहा और अंगोंने क्या पाप किया है जो उनमें आत्मा नहीं ? क्या आत्माको सर्व अंगोंमें रहनेमें शर्म आती है ? आकाशके समान आत्मा सर्वमें पूर्ण है। ऐसे नहीं कि,एक स्थानमें है,एकमें नहीं है, सर्वकालमें सर्व स्थानमें एकसाहै।कपिलने कहा सूर्यकाप्रकाशसब ठौर पूर्णहै,परन्तु जहाँ दर्पण जलादि होवें तहाँ प्रतिबिंब सहित सूर्यका विशेषप्रकाश होता है,अन्य घटपटादि पदार्थोंमें आभास भी नहीं और सूर्यको घटापटादियोंमें विशेष जलादिकोंकी समान प्रकाश करते परिश्रम भी नहीं होता, उसका स्वभावही है।इससे जो आत्माको अपरोक्ष सम्यक् देखा चाहे तो पूर्वोक्त स्थानोंमें सुखपूर्वक दर्शन होगा अन्यत्र नहीं।

दत्तात्रेय।

तिससमय विचरते हुये दत्त आये और कहा सर्व जगद्रूपी भूषणोंविषे मैंही एक सुवर्णरूप आत्माहूँ। कपिलने कहा जो तू ही सर्व है; तो सुनाता किसको है?दत्तने कहा आपही वक्ता, श्रोता, तथा वक्तव्य रूप हूँ और इनसे अतीत भी हूँ। यह वचन सुनकर राजा स्वरूप विषे लीन हुआ और कपिल तथा दत्त भी अपने आत्मस्वरूपके चिन्तनमें निमग्न हुये।

कुछ काल पीछे दत्त हंसकर बोले। कहा बडा आश्चर्य है कि, मुझ चैतन्य स्वरूपमें मनका लीन होना, न होना, उदय होना

तथा सम होना, यह सब मनकीही अवस्थाहै,मुझ इन अवस्थाओंके साक्षी भूतकी नहीं है, इन अवस्थाके होने मिटनेसे मेरी हानि लाभभी नहींहै।हे कपिल।जीव ईश्वर ब्रह्मकी मुझ चैतन्यने संज्ञा बांधीहै, जीव ईश्वर ब्रह्मने आयकर मुझ चैतन्यकी संज्ञा नहीं बांधी।कपिलने कहा हे राजन्। ब्रह्मयज्ञ कर, स्वाभाविक ब्रह्मयज्ञ आके प्राप्त हुआहै। राजानें कहा करना न करना मुझ विषे नहीं पर करताहूं। कपिलने कहा हे दत्त। तेरा रूप क्याहै? दत्तने कहा नामरूप मुझमें नहीं।जो तू स्वरूपसे अज्ञातहै तो सहस्र वर्ष पर्यंत नामरूपको कहूँगा तो तुझको क्या लाभहै ? स्वरूप जाननाहै तो तूष्णीं हो। कपिलने कहा तूष्णीं अतूष्णीं जानना न जानना मन वाणीका धर्महै,मुझ चैतन्यको इनके व्यवहारमें तुल्यताहै। दत्त तूष्णीं हुआ। राजाने कहा तूष्णीं मतहो,सर्वरूप तेराहै, तू सर्वका रूपहै, कुछ कह और कुछ सुन। कपिलने कहा वचन बुद्धितकहै,बुद्धि नहींरही,वचन कैसे कहूँ ? दत्तने कहा तू चैतन्य बुद्धिके आधीन नहीं, उलटा बुद्धि आदिक जड तुझ चैतन्यके आधीन है कपिल तूष्णीं हुआ।

स्कंद।

पुनः स्कंद आया और कहा हे सभा ! कुछ कहो जिसमें कहना नहीं।क्या मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर और वाङ्मनसगोचर हूँ ? राजाने कहा तू कौनहै ? स्कन्दने कहा वही हूँ जो तूहै। तुझको कौन कहे कि, तू कौनहै ? राजा तूष्णीं हुआ।

कपिलने कहा हे दत्त ! तू कहांसे आयाहै? कहां जावेगा? तेरे मातापिता कौनहैं?तेरा गृह कौन है?दत्तने कहा जहांसे तू आया है तहांसेही मैं आयाहूँ, जहां तू जावेगा वहांही मैं जाऊँगा,जो तेरे माता पिताहैं, सोई मेरेहैं। जो तेरा गृहहै सो मेरा है। कपिलने

कहा तेरा गोत्र कौन है? दत्तने कहा मैं अगोत्रहूँ परंतु जो तेरा गोत्र है मेरा सोई गोत्रहै। हे कपिल! तू अपनी उपमा सर्वमें जान ले। आना जानादिक शरीरका है, शरीर पंचभूतरूप है, सर्व शरीरोंके माता पिता प्रकृति पुरुषहैं, और चैतन्य ही सर्व शरीरोंका गोत्रहै। सारांश यह कि, चैतन्य दृष्टि कर वा मायादृष्टिकर वा पंचभूत दृष्टि कर वा पंचभूतोंका रूप दृष्टि कर जो तेरा प्रकरण है सोई सर्व जगत्का प्रकरणहै, अन्यथा नहीं। जो एक स्वप्ननरका हालहै, सोई सर्व स्वप्ननरोंका हालहै स्वप्नद्रष्टा दृष्टिसे भी सर्वकाहाल एकही है, अन्यथा नहीं। कपिलने कहा मुझमें नाम रूपके अभावका अभाव है। दत्तने कहा नामरूपमें भेद मत जान नामरूपभी तूही है। कपिल तूष्णीं हुआ और सर्व निर्विकल्प होगये।

प्रणव और प्रणवके चिंतनके अधिकारी।

कुछ काल बीता तब स्कंद बोला-आत्मज्ञानका साधन, प्रणवके अर्थ रूपका चिंतन, वा अंतर प्रणवका मानसी उच्चारण, अधिकारी जनोंको करनाचाहिये। कपिलनेकहा सर्ववचनोंकी समाप्तिप्रणवमें है, प्रणवसे उपरांत वचन नहीं। प्रणवका जो उच्चारण श्रद्धपूर्वक सदा करता है, मानो चारों वेदोंका पाठ नित्यप्रति तिसका होता रहता है। क्योंकि चारोंवेद प्रणवरूपहैं और एक अक्षरका छंदहै। इसीसे इसके उच्चारणसे शुद्धि अशुद्धि भी नहीं होती। सर्व स्त्री, पुरुष चारों वर्णाश्रम प्रणवके अर्थ चिंतनके तथा प्रणवके मानसिक वाचिक उच्चारण करनेके अधिकारीहैं। दत्तनेकहा हे कपिल! प्रणवका माहात्म्यऐसेही है, परन्तु प्रणव शब्दमात्रहै, परतंत्रहै तथा जडहै, आत्मा अधिष्ठानमें; जैसे घटपटादि सर्व नाम रूप दृश्य कल्पित हैं तैसे प्रणव भी कल्पित है आत्मा विषे भेद नहीं, जैसे स्वप्नमें घटपटादि स्वप्नद्रष्टामें कल्पित हैं, तैसे स्वप्नका प्रणव भी स्वप्नद्रष्टामें कल्पित है,

न्यूनाधिकभाव नहीं। आत्माही सत् है,आत्मा पृथक् सर्व प्रणवादि मिथ्या मायामात्रहै। हे कपिल ! मन वाणीकी क्या शक्ति है कि, आत्माविना एक अक्षरका अर्थ तथा उच्चारण चिंतन करसके। संतोंका पद बुद्धिसे परे है, बुद्धिमान् संत पदको क्या जाने ? क्योंकि बुद्धिमान् बुद्धिके अधीनहै,संत बुद्धिसे परे पदविषे स्थित हैं। हे कपिल! वचन मेरा ज्ञानी सुने तो तिसको दृढ ज्ञानहो, भक्तसुने तो तिसको भक्ति हो,अज्ञानी सुने तो तिसको भक्तिज्ञान प्राप्त हो। स्कंदने कहा जो तू ऐसाहै तो मुझको क्या सुखहै ? हे दत्त ! जिसमें जो गुण दोष हैं सो इसीको सुखदुःख देतेहैं,अन्यको नहीं। दत्तने कहा वचन मेरा वही है,जिसमें वचन नहीं पर कहताहूँ। सर्व जगत्की उत्पत्ति पालन संहारादि सर्व व्यवहार तथा इस संघातका व्यवहार मायासे करताहुआभी, मैं चैतन्य निर्विकार सर्वसे अतीत हूँ;जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्वस्वप्न व्यवहार करता भी,निर्विकार सर्वसे अतीत है। जैसे नट सर्व स्वांग करता भी अपने नटत्वभाव निश्चयको नहीं त्यागता। इसीसे सर्व स्वांगकरताभी स्वांगोंसे अतीत है क्योंकि स्वांगोंके अभिमानसे रहित है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! वे संत अपने वचन कहतेथे,तूकुछ नहीं कहता। मैत्रेयनेकहा कहना मेरा वहांहीयोग्यथा,अवक्याकहूँ?पर मैं संत असंतदोनोंनहीं,कहे कौन?और सर्व मैंही कहताहूँयहतुमको भ्रांति है,जो वह संत कहतेथे। वहांभीमैंही कहतासुनताथा,अबभी मैंही कहता सुनता हूँ। आगेभी मैं चैतन्यहूँ, पीछेभी मैंहूँ,ऊर्ध्व अधः दशोंदिशा मैंही हूँ। पराशरने कहा सत्संग कर। मैत्रेयने कहा तुम्हारे सत्संगते मैं नहीं रहा; जैसे पारसके संगसे लोहभाव नहीं रहता, इससे परे और सत्संग क्याहै?यही परम सुखहै। पराशरने कहा जो आप न रहा तो सुख क्या ? आपैतकही सुख है। मैत्रेयने

कहा परि,च्छिन्न आपा अहंकारका न रहना और सर्वरूप होना, यही आपा न रहनाहै । पर ब्रह्मयज्ञ कहो ।

पराशरने कहा अबतक अज्ञानमें तू बंध है ब्रह्मसे भिन्न क्या है,जो कहूँ । ब्रह्मको अपना आत्मा जाननाही ब्रह्मयज्ञहै पर ब्रह्मयज्ञ सुन । स्कंदने कहा मैंने सुनाथा कपिल परमहंस है पर तुझको तो स्वरूपकी प्राप्ति नहीं क्योंकि हे सर्वब्रह्म, तू बीज जुदा कहांसे रहताहै। कपिलने कहा तूने सत्य कहा, अज्ञान ज्ञानकी मुझ चैतन्यमें समाई नहीं । दत्तने कहा मुझ स्वप्रकाश चैतन्यसेही तुम ज्ञानी अज्ञानी आदि सर्वकी स्फूर्ति होतीहै, जैसे रज्जुकरही सर्पादिकोंकी स्फूर्ति होतीहै । कपिलने कहा हे स्कंद! स्वरूप तेरा क्याहै! शरीर वा मनादिकोंका साक्षी आत्मा । स्कंदने कहा शरीर और आत्मा दोनोंके अहंकारसे नग्न हूँ क्योंकि, अवाचपद हूँ। इसीसे तूभी देहाभिमान रूपी पहरावेसे रहित हो। कपिलने कहा हे दत्त ! जहां मैं तू जगतादि शब्द नहीं सो कौन है? दत्त तूष्णीं हुआ क्योंकि वचनकी आगे ठौर नहीं ।

लोमश ऋषि ।

तिस समयमें लोमशऋषि आया और कहा मैं चैतन्य कालकाभी कालहूँ।यह सब प्रजा मुझ चैतन्यरूप कालके मुखमें महाप्रलयमें आन पड़तीहै जैसे समुद्रमें नदियां आन पडतीहैं, मुझहीसे प्रगट होतीहैं,मुझ चैतन्यमेंही स्तितहै, पर मैं चैतन्य आत्मा एकसा हूँ। दत्तने कहा इस तेरे कथन चिंतनका द्रष्टा मैं हूँ । लोमशने कहा द्रष्टा दृश्य दर्शन तीनोंके द्रष्टाका द्रष्टा कोई नहीं, यह अनुभवसिद्धहै,तू कैसे द्रष्टाका द्रष्टा हुआ है? दत्तने कहा हे लोमश, तूने जो कथन चिंतन किया कि, मैं त्रिपुटीका द्रष्टा हूँ सो कहो यह चिंतन किसने किया ? लोमशने कहा मनने किया ।

दत्तने कहा हे लोमश ! तूने आपको मनरूप माननेके त्रिपुटीका आपको द्रष्टा मानाहै । मैंने भी कहा कि, मैं द्रष्टाका द्रष्टा हूँ, यह भी मनका चिंतनहै । मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर वस्तु हूँ, आदि अंत मध्यकी मुझमें समाई नहीं। लोमशने कहा और किसमें समाई है? दत्तने कहा पूछे तिसीमेंहै।लोमशने कहा हे बुद्धिखोये ! स्वप्नसृष्टिकी आदि अंत मध्य स्वप्नद्रष्टामेंही समाईहै कहो अन्य किसमें है ? दत्त तूष्णीं हुवे ॥

सप्तऋषि ।

(सत्संगमाहात्म्य)

तिससमय सप्तऋषि आये और कहने लगे । हे मित्रो ! आत्मसुख सत्संगमें आत्मनिरूपण परस्पर करनेसे होताहै; तूष्णीं होनेसे क्या प्रयोजनहै ? क्योंकि, सम्यक् आत्म अपरोक्ष विद्वान् पुरुषोंसे सत् उपदेश द्वारा अनेक मुमुक्षु पुरुषोंका कल्याण होता है । आत्मबोधका कारण भगवान्की भक्ति करे, भगवान्को पूर्ण जाने । दत्तने कहा भगवान्की भक्तिसे वर्तमान विद्वानोंकी भक्ति श्रेष्ठ है । विद्वानोंके संग विना स्वतः दासत्व अहंकाररूपी मलिनताको त्याग नहीं करता, इसीसे स्वरूपसे अप्राप्त रहताहै । अपनेसे भिन्न परोक्ष ईश्वरकी भक्ति करनेसे शांति नहीं होती और विद्वानोंके संगसे शांति विचारसे होतीहै । विद्वानोंके संगसेही निरहंकार विचारद्वारा वैरागादि पूर्वक भक्तिको प्राप्त होताहै । भक्ति नाम "आप सहित सर्व भगवान्है" निरंतर देहाभिमानरहित पूर्वोक्त भक्तिरूप उपासनाके अभ्याससे इसी जन्ममें वा प्रतिबंधके वशते भावीजन्ममें,स्वरूपकी प्राप्ति होतीहै और भगवान् विश्वेश्वरको निज आत्मा जानताहै । सप्तऋषियोंने कहा शरीर तेरा नाशी है, विष्णुसे समता कैसे करताहै ? दत्तने कहा,जैसे मेरा शरीरनाशीहै, तैसे विष्णुका शरीर भी नाशीहै । हे लोमश ऋषि । हे कागभु-

शुण्ड! तुमने अनेक ब्रह्मांडोंकी उत्पत्ति तथा संहार ब्रह्मा विष्णुशिव सहित होते देखे हैं;सत् कहो विष्णु आदि शरीर नाशी हैं कि, नहीं ? दोनोंने कहा दृश्यमान शरीर मायामात्र है;किसीका शरीर अविनाशी नहीं सर्वका नाशी है। अनेक बार ब्रह्मा विष्णु महेशादिक शरीर जलतरंगवत् उत्पन्न होते मिटजाते हैं। एक रस केवल साक्षीचैतन्य आत्माही है, अन्य दृश्यमान मायाका कार्य स्थित नहीं।सप्तऋषियोंने कहा वैराग विना विज्ञान नहीं मिलता। दत्तने कहा परिच्छिन्न अहंकार संतोंके संग विचारद्वारा त्यागनाही वैराग है।पुनःदत्तने कहा हम नहीं शेप भगवान् हैं। पर जब हम नहीं तो वैराग करनेकी आवश्यकता कहां है?आप न रहना यही वैराग है। जब आप नहीं तो वैराग तथा भगवान्से क्या प्रयोजन है ? शेप अवाचपद है। तिस अवाचपद चेतन करही सर्वकी सिद्धि होती है। उन्होंने कहा विष्णु ईश्वर है, हम नहीं। दत्तने कहा तुम नित्य सुख चैतन्यसे पृथक् ईश्वर वस्तु क्या है? कहो। हे ऋषे। यह आत्मा ही ईश्वर है ?।

षट्प्रमाण।

तिस समय प्रत्यक्षादि षट् प्रमाण रूप सिद्ध आये और कहा सर्व वस्तुओंकी सिद्धि हमसे होती है। दत्तने कहा तुम्हारी सिद्धि किससे होती है?जिस चैतन्य साक्षी आत्मासे तुम्हारी सिद्धि होती है तिससे सर्वकीसिद्धि होती है। प्रत्यक्ष प्रमाणने कहा जब नेत्र मूँदे तब रूपकी सिद्धि नहीं होती; नेत्र खुले रूप मालूम होता है। इससे नेत्र करही रूपका ज्ञान होता है, आत्माकर नहीं। (इसी प्रकार सर्व प्रमाणोंमें जान लेना) दत्तने कहा हे सिद्धो! आत्मा साक्षी नेत्रोंका नेत्ररूप है, श्रोत्रका श्रोत्ररूप है (इसी प्रकार सर्व इंद्रियोंमें जोड लेना)। सारांश यह कि, आत्मा

पूर्ण है तथा सर्वका स्वरूपहै। इससे आत्मा चैतन्यही नेत्रादि इंद्रियोंमें स्थित हुआ, रूपको देखता है। जबनेत्र मुँद जाते हैं तब अंधकारको प्रकाश करता है।आत्माकी ज्ञानरूप दृष्टि किसी कालमेंभी रुक नहीं सक्ती,नेत्रादिक इन्द्रिय नष्ट होवें चाहे रहे;जैसे राजाका हुकुम मंत्रीद्वारा प्रजामें प्रवृत्त होता है परन्तु मंत्री और प्रजा राजाकेही गुलाम हैं, जैसे स्वप्नद्रष्टा की ज्ञानरूप दृष्टि स्वप्न-पदार्थोंसे रुकती नहीं क्योंकि स्वप्न कल्पित और स्वप्नद्रष्टा स्वप्रकाश है। सिद्धोंने कहा न तुम, न हम, न जगत्, केवल चैतन्य मात्र हम हैं। दत्तने कहा तुमहँसो। सिद्धोंने कहा हमारे आत्मस्वरूपमें हँसना रोना दोनों नहीं और हँसना रोना भीहमहीहैं।

कुमारसिद्ध।

(सिद्धिआदिके विषयमें.)

कुमारसिद्धने कहा जब मैं योग करता हूँ तब अपने स्वरूपको देखता हूँ। दत्तने कहा जब तू स्वरूपका देखनेवाला हुआ तब स्वरूप तुझसे भिन्न हुआ। हे बुद्धिखोये। जो कुछ तू योग विषे देखता है, सो दृश्यकोही देखता है। इससे योग तेरा दृश्य और तू द्रष्टा हुआ। बालक है, सत्संग कर जो निर्मल होवे। कुमारने कहा ठीक मैं बालकहूँ क्योंकि मनवाणी शरीरसे सर्व लीला कर-ताभीमैं असंग चैतन्यहर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता,इसीसे बालकहूँ। पर योगके बलसे जो मैं चाहूँ तो इस शरीरका त्यागकर अन्य शरीर में प्रवेश करूँ।किसी को वर शाप दूं तो होसक्ता है और आयुको अ-धिकन्यूनकरसक्ताहूँ।सर्व प्रकारकी सामर्थ्य योगसे होसकतीहैंज्ञान से क्या प्राप्ति है?दत्तने कहा हे मूर्ख।यह बात कहते तुझको सभामें लज्जा नहीं आती? योगी एक शरीरको त्यागके अन्य शरीरमें प्राप्त होता है और अनेक प्रकारके कष्ट पाताहै; ज्ञानी इसी शरीरमें

स्थित हुआ हुआ सुखपूर्वक ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत आपको पूर्ण जानता है। सर्वका भोक्ता एक कालमें ही होता है, सर्व जगत्पर आज्ञा चलानेवाला होता है। सर्वरूपभी आप होताहै,सर्वसे अतीत भी आपही होताहै । सर्व शक्तिमान् होताहै, सर्व अशक्तिरूपभी आपही होताहै। सर्वव्यवहार करताभी आपको अकर्ता जानताहै। जिस अवस्थाको सम्यक् आत्म अपरोक्ष विद्वान् पुरुष प्राप्त होताहै सो अवस्था स्वरूप अज्ञात,वर शापादि पूर्वोक्त सामर्थ्य, योगीको स्वप्नमें भी नहीं प्राप्त होता। कुमारने कहा योगके बलसे जो चाहूँ तो आकाशमें जाऊँ। दत्तने कहा पक्षी आकाशमें उडते फिरतेहैं क्या सिद्धि हैं ? कुमारने कहा योगी एक एक श्वासमें अमृत पान करता है अन्य नहीं । सोहं जाप करता है, सुख पाता है। दत्तने कहा हे बालक ! ज्ञानीको लज्जाहै। अपने सुखरूप आत्मासे भिन्न योगादिकोंसे सुख चाहे, जैसे गुडको लज्जाहै कि, अपनेसे पृथक् चणकादिकोंसे मधुरता चाहै । चित्तकी एकाग्रता रूप योगसे सुख मानता है और योगविना आपको दुःखी मानता है, ज्ञानी योग अयोग दोनोंको अपनी दृश्य मानताहै।यह सब मनकेख्याल हैं,योगरूप मनके ख्यालसे मैं चैतन्य प्रथमही सुखरूप सिद्धिहूँ । सुखरूप अपनी सिद्धि वास्ते मुझे योग क्यों करनाहै ? जसे कोई भीअपने शरीरकी प्राप्तिवास्ते योगादिक साधन नहींकरताक्योंकि योगादि करनेसे शरीर प्रथम सिद्ध है। प्राणोंकेरोकनादिकरूपयोगसे क्या सुख है ? आपसे अप्राप्त होना, आशा मुक्तिकी प्राणोंसे चाहना, केवल विचारहीनता हैं ।

दूसरे सिद्धने कहा योग नाम जुडनेका है, यह जो सनकादिक ब्रह्मादिक स्वरूपमें लीन होते हैं,सो योगसे रूप ज्ञानको पाते हैं । दत्तने कहा जिस स्वरूपमें ब्रह्मादिक लीन होते हैं, तिस वस्तुको

ज्ञानी अपना आत्मा जानता है। हे सिद्धो! मिथ्या मत कहो,ज्ञान और योगका क्या संयोगहै। योग साधनरूप है,ज्ञान फलरूप है। ज्ञानमें विछुरना मिलना दोनों नहीं, योग करताके अधीनहै तथा क्रियारूप है। कपिलने कहा आत्माके सम्यक् अपरोक्ष ज्ञानरूपी योगसे सर्व पदार्थोंका जानना रूप योग हो जाता है,केवल क्रिया-रूपयोगसे सर्व पदार्थोंका जाननानहीं होता क्योंकि, अधिष्ठानके ज्ञानसेही सर्व कल्पित पदार्थोंका ज्ञान होता है;योगसे नहीं। योग आत्म अधिष्ठान विषे आप कल्पित है (अन्यपदार्थवत्) कल्पित-के ज्ञानसे अन्य कल्पितका ज्ञान नहीं होता, अधिष्ठानके ज्ञानसेही कल्पितका ज्ञान होता है; जैसे-एक कल्पित स्वप्नपदार्थके ज्ञानसे अन्य स्वप्नकल्पित पदार्थका ज्ञान नहीं होता, किन्तु स्वप्नद्रष्टाके ज्ञानसे सर्व स्वप्न कल्पित पदार्थोंका ज्ञान होता है,जैसे रज्जुकेज्ञा-नसे सर्प-दंड मालादिकोंका ज्ञान होताहै, कल्पित सर्पके ज्ञानसे कल्पित दंडादिकोंका ज्ञान नहीं होता, यह नियम है।

स्कंदने कहा आत्माके जाननेके अनेक साधन हैं,योग,भक्ति, ज्ञान, पर आत्मा इन पदोंसे अतीत है, यह सब बुद्धिका विलासहै। लोमशऋषिने कहा हे सिद्धो! योग मुझसे हुआ है, पर मैं चैतन्य योग वियोग दोनों नहीं। योंगसे शरीरके अंतर बाहर सर्वअंग दीखते हैं,पर स्वरूपसे अप्राप्त होताहै। दत्तने कहा जब सर्व ब्रह्म है तो उससे भिन्न कौन है? जो जडे। कुमार तूष्णीं हुआ।

दत्तने कहा हे कुमार! तुमको लज्जा नहीं आती जो संतोंकी सभामें अयोग्यवचन करताहै!कुमारने कहा क्या-कहूँ!तू रूपमेरा है। दत्तने कहा कहा!मैं चैतन्य मनकी एकाग्रतारूपयोग वियोगका साक्षी स्वप्रकाश हूँ? सिद्धोंने कहा तू कौन है? दत्तने कहा तुम्हारे ध्यान अध्यानका तथा तुम्हारी सिद्धि असिद्धिका द्रष्टा हूँ!सिद्धोंने

कहा तुमको भस्म किया चाहिये। दत्तने कहा प्रथम तुम अपने अहंकारको भस्म करो, जो तुम्हारे अंतर शत्रु है,मुझ भस्मको भस्म क्या करोगे ?हे सिद्धो!मैं चैतन्य तुम्हारा आत्मा हूँ,अपने आत्माको भस्म कैसे करोगे ? सिद्ध तूष्णीं हुये। दत्तने कहा तूष्णीं मत होवो;यह सब कौतुक तुम्हारा है, तुम कौतुकी हो, जैसे स्वप्नसृष्टि सर्व स्वप्नद्रष्टाका कौतुक है, स्वप्नद्रष्टा कौतुकी है। सिद्धोंने कहा तूष्णीं अतूष्णीं आदिक भी कौतुक हैं। दत्तने कहा हे सिद्धो। यह सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है। लोमशने कहा तुझको ज्ञानसे सुख नहीं;अपने आनंदसे आनंद, अपने प्रकाशसे प्रकाश है। वृत्तिरूप ज्ञान भी अज्ञानरूप है, तू ज्ञान अज्ञानसे रहित है। राजाने कहा तुझेको लज्जा नहीं आती कि, रहित अरहित भी तूही है। लोमशने कहा जब मैंही हूँ तो लज्जा किससे करूं ? लज्जा, इच्छा, संशय,ज्ञान, ध्यान, निश्चय, अनिश्चय, बंध, मोक्ष, हर्ष, शोक, मान, अपमान, राग, द्वेष, ग्रहण, त्यागादिक मानने केवल मनके धर्म हैं और मैं चैतन्य मनादिकोंके धर्मों सहित मनादिकोंका साक्षी हूँ। साक्ष्यके व्यवहारकी मुझ साक्षीको क्या लज्जा है ? जैसे सूर्य प्रकाशको प्रकाश्य जगत्की लज्जा आदिकव्यवहारोंसे क्या लज्जा है ? हे दत्त! मैं चैतन्य निर्लज्ज हूँ तू भी निर्लज्ज हो। सारांश यह कि आपको सत् चित् आनंद जान, जो लज्जारूपी द्वैतसे छूटे। दत्तने कहा मुझे चैतन्यमें बंधन हो तो छूटूँ,मैं तो निर्बंध हूँ।

तिस सभामें हे मैत्रेय ! यही निश्चय हुआ कि, अस्ति भाति प्रिय रूप ब्रह्मात्मा हम हैं। मैत्रेयने कहा हे पराशर।तिस संतोंकी सभामें और कोई था कि, न था ? पराशरने कहा इतने कहनेसे तुझको निश्चय न हुआ तो बहुत कहनेसे क्या लाभ होगा?तुझको ज्ञान न हुआ, सब उपदेश मेरा अकार्थ गया।मैत्रेयने कहा

चैतन्यमें निश्चय धर्म नहीं, निश्चय कैसे करूं ? शिष्य,गुरु,रूप, अरूप, मुझमें नहीं अथवा मुझसे भिन्न कौन है ? जिसका मैं निश्चय करूं ? पराशरने कहा भय मतकर जो तू सर्व है वो निश्चयादि भी रूप तेरा है। मैत्रेयने कहा वह कहो जिसमें विकार न होवे निश्चयादि भी विकार हैं। पराशरने कहा यही चिन्तन कथन कर, "मैं निर्विकार चैतन्य साक्षी आत्मा हूँ" मैत्रेयने कहा जो मैं ऐसा हूँ तो चिन्तन कथनसे क्या गुण है ? जैसे कि, कोई अपने नामको और नाम अनुसारी अर्थको कथन चिन्तन हरवक्त करता रहे तो क्या गुण है?उलटा विकल बाजताहै। पराशरने कहा -हे मैत्रेय! आप सहित सर्वको ब्रह्मरूप जान । मैत्रेयने कहा इस चिन्तनसे क्या गुण है? यह सब मनका मनन है मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर हूँ। पराशरने कहा शरीर नाश होय तो होय पर इस निश्चयको त्यागियो मत । मैत्रेयने कहा मुझेमें ग्रहण त्याग नहीं, स्वत होय सो होय। पराशरने कहा हे मैत्रेय ! यह आनंद कहने मात्रसे नहीं,निश्चयसे है । मैत्रेयने कहा मैं वह शिष्य नहीं जो गुरुके उपदेशसे केवल देहाभिमान त्यागूँ और द्वैत बना रहे । देहाभिमान सहित द्वैतदृष्टि त्यागे और गुरुकी वाक् रसनासे सुनकर अमृतके समान अचवे। पराशरने कहा--कह सर्वरूप मेरा है ? मैत्रेयने कहा जो मैं हूँ तो कहनेसे क्या प्रयोजन है ? पर ब्रह्मयज्ञ कहो; उस सभामें जो संत थे तिनोंने और क्या कथन किया ? पराशरने कहा उसके वचन सुनेसे तुझको क्या लाभ है जो तू आपको न जाने ? मैत्रेयने कहा तुम्हारे कहनेसे आश्चर्यवान् होता हूँ,जो कुछ मुझे चैतन्यसे भिन्न होय तो तिसको जानूँ जब मुझमें जानना नहीं तो क्या जानूँ ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! सो और अयं पद तुझमें नहीं सो अयं पद तुझने सिद्ध किया है ।

स्वरूपपानेका साधन।

राजाने कहा हे दत्त! जिसको चाहना स्वरूपके पानेकी हो सो कैसे पावे? दत्तने कहा प्रथम निष्काम कर्मसे अंतःकरणकी शुद्धि करे, निर्गुण वा सगुण उपासनादि कर अंतःकरणकी चंचलता दोषको दूर करे। वैरागादि साधनों सहित, शास्त्रोक्त रीतिसे गुरुकी शरणागत होवे। पुनः गुरु उपदेशसे अपने आत्माको ब्रह्मरूप और ब्रह्मको अपना आत्मारूप सम्यक् अपरोक्ष जाने। जैसे-महाकाश घटकाशरूप है और घटाकाश महाकाश रूप है। हे राजन्! अपने स्वरूपके पावनेमें देहाभिमानही आवरण है, जैसे सूर्यके दर्शनमें बादलही आवरण है। हे राजन्! जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिमें तथा भूत भविष्यत् वर्तमान कालमें, मन वाणीका गोचर, मन वाणी सहित जितना प्रपंच है, सो सर्व तुझ साक्षी चैतन्यकी दृश्य अनित्य है, तू तिस सर्व जड दृश्यके न्यूनाधिकभावका प्रकाश करनेवाला चिद्घन् देव है, तुझको कोई नहीं जानता तू सर्वको जानता है। इसीसे तू चैतन्य स्वप्रकाश रूप है। अज्ञानी अनित्य दृश्यमेंही मग्न है, विज्ञानी अपने आत्मस्वरूपमें मग्न है, पर मेरे स्वरूपमें ज्ञान अज्ञान दोनों नहीं। राजाने कहा तू कौन है? दत्तने कहा तेरे हृदयविषे, ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंके हृदय विषे तथा सर्वप्राणी मात्रके हृदय विषे, मनादिकोंके साक्षी रूपता करके स्थित हूँ। साक्षीमें भी त्रिपुटी होती है तिसका प्रकाशक त्रिपुटीसे परे अवाच पद हूँ, जहाँ बुद्धि नहीं तहां रूप मेरा है। राजाने कहा जहाँ एक, अनेक, मैं, तू नहीं वही रूप मेरा है। दत्तने कहा आपा अहंकारको त्यागकर, जो अवशेष रहे सो आत्माका स्वरूप है। राजाने कहा जिसमें शेष अवशेष है दोनों नहीं वही अवशेष है कपिलने कहा यह भी अहंकार है, जो है सोई है। राजाने कहा हे कपिल! तुझे बुद्धि नहीं जो सर्व अवशेष है तो अहंकार कहां है? अहंकारका नाश अवशेषसे होता है। कपिलने कहा जो वचन चिंतनमें

आता है सोई अवशेष है नहीं तो अवाचपदमें शेष अवशेष कहाँ है ? राजाने कहा जिसमें वचन मौन दोनों नहीं, वही अवशेष है। कपिल तूष्णीं हुआ क्योंकि जिसकर विधिनिषेध सिद्ध होते हैं जिसमें विधि निषेधसमाप्ति होती है विधिनिषेधका और जो अवधिभूत है, तिसका नाम अवशेष है ।

रोमशने कहा फुर्णाअफुर्णा रूप शेष अवशेष मनका धर्म है, आत्मा इन मनके धर्मोंसे अतीत है राजाने कहा वही मैं अवशेष सर्व पदोंसे अतीतहूँ। दत्तने कहा जिसमें अशेष व शेष नहीं, सो क्या है?राजाने कहा वही अवशेष है।रोमशने कहा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया अवशेष है,मुझ चैतन्य तुरीया अतीत अवाचपदमें अवशेष कहां है?राजाने कहा जैसे तुरीयातीत अवाचपद नाम है तैसे अवशेष नामहै.जो तुम कथनं चिंतन मनका करोगे,तिनका जो साक्षी है सोई अवशेष है और उस सर्वके साक्षीका साक्षी और कोई नहीं।सिद्धोंने कहा अवशेष पद योगसे प्राप्त होता है।राजाने कहा योगसे अवशेष होता है, यह किसने जाना ? जिसने जाना वही अवशेष है,जो अवशेष नहीं होवे तो योगको कौन सिद्ध करे?

मीमांसा ।

पुनः मीमांसा आया और कहा कर्म करनेसे अवशेपकी प्राप्ति होती है।राजाने कहा हे मीमांसा!जो कर्मउपासनाका फल है सभी अनित्य है,हां कर्मउपासनासे अंतःकरणके दोषोंकी निवृत्ति होती है,सो दोष भी अनित्यहै,इसीसे दूर होतेहैं।जहाँ कर्म उपासनाका फल नहीं और जिस चैतन्यकर मन शरीरके धर्मउपासनाकर्म सिद्ध होतेहैं,जोकर्म उपासनाके आरम्भमें तिनका साक्षीहै;आदिमें स्वतः सिद्धहै,कर्म उपासनाकी समाप्तिका जो अधिष्ठान साक्षीअवधीभूत है,वही अवशेष है।सो स्वप्रकाश सर्वकी आदि सिद्धि है।पीछे होनेवाले कर्म उपासनासे तिसकी कैसे प्राप्ति होगी?किंतु नहीं होगी।

वैशेपिक।

मीमांसा तूष्णीं हुआ और वैशेपिकने आकर कहा अवशेपिका-
[illegible] । राजाने कहा सुपुप्तिमें काल कहां है ? अवशेप आ-
[illegible] भावाभावको अनुभव करनेवालेसेही काल होता है
[illegible] आत्मा स्वतःसिद्ध है, उत्पत्ति नाश तिसका नहीं ,यह
[illegible] नआदिक दृश्यके हैं ।

न्याय।

[illegible] यने कहा सर्व जगत्के कर्ता ईश्वरमें अवशेप कहां है ?
[illegible] हा जो अवशेप आत्मा न हो तो, सर्वजगत्का ईश्वर
[illegible] यह कथन चिंतन धर्म, मन वाणी सहित, धर्माधर्मी
[illegible] द्ध होवें ? जब यह कथन चिंतन नहीं था तो भी अवशेप
[illegible] सिद्धहै और जब नाश हुआ तब भी नाशका साक्षीरूप-
कर अवशेप आत्माही सिद्ध है। इससे सर्व ब्रह्मरूप अवशेप आ-
त्मासे यह नाम रूप जगत् होता है। हे न्याय ! तिसीका नाम
ईश्वर कहें तो ठीक है। नामांतरका भेद है । न्यायने कहा जब-
लग अवशेप विशेपको न त्यागे ,सुख स्वरूपको न पावेगा । रा-
जाने कहा मुझ चैतन्य आत्मा सुख स्वरूपको,सुख पानेसे क्या
प्रयोजन है।सुखरूप, अपनेसे पृथक् जितने सुख पानेके समाधि
आदिक साधनोंमें प्रवृत्तिहै,सो भ्रमसे है,जैसे जलको तथा अग्निको
शीतल उष्ण होनेकीइच्छा भ्रमसेहै।न्यायने कहा तू सर्वसे ऊंचाहै।
राजाने कहा मैं चैतन्य आत्मा ऊंच नीचसे रहित एकरस समहूँ।

पातंजल।

न्याय तूष्णींहुआ।पातंजल बोला हे राजन्!तूकौन है।राजाने
कहा मैं चैतन्य आत्मा योग वियोगकाकौतुकदेखनेवालाअवशेप
रूप हूँ। याज्ञवल्क्यने कहा अनहद शब्दविपे अवशेप कहां है?

राजाने कहा जो अवशेप आत्मा इंद्रियद्वारा बाहरका कौतुक देखनेहारा है, सोई अवशेप आत्मा अंतर इंद्रिय विना सोहं ध्वनि आदि कौतुकको देखने नाम अनुभव करनेवाला है। सारांश यह कि,अनहद शब्दके भावाभावका जाननेवाला,जो अवशेप नहीं हो तो,अनहदशब्दके भावाभावकी सिद्धि कैसे होवे? याज्ञवल्क्यने कहा योग विना सुख नहीं और सर्व अंग शरीरके देखे नहीं जाते। राजाने कहा सुखरूपमें योगसे क्या प्रयोजन है? "शरीरसहित सर्व रूप प्रपंचका मृगतृष्णाके जलवत्, मिथ्या सम्यक् अपरोक्षको जानना और पूर्वोक्त प्रपंचका अपनेको सम्यक् अपरोक्ष अधिष्ठान जानना" यही जगत्रूप अंगोंका देखना है, हाड मांसादिअंगोंको योग कर देखना बुद्धिहीन पुरुषोंका काम है। जब यह आप है तो योगसे क्या प्रयोजन है, याज्ञवल्क्यने कहा जब तू है तो ज्ञानसे क्या प्रयोजनहै? राजाने कहा मुझचैतन्य अवाचपदमें ज्ञान अज्ञान, तज्जन्य बंध मोक्षादि प्रपंचका अत्यंताभाव है परन्तु मुमुक्षुको ज्ञान निष्क्लेश है,ज्ञानरूपी विचार कर वस्तुका सम्यक् अपरोक्ष स्वरूप जाना जाता है, योगसे नहीं। योग सिद्धहुये योगीको भी विचारकी अपेक्षाअवश्य होतीहै। इससे गौरवताके दोषते प्रथमही वस्तुविचार करना योग है। सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका जाननेवत् जाननाही राजयोगहै। हठयोग हठियोंके वास्ते है विचारशीलोंके वास्ते नहीं।

सांख्य।

याज्ञवल्क्यके तूष्णीं होनेपर सांख्यने आयकर कहा जौलोंनित्य अनित्य विचारका नहीं करे तौलों आत्मसुखसे अप्राप्त रहेगा राजाने कहा जिसकर नित्य अनित्यका अंतर विचार सिद्ध होत है और जो विचारके आदि, अंत मध्यमें साक्षीरूपकर स्वस्थि

सुखरूप है सोई मेरा रूपहै, तिस नित्य सुखरूप आत्माकी प्राप्ति वास्ते नित्य अनित्यका विचार भ्रमसे है, अन्यथा नहीं सांख्य तूष्णीं हुआ।

वेदांत।

पुनः व्यासने आकर कहा, जब मैं चैतन्यहीहूँ, तो नित्य अ-नित्यसे क्या प्रयोजन है ? मुझ चैतन्यसे अवशेष भिन्न नहीं, जो भिन्न होवेगा तो जड सिद्ध होगा। हे राजन्! जहां मैं तू अव-शेष तीनों नहीं, सो मैं हूँ। राजाने कहा यदि मैं चैतन्य सर्वात्मा हूँ, तो अहं त्वं आदिभी मैंही हूँ। व्यासने कहा बारंबार उसका नाम लेनेसे क्या प्रयोजनहै ? राजाने कहा विलासमात्रहै, नाम लेना न लेना मुझमें तुल्यहै। दत्तने कहाजो कुछ कथन चिंतनमें आताहै सो अवशेषहै, जहां यह नहीं सो रूप मेराहै। राजाने कहा वही अवशेष है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! मैंभी तिस सभामें गया और कहा हे रूप मेरे! जिसने अवशेष थापाहै, सो अवशेष कैसे होताहै? राजा-ने कहा किसने थापाहै ? मैंने कहा तुम चैतन्यने थापाहै, राजाने कहां इसीसे मैं चैतन्यही अवशेष हूँ। हे मैत्रेय! राजाने अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जाना था, तिसको कौन अपने निश्च-यसे चलायमान करे। राजाने कहा हे सन्तो! सर्व पदोंसे अव-शेषको ऊपर राखो। दत्तने कहा सर्वपदोंको कथन करनेवाला शास्त्र तथा पद, स्वप्नवत् मूलसे हैंही नहीं, तो अवशेष मुझ अवा-चमें ठौर कैसे पकडेगा और अवाच चैतन्य अवशेषको कहां राखेगा? राजा तूष्णीं हुआ।

हे मैत्रेय! उस राजाने किंचित् कालही सत्संग करके अपने स्वरूपको पाया, मैं तुझको अनेक प्रकार उपदेश करता हूँ पर तुझको कुछ प्रवेश न हुआ। हे मैत्रेय! इस समयको दुर्लभ

अपने सम्यक् स्वरूपके जाननेवास्तेही यह मनुष्य शरीर है नहीं तो अकार्थहै। मैत्रेयने कहा हे गुरु! जितनेक नामरूप प्रपंचहैं सो सब अकार्थहैं, अर्थरूप मैं चैतन्य आत्माही हूँ, जैसे सर्व स्वप्नप्रपंच अकार्थहैं, स्वप्नद्रष्टाही अर्थरूपहै। पराशरने कहा तेरा रूप क्याहै? मैत्रेयने कहा मैं रूप अरूपसे रहित हूं।

निदाघ और ऋषभदेवका संवाद।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! एक समय निदाघराजाने ऋषभदेवसे प्रश्न कियाकि, हे प्रभो! मुझको संसारसमुद्रसे पारकरो। ऋषभदेवने कहा संसारसमुद्र मेरी दृष्टिमें है नहीं, तुझे नौका बनाकर कैसे पार करूं। हे मैत्रेय। जैसे मैंने तुझको बहुतकालसे उपदेश कियाहै और तुझको प्रवेशनहीं हुआ तैसेही ऋषभदेवने निदाघको उपदेश किया पर उसको कुछभी प्रवेश न हुआ। हे मैत्रेय! जब लग यह आप विचार न करे तबलग गुरु शास्त्र क्या करे? हे मैत्रेय। जो देहाभिमानरूपकीचडमें फँसेहैं और मन विषयोंकी इच्छारूप जेवडेसे बांधाहै, तिसको कौन छुडावे? इस हेतु अपना विचार आप करे जो अपने स्वरूपके अज्ञानसे,बंध मोक्ष भ्रांति दूर होवे, अन्यथानहीं। हे मैत्रेय। बहुरि निदाघने कहा हे गुरो! आज मुझको रात्रिमें स्वप्न हुआ थाकि, शरीर मेरा विनाशी है और यमदूत मुझको धर्मरायके पास ले गये हैं। धर्मरायने कहा तू कौनहै? अपने भलेबुरेकर्म प्रगटकर। मैंने कहा मैं आपको नहीं जानता। धर्मरायने कहा जो तू आपको नहीं जानता, तो शासना अपने करेहुये कर्मोंसे तुझको होगी। पर उपदेश तुम्हारे संस्कारोंके वशसे स्मरण हुआ और मेरी रसनासे यह निकला कि, हे धर्मराय! मैं सत्, चित आनंद ... मनआदिकोंका साक्षी आत्मा हूँ, देहादिक ... नहीं ... है। तब धर्मरायने सेन किया कि, ... दायु नहीं क्योंकि इसको अ... है, ...

नहीं। यह वृत्तांत होते नेत्र खुले, देखा तो न धर्मराय है, न यम है न यमलोकहै, में अपनी शय्यापर आप स्थित हूँ।

हे मैत्रेय! आत्मनिष्ठाका महान्माहात्म्य है, जो यमलोकमें भी सत, चित, आनंद आत्मा मैं हूँ, इतने कहने से दुःखसे छूटा, जो साक्षात् सम्यक् अपरोक्ष अपने स्वरूपका बोध होवे तो क्या बात है ? तू सम्यक् आत्माको जाननेवत् जान।

बहुरि हे मैत्रेय! ऋषभदेवने कहा हे निदाव! जैसे तुझको स्वप्न आया और अनेक प्रकारका प्रत्यक्ष वृत्तांत देखा, पर जब जागा तब भ्रम जाना। तैसे ही जबतक तू अपने स्वरूपके अज्ञानरूपी निद्रामें सोया है तबतक अनेकप्रकारका बंध मोक्षादि जगत् तुझको भासता है, जबसम्यक् अपरोक्ष बोधरूपी जाग्रत् तुझको होगी, तब जानेगा कि, यह जगत् भ्रममात्र है। निदाघने कहा योग करूँ तो स्वरूपमें जाग्रत् होऊँ। ऋषभदेवने कहा तेरी बुद्धि हँसने योग्य है मैं और कहताहूं तू और समझता है। तो कैसे अहंकारसें छूटे? हे मूर्ख ! योगनिद्राहूँ; मैं; अहंकारको कहते हैं। हे राजन् ! यह ज्ञानरूपी खड्ग ले कि; मैं देह नहीं, आत्मा हूँ। अहंकाररूपी फाँस जीवके गलेमें पडीहै, तिसको काट, अर्थात् "जीवत्व, ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व, प्रपंचत्व तिसमें बंध मोक्षादि मानना केवल मनका मनन है, मैं चैतन्य मन वाणीसे अगोचर हूं" यही फाँसका काटना है। फाँसके कटनेसे कालसे अभय होवेगा, नहीं तो काल तुझे दुःख देवेगा। हे राजन् ! शुद्धरूप विचार सत्का तब हाथ आवे जब ताली वैराग्यकी होय और वैराग्य यही है कि, अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा है अन्य कुछ नहीं, न होगा न हुआ है। इस निश्चयका नाम वैराग्य है।

ज्ञानी (तत्ववेत्ता) की पहँचान।

निदाघने कहा जिनके ज्ञाननेत्र खुले हैं, तिनकी क्या पहँचान है? ऋषभदेवने कहा जबलग तेरेनेत्र न खुलें, तबलग न जान स-

केगा । जैसे, सोया पुरुप जागे बिना जाग्रत् पुरुपको नहीं जानता। जिसका देह अभिमान सम्यक् मिटा है और आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जाना है,तिनको गृह वन तुल्य है । जो प्रारब्धकर प्राप्त होता है, हर्प शोकसे रहित तिसी पर प्रसन्न रहते हैं।ग्रहण त्यागकी कल्पना मनमें वास्तव नहीं; व्यवहारमें ग्रहण योगको ग्रहण करते हैं त्यागने योगको त्यागते हैं।हँसनेके स्थानमें हँसतेहैं, रोनेके स्थानमें रोते हैं । सारांश यह कि, जैसा देशकाल होवे,तिसके अनुसारही चेष्टाकरतेहैंपरअपनेसुखस्वरूपआत्मासेपृथक्जगत्कोजानतेनहीं

अहंकारके त्यागका उपाय ।

निदाघनेकहा अहंकारके त्यागका उपाय अतीत होना है,इससे मैं अतीत होता हूँ।ऋपभदेवने कहा गृहस्थ त्याग अतीत होनेसे अहंकार नाश नहीं होता,उलटा वृद्धिको पाताहै,यहसबके अनुभव सिद्धहै । कोई विरला निरहंकारी होता है प्रयोजन भी सूक्ष्म अहंकारके ही त्यागनेका है, स्थूलका नहीं क्योंकि सूक्ष्म अहंकार त्यागेसेही आवागमन मिटता है। इससे तू सूक्ष्म अहंकार त्यागकर जो सर्वत्यागी होवे।कोई अहंकारके त्यागनेवास्ते योगाभ्यास करते हैं पर त्यागा नहीं जाता, उलटा बढजाता है क्योंकि उन्होंने अहंकारके त्यागनेका मार्ग नहीं जाना ।

लौकिक गुरुका उपदेश ।

कदाचित् लौकिकगुरुसे अहंकारके त्यागनेका प्रश्न करता है तो गुरु कहताहै तीर्थ करना,व्रत नेम करना,तिससे तिसके मन विषे अहंकार उलटा दृढ होताहै, जब दृढ अहंकार हुआ तब बुद्धि क्षीण होती है,जब बुद्धि क्षीण हुई तो आवागमनको प्रा[illegible] होताहै और अपने स्वरूप ज्ञानसे दूर जाय [illegible] डताहै [illegible]
निकासे तो निकसे अन्यथा न [illegible]

भजन दोप्रकारका है-निष्काम और सकाम ।

हे राजन् ! दो प्रकारका भजन है । एक निष्काम और दूसरा सकाम । सकामसे स्वर्गादि सुख पाता है परन्तु निजस्वरूपसे अप्राप्त रहता है। निष्कामसे अंतःकरणकी शुद्धिसे ज्ञानद्वारा मोक्षरूप आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जानता है। आपसहित सर्वको ब्रह्मरूप जानना; यही परमभजन है ।

सूक्ष्म अहंकारसे कैसे छूटे ?

निदाघने कहा हे गुरो ! सूक्ष्मअहंकारसे कैसे छुटूँ? ऋषभदेवने कहा तेरी क्या शक्तिहै कि, सूक्ष्म अहंकारसे निकसे? मरीचिआदि लेकर सर्व ऋषि चाहना सूक्ष्मअहंकारके त्यागनेकी राखते हैं परन्तु किसी एककाही पूर्वके महान् पुण्यप्रतापसे सूक्ष्म अहंकार नाश होताहै। सूक्ष्म अहंकार अथाह समुद्र है तिसका तरना अति कठिन है। जिसको सूक्ष्मअहंकार है तिसका भ्रांतिरूप जन्ममरण भी दूर नहीं होता। सूक्ष्म अहंकार तपआदिकोंसे दूर नहीं होता परन्तु सम्यक् विचारसे दूर होता है ।

निदाघने कहा "जब सर्व अस्ति भाति प्रियब्रह्मरूप आत्मा है तो सूक्ष्म तथा स्थूल अहंकार कहांहै?" मधुरता, शीतलता, द्रवतासे फेन बुद्बुदे तरंग क्या जुदे हैं ? नहीं । ऋषभदेवने कहा जीव आवागमनमें बंध है तू कैसे जीवको ब्रह्म कहता है ? निदाघने कहा हे गुरो । जगत् सहित जो तुम्हारा हमारा कथन चिंतन है,सो सर्व रज्जु सर्पवत् मिथ्या है, तिससे जो रहित है तिसको जीव ईश्वर ब्रह्म क्या कहे ? अवाच पद है । ऋषभदेवने कहा आपको अवाचपद जानना यहभी सूक्ष्म अहंकार है ।

अष्टावक्र ।

तिससमय अष्टावक्र आये और कहा हे राजन्! मनको वशकर अहंकार और मन कहां है ? कौन है जो मनको वश करे ? राजाने कहा हे अष्टावक्र ! तू कौन है ? कहा मैं ब्रह्महूँ । ऋषभदेवने कहा ब्रह्म एक है कि;अनेक ? अष्टावक्रने कहा तेरी बुद्धि हँसने योग्यहै, जो ब्रह्म है तो एक अनेक क्या है ? तूभी कह मैं पूर्णब्रह्म हूँ। ऋषभदेवने कहा जबतक कामादि पांचोंका त्याग न करे तबतक सुख नहीं पाता । अष्टावक्रने कहा जब तूही चैतन्यहै तो चार और पांच क्या?ऋषभदेवने कहा रूप तेरा क्या है?कहा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिसे परे तुरीया मेरारूपहै। तिनकी अपेक्षासे तुरीयाहै, मैंचैतन्य तुरीयाते भी अतीत हूँ;मुझमें गिनती नहीं । दत्तने कहा मैं चैतन्य देशकाल वस्तुसे अतीत हूँ।अष्टावक्रने कहा देशकाल वस्तु किसमें है ? दत्तने कहा स्वप्नवत् देशकाल वस्तु मुझ चैतन्यमें कल्पित प्रतीत होते भी स्वप्न द्रष्टावत्, मैं चैतन्य अद्वितीय हूँ । कल्पित प्रपञ्चका मुझ चैतन्य अधिष्ठानके साथ क्या संबंधहै?जोसंबंधहै तो कल्पित तादात्म्य संबंध है।मैं पूर्णहूँ।अष्टावक्रने कहा जहां अतीत कहना है,तहां द्वैतहै, जहां पूर्ण है,तहां अपूर्ण भी है।तेरा वचनहँसने योग्यहै।जबसर्वात्माहीहैतोपूर्ण अपूर्णअतीतभीप्रत्यक्आत्माहीहै। दत्तने कहा निरहंकार होना भी अहंकार है।कहो निरहंकारकैसेहोवे अष्टावक्रने कहा ऋषभदेवसे पूछ जो अपने शिष्यको ऐसाभयदिया है कि, स्वतःसिद्ध प्रथम प्राप्त आत्मस्वरूपको भी जान नहींसक्ता। दत्तने कहा हे ऋषभदेव ! मैं तेरा शिष्य होता हूँ उपदेश कर। ऋषभदेवने कहा हे दत्त! चौबीस गुरुसे तुझको निश्चय न हुआ तो मुझसे कैसे होगा ? दत्तने कहा मैं चैतन्य आपही गुरु हूँ, आपही शिष्यहूँ, कहे तो शिष्यसहित तुझे भस्म करूं । ऋषभदेवने कहा जब सूक्ष्म अहंकारनाश हुआ तब आपसेआप भस्म होगा।पर अहंकार

तब नाश होय जब जाने सर्व शिव है तो स्थूल सूक्ष्म अहंकार कहां है?दत्तने कहा जब सर्व शिव है तो कैसे जाना जावेगा कि, सर्व शिव है?तथा अहंकार नाश हुआ वा नहीं क्योंकि सर्व शिव है और अहंकार नाश हुआ है, इस चिंतनके चिंतन करनेवालेको तथा चिंतनीयको शिव होनेसे। इसी हेतु अवाचपद है। अष्टावक्रने कहा मन वाणीका वाच्य भी आत्माही है और मन वाणीका अवाच भी आत्मा ही है; जैसें स्वप्नद्रष्टा मन वाणीका वाच्य स्वप्नभी आप है और अवाच्य भी आप है, इससे अद्वैत है।

योग।

वसिष्ठने कहा मुक्त हुआ चाहे सो योग करै।अष्टावक्रने कहा सत् कहो योग कौन करै?सत् और असत्के योगका योग नहीं क्योंकि आत्मासे भिन्न सर्व असत्है और आत्मा सत् है,सो कैसे योगकरनेके योग्य होवे?तमप्रकाशके समान दोनोंका संबंध नहीं।वसिष्ठने कहा तुम बालक हो,योग किया नहीं,इससे तुम्हारा मन शुद्ध हुआ नहीं।अष्टावक्रने कहा विछोहा हो तो मिलाप करना, मिलापका मिलाप क्या करनाहै?उसका तो सदा योगही है।आत्मामें विकार रूप संसार कदाचित् भी है नहीं।इससेसंसारका सदा वियोगभी है। कहो आगेही स्वतःसिद्ध योग वियोगको मैं अब नवीन क्या करूँ? जो मन वाणी शरीरके कर्त्तव्यसे सिद्ध होता है सो अनित्यहै; सो अनित्य देहरूप संसारभी नित्य प्राप्त है और नित्यब्रह्मरूप आत्मा भी नित्य प्राप्तहै । वा दुःखकी निवृत्ति सुखकी प्राप्ति वास्ते योग करना है,सो सुखरूप आत्मा नित्य प्राप्तहै और संसाररूपदुःखकी निवृत्तिभी नित्य प्राप्तहै।इससे कल्पित दुःखकी निवृत्तिरूप भी आत्माही है, सो आत्मा अपना स्वरूपहै, स्वरूपकी प्राप्तिवास्ते योगका कुछ काम नहीं। सो कहो दोनोंमें किसकी प्राप्तिवास्ते

यत्न करना।इस प्रकार योग निष्प्रयोजनहै; तुम पद्मादि आसनोंका योग लिये शिष्योंको उपदेशकरते हो और प्राणोंका रोकना कहते हो। मैं कहता हूँ, अपनी रुचिके अनुसार आसन करे वा न करे, लंबा होयकर सोयरहे वा बैठा रहे वा चले वा खडा रहे;प्राणोंको भी सुख नहीं,आने जाने देवे रोके नहीं, मनको भी पीडन क्यों करे।पर मन वाणी सहित मन वाणीके गोचर अगोचरको शिव-रूप आत्मा जाने, यह जाननाहीं योग है, करना कुछ नहीं।जो कुछ है आगे सिद्ध है।

खेचरी मुद्राद्वारा योगी कैसा अमृत पीता।

जो कहते हैं लंबिकाको छेदनकर बढाके योगी जब खेचरीमुद्रा करता है तब अमीरस पीता है; हे साधो।सो अमीरस यह है कि, जब योगी प्राणोंको खैंचकर दशवें द्वारमें रोकताहै,तब शरीरअग्नि-की समान उष्णरूप होजाताहै,तिस उष्णतासे शीशमें जो मेदमज्जा रुधिर है, जो बर्फकी समान जमा रहता है, सो प्राणोंके रोकनेकी उष्णतासे पूर्वोक्त रुधिर मज्जा आदि नीचे गिरता है, तिसको योगी अमृत जानकर पीता है। इससे अज्ञानी है क्योंकि अंतर बाहर एक ब्रह्महीं है, सोई हुआ अथाहसमुद्र, तिसको त्यागकर एक बूँदपर निश्चय करता है,इसीसे अज्ञानी है। वसिष्ठने कहा तूने संसारको भ्रष्ट किया है। दत्तने कहा मैं चैतन्य नामरूप संसारसे भ्रष्ट हूँ,नाम अतीत हूँ। योगीको योग्य हैं कि,सोवे नहीं तथा वचन न करे,आ-सन करे,प्राणोंके मार्गको देखता रहेइत्यादि अनेक साधन करता रहे पर यह नहीं जानता कि,निर्विकारशिवात्मामें विकार मिला-वना आत्मघात है।पंचतत्वही रज्जु सर्पवत् मिथ्याहै, एक प्राणरूप पवनका क्या चलताहै।कपिलने कहा जोईश्वरको आत्मासेकुछभि-न्न जाने सो योग करे,जिसने सर्व ईश्वर आत्मा जाना है सो चुप रहे।

दत्तने कहा वचन और तूष्णीं दोनों मेरे स्वरूपमें नहीं, और मैंही सर्वरूपभी हूँ इससे दोनों समहैं। अष्टावक्रने कहा न कहताहूँ न तूष्णीं होताहूँ और आपही कहताभीहूँ आपही तूष्णीं भी होताहूँ सारांश यह कि; द्रष्टा दर्शन दृश्यादि त्रिपुटीभी मैं चैतन्यहीहूँ और त्रिपुटी रहितभी मैंही हूँ; स्वप्नद्रष्टावत् किसी पदमें भी बंधमान नहींहूँ।

नारद।

तिस समय नारद, बांसुरी विषे नारायण नारायण गाते हुये आये सबने कहा तूष्णीं हो नारदने कहा जहां संत इकट्ठे होते हैं; तहां आत्मनिरूपण करतेहैं; तिससे मुमुक्षुओंको परमार्थ प्राप्त होताहै, तूष्णींसे क्या सिद्धहै? दत्तने कहा स्वतःही नारायणहै,तो कहनेसे क्या लाभहै? नारायणको तूने भुलायाहै, नारायणका और तेरा वियोग होगयाहै; तू नारायणको ढूँढता फिर, हमारे स्वरूपमें भुलावना चिन्तना संयोग वियोग दोनों नहीं। नारदने कहा वैकुण्ठमें भी इस सभाकी चर्चा हुई थी, सो संतोंके दर्शन वास्ते विष्णुभी आतेहैं। दत्तने कहा असत् मत कह, तेरे वचनसे लोग हँसेंगे क्योंकि व्यापक विष्णु चैतन्य आत्मा विषे आवना जावना कहां है? हम विष्णुके मिलनेकी इच्छा नहीं रखते क्योंकि विष्णु हमारा आत्माहै हम विष्णुके आत्मा हैं। अपने आत्माके मिलने जुदा होनेकी इच्छा कोई नहीं करता।

विष्णु।

तिस समय विष्णुने आकर कहा, जिसने मुझ व्यापक चैतन्य विष्णुको व्यापक जानाहै सो अचिन्त्य मेरा रूपहै,तिसविषे और मेरे विषे कुछभेद नहीं।दत्तने कहा तुझको जानेविना प्रथम क्यातेरा रूप नहीं?-क्या घटाकाशको महाकाश जाने विना प्रथम घटाकाश क्या महाकाश नहीं? हे नारद! परमेश्वर आप कहताहै सर्व

विष्णुहै, तू आपको तिससे भिन्न नारद दास जानताहै। जब सर्व विष्णुहै तब नारद कहां है ? नारदने कहा जब सब विष्णुहै तो नारद भी विष्णुही है, दास स्वामी भी विष्णुही है।

जडभरत।

जडभरतने आकर कहा सर्व जड भरतहै। विष्णुने कहा न जड-भरत न विष्णु एक मैं चैतन्य अद्वैत हूँ। पर कहो जडभरत शब्दका अर्थ क्याहै ? कहा कि, जड नाम अफुर चैतन्यकाहै, भर नाम आनन्द पूर्णकाहै, तकारका सत् अर्थहै इससे सत्, चित,आनंद जडभरतका अर्थ है।

जडभरत और एक योगीका सम्वाद।

जडभरतने कहा हे सभा ! एक समय मैं विचारताहुआ पर्वतमें गया तहां एक योगीको देखा।मैंने नमस्कार करके प्रश्न किया कि हे योगी ! तेरा स्नान क्याहै ? योगीने कहा निरहंकाररूपी जलसे स्नानकर जीवत्वरूपी मैलको धोयाहै।मैंने कहा भस्म तेरी क्या है ?उसने कहा अपने नित्य सुख चिद्रूप आत्मा पृथक् प्रतीतिरूपी काष्ठको,निजस्वरूपके सम्यक् ज्ञानरूपी अग्निसे जलाकर,भस्म लगाईहै।मैंने कहा आसन तेरा कौनहै ? कहा सर्व मायासे लेकर देह पर्यंत,दृश्यजगत्की उत्पत्ति,स्थिति,संहारका आसन नाम आधार मैं चैतन्यहूँ, मुझ चैतन्यका आधार कोई नहीं, इसीसे स्वयंप्रकाशहूँ, जैसे फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंकी, उत्पत्ति स्थिति संहारका जल आसनहै, जलसे स्वर्णका आसन भूषणहै वा तरंगादिकोंका आसन जलहै इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं वा सर्व कार्य वर्गमें कारण स्थित होताहै सर्व कार्य कारण नामरूप प्रपंच मेरा आसनहै, वा अचल स्थितिही मेरा आसन है। मैंने कहा आना जाना तेरा कहांसे हुआ है ? उसने कहा आकाशके समान पूर्ण हूँ, मुझ चैतन्यमें आना जाना नहीं, जैसे सुवर्ण-

का भूषणोंमें आना जाना नहीं;जैसे रज्जुका सर्पादिकोंमें आना जाना नहीं। मैंने कहा प्राण अपानका इकट्ठा करना क्या है?उसने कहा एकजीव एक ईश्वर दोनोंको एक जाना है,जैसे घटाकाश और महाकाश एक है, यही प्राण अपानका इकट्ठा करना है। मैंने कहा इडा पिंगला सुषुम्नाका कैसे अभ्यास किया है?कहा इडा जीव, पिंगला ईश्वर , सुषुम्ना ब्रह्म·यह मुझ चैतन्यसे प्रकाश राखते हैं, मैं स्वयंप्रकाश हूँ । मैंने कहा धारणा कहो। कहा सर्व मैं हूँ। मैंने कहासोहंका अर्थ क्या है ? कहा ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत अंतर बाहर पूर्णहूँ।मैंने पूंछा कि,नासिकादृष्टि क्या है,कहा मायाकर कल्पित प्रपंचकी उत्पत्तिसे पूर्व, जो मैं चैतन्य अवाचपद हूँ,सो अबभी वही हूँ। वा नाश नाम अभावका है, सो भाव पदार्थोंकी तथा मनकी कल्पनाके प्रथम निर्विकार स्थित हूँ, यहीनासादृष्टि मेरी है । मैंने पूछा कि, त्रिपुटी क्याहै? कहासत्त्व, रज, तम, इस त्रिपुटीकासाक्षी चैतन्यमैं हूँ। मैंनेकहा योगीका शरीर कभी गिरता नहीं, यह क्या जानना ? कहा प्रकृति पुरुषके संयोगकर जगत्की उत्पत्तिकरनेवाला जो चैतन्य योगी है, सो अशरीर होनेसे गिरता नहीं;वा जैसे देहीका यह देह शरीर है; तैसे पूर्वोक्त मुझ चैतन्य योगीका माया शरीर है;सो माया अपने देहादिकार्यकी अपेक्षासे अगिड अग्रिम है इससे योगीका शरीर अगिड कहाहै।वाशरीरनाम स्वरूपका है, सो पूर्वोक्त चैतन्य योगीका स्वरूप अगिड है, वा पंचभूतरूप देहसे अतीत हूँ। मैंने कहा मैं तेरा शिष्य होता हूँ । कहा आगेही सर्व दृश्य मुझ द्रष्टा गुरुका सेवक है,अब क्या शिष्य होगा ? पुनः मैंने कहा चौका किसका किया है ? कहा चतुष्टय अंतःकरणका चौका किया है, नाम मायामात्र जाना है। मैंनेकहा चूल्हा रोटी करनेका तेरा कौन है ? कहा अहं त्वं वा जीव ईश दोनों ईंटा बनाकर "मैं ब्रह्मात्मा हूँ" यही रोटी करता हूँ । सारांश यह

कि,जीवभाव तथा ईशभाव त्यागके अवाचपदमें स्थिति की है। मैंने कहा अन्न तेरा क्या है? कहा ज्ञान विज्ञान दोनों मेरे अन्न हैं। पूछा खाना तेरा क्या है? कहा विज्ञान। मैंने कहा ईंधन तेरा क्या है? कहा सर्वभोगोंकी अचाहना ईंधन किया है।मैंनेकहा भगवान्‌को भोग क्या लगाताहै? कहा देहअभिमान प्रत्यक् आत्मा भगवान्‌को भोग लगाकर स्वस्वरूप हुआ हूँ। सारांश यह कि मैं देहादि संघात नहीं,किंतु मैं प्रत्यक् आत्मा हूँ। मैंने कहा सोना तेरा क्या है?कहा सर्वदृश्यमान रूप मेरा है,जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नसृष्टिमें शयन कर रहा है; नाम व्याप रहा है, । मैंने कहा तू मेरा गुरु है, कहा मैंने गुरु शिष्य भावको त्यागा है। पुनः ऐसे दुःखको मुझ चेतन्यमें मत चितव।

उसने पूछा तेरा नाम क्या है?मैंने कहा जडभरत। उसने कहा मेरे साथ तेरा संग नहीं होगा क्योंकि जड मृतकको कहते हैं, मैं चैतन्य जीवता हूँ;तू उसके संग रह जोजडभावको न त्यागे।सारांश यह कि,जो आपको देहादिक जडसंघात माने,यथायोग्य ही संग चाहिये। जड चैतन्यका क्या संग है? जडतू अपने जड भावको त्यागे;मैं अपने चैतन्यपनेको त्यागूं तब एकता हो,अन्यथा नहीं।

हे सभा! अमृतरूप तिसका वचन सुनकर मेरा जो जडभरतपनेका अभिमान था सो निवृत्त हुआ।

वामदेव।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इतनेमें वामदेव आया और कहाअस्ति भाति प्रियरूप नारायण आत्माही है। हे मित्रो! नारायणसेभिन्नजो तुमने निश्चय किया है तिसका त्याग करो।दत्तनेकहा नारायणका रूप क्या है? कहा अन्तर साक्षी रूपकर जो मनआदिकोंकोप्रकाश करता है और जो मायाकर एकसेअनेक हुआहै,परवास्तवसेएकही

है, इंद्रजालीवत्‌। दत्तनेकहा मुझे चाहना एककी भी नही अनेकको क्याकरूँगा। कपिलनेकहा जो सर्व तूहीहैं तोएक अनेक भी तूहीहै।

दुर्वासा।

पुनः दुर्वासा आया पर अहंकाररूपी अग्निमें जलताथा। दुर्वासाने कहा सर्वभजनगोविंदका करो, नहीं तो सर्वको भस्म करूंगा जानते तुम नहीहो। मैं रुद्र हूं दत्तने कहा रुद्ररुदनको कहते हे इससे रुदन कर। दुर्वासाने कहा हे दुष्ट। मैंने सुना है कि, तूने सर्व संसारको भ्रष्टकियाहै। पहले तुझे भस्मकरताहूँ। दत्तनेकहा घटके आदि माटी, अंतमाटी, मध्य माटी, अपने फूटनेमे घटको क्या भयहै? जैसे तरंगके आदिभी जल है मध्यभी जल और अंतभी जलहै तोतरंगकेनिजपरिच्छिन्न स्वरूपके फूटनेमे क्या भयहै? तैसेही इस पंचभूतरूपीदेहके आदिमें भी चैतन्य आत्माहै अंत मेंभी चैतन्य अत्मा है औरमध्यमें भी चैतन्य आत्मा है शरीरके भस्म होनेसे क्याभय है। मैंने तुझ सहित सर्व नाम रूपप्रपंचको ऐसा भस्म किया कि वह भस्मभी नही मिलती; जैसे स्वर्ण तथा जलादि सम्यक् दृष्टिवान् पुरुषने भूषणोको तथा फेन बुद्बुदे तरंगादिकोको भस्म कियाहै, नाम अत्यंताभाव जानता है तैसेही अस्ति भातिप्रियरूप आत्मासे पृथक्, नामरूप प्रपंचका सम्यक् अपरोक्ष बोधकर ऐसा भस्म कियाहै, मानो तिसकाअत्यंताभाव जाना है, यह निश्चय जिसकोहै सोई नामरूपसे भ्रष्ट है। दुर्वासाने कहा तुम सभी शिष्य मेरे होवो, नही तो शाप दूंगा। विष्णुने कहा सर्व उपाधियोंका मूल दत्त है, तिसीको शाप दे। दुर्वासाने कहा हे मित्रो। तुम कर्मकरो भ्रष्ट मत होवो। दत्तने कहा हम अकर्महैं, कर्म कैसे करें। कर्म देह मनादि संघातके है, सो स्वतःसिद्ध कर्म संघातसे होता है, करनेसे नही। दुर्वासाने कहा हे विष्णु। कर्मोकर जगत्‌का ठाटहै जो तुझे यह जगत्‌का ठाट रखना है, तो कर्मोंकी प्रधानता राख। विष्णुने कहा

स्वप्नप्रपंचका किन कर्मोंका ठाट है, निद्रारूप विद्यासेही स्वप्न ठाटहै। जहां अविद्या है तहाँ कर्म आपसे आप है, प्रधानता करनेसे नहीं; परन्तु कर्मकांड,उपासनाकांड, ज्ञानकांड, अधिकारी, कालअवस्था, भेदसे स्वस्व फलको सम्यक् देतेहैं। ज्ञान कोई जगत्के व्यवहारका बाधा करनेवाला नहीं किन्तु कर्मादि वस्तुका सम्यक् स्वरूप बोधन करताहै। ज्ञानी कर्मकर्ताभी अकर्ताहै और अज्ञानी कर्मअकर्ताभी कर्ताहै, इससे सर्वको अपना स्वरूप जान जो शांत होवे। दत्तने कहा कर्मरूप जगत् मुझ चैतन्यसे उत्पन्न होताहै और मुझमेंही लीन होता है,पर मैं चैतन्य ज्योंका त्यों निर्विकार हूँ,स्वप्नद्रष्टावत्। दुर्वासाने कहा सर्वको भस्मकरे विना न जाऊँगा।दत्तने कहा जिन्होंने आपा अहंकार प्रथम भस्म कियाहै सोई दूसरेको भस्म करसकताहै,अन्य नहीं। जो तुझसे भय राखता होवे तिसको भस्म कर। मैं भयनहीं रखता हूँ दूसरा मुझ चैतन्यसे भिन्न,तुझसे आदि लेकर सर्व जगत् रज्जुसर्पवत् मिथ्या प्रतीतिमात्र है, कल्पित पदार्थ अधिष्ठानको कैसे भस्म करैंगे? उलटा अधिष्ठानके अज्ञानसे अधिष्ठानमें कल्पित पदार्थ भस्म नाम निवृत्त होजातेहैं। इससे अपने भस्म होनेका फिक्र कर, नहीं तो भस्म होजावेगा; तुझको बचनेका उपाय यही है जान मैं ब्रह्मस्वरूप आत्माहूँ यही कथन चिन्तन कर। ब्रह्मात्मासे आपको भिन्न मानेगा तो क्षणमात्रमें भस्म होजावेगा, नाम मिथ्या हो जावेगा। दुर्वासाने कहा हे जडभरत।तूने जडपदका नाश करके, बहुरि साथ क्यों रखता है? जडभरतने कहा जैसे तू पूर्ण होकर खोटको संग रखता है। हे दुर्वासा जो मैं चैतन्य इस जड दृश्य वर्गको संगनाम स्फुर्ण नहीं करूँ तो इसकी स्फूर्ति कैसे होवे? क्योंकि, जडको तो जड स्फुर्ण नहीं करूँ करता.

.कारण जो माया सो भी

पदमें माया विना वचन विलास नहीं होता इससे वचन विलास करनेवास्ते मायाकोसंगरखता हूँ,स्वतःनहीं। दुर्वासाने कहा तो सभा मैं नहीं पावता जो तुम्हारी सभामें आया हूँ क्योंकि मार्ग तुम्हारा भ्रष्ट है। दत्तने कहा ठीक कहा तूने जन्ममरणरूप संसारमार्ग हमारा भ्रष्टनाम नष्ट भया है और स्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाननेवत् जानाहै। तुझ अज्ञानीका जन्ममरणसंसार नष्ट नहीं हुआ इससे तू अभ्रष्टहै।

मीमांसा।

इतनेमें मीमांसा आया,दुर्वासा प्रसन्नहुआ और कहा हे मीमांसा;तू आगे सन्मुखहो,मैं सहायता करूंगा। मीमांसाने कहा कर्मविना कार्य सिद्ध नहींहोता। दत्तने कहा कार्य कारणसे रहित मैं चैतन्य आत्मा स्वतः सिद्ध स्वयंप्रकाशहूँ मुझको कर्मोंकी अपेक्षा नहीं,जैसे सूर्य और स्वप्नद्रष्टा, अपने कार्य नाम प्रकाशमें, जगत् रूप कर्मकी अपेक्षा नहीं राखते। जगत् कोटिमेंभी कहो तोकर्तासे कर्म सिद्ध होताहै, कर्मसे कर्ता सिद्ध नहींहोता; यह सर्वकोप्रसिद्ध है,जैसे नेत्ररूप कर्तासे नील पीतादिरूप कार्यकी सिद्धि होतीहै, रूपसे नेत्र सिद्ध नहींहोते। हे मीमांसा! मन वाणी शरीरसे कर्म होतेहैं मुझ चैतन्यमें मन वाणी शरीरादिकही नहीं तो कर्म कहांहै?

कर्मकी-आवश्यकता कहांतक है?

मीमांसाने कहा तुमही कहो शरीर होते कर्मोंसे छूटना होगा? कदापि नहीं। इससे स्वरूप प्राप्तिवास्तेकर्म करो।दत्तने कहा अकर्मा रूप आत्माके बोध से कर्मोंसे छूटताहै, शरीर होते ही। इससे अकर्मरूप आत्माकी प्राप्तिवास्ते कर्महै जब स्वरूप जाना तो कर्मसे क्या प्रयोजनहै? मीमांसाने कहा हे दत्त! बीज और वृक्षमें क्या भेद है? दत्तने कहा यहां यह दृष्टांत नहींलेना, साध्यकी प्राप्ति-

हुये साधनोंकीकुछ अपेक्षानहीं, जैसे भोजनके सिद्ध हुये तिसी कालमें रसोईके साधनोंकी अपेक्षा नहींहै। हे मीमांसा!किसी पुरुषको किसी देवस्थानोंमें जाना है और तीन मंजिलोंसे आगे देवस्थानहै जब एक मंजिल चलकर दूसरी मंजिलको पहुँचताहै, तो प्रथम मंजिलके कर्तव्यसे रहित होता है जब तीसरी मंजिल को पहुँचता है, तब दूसरी मंजिलके कर्तव्यसे छूट जाता है; तैसेही जब चतुर्थ मंजिलको नाम देवस्थानको पहुँचता है तबतक कृत्य होताहैपरन्तु तीन मंजिलोंकोतैं करे बिना कृतकृत्य नहींहोता, तब पिछले सर्व मार्गके पूर्वकरे अनुभव कर्तव्यसे कृतकृत्य होताहैतिससे आगे कर्तव्य नहीं। पुनः पिछले मार्गोंका तथा मार्गोंकेसुख दुःखका तथा मार्गोंमें स्थित रमणीक अरमणीक पदार्थोंका स्मरण तो होताहै परन्तु यत्न नहीं होता है। तैसे कर्म उपासना वृत्ति ज्ञानरूपी तीन मंजिलोंसे परे ब्रह्मरूप आत्मदेव है;तिसकी प्राप्तिवत् प्राप्तिसे एक कर्म क्या तीनों कांड निष्प्रयोजन हैं, पूर्वोक्त दृष्टांतवत्। तैसे स्वयं स्वरूप आत्मा देवस्थानहै, तिसकी प्राप्तिमें कर्मकांड,उपासना,ज्ञानकांड,तीन मंजिल हैं।जब निष्काम कर्मकर अंतःकरणकी शुद्धिरूपी पहिली मंजिलम पहुँचा, तोतिससे निष्कर्तव्यहुआ, फलकी प्राप्तिहोनेसे। तैसेही सगुण वा निर्गुण उपासना करनेसे अंतःकरण निश्चलता रूप दूसरी मंजिल पहुँचताहै पुनःतिससे निष्कर्तव्य होताहै तैसेही सम्यक् ज्ञानकर अज्ञानकी निवृत्तिरूप तीसरी मंजिल पहुँचताहै। तब तिसके यत्न से रहित होताहै यह नहीं कि,पीछे लौटकर फिर यत्न करताहै किन्तु नहीं करता क्योंकि,तत्तत्,प्रयत्नके फल प्राप्त होते हैं। तिससे पश्चात् सब दुःख की हानि और परम आनंदकी प्राप्तिरूप मोक्षरूप देवस्थानको प्राप्तहोताहै।यह व्यवस्था सब विद्वानोंके अनुभव सिद्ध है इससे स्वरूप प्राप्ति पश्चात् तीनों कांड निष्फलहैं। मीमांसाने

कहा कर्मोंसे जगत् होता है तथा उत्तम सुखरूप लोकोंकी प्राप्ति होती है। कपिलने कहा कर्मसहित जगत्की चैतन्य आत्मासे (स्वभद्रष्टासे स्वप्नवत्) उत्पत्ति होती है, दूसरा जिसको लोकोंमें जानेकी इच्छा हो सो कर्म करो, जिसको इच्छा नहीं सो मत करो परन्तु कर्म कर्ता कौन है ? यह विचार मुमुक्षुको अवश्य कर्तव्य है। मीमांसाने कहा हे साधो ! कायिक, वाचिक, मानसिक तीन प्रकारके कर्म हैं आत्मानात्माका विचार मानसी कर्म है । विचारना न विचारना यह भी मानसी कर्म है। जो कुछ कथन करोगे वा न करोगे, सो वाणीका कर्म है जो कथन चिंतन करोगे वा न करोगे सो मानसी कर्म है। खान पानादिक शयन जन्म मरणादि चेष्टा करोगे वा न करोगे, सो शारीरिक कर्म है। कहो किसकालमें अकर्म हुआ? सारांश यह कि, यह देहही कर्मरूप है, कर्मसे कर्म अतीत कैसे होता है। दत्तने कहा जो शरीर रूप होवेगा सो कर्मरूपभी होवेगा, शरीरसेही रहित अशरीरी आत्मा पूर्वोक्त तीन प्रकारके कर्मोंका साक्षी कर्मरूप कैसे होवेगा ? जैसे देही देहरूप नहीं होता; तैसे कर्मरूप संसारसे, मैं प्रत्यक् आत्मा कर्मका प्रकाशक भिन्न हूँ । कर्ताके अधीन कर्म है इससे जड है। प्रसिद्ध कर्ता, कर्म, भिन्न भिन्न होते हैं एकरूप नहीं। इसीसे कर्मोंका सार कर्ता है कर्ता कर्म करो वा न करो । हे मीमांसा। तू चैतन्य सर्वका कर्ता होकर कर्मरूप क्यों होता है? मीमांसाने कहा कर्म विना चंडाल होता है। ऋषभदेवने कहा चंडाल आत्मासे कब भिन्न है जो कर्मके त्यागसे चंडाल होता है; तो मैं भी चंडाल हूँ। चंडालनाम ब्रह्मरूप आत्माका है क्योंकि कर्मरहित आत्माही है, अन्य नहीं। इससे आत्मा चंडाल हुआ। मीमांसाने कहा इन्होंने संसारको भ्रष्ट किया है। दत्तने कहा ठीक कहा, तूने अपने स्वरूपसे भिन्नको मिथ्या जाना है। हे मीमांसा। जो स्वरूपसेअ-

प्राप्त है वही भ्रष्ट है,पर कहो कर्म स्वप्रकाश है कि, परप्रकाशहै? मीमांसाने कहा यह दोनों कथन चिन्तन मन वाणीका कर्महै । जडभरतने कहा "यह मन वाणीका कर्म है" यह कथन चिंतनअंतर जिसने जाना, सो आत्मा स्वप्रकाश अक्रिय है, कर्मरूप नहीं ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मीमांसाका प्रयोजन यही था कि, सर्व पालन कर्मोंका करे क्योंकि देहाभिमान स्थूल अहंकारसे कर्म नहीं होते, सूक्ष्मसे होते हैं, स्थूल शरीरसे भिन्न आत्माको कर्मी भी मानता है क्योंकि शरीररहित हुआ ही यह जीव कर्मोंके, फल स्वर्गादिकोंमें जायकर भोगताहै,इन शरीर सहित नहीं। परन्तु आत्माको असंग, अक्रिय, नित्य, मुक्त इत्यादि विशेषणोंयुक्त विद्वानवत् नहीं जानता, इसीसे भावी जन्मको पाता है।कर्मोंसे रहित होना अत्यंत कठिन है। मैत्रेयने कहा सर्व कर्मोंकीआत्मामें आस्तीयोंको पालना मीमांसा अनुसार बनती है परन्तु आत्मा विषे रति,आत्मा कर संतुष्ट आत्माचारी,क्या करे ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! वचनसे निश्चय जायतौ निश्चय नहीं कपट है । शरीर नाश होय तो होय पर निश्चय न त्यागे; इसी बातपरएक कथा सुन ।

एक राजपुत्रकी कथा ।

(जिसको गर्भमेंही आत्मज्ञान हुआ था.)

कर्मभूमि भरतखंड विषे एक राजा था उसकी स्त्री गर्भवतीथी। जब दश मासबीते तब पूर्व अनेक जन्मोंके पुण्यके प्रतापसे तथा सम्यक् प्रतिबंधकके अभावसेतथा पूर्वजन्मोंमें किये जोश्रवणमनन निदिध्यासनज्ञानके साधन वा अनेक जन्म संस्कारोंके वशसे तथा पूर्वकिये सगुणवानिर्गुण अनेक प्रकारकी उपासनाकेबलसे गर्भमें ही हुआ है सम्यक् अपरोक्ष ज्ञान जिस बालकको,सो पूर्व करे वेद

अध्ययनके संस्कारकी प्रगटतासे गर्भमेंही वेद उच्चारण करनेलगा। तिसकी अत्यंत धर्मात्मा माताने, सूक्ष्मदृष्टिसे वेदध्वनि सुनकर प्रश्न किया कि; हे पुत्र! तू कौन है?पुत्रनेकहा मैं सत् चित् आनंद आत्मा हूँ। माताने कहा तू पिताके शुक्रसे उत्पन्न हुआहै। पुत्रने कहा हे माता।जो पिता माताके शुक्रसे उत्पन्न हुआ है,सो यह जड शरीर है।मैं शरीर नहीं, केवल चैतन्यमात्र अरूप हूँ;अज, अक्रिय, अविनाशी आत्मा हूँ. भूत भविष्य वर्तमानमें एकसा पूर्ण हूँ। माता पिताके शुक्रसे कैसे होऊँ? माताने कहा मुझसे अपकर्म कुछ नहीं हुआ,तू पिताके शुक्रसे क्यों मुकरता है? पुत्रने कहा मैं शुक्रसे मूलही नहीं क्योंकि यह शरीर काष्ठकी पुतरीके समान नाम रूपात्मक जडहै और मैं चैतन्य नामरूपसे रहित हूँ।हे माता। जो नाम रूप शरीरसे रहित होवे उसको कैसे कहिये कि अमुकका पुत्रहै? तेरी दृष्टि शरीरपर है,पर इसको स्वप्न तथा मृगतृष्णाके जलवत् जान। माताने कहा पिताके शुक्रसे मुकरता है; तो शास्त्रसे भ्रष्ट होवेगा।पुत्रने कहा सत् कहा तूने जो नाम रूप स्वरूप नही राखा सो शास्त्र जगत्से भ्रष्ट है। हे माता! शास्त्र तिसको दंड देता है, जिसने आपको शरीर मानाहै।जिसने इस मलिन शरीरका अभिमान सम्यक् त्यागके, अपने आत्मस्वरूपको जाना है तिसपर शास्त्रकी विधि नहीं। माताने कहा हे पुत्र! तू कौन है? देवता कि, पिशाच कि,मनुष्यादिक वा कोई और है? पुत्रने कहा हे माता! पूर्वोक्त शब्द और शब्दोंके अर्थसे रहित हूँ।सर्वकाप्रकाशकहूँ और सर्वरूपभी मैं चैतन्यही हूँ,स्वप्नद्रष्टावत्। माताने कहा जो तू ऐसा था मेरे उदरमें क्यों आया?पुत्रने कहा हे माता। तू विचारकेनेत्रोंसे अंध है। क्या आदि मैं चैतन्य तेरे उदरमें न था, जो अब आया हूँ? मै चैतन्यआकाशके समान सर्व व्यापक हूँ, मुझमें

आना जाना नहीं। सत् चित् आनंद आत्मा मेरा स्वरूप है मुझको आत्मदेव कहते हैं।जन्म मरणका कारण जो देहाभिमान पूर्वक कर्मोंका सेवन है;तिससे अतीत हूँ। मेरा नमस्कार मुझको है।माताने कहा योगकर जो मलिनतासे छूट। पुत्रने कहा योगका मुझ चैतन्यमें वियोग है। जो मुझ चैतन्यमें मलिनता होवे तो तिसके दूरकरने वास्ते योगादि करूँ; पर मुझमें मलिनता है नहीं। इसहेतु योगसे क्या प्रयोजन है ?.जैसे आकाशमें मलिनताहो तो यत्न भी करे, जो नहीं तो कुछ नहीं। मैं चैतन्य आत्मा नित्य मुक्त हूँ। तुझे भ्रमने आच्छादन किया है। अपने नित्य मुक्त, नित्यप्राप्त,आत्मस्वरूपको पानेवास्ते योग ध्यानादिक हैं सो भ्रम है।सत् चित् आनंद आत्मरूप मेरा स्वतःप्रकाशमान है,करना कुछ नहीं, जो करे सो भ्रमी है। हे माता ! मुझ स्वरूप असंग चैतन्यका किसी वस्तुके साथ योगनाम जुडना नहीं और कोई वस्तु मुझ चैतन्यके साथ जुडती नहीं मैं आपसे आप असंगरूप हूँ। किससे जुडूं मुझसे कौन जुडे।सर्वसे अयत्नही जुडभी रहा हूँ, अजुडभी रहाहूँ। सर्व मुझसे अयत्नही जुडरहे हैं,यत्न नहीं,जैसे स्वरूपसेही असंग आकाश किस वस्तुसे जुडे, नाम संबंध करे वा न करे, कौन वस्तु है जो तिससे जुडे और न जुडे किंतु कोई नहीं। सर्ववस्तुमें जुडभी रहा है,अजुडभीरहा है। सर्व वस्तु तिससेभी जुडरही है; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न पदार्थोंसे अयत्न जुडभी रहा है,अजुडभी रहा है। कल्पितसर्व स्वप्नपदार्थस्वप्नद्रष्टासे अयत्नही संबंध पारहेहैं,यत्नसे नहीं।माताने कहा कर्मों विना सुख नहीं। पुत्रने कहा हे माता ! जिसके आदि अंतमें दुःख है, मध्यमें सुख कैसे होगा?हे माता ! यह सर्व नाम रूप संसार कर्मरूपहै,अनादि कालका तुझको प्राप्त होता चला आता है, आजतक इस संसाररूप कर्मसे तुझको सुख न हुआ तो आगे कैसे सुख होगा ? किन्तु नहीं होगा।

उलटा जन्म मरणादि दुःख है। इससे तू आपको अकर्मरूप आत्मा जान। माता तूष्णीं हुई। पुत्रने कहा तूष्णीं मतहो, जो तुझको निश्चय हो सो कह और सुन। हे माता! यह कोटानकोट ब्रह्मांड मुझ चैतन्यसे प्रगट पडे होते हैं, पुनःमुझमें जलतरंगवत् लीन होजातेहैं। मैं ज्योंका त्यों एक रस निर्विकार हूँ, सोई चैतन्य तेरा स्वरूप है। माताने कहा अंतरसे बाहर आ; संतके दर्शनसे कल्याण होता है।पुत्रने कहा मुझ व्यापक चैतन्यमें अंतर बाहर आना जाना नहीं, यह सर्व दर्शन मेरा है, मैं चैतन्य सर्वका दर्शन नाम अधिष्ठान हूँ। विना सत् विचारके अज्ञाननाश नहीं होता। सत् विचार सत्संगसे होताहै। सत्संग निरहंकारसे होताहै नहीं तो सब काम अकार्थ जान।इससे सूक्ष्म स्थूल कारणका अहंकार मनसे त्याग पीछे जो शेष रहै,सो तेरा निर्विकल्प स्वरूपहै। माताने कहा मेरा शरीर स्त्रीका है, मैंने कुछ वेद पुराण पढा नहीं; न मैंने सत्संग कियाहै। न कोई मुझसे विशेष साधन होताहै बहु कुटुंबी गृहस्थ होनेसे। इससे हे पुत्र! ऐसा कुछ उपदेश कर जो कृतार्थ होऊँ। पुत्रने कहा हे माता! मुझमें पुत्रबुद्धि त्याग,जो कहूँ सो सत् जान। हे माता।अपने आत्म स्वरूपबोधमें स्त्री और पुरुषकी अपेक्षा नहीं। किंतु यथार्थ ब्रह्मवेत्ता वक्ता चाहिये, और सम्यक् मुमुक्षु चाहिये, । प्रतिबंधका अभावभी चाहिये; तो अवश्यमेव आत्मबोध होताहै क्योंकि ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत ब्रह्मात्मा सर्वका अपना आपहै।जो सम्यक् अपरोक्ष जाननेके समान आत्माको जाने:सोई रूप होताहै, क्या स्त्री? क्या पुरुष ? इससे हे माता। 'हौं मैं,' अहंकार भ्रम त्याग, शेष अवाङ्मनसगोचर स्वरूप तेराहै। हे माता! जो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है, सो वाणी मन सहित सर्व तुझ चैतन्य द्रष्टाकी दृश्य है; जैसे

आना जाना नहीं। सत् चित् आनंद आत्मा मेरा स्वरूप है मुझको आत्मदेव कहते है। जन्म मरणका कारण जो देहाभिमान पूर्वक कर्मोंका सेवन है; तिससे अतीत हूँ। मेरा नमस्कार मुझको है। माताने कहा योगकर जो मलिनतासे छूट। पुत्रने कहा योगका मुझ चैतन्यमें वियोग है। जो मुझ चैतन्यमें मलिनता होवे तो तिसके दूरकरने वास्ते योगादि करूँ; पर मुझमें मलिनता है नही। इसहेतु योगसे क्या प्रयोजन है ? जैसे आकाशमें मलिनताहो तो यत्न भी करे, जो नहीं तो कुछ नहीं। मैं चैतन्य आत्मा नित्य मुक्त हूँ। तुझे भ्रमने आच्छादन किया है। अपने नित्य मुक्त, नित्यप्राप्त, आत्मस्वरूपको पानेवास्ते योग ध्यानादिक हैं सो भ्रम है। सत् चित् आनंद आत्मरूप मेरा स्वतःप्रकाशमान है, करना कुछ नहीं, जो करे सो भ्रमी है। हे माता! मुझ स्वरूप असंग चैतन्यका किसी वस्तुके साथ योगनाम जुडना नहीं और कोई वस्तु मुझ चैतन्यके साथ जुडती नहीं मैं आपसे आप असंगरूप हूँ। किससे जुडूं मुझसे कौन जुडे। सर्वसे अयत्नही जुडभी रहा हूँ, अजुडभी रहा हूँ। सर्व मुझसे अयत्नही जुडरहे है, यत्न नहीं, जैसे स्वरूपसेही असंग आकाश किस वस्तुसे जुडे, नाम संबंध करे वा न करे, कौन वस्तु है जो तिससे जुडे और न जुडे किंतु कोई नहीं। सर्ववस्तुमें जुडभी रहा है, अजुडभीरहा है। सर्व वस्तु तिससेभी जुडरही है; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न पदार्थोंसे अयत्न जुडभी रहा है, अजुडभी रहा है। कल्पितसर्व स्वप्नपदार्थस्वप्नद्रष्टासे अयत्नही संबंध पारहेहैं, यत्नसे नहीं। माताने कहा कर्मों विना सुख नहीं। पुत्रने कहा हे माता! जिसके आदि अंतमें दुःख है, मध्यमें सुख कैसे होगा? हे माता! यह सर्व नाम रूप संसार कर्मरूपहै, अनादि कालका तुझको प्राप्त होता चला आता है, आजतक इस संसाररूप कर्मसे तुझको सुख न हुआ तो आगे कैसे सुख होगा? किन्तु नहीं होगा।

उलटा जन्म मरणादि दुःख है। इससे तू आपको अकर्मरूप आत्मा जान। माता तूष्णीं हुई। पुत्रने कहा तूष्णीं मतहो, जो तुझको निश्चय हो सो कह और सुन। हे माता। यह कोटानकोट ब्रह्मांड मुझ चैतन्यसे प्रगट पडे होते हैं, पुनःमुझमें जलतरंगवत् लीन होजातेहैं। मैं ज्योंका त्यों एक रस निर्विकार हूं, सोई चैतन्य तेरा स्वरूप है। माताने कहा अंतरसे बाहर आ; संतके दर्शनसे कल्याण होता है। पुत्रने कहा मुझ व्यापक चैतन्यमें अंतर बाहर आना जाना नहीं, यह सर्व दर्शन मेरा है, मैं चैतन्य सर्वका दर्शन नाम अधिष्ठान हूं। विना सत् विचारके अज्ञाननाश नहीं होता। सत् विचार सत्संगसे होताहै। सत्संग निरहंकारसे होताहै नहीं तो सब काम अकार्थ जान। इससे सूक्ष्म स्थूल कारणका अहंकार मनसे त्याग पीछे जो शेष रहै,सो तेरा निर्विकल्प स्वरूपहै। माताने कहा मेरा शरीर स्त्रीका है, मैंने कुछ वेद पुराण पढा नहीं; न मैंने सत्संग कियाहै। न कोई मुझसे विशेष साधन होताहै बहु कुटुंबी गृहस्थ होनेसे। इससे हे पुत्र। ऐसा कुछ उपदेश कर जो कृतार्थ होऊं। पुत्रने कहा हे माता। मुझमें पुत्रबुद्धि त्याग,जो कहूं सो सत् जान। हे माता। अपने आत्म स्वरूपबोधमें स्त्री और पुरुषकी अपेक्षा नहीं। किंतु यथार्थ ब्रह्मवेत्ता वक्ता चाहिये, और सम्यक् मुमुक्षु चाहिये, । प्रतिबंधका अभावभी चाहिये; तो अवश्यमेव आत्मबोध होताहै क्योंकि ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत ब्रह्मात्मा सर्वका अपना आप है। जो सम्यक् अपरोक्ष जाननेके समान आत्माको जाने सोई रूप होताहै, क्या स्त्री? क्या पुरुष ? इससे हे माता। 'हौं मैं,' अहंकार भ्रम त्याग, शेष अवाङ्मनसगोचर स्वरूप तेराहै। हे माता। जो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है, सो वाणी मन सहित सर्व तुझ चैतन्य द्रष्टाकी दृश्य है; जैसे

स्वप्नमें जो कुछ प्रतीत होता है, सोसर्व स्वप्न चैतन्य आत्माकी दृश्य है । इससे तू आपको द्रष्टास्वरूप जान । देह मनआदिक पंचभूत रूप संघात आपका स्वरूप मत जान क्योंकि दृश्य द्रष्टा रूप नहीं होता, द्रष्टा दृश्य नहीं होता यही नियम है । हे माता ! दुःखरूप देहादिकोंविषे भ्रमसे आत्माध्यासकी निवृत्ति वास्ते और सुखरूप आत्माकी भ्रमसे प्राप्ति वास्ते, अनेक उपाय शास्त्रोंमें कहेहैं; परन्तु सत्संगद्वारा द्रष्टा दृश्यका विवेचनही,सुखेन सम्यक् अपरोक्ष, आत्मबोधका कारणहै, अन्य नहीं क्योंकि; द्रष्टादृश्य दोही पदार्थ हैं । द्रष्टा अपना स्वरूपहै,जो जो दृश्यहै,सो माया मात्र मिथ्या है । माताने कहा हे पुत्र ! द्रष्टा दृश्य भाव द्वैतमें है और मैं अद्वैत हूँ, जब अस्ति भाति प्रियरूप सर्व मैंही हूँ, तो द्रष्टा दृश्यका भेद कहां है ? पुत्रने कहा हे माता! जब सर्व तू ही है, तो द्रष्टा दृश्यका भेद भी तू ही है ।

तिसी समय जैसे सूर्य पूर्वदिशा से उदय होता है तैसे माताके उदरते बालक बाहर निकसा । सो सुनकर राजा आया और देखा तो रानीको पुत्र जन्मका हर्ष किंचित् भी नहीं और न शोक है । एकसे स्थित है। सो देख आश्चर्यवान् हुआ और कहा हे रानी! तूने कौन समतारूप अमृत पानकिया है कि, सुख दुःख विषे सम है । रानीने कहा हे राजन् ! मैं चैतन्य आप अमृत स्वरूप हूँ मुझ सत चैतन्य अमृतसे भिन्न सर्व असत् जड दुःखरूप मृत्यु है । राजाने कहा तू इस देह से भिन्न है, तो पुत्र कौन है। मैं क्या हूँ ? रानीने कहा न तू, नमैं,न पुत्र,एक सत् चित् आनंद साक्षी आत्मा मैं हूँ। जब सर्व मैं चैतन्य आत्मा हूँ, तोमैं पुत्रादि सर्व जगत् मैं ही हूँ। राजा ने कहा यह विचार तुझे किससे प्राप्तहुआहै रानीनेकहा विचार,और विचार करनेयोग्य, विचारकर्ता इत्यादि त्रिपुटियां स्वप्नवत् सर्व मायामात्र हैं मैं, चैतन्य (स्वप्नद्रष्टावत्) आत्मा सर्वसे असंग

सर्वका प्रकाशक, आप स्वयंप्रकाश हूँ। इससे मुझ चैतन्य द्रष्टाको विचार पूर्वोक्त दृश्यसे कैसे प्राप्त होवेगा? हेराजन्! असली विचारे तो स्वप्नद्रष्टाही स्वप्नदृष्टिरूप होताहै;तैसे अस्ति भाति प्रियरूप में चैतन्य आत्माही सर्वरूप हूँ। राजानेकहा हे पुत्र ! तू धन्य है कि तेरे संगसे रानी और मैं अपने स्वरूप को प्राप्त हुयेहैं। पुत्रने कहा हे पिता! तू स्वरूपसे आगे कब भिन्न था,जो अब पाया है तू आपसे आपहै। राजानेकहा तृष्णाने पिशाचकी समान मनको पकडाहै, जबतक यह नाशन होय,आत्मसुख कैसे प्राप्त होय पुत्रनेकहा-तृष्णाका क्या रूपहै? राजाने कहा अप्राप्त भोगों की इच्छा,प्राप्तके नाशके अभाव की इच्छा। पुत्रने कहा सो इच्छा किसमें उठतीहै? राजानेकहा अंतःकरणमें। पुत्रनेकहा वचन तेरा हांसीयोग्यहै,जो इच्छा अंतःकरणमें है, तो तुझे क्या पहुंचता है जो नाश करे? तू चैतन्य इच्छासे रहित इच्छाका साक्षीहै। इससे तू इच्छाके त्यागका त्यागकर। राजानेकहा राज्य छोडके अतीत होता हूँ। पुत्रने कहा हे राजन्! अतीत हुयेभी,पुनःसत्संग द्वारा आत्माका सम्यक् अपरोक्ष बोध हुये विना, शांति न होगी। इससे आत्मबोधकी प्राप्ति सुखका हेतु है,कोई राज्य छोड वनमें जानां सुखका हेतु नहीं।

चलो ऋषभदेवके आश्रममें संत इकट्ठेहुयेहैं,तहां आत्मनिरूपण रूप ब्रह्मयज्ञ होताहै। राजा,राणी और पुत्र तीनों तहां पहुंचे। सर्व संतोंको नमस्कार किया। उस समय मीमांसा कहताथा कि,सर्व कर्मरूपहै। दत्त ने कहा ठीक यह सर्व जगत् कर्म रूप है, परंतु कर्म का कर्ता कर्म से पृथक् मानना चाहिये। बालक ने कहा हे मीमांसा! कर्म किससे होता है और किसमें लीन होता है मीमांसा ने कहा कर्म किसीसे नहीं स्वप्रकाश है। बालकहँसा कहा हे बुद्धिखोये! इतनी धूमधाम काहेको तूने डालीहै। स्वप्रकाश पूर्णहैकि

ऊर्ण ? मीमांसाने कहा पूर्ण । बालकने कहा पूर्ण विषे कर्तव्य नहींतो कर्म कहां है ? मीमांसा तूष्णीं हुवा ।

पिताने कहा हेपुत्र! तूसबसे उच्चहुआ, पुत्रनेकहा ऐसे कहनेको अग्निविषे जलादे, ऊँचनीचादि सर्वरूप मेरा है किससे ऊँच होऊँ किस्से नीच पितानेकहा हे बालक ! तुझे पूर्ण ब्रह्म देखताहूँ । बालकने कहा, जो मैं ब्रह्म हूँ तो ब्रह्म का द्रष्टा कोई है नहीं, स्वयं है । तूने कैसे जाना है, मैं पूर्ण ब्रह्महूँ दत्तनेकहा नाम तेरा क्या है? बालकनेकहा मैं अनाम हूँ । दत्तने कहा अपना स्वरूप कह । बालकने कहा रसना नहीं क्या कहूँ? दत्तने कहा तूष्णीं हो । बालकने कहा हे दत्त । तू विचार कर एते वचन जो मैंने कहा है, क्या रसना से कहाहै? रसनादि इंद्रियोंकी क्या ताकतहै कि, मुझ चैतन्य की ताकत बिना वचनादि करे ? दत्तने कहा जिसने स्वरूप अपना जानाहै तिसको सुख नहीं। बालकनेकहा मेरे स्वरूपमें सुख दुःख दोनों नहीं मुझको बोलनेसे कुछहानि नहीं, तूष्णींसेलाभनहीं। पर निर्वाण वही है जिसमें निर्वाणभी निर्वाणहै। दत्तनेकहा तेरा स्थान कौनहै? बालकनेकहा आकाशकी समान सर्वमें पूर्णहूँ, यहभी द्वैतहै। जब सर्वमें चैतन्यही अस्ति भाति प्रियरूप आत्माहूँ तो पूर्णकहां? मैंहीहूँ, हे दत्त! तू अहंकारको त्याग, जो परम पद पावे । दत्तने कहा मुझमें अहंकार है नहीं, तो क्या त्यागूं ? सुखको सब चाहतेहैं और दुःखको नहीं चाहते पर वह धन्य हैं, जो सुख दुःखकी प्राप्ति विषे, आपको सुख दुःखसे असंग जानते हैं । हेबालक! आत्मा स्वतःप्रकाशरूप है, कहने से नहीं होता । बालकनेकहा जब ऐसा है, तब आपको पापी क्यों मानताहै? दत्तनेकहा- पुण्यवान् होनेकी इच्छा सब करते हैं, पर धन्य वह हैं जो आपको पापी मानते हैं । सर्व सेर कहाते हैं पर धन्य वही है जो पाव कहाता है । परंतु इस पंचभूत के संघात में

पापरूप अहं करनेसे पापी होता है। निरहंकार पुण्यरूपहै। वा सर्व जगत्‌को महाप्रलयमें पान नाम अपनी मायारूप देहमें लीनकरे निश्चय करके,सो शबलब्रह्म पापी है। वा निश्चय करके सुषुप्तिमेंजो अपनी अविद्यारूप देहमें सर्वको लीन करे सो पापी है।अविद्या उपहित चैतन्य साक्षी है, उपाधिरहित शुद्ध चैतन्य पुण्यवान् है।

बालकने कहा स्वरूपके पावनेका उपाय कहो दत्तने कहा स्वतः सिद्ध सम आत्माकी प्राप्तिविषे उपाय क्या कहूँ? निदाघने कहा समता असमता करना मुझ चैतन्यमें है नहीं यह मनका धर्महै।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! सब तूंष्णीं हुये नाम अफुर स्वरूपमें स्थित हुये। फिर कुछ काल पीछे उत्थान होकर कहने लगे, जो कोई वासना न त्यागे सो बंधहै। बालकने कहा वासना न त्यागे तो बंध किसको होता है? और त्यागेसे मुक्ति किसकी होतीहै? दत्तने कहा कि,मनही वासनाको ग्रहण करता है और मनही त्यागताहै। इससेमनहीकोबंध मोक्ष होताहै,मनही वासनाग्रहण करोवात्यागो, आत्मा दोनों अवस्थाका साक्षी है। इससे वासना ग्रहण त्याग, जन्म,बंध,मोक्ष भी आत्मामें नहीं। पर,भ्रमसे आपमें बंध मोक्षकी कल्पना करता है। दत्तने कहा वासनासेही जीव है, नहीं तो शिव है।बालकनेकहा वासना त्यागे शिवहोताहै,तो शिव होना वासनाके अधीन हुआ, स्वतःसिद्ध न हुआ। शिव और वासनाका संबंध कुछ नहीं,वासना अंतःकरणमेंहै, आत्मा अंतःकरणसे अतीतहै। हे दत्त ! कहो वासना आत्मा बडा होता है, न त्यागे क्या छोटा होता है? जडभरतने कहा विना वासनात्यागे मन शुद्ध नहीं होता। बालकने कहा जिसमें मन न होय सो कहो क्या करे? जडभरतने कहा तूने जाना है कि, मुझमें मन नहीं, यहीमन है। इस जाननेके त्यागका त्यागकर। बालकने कहा आत्माका जानना न

जानना मनका धर्म है,इस मनके व्यवहारके द्रष्टा मुझ चैतन्यको जानने न जाननेमें हानि लाभ नहीं। जडभरतने कहा अज्ञान अंधेरी निशाके समान है, ज्ञान सूर्यके समान है इतनाही भेद है। बालकने कहा मैं आकाश चैतन्य दोनोंसे परे हूँ,वा दोनोंका आधार हूँ। राजाने कहा जो तूने जानाहै, तो तुझको सुख है, न औरको कहनेसे क्या लाभ है? बालकने कहा हे पिता! सम्यक् अपरोक्षआत्मज्ञानियोंके वचनसेही मुमुक्षुको बोध होताहै,विना कहे बोध नहीं होता।इससे विद्वान् पुरुषोंका कहना श्रेष्ठहै न तूष्णीं। जडभरतने कहा हे बालक! तू कहांसे आया है?कहां जावेगा?बालकनेकहा मैं चैतन्य देश काल वस्तुसे अतीत हूँ आना जाना मुझमें नहीं, शरीरादि संघातमें है।जडभरतने कहा तू कौन है?बालकने कहा तू क्या जाने? नाम रूप विषे तूने दृढ दृष्टि की है कि,मैं जडभरत हूँ। इस दृष्टिको त्यागे तब जान। जडभरतने कहा जिसमें यह विचार है कि,मैं मन देहादिक संघात नहीं किंतु मैं ब्रह्म हूँ,सो ब्राह्मण हो भावे चांडाल हो मेरा गुरु है। हे बालक! जो आपही स्वतः सिद्ध है तो सत्संगसे क्या लाभ? बालकने कहा इससे अधिकलाभ क्या होगा?कि,भ्रमको भ्रमजाना,स्वतःसिद्धको स्वतःसिद्ध जाना नहीं तो भ्रमको अभ्रम और अभ्रमको भ्रमरूप जानता है।

तिसी समय हंसारूढ ब्रह्मा आया विष्णु देखकर हँसा और कहा हे ब्रह्मा! देख तेरी सृष्टिको इन्होंने उखाडा है ब्रह्माने कहा मनुष्य शरीरका फल यही है कि, अपने स्वरूपको सम्यक् जाने। विष्णुने कहा तेरे प्रारब्धादि कर्म कर्मोंकोभीनहीं मानते।ब्रह्मानेकहा प्रथम मनने प्रारब्धादि कर्म मानेथे,अब मन नहीं मानता,तो केवल मनका मननहुआ।चेष्टामन देहादिक संघातकी जैसे आगे होतीथी तैसे अब होतीहै।आत्मा आदि,अंत,मध्य,मन,देहादिक संघातकी

चेष्टाका साक्षी है। विष्णुने कहा इस बालकके माथेपर तूने क्या लिखा है?ब्रह्माने कहा यह जगत् सहित तू मैं बालक सर्व स्वप्नवत् आकाशरूप है,आधार विना आकाशमें कैसे लिखना होताहै जो लिखा है तो यही लिखा है,प्रत्यक् आत्मा मन देहादिक संघातसे भिन्नहै,संघातरूप नहीं। बालकने कहा जब सर्वात्मा है तो संघात क्या? तिसते भिन्न अभिन्न क्या? ब्रह्माने कहा प्रथम नेति नेतिकर, स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि व्यष्टि शरीरोंको निषेधकर, प्रत्यक् आत्माको, तिनके निषेधकी अवधिभूत तथा तिनके आदि अंत मध्य साक्षीरूपकर, बोधन जिज्ञासुको करना। जब सम्यक् जाने पीछे सर्व अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा है, यह विधिरूप उपदेश करना;जैसे प्रथम तरंगादिकोंसे भिन्न जलको बोधन करके, पीछे मधुरता द्रवता शीतलता रूप सर्व तरंगादिक जलही है।

मरीचिने कहा हे ब्रह्मा! ब्रह्मा नाम तेरे किस अंगका है? ब्रह्माने कहा सर्व अंग मेरे हैं,मैं चैतन्य अंगीहूँ क्योंकि,सर्व अंगोंका मैं चैतन्य आत्मस्वरूप हूँ।मरीचिने कहा,चाहता हूँ कि, मनको वश करूँ, संध्यासमय चंचल होजाताहै; मनवशका उपायकहो।ब्रह्माने कहा मन तेरा है, मनके वशका उपाय क्या कहूँ। पर कहो मनका रूप क्या है? मरीचिने कहा मनका रूप नहीं देखा। ब्रह्माने कहा जब तूने मनका रूपनहीं देखा, तो वश कैसे करेगा? पर हे मरीचि! अपने सत् चित् आनंदरूप आत्मासे पृथक् जो कुछ मनादिक प्रतीत होतेहैं; सो मृगतृष्णाके जलवत् जान।पुनः संकल्प विकल्प रूप मनके प्रतीत होते भी तुझ चैतन्य अधिष्ठानको खेद न होवेगा। तात्पर्य यह कि, अपने सम्यक् अपरोक्षकात्मस्वरूपको जाननाही मनके वशका उपाय है।वा मनादि सर्व दृश्यजातिको अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा सम्यक् अपरोक्ष जानना, परम मन वशका उपा-

यहै। वा मन देहादिक संघातरूप ब्रह्मांडको अपनी दृश्य जाननी और आपको मनादिकोंका द्रष्टा चैतन्य जानना। दृश्यका धर्म द्रष्टाको नहीं पहुँचता, यह बात ठीक जाननी, यह पूर्वसे भी मन वश करनेका उत्कृष्ट उपाय है। हे मरीचि! योग भी मन वश करनेका उपाय है, पर जबलग योग है, तबलग मन वशहै।योगके पूर्व उत्तर संकल्प विकल्प मनका स्वभाव, वैसेका वैसाही रहताहै; जैसे वानर सर्व अंगोंके बंधनेसे चेष्टा नहीं करता, जब खुला तो पूर्ववत् स्वभाव होता है।मरीचिने कहा मैं अपने स्वरूपको नहीं जानता, जो जानता तो मनवशका उपाय न पूछता। ब्रह्माने कहा उपाय मनवशका यही जान कि यह पंचतत्त्वरूप संघात, स्थूल सूक्ष्म कार्य भी मैं नहीं और इनका कारण शरीर अज्ञान भी मैं नहीं, इनका साक्षीभूत मैं चैतन्य आत्माहूँ।अबकहो रूप तेरा क्या है? मरीचिने कहा नाम रूप स्वरूप मेरा नहीं नाम रूप स्वरूपसे अरूप हूँ। ब्रह्माने कहा बाहरसे मत कह अंतर मनसे जान जो तुझको सुख होवे। देहाभिमान ही अपने स्वरूप ज्ञानमें प्रतिबंधक है। मरीचिने कहा हे ब्रह्मा! यह संघात है; तो अपने स्वरूपका ज्ञान है, जो यह नहीं होय है तो कौन जाने, "मैं आत्माहूँ" ब्रह्माने कहा जब शरीर गिरताहै तब सभी अंग वैसेही होते हैं, आत्माकी शरीरके अधीन स्थिति होवे तो उसवक्त क्यों नहीं हलता चलता। मरीचिने कहा ध्यानके बलसे सब अंगोंके अंतर बाहर देखा कि,यह शरीर अपने अंगोंसहित मलिन जड दुःखरूप है।मैं शरीरकी तथा शरीरके अंगोंकी मलिनता तथा जडता देखनेवाला शुद्ध चैतन्य शरीरसे भिन्न हूँ,जो मैं चैतन्य न होऊँ तो शरीरकी मलिनता जडता कैसे अनुभव होवे? मरीचिने कहा हे ब्रह्मा! मैं शरीर कबहूँ नहीं। पर कहो मैं कौन हूँ?

ब्रह्माने कहा जिसने सब अंग शरीरके तथा शरीरको तथा मना-दिकोंको देखा नाम जाना वही तेरा रूप है । मरीचि स्वरूप विषे लीन हुआ ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! संतोंका यह स्वभाव है, जिस मार्गद्वारा जिज्ञासु स्वरूपको पहुँचे तिसी मार्गसे पहुँचादेना। तिसी समयएक राक्षस आया और कहा सबको खाता हूँ और आप हूँ सो आप हूँ। सारांश यह कि, सर्व नामरूप प्रपंचको अपने आत्मस्वरूपअधिष्ठानमें कल्पित जानता हूँ, नाम अत्यंताभाव जानताहूँ। पुनःकल्पितका अत्यंताभाव भी आत्मस्वरूप अधिष्ठान जानता हूँ । दत्तने कहा जब तूनें सर्वको नहीं खाया तब कौन है? जब खायगा तबकौन होयगा। राक्षसने कहा तूही कह स्वप्नद्रष्टानेनिद्राकर अपनेमेंकल्पित स्वप्नसृष्टिको लीन किया वा सत्य जानातो क्या होताहै ? विचार कर असत् कल्पित जाने वा उदय करे तो क्या . रूप होता है ? दत्तने कहा एकसा है । राक्षसने कहा हे बुद्धिखोये! तद्वत् मैं चैतन्य आत्मा एकरस हूँ, पर नहीं जानता था कि, कोई मेरे वचनका श्रोता है तुझ सहित बालकको खाऊँगा और आप होऊँगा। बालकने कहा सर्व अंग तेरे हैं किसको खाता है ? जो अपने अंगोंको खावे तो कौन तुझको वर्जित करेगा । राक्षसने कहा यही खाता हूँ न तू, न मैं, न दत्त, न यह जगत्, केवल मैं चैतन्य आत्मा हूँ । बालकने कहा राक्षस तुझको क्यों कहते हैं ? राक्षसने कहा; जैसे लकडी अग्निके संबंधसे राख होती है, पुनःराख लकडीका काम नहीं देती; तैसे नामरूप सर्व संसार लकडीको विचाररूप अग्निसे राख नाम मिथ्या जाना है, पुनः मिथ्या सम्यक् जाना संसार जन्म मरणका कारण नहीं होता । पर कहो हे बालक! तेरा नाम क्या है ? बालकने कहा नाम मेरा सुराट् नाम स्वप्रकाश स्वरूप है । राक्षसने कहा कौन ठौर तूने प्रकाश किया है ? बालकने कहा

आपही प्रकाशक हूँ; आपही प्रकाश्य हूँ और आपही प्रकाशने योग्य हूँ,मुझमें द्वैत नहीं।राक्षसने कहा मैं कौन हूँ?बालकने कहा तू मैं हूँ।तिसी समय कल्याण स्वरूप शिव आये और कहा हे राक्षस। तुझे खाता हूँ, राक्षसने कहा मैं राक्षस नहीं चैतन्य रूप शिव हूँ अपनेको आप मार वा न मार। बहुरि निदाघकी तर्फ मुखकर शिवने कहा हे निदाघ ! तुझे त्रिशूलसे मारूँगा। निदाघने कहा त्रिगुणात्मकरूप कार्य कारण आपा अहंकार सहित संसारकोज्ञा-नाग्निसे भस्म कर नाम मिथ्या जानकर, त्रिगुणातीत आपहुआहूँ। शिवने कहा बाहरसे मत कह।निदाघने कहा अंतरयामी होकर देख अंतर बाहर निदाघ नहीं तूही है तो निदाघका क्यों नाम लेता है?शिवने कहा निदाघ भस्म हुआ तो पीछे अवाच्यपद है। हे निदाघ।इस निश्चयका शरीर नाशपर्यंत त्याग न करियो आत्माको सम्यक् अपरोक्षजाननेसे,कालशास्त्र सहित हम तीनों देवतादिकके भयसे रहित होतेहैं। शिवने कहा हे विष्णो ! आप कौन हो ? विष्णुने कहा तूही है, तो किसको पूछता है ? शिवने कहा जो तू रूप मेरा है, तो विष्णुपनेका अहंकार त्यागेगा तो मुझ चैतन्यसे अभिन्न होवेगा। विष्णुने कहा आगे भिन्न होऊं तो अब अभिन्न भी होऊं। पर स्वरूप विषे भिन्न अभिन्न दोनों नहीं जानता था। जो तू पूर्ण है तब तुझको मन देकर शिव हुआ। पर देखा तो ऊर्ण है क्योंकि, ऊर्णमेंही मिलाप भिन्न होता है। भेद पूर्णमें नहीं। शिवने कहा यह पूर्ण ऊर्णादि कथन चिन्तन केवल मन वाणीका मनन-कथन है, मैं चैतन्य मन वाणीसे अगोचर हूँ। विष्णुने कहा जो तू मनवाणीसे अतीत है, तो मुझको संदेहवान् कैसे देखा ? शिवने कहा तुझ सहित सर्व दृश्य मुझ चैतन्य कर प्रकाशमान है, तुझको देखा नाम प्रकाशा तो क्या हानि है ? राक्षसने कहा न विष्णु, न शिव, न जगत्, न राक्षस, निरूप मैं

अवाच्य पद हूँ । यह सब कहनेमात्र है। विष्णुने कहा शीश तेरा अभी चक्रसे काटता हूँ क्योंकि तू अभिमानी है।राक्षसने कहा मैंने देहाभिमानीरूप शीशअपना आत्मविचाररुपी हाथसे काटाहै और अशरीर हुआ हूँ बहुरि काटनेसे क्या भयहै ? हे विष्णु।तेरा देहाभिमानरूप शीश कटा है वा नहीं ? जो कटा है तो मेरा शीश कैसे काटेगा? मेरा तूने शीश विना शीश कैसे जाना ? जो कहे नहीं कटा तो भी मुझ अशीशका शीश कैसें काटेगा।वा देह अभिमान सहित तेरे लाखों यत्नोंसेभी अभिमानरहित मेरा शरीर नहीं कटेगा;जैसे सोया पुरुप जाग्रत् पुरुपके शीशादिक नहीं काटसक्ता।वा स्वप्न नर स्वप्नद्रष्टा किंचिन्मात्र भी अपकार नहीं करसक्ता। हे विष्णु ! जो तू कहै तेरा देहाभिमानरूपी शीश नहीं गिरा,तो मैं हाजिरहूँ शीश मेरा काट । विष्णुने कहा सर्व मैं हूँ, तूने आपको राक्षस माना है, तिसको त्यागकर, यही शीशकाटना है;जैसे तरंगभाव त्यागे शेप जल है । राक्षसने कहा जो तरंगभाव नहीं त्यागे तो भी जल है। विष्णुने कहा जब जलही है,तो जलका आपको तरंग मानना यही भूल है। राक्षसने कहा भूल अभूलादि मनका धर्म है मुझ आत्मा भूल अभूलके साक्षीकी भूल नहीं । पर कहो मन कैसे जीताजावे, विष्णुने कहा आत्मबोध विना मन नहीं जीता जाता और मन जीते बिना आत्मबोध नहींहोता । इससे मन जीतनेका और आत्मबोधका यत्न एक कालमें ही करो अर्थात् आत्मा अनात्माका सम्यक् सत्संग,सच्छास्त्रद्वारा विचार करो, दोनों सिद्ध होंगे; जैसे प्रातःकाल ज्यों ज्यों सूर्य उदय होता है,त्यों त्योंही एक कालमेंही अँधेरा निवृत्त और प्रकाश उदय होता जाताहै।राक्षसने कहा तूने हमारे कुलको क्यों नाश कियाहै?विष्णुने कहा मैं किसीको नाश नहीं करता,किन्तु आप अपने शुभाशुभ कर्तव्योंके अधीन,जीव सुखदुःख पाते हैं ।

जलजन्तुओंकी कथा।

(जो अपनेही भाषामें आत्मनिरूपण करते हैं)

पुनः विष्णुने कहा हे सभा। एक कथा श्रवण करो, जिस कथाके श्रवणसे हम लोगोंका अभिमान दूर होजावे। मच्छ अवतारने जलजंतुओंकी बोलीमें जलजंतुओंको ज्ञान उपदेश किया था। पुनः तिन्होंने अपनी बोलीमें आत्मनिरूपण किया था सो मैंने अन्तर्यामी रूपसे जाना है सोई तुम सुनो।

मच्छी।

एक मच्छीने अन्य मच्छियोंसे कहा, फांस कालका हमें कभी दुःख नहीं दे सक्ता, जो तृष्णा प्रारब्धसे अधिककी न करें, क्योंकि ईश्वरने हमारे प्रारब्ध जलमें शैवालादिक ही किया है, तिसको त्याग कर मांस आटा खानेके लोभसे मृत्यु होती है, इसीसे बन्ध है। यह तृष्णाही शरीरधारीको काल है। तृष्णा देहाभिमानसे होती है। देहाभिमान अपने स्वरूपके अज्ञानसे होता है। सो अज्ञान स्वरूप ज्ञानसे नाश होता है। कहो ज्ञान कैसे होवे? अन्य मछलीने कहा, देह और देहधारीके विवेचनसे ज्ञान होता है।

मगर।

मगरने कहा देहधारी जीव है। मछलीने कहा जीवका रूप क्या है? कृष्ण कि श्वेत? मगरने कहा रूप नहीं देखा। मछलीने कहा, रूप नहीं देखा तो नाम कैसे राखा? मगरने कहा सुनकर कहता हूँ। मछलीने कहा हे बुद्धिखोये! जब सुनकर आपको तूने जीव निश्चय किया, तो जीवका सत् चित् आनंद स्वरूप है, यह भी शास्त्रसे सुना होगा वा आगे सुनेगा, तो आपको सत् चित् आनंद न माना, जीव माना इसमें कारण क्या? मगरने कहा सत् चित् आनंद और जीव दोनों मन वाणीके कथन चिन्तनमात्र हैं इसमें क्या विशेषतः है? इस

कथन चिंतन पहँचान करनेवाला मेरा स्वरूप अवाच्यपद है। इसी निश्चयसे,देहाभिमानरूपीफांस गलेमें पडीहै सो काटीजावेगी।अन्य मच्छीने कहा इस शरीरसे आपको भिन्न कैसे जाने ? क्योंकि चिरकालसे वंध है।वडी मच्छीने कहा पुष्पके तोडनेमें ढील है,परन्तु परमेश्वररूप आत्माके पावनेमें ढील नहीं मूलशरीरका अहंकारहै,जव अहंकार नाश हुआ तो आपसे आप है मगरने कहा अहंकार आपको कहते हैं,क्योंकि मैं हूँ। जव आपा गया तो जीव किसको मिला और शरीरसे भिन्न किसने जाना ? आपको त्यागकर दूसरेको शिरपर धरना क्या प्रयोजन है ?

इतनेमें वधिकने जाल डाला।'मछलीने कहा हे मगर।शरीरका लेनेवाला आया है,कहो अव क्या करें ? देहाभिमान त्यागकर भगवान्की शरण होवें।मगरने कहा यम शिरपर खडा है,तू शरण चिंतन करती है।पर कहो भगवान् पूर्ण है, जव पूर्ण है तो आपही भगवान है,जव आपहीहै तो किसकी शरण जावें और वधिककहां है।इतना वचन कहकर सव स्वरूपमें लीन हुये।किसीविद्यानिमित्त कर वधिक तिन जलजंतुओंकीवोली जानता था,सो वधिकने तिनके वचनको सुनकर जाल पृथ्वीपर गेरदिया और मगरसे प्रश्न किया कि,तेरे वचन मुझको अमृतसमान लगे हैं तेरे घातका मैंने त्यागकिया,कुछ वचन कहो। मगरने कहा हे वधिक। तू किसको जालसे पकडता है! शरीरको कि,आत्माको?शरीर तुम्हारा हमारा; मायाके कार्य पंचतत्त्वोंका, दृश्य मात्र एक सरीखा है। आत्माभी तुम्हारा हमारा संघातका साक्षी एकरूपहै। हे वधिक।जो उत्पत्तिवान् वस्तु है,सो उसको अवश्य कालरूपी वधिक नाश करताहै और जो वस्तु नाश होगी पुनःतिसकी उत्पत्ति भी होगीइससेयह अर्थ अपरिहार्य होनेसे शरीरके नाशकी क्या चिंताहै?आत्माअविनाशीहै।यहभी अपरिहार अर्थ है। इससे दोनों प्रकारसे मंगल है।

हे वधिक! इस संघातरूपी समुद्रमें, आत्मा विचाररूपी जालसे अपनेमनरूपी मच्छीको पकड़, जो शांतिमान होवे। वधिकनेकहा मनका रूप कहो? मगरनेकहा मनका रूप संकल्प विकल्पहै।संकल्प विकल्पका अनुभव करनेवाला, तू चैतन्य असंगहै विचार कर देख। इस शरीरविषे वधिक नाम किसका है। यह शरीर पचभूतोंका परिणाम अन्नका विकारहै, आत्मा शरीरसे रहित इसका साक्षी है। बीचमें व्यर्थ तूने आपको वधिक मानाहै,इसवधिकपनेके अहंकारके त्यागका त्यागकर पीछे अवाचपदहै। यहवचनसुनकर वधिकने दुष्ट स्वभावको त्याग दिया और परमार्थकोपहुँचा।

मेंढक।

(ओंकारका वर्णन)

पुनःमेंढक आया और कहा मैं निशिदिन ओंकार शब्द करताहूँ। इसके भंजनसे जो चाहूँ सो प्राप्तहोताहै। इससे तूभी सुख चाहेतो ओंकारको रटन कर। मगर मच्छने कहा मैंनेआगेही इस जालको बडे यत्नसे काटाहै,अब मुझको पुनः जालमें मत डाल क्योंकि मुझ चैतन्य निष्कर्तव्यविषे कर्तव्य का आरोपण बुद्धिकी हीनता है। अबतक मैंने ओंकारको नहीं जाना। पर कहो ओंकार किसको कहते हैं? अर्थ उसका क्या है? मेढकने कहा ओंकारसे सर्व जगत्की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा,विष्णु, शिव,ओंकारकी तीनमात्रासे क्रमसे उत्पन्न हुयेहैं। तैसेही अकार उकार मकार मात्रासे स्थूल सूक्ष्म कारणजगत् हुआहै। सारांशयह कि,सत्त्व,रज, तम, देवता विषय इंद्रियादि त्रिपुटी तीनमात्रा रूपहीहैं।मगरने कहा हे बुद्धिखोये!अर्ध मात्रारूप तुरीयब्रह्मात्मा अद्वितीयको त्यागकर, त्रिपुटीरूप अपनी दृश्यविषे क्यों लागिये! मेढकने कहा यहभी ओंकार है। मगरने कहा जब मैं चैतन्य

मन वाणीको सत्ता देता हूँ, तब मन वाणी ओंकारका जप चिंतन करतेहैं, नहीं तो नहीं। इससे मुझ चैतन्यसे ही ओंकार प्रकाश रखते हैं, क्योंकि शब्द जडरूप है और जो जड है सो अनित्य है। जो ओंकार जड न होता तो मुझ चैतन्यका दृश्य न होता। मेढकने कहा द्रष्टा तू दर्शन अंतःकरणकी वृत्तियां और दृश्य ओंकारहे। तैसेही द्वैत अद्वैत एक तूही है इससे यह सब ओंकारही हुआ। मगरने कहा ऐसा कुछ कहो जिसमें ओंकार न होवे। मच्छीने कहा यह सर्व त्रिपुटीरूप ओंकार है। ओंकार प्रकृतिरूप है। प्रकृति ही परिणामकर शरीररूप हुई है। मैं चैतन्य इस शरीरसे मुक्त हूँ। इससे केसे ओंकारका रूप हुआ? किंतु ओंकारसे भिन्न हूँ!

जोंक।

पुनः जोंकने आकर कहा भिन्न और अभिन्न तथा भिन्नाभिन्न तीनों मेरेमें नहीं। प्रकृति, ओंकार, तथा शरीर मुझ चैतन्यसे सिद्ध होते हैं, तिनमें मैं तीनोंकालोंविषे एकसा हूँ। ओंकार कथनमात्र है। चैतन्यसे पृथक् ओंकार चार पदोंवाला है। आत्मामें एक कहना भी नहीं बनता तो चार कैसें कहेंगे? मेढ़क तूष्णीं हुआ। मच्छीने कहा हे जोंक! तू सदा रुधिरपान करता है, तुझसे संवाद करने योग्य नहीं। जोंकने कहा सत् चित् आनंदरूप शुद्ध आत्मा विना जो कुछ त्वंपद तत्पद असिपदादिक प्रतीत होते हैं सोई हुआ रुधिर, विचार करनारूप पानकरता हूँ, नाम स्वप्नवत् मिथ्या जानता हूँ जो तूने कहा तुझसे संवाद करने योग्य नहीं, तो मैंने आपविना कुछ और नहीं देखा, संवाद किससे करूँ? कौन करे?

कछुआ।

कछुआनेकहा जौलौं सर्व ओरसे षट् इंद्रियोंका संकोचननकरे, स्वरूपका पाना कठिन है। मच्छीने कहा सर्वोपरि आत्मस्वरूप

हे वधिक। इस संघातरूपी समुद्रमें, आत्मा विचाररूपी जालसे अपनेमनरूपी मच्छीको पकड़, जो शांतिमान होवे। वधिकनेकहा मनका रूप कहो? मगरनेकहा मनका रूप संकल्प विकल्पहै।संकल्प विकल्पका अनुभव करनेवाला, तू चैतन्य असंगहै विचार कर देख। इस शरीरविषे वधिक नाम किसका है। यह शरीर पचभूतोंका परिणाम अन्नका विकारहै, आत्मा शरीरसे रहित इसका साक्षी है। बीचमें व्यर्थ तूने आपको वधिक मानाहै,इसवधिकपनेके अहंकारके त्यागका त्यागकर पीछे अवाचपदहै। यहवचनसुनकर वधिकने दुष्ट स्वभावको त्याग दिया और परमार्थकोपहुँचा।

मेढक।

(ओंकारका वर्णन)

पुनःमेढक आया और कहा मैं निशिदिन ओंकार शब्द करताहूँ। इसके भंजनसे जो चाहूँ सो प्राप्तहोताहै। इससे तूभी सुख चाहेतो ओंकारको रटन कर। मगर मच्छने कहा मैंनेआगेही इस जालको बडे यत्नसे काटाहै,अब मुझको पुनः जालमें मत डाल क्योंकि मुझ चैतन्य निष्कर्तव्यविषे कर्तव्य का आरोपण बुद्धिकी हीनता है। अबतक मैंने ओंकारको नहीं जाना। पर कहो ओंकार किसको कहते हैं? अर्थ उसका क्या है? मेढकने कहा ओंकारसे सर्व जगत्की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा,विष्णु, शिव,ओंकारकी तीनमात्रासे क्रमसे उत्पन्न हुयेहैं। तैसेही अकार उकार मकार मात्रासे स्थूल सूक्ष्म कारणजगत् हुआहै। सारांशयह कि,सत्त्व,रज, तम, देवता विषय इंद्रियादि त्रिपुटी तीनमात्रा रूपहीहै।मगरने कहा हे बुद्धिखोये!अर्ध मात्रारूप तुरीय ब्रह्मात्मा अद्वितीयको त्यागकर, त्रिपुटीरूप अपनी दृश्यविषे क्यों लागिये? मेढकने कहा यहभी ओंकार है। मगरने कहा जब मैं चैतन्य

मन वाणीको सत्ता देता हूँ, तब मन वाणी ओंकारका जप चिंतन करतेहैं, नहीं तो नहीं। इससे मुझ चैतन्यसे ही ओंकार प्रकाश रखते हैं, क्योंकि शब्द जडरूप है और जो जड है सो अनित्य है। जो ओंकार जड न होता तो मुझ चैतन्यका दृश्य न होता। मेढकने कहा द्रष्टा तू दर्शन अंतःकरणकी वृत्तियां और दृश्य ओंकारहै। तैसेही द्वैत अद्वैत एक तूही है इससे यह सब ओंकारही हुआ। मगरने कहा ऐसा कुछ कहो जिसमें ओंकार न होवे। मच्छीने कहा यह सर्व त्रिपुटीरूप ओंकार है। ओंकार प्रकृतिरूप है। प्रकृति ही परिणामकर शरीररूप हुई है। मैं चैतन्य इस शरीरसे मुक्त हूँ। इससे कैसे ओंकारका रूप हुआ? किंतु ओंकारसे भिन्न हूँ!

जोंक।

पुनः जोंकने आकर कहा भिन्न और अभिन्न तथा भिन्नाभिन्न तीनों मेरेमें नहीं। प्रकृति, ओंकार, तथा शरीर मुझ चैतन्यसे सिद्ध होते हैं, तिनमें मैं तीनोंकालोंविषे एकसा हूँ। ओंकार कथनमात्र है। चैतन्यसे पृथक् ओंकार चार पदोंवाला है। आत्मामें एक कहना भी नहीं बनता तो चार कैसे कहेंगे? मेढ़क तूष्णीं हुआ। मच्छीने कहा हे जोंक! तू सदा रुधिरपान करता है, तुझसे संवाद करने योग्य नहीं। जोंकने कहा सत् चित् आनंदरूप शुद्ध आत्मा विना जो कुछ त्वंपद तत्पद असिपदादिक प्रतीत होते हैं सोई हुआ रुधिर, विचार करनारूप पानकरता हूँ, नाम स्वप्नवत् मिथ्या जानता हूँ जो तूने कहा तुझसे संवाद करने योग्य नहीं, तो मैंने आपविना कुछ और नहीं देखा, संवाद किससे करूँ? कौन करे?

कछुआ।

कछुआनेकहा जौलों सर्व ओरसे षट् इंद्रियोंका संकोचननकरे, स्वरूपका पाना कठिन है। मच्छीने कहा सर्वोपरि आत्मस्वरूप

पूर्ण है,कहो किस ओरसे इद्रियोंको संकोचे ? जो नेत्रको संकोचे तो अंधा होय,कानको रोके तो बहरा होय,इत्यादि अन्य इंद्रियों- में भी जानलेना । हे कछुआ ! जब सर्व अस्ति भाति प्रियरूप आत्माहीहै तो पट्ट ओर कहां हैं ? कछुआ हँसा और कहा कि,जब सर्व आत्माही है तो पट्ट ओरभी आत्माही है । विष्णुमे कहा हे सभा !इसप्रकार तिन जल जंतुओंकी चर्चा हुई थी,सो मैंने तुम्हारे आगे निवेदन करदिया ।

इति पक्षपातरहितश्रीअनुभवप्रकाशस्य चतुर्थःसर्गः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम सर्ग ५ः
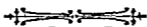
पक्षपातरहित विवेचन ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! ऐसे ही एक और कथा सुन । एक काल विषे भारतवर्षमें विद्वान् पक्षपातरहित धर्मात्मा जगत् हितकारक स्त्री पुरुष मिलके आत्मविचार करते थे और मैं भी वहीं था ।

अंतरदृष्टि ।

अन्तरदृष्टि बोली हे निर्मलसृष्टिवाली सभा ! असत् जडदुःख रूप कल्पित नाम रूप बाहर दृश्यकी दृष्टिसे, दृश्यांतर सच्चिदा- नंद, इस बुद्धि आदि कोंका प्रकाशक आत्माका सम्यक् अपरोक्ष नहीं होता;जैसे पुरुषको कल्पित सर्प दंड मालादि बहिःपदार्थोंकी दृष्टिसे सर्प रज्जुका अपरोक्षज्ञान नहीं होता । विचारे तो रज्जु ज्ञानपूर्वकही सर्पादिकोंका ज्ञान होता है । इससे बहिर्नामरूप दृष्टित्यागके अंतर मनादि अन्तःसाक्षीको निजात्मरूप जानो ।

शांति ।

शांतिबोली मुझ,शांतिको अस्तिभातिप्रियस्वरूप पदमें, अंतर बाहरका विभागनहीं,जैसे मनके प्रपंचमें मायाका वाभूतभौतिकों

का अंतर वाहरका विभाग नहीं। तथा भूषणोंमें सुवर्णका अंतर वाहर विभाग नहीं। जो विभागवान् परिच्छिन्न वस्तु होती है सो अनित्य जड दुःखरूप होती है। इससे अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा शांतरूप द्रष्टाको जो जाने तो शांत होवे।

वैराग्य।

तिस समय वैराग्य मनुष्यमूर्ति धारकर आय बोला हे साधो! वैराग्य विना सुख नहीं.वैराग्य यही है कि-शांति, अशांति,अंतर, वाहर, वृत्ति आदि नामरूप प्रपंचकी निजात्मसत्तासे पृथक् सत्ताका अत्यंताभाव अनुभव होना। जैसे पृथिवीआदि भूतोंकी सत्तासे भिन्न शरीरकी सत्ताका अत्यंताभाव है वा वैराग्य नाम त्यागका है, वैराग्यवान्का नाम वैरागी त्यागीका है, वा विशेपकर रागका नाम विराग है और विशेपकर रागवानका नाम रागी गृही है। सो दोनों प्रकारसेही वैराग्यका अर्थ आत्मामेंही घटता है,अन्य दृश्य पदार्थमें घटता नहीं.क्योंकि मन वाणी सहित मनवाणीके, विपय दृश्य प्रपंचके, अत्यंताभाववाला निजात्माही वैराग्यवान् है, अन्य नहीं। तथा अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्व आत्माने,अत्यंत असत् जडदुःखरूप, नामरूप अनात्मा दृश्य प्रपंचके साथ ऐसा रागकिया है कि, दृश्य नाम रूपको सच्चिदानंद सरीखा अपना रूप करदिखाया है; जैसे जलको दूध अपना रूप कर दिखाता है। इससे दूध और आत्मा परमरागी है। तथा जैसे आकाशचारी भूत भौतिक प्रपंच साक्षात्कार आकाशका तिरस्कार करे, तोभी विनाबुलाये मानके सर्वके व्यहारका निर्वाहक आकाश अवकाशदेनारूप परमप्रीति करता है परन्तु सर्व माहिं रहते भी अति अलिप्त होके परमत्यागी है। तैसे यह सुख दुःखके अस्ति भाति प्रियरूप साक्षी आत्माका जड नामरूप सर्वजगत् तिरस्कार करे, तो भी विनाबुलाये मानके आत्मा सर्वको चेतन्यतादेके चैतन्य

सरीखा करता है। इससे सर्वका अतिप्रियतम है। मनादि सर्व जगत्के माहिं अलिप्त होनेसे परमवैरागी नाम त्यागी भी है। वा शांति अशांति अंतर बाहर कामक्रोधादि वृत्तियोंके भावाभावको निज सन्निधिमात्रसेही सिद्ध करता है और इन गुणोंते उल्लं-घित वर्तता है इसीसे आत्मा गृही और संन्यासी है। इसीसे पूर्वोक्त वैराग्यवान् आत्माही तुम्हारा हमारा तथा ब्रह्मासे लेकर चींटी-तक सर्व जगतका निजस्वरूपहै।

क्रोध।

पुनःक्रोध अभिमानी देवता मनुष्यमूर्ति धारकर सभामें आय बोला हे प्रियवरो!गुरुके उपदेशसे प्रथमयह वृत्तिरूपक्रोधका साक्षी आत्मा अक्रोधी है। कारण कि, असत् जड दुःखरूप, नामरूप देहादि म्लेच्छ, सच्चिदानंद शुद्ध आत्माको निजरूपवत् निज-रूपकर देखता है तो भी आत्मा क्रोध नहीं करता उलटा सत्ता-स्फूर्ति देताहै, इससे अक्रोधीहै। गुरुउपदेश पीछे देहादि नाम रूपजगत्का अत्यंताभाव जानना रूप हिंसाकर देता है, इससे यह आत्मा अति क्रोधी है। वा जाग्रत् स्वरूपको, ब्रह्मांडको सुषुप्तिमें लयरूप हिंसा करता है इससे क्रोधी है और जाग्रत् स्वप्नमें पुनः सुषुप्तिमें लीन हुये जाग्रत्को उदय करता है, इससे अक्रोधी है। वा गुरुउपदेशसे देहाभिमानरूप क्रोधका नामरूप हिंसा करता है इससे क्रोधी है। आत्मा पूर्ण होनेसे क्रोधमें भी स्थित है; जैसे सर्वदेहोंका देही आत्मा है, तैसे क्रोधरूप देही-काभी देही आत्मा है, इससे क्रोधरूप देहवाला आत्मा क्रोधी है। वा आत्मा अद्वितीय होनेसे स्वतःही द्वैतका हिंसन नाम अत्यंताभाव है, इससेभी आत्मा अतिक्रोधी है। वृत्तिरूप क्रोधमें आरूढ हुआ आत्माही, विचारे विना, प्रिय लगनेवाले बुरे कामोंसेभी क्रोध करके निवृत्त होता है, इससे आत्मा अतिक्रोधी है। वृत्ति रूप क्रोध, क्रोधी आत्माको हिंसन नहीं

करताहै । हे साधो!वृत्तिरूप क्रोध तो निज इष्टके साधक,सत्संभापणादि, जो सद्गुण,तिनके शत्रु,मिथ्या भापणादि असुरोंके नाश वास्तेहैं,तथा शरीरकी रक्षावास्तेहैं कोई परस्परलडाईभिडाई वास्ते नहीं।सत्तापूर्वक क्रोध व्यवहार परमार्थका साधक है और असत्यतापूर्वक रूप वृत्तिरूप क्रोधही अनर्थक है,यही त्याज्य है। परन्तु पूर्वोक्त रीतिसे अधिक्रोधी आत्मा तो अपना स्वरूप है,सो न ग्राह्य त्याज्य है, देहवत् अपना रूप होनेसे।

लोभ ।

पुनः लोभ अभिमानी देवता मनुष्यव्यक्ति धारकर आया और कहा हे निर्लोभ ! पक्षपात रहित सभा ! आभास अंतःकरणरूप जीवका अतिशयशब्दादि विपयोंकालोभ अनर्थका कारणहै वही त्याज्य है।सत्तापूर्वक शरीरका निर्वाहक लोभ त्याज्य नहीं। निजात्मातो परमलोभी है।अर्थ यहहै कि, सर्व अत्ता नाम भोक्ताहै। ब्रह्मासे लेके चींटीके शरीर तक सर्वमें एक सरीखा स्थित हुआ २ सर्व शब्दादि विपयोंका रसिक नाम अनुभवकरता नाम भोक्ताहै इसीसे यह ब्रह्मात्मा मनका साक्षी आत्मा अति लोभी, सर्वका भोक्ता हुआ भी वास्तवसे (अवाङ्मनसगोचर होनेसे) अति लोभी है।हे मित्रगणो!स्थूल शरीररूप स्थूल भूतोंसे परे नाम सूक्ष्म भूमि आदि सूक्ष्म भूत रूप इंद्रिय मनादि सूक्ष्म सृष्टि है। तिससेपरे नाम सूक्ष्म व्यष्टि अहंकार और समष्टि अहंकार रूप,महत्तत्त्व है। तिससे परे नाम सूक्ष्म सर्व नाम रूप जगत्का उपादान कारणरूप प्रकृति माया अज्ञान है। तिससे परे प्रकृति अज्ञान और अज्ञानका कार्य पचीस प्रकृतिरूप प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका विषय यह संघात और मनादि सूक्ष्म सृष्टिका साक्षी आत्माही है सर्वकी काष्ठा अवधिरूप है। सुषुप्तिमें अज्ञानका ज्ञान है

परे और कोई पद नहीं,जो माने सो अनुभव,वेद शास्त्र संप्रदायसे बाहरहै। तात्पर्य यहहै कि,तिसका मानना प्रमाणशून्य वंध्यापुत्र वत् अप्रमाण है।इससे इस अलोभी आत्माको त्रिगुणातीतजानके भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षके कर्तव्य तिससे निष्कर्तव्य हो।

मिथ्या दृष्टि।

पुनःमिथ्या दृष्टि आके कहने लगी। हे धर्मात्माओ।नाम रूप वर्णाश्रमी,देहवान्,सुखी,दुःखी हूँ तथा कर्मकांडी उपासक,ज्ञानी अज्ञानी,बंध,मोक्षवान्,हूँ,तथा त्यागी गृही हूँ, परिच्छिन्नजीवतुच्छ हूँ,मरणजन्मधर्माहूँ।खाता,पीता,सोता,लेता,देता,गमनागमनकरताहूँ। देखता,सुनता,स्पर्शकरता,सूँघता, संकल्प विकल्पादिवान्हूँ इत्यादि माया तत्कार्यरूप आपको जानना,यह सब मिथ्यादृष्टिहै और पूर्वोक्तमाया तत्कार्य धर्म धर्मीरूप,अनात्मकिसी दृश्यपदार्थको अपना स्वरूप नहीं जानना,किन्तु अपने मनादिकोंके साक्षी आत्माकोसम्यक् सच्चिदानंदरूप मानना यही सत् दृष्टिहै,अन्य सर्व मिथ्यादृष्टि है। इस सत् दृष्टिसेही मिथ्यादृष्टि नाश होती है।

अहंकार।

पुनःअहंकारने आकर कहा हे सज्जनो! अहंकार कहींनकहीं करना ही होगा,देह आदि संघात में अहंकार अनंत जन्मों का कारण है और सच्चित् प्रियरूप आत्मामें अहंकार मोक्षका कारणहै। दोनों मध्ये जो आपको अच्छा लगे, तिसमें अहंकार करो।

नारायणी।

नारायणी बोली हे संतो।यह शरीर मल नरक सम्यक्विचारेतो दोनोंमें किंचित् भेद नहीं समहै परंतु बाहरके मलको अपनेसे अतिभिन्न जानता है और अति ग्लानि करता है। तैसे इस शरीर रूप

मलसे आपको भिन्न जानता नहीं।देखो यह शरीर तो निज भिन्न माता पिता का मल है, अपना नहीं और लोक में प्रसिद्ध है. अपने मलसे ग्लानि कम हुआकरती है और दूसरेके मलसे ग्लानि अधिक हुआकरती है। यह आश्चर्यदेखो यह शरीर रूप दूसरेके मल में ग्लानि नहीं और अपने मलमें ग्लानि है। चाहिये दोनों मलों को ग्लानिपूर्वक आपसे अतिभिन्न मानना वा अभिन्न मानना।एकमलको आपसे भिन्न और एक मलको अपने आत्मासे अभिन्न मानना,यह हिसाब बाहर वातहै क्योंकि दोनों मल तुल्य हैं। हे पक्षपातरहित। अकृत्रिम प्रीति करने वाले मित्रवरो। यह सुख दुःखका प्रकाशक ब्रह्मात्मा तो स्वतःही मायातत्कार्य मलसे रहित है, मलसे भिन्न जानो, चाहे न जानो।

लक्ष्मी।

पुनः लक्ष्मीने आय कहा; हृदय रूप आकाश के चंद्रमारूप, प्रिय मोद प्रमोदादि,वृत्तियोंका साक्षी यह आत्माही ब्रह्म, जीव, ईश्वर,खुदा, गाड, परमात्मा घटपटादि सर्व शब्दोंका लक्ष्य है, वाच्य किसी शब्दका नहीं क्योंकि अवाङ्मनसगोचर है, वाच्य लक्ष्यभी समान बुद्धिवाले मुमुक्षुओंके ज्ञान दिये हैं, वास्तवसे अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्व रूप सर्वात्माही,तुम्हारा हमारा तथा ब्रह्मासे लेके चींटी तक सर्वका अनुभवस्वरूप आत्मा है।

मन।

पुनः मन मनुष्यविग्रह धारकर सभामें आय बोला हे सद्भक्ताओ! वायुसेभी मैंअत्यंत चंचलहूँ,जैसे वायुकी चंचलतासेआकाशनिर्विकारहै और वायुहै भी आकाशके माँहिं; तैसेही मैं अनेकप्रकारोंका संकल्प विकल्प तथा कभी बहिर्वृत्ति जाग्रत्कभी अंतरवृत्ति स्वप्न, अपूर्ववृत्तिसेसुषुप्तिरूप चंचलता करताहूँ। कभी सात्त्विकी, कभी राजसी,कभी तामसी वृत्ति, अपनी करताहूँ।कभी मैं धर्माधर्म,

बंध, मोक्ष, लज्जा, धैर्य्य, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि तथा ज्ञान,अज्ञान,शांत,दांत,वैराग्य,त्याग,ग्रहणादि संकल्प धारताहूँ,यह सर्व नामरूप जगत्की,उत्पत्ति,स्थिति,लय; मेरेही संकल्प हैं। हे साधो! समष्टि व्यष्टि संकल्प स्वरूपसे फुरणा एकही जानना,जैसे राजाका संकल्प और राजाके नौकरका संकल्प एकरूपही है,संकल्पस्वरूपमें भेद नहीं।यह जगत् गारामट्टी लेके नहीं बनाया,व्यष्टि वा समष्टि संकल्पसेही हुआ है, स्वप्न जगत्वत्। हे मित्रगणो! न कोई दुःखरूप पदार्थहै, न कोई सुखरूप है, सुखरूप पदार्थमें दुःख और दुःखरूप पदार्थमें सुखरूपता, जैसे मैं दृढ चिंतन करता हूँ वैसेही आगे भासता है। इससे संकल्पमात्रही जगत्का रूप है, अन्य नहीं। जो अन्यरूप होता तो सुषुप्तिमें, मेरे अज्ञानमें लीन होनेपर भी भासता, परन्तु सो भासता नहीं। इस हेतु संकल्पसे अन्य नहीं। हे सज्जनवरो!ब्रह्मा विष्णु,रुद्ररूप होकर मैं ही महानुभाव हुआ हूँ, चींटी आदिहोके तुच्छ हुआ हूँ, यह खेल सब मेरा ही है। हे साधो! चक्षु आदि अध्यात्म, रूपादि विषय अधिभूत और सूर्यादि देवता अधिदेव है। शांतात्मा ब्रह्मा,विष्णु, शिवसे आदि लेके चींटी तक, इतना त्रिपुटी रूप जगत् मुझ मनकाही स्वरूप जानो। जिनको तुम ईश्वर मानते हो सो तो त्रिपुटी रूप जगत् कोटिमें है। मुझ मनमें सच्चिदानंद साक्षी आत्माका प्रतिबिंब जीव है, सो कर्ता भोक्ता है, बिंब नहीं।पूर्वोक्तजीव भी जगत्कोटि मेरा स्वरूप है। हे साधो!जीवभाव ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव,जीवेश्वरका भेदअभेद भाव सगुण निर्गुणभाव, दैवी आसुरीभाव, इत्यादि न्यूनाधिककल्पना मेरी है।इस कल्पनासे यह आत्मा रहित पूर्ण है,जैसे घटाकाश ब्रह्म लोकादि पवित्र स्थानोंमें तथा उसमें रहनेवाले विष्णु आदि शरीरोंमें तथा मलिनादि स्थानोंमें, तिनमें रहनेवाले जीवोंमें,एक-

सरीखा निर्विकार सबको अवकाश समही देता है तैसे मुझ मनका सच्चिदानंद साक्षी आत्मा, वैकुंठादि स्थानोंमें स्थित, विष्णु आदि शरीरोंमें, तथा नरकादि स्थानोंमें स्थित जीवोंमें, एक सरीखा पवित्र निर्विकार असंग हुआ, सर्वको समही सत्ता स्फूर्ति प्रदान करताहै। मेरे पूर्वोक्त अनेक प्रकारोंके कटाक्षोंसे हर्ष शोक नहीं, मानता, समही रहता है। हे अधिकारी जनो ! जो तुम अविवेकसे इस मनके साक्षी आत्मासे सच्चिदानंद रूप, पृथक् ईश्वरको मानोगे तो मुझ जगत् कोटिमेंही रहोगे क्योंकि, सच्चिदानंदसे भिन्न मेराही स्वरूप है, आगे आप मालिक हो।

पार्वती।

(स्त्री पुरुषके गुणदोषवर्णन)।

पार्वती बोली हे सम्यक् पक्षपात रहित सज्जनो। शास्त्रोंमें जहां कहीं कविलोगोंने स्त्रीका निषेधकियाहै परन्तु पक्षपातरहितविचारखें तो यद्यपि स्त्रीमें दशगुण अधिक काम लिखा है, तथापिस्त्रीसे देरुष अधिक कामातुर होता है, यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है। और स्त्री धैर्यवती देखनेमें आती है, कारण कि, पुरुषकी इंद्रियमें वायु भरके खडी होजाती है स्त्रीकी नहीं होती, इसीसे स्त्री कामसे व्याकुल नहीं होती। देखो पुरुषही स्त्रीकी प्राप्ति वास्ते, द्रव्य दूती आदि अनेक उपाय विशेषकर करता देखनेमें आता है, स्त्री नहीं। स्त्रीसे अधिक पुरुषमें कामातुरता देखो, पुरुष तो पांच२ विवाह करता है, वृद्धहोके भी एक पुरुष अनेक स्त्रीसे शादी करता है परन्तु स्त्री बालविधवा भी वृद्ध अवस्था तक कामातुर नहीं होती। पुरुषही छल, बल, द्रव्य, कपट, मंत्र, वशीकरण औषधी आदि करता है। तात्पर्य यह कि, पुरुषही अनेक रीतिका लोभादि देके, बालविधवा स्त्रीसे भोगेच्छा करते हैं; स्त्री कैसी भी कामातुर हुई पूर्वोक्त उपाय आदि बहुत कम करती हैं। स्त्रीको काम

विषयमें भी पुरुषसे लज्जा जियादा देखनेमें आती है इत्यादि। अनेक रीतिसे पुरुषमें कामातुरता और स्त्रीमें अकामातुरतादि विषम भाव देखनेमें आता है। विस्तार भयसे लिखे नहीं। इससे पुरुषही निज स्त्रीको तथा परस्त्रीको परमदुःखका कारण है। पलोसापलासी करके निज स्त्रीको गर्भाधान करताहै, सो स्त्री बिचारी दशमास बालक पेटमें रखके अनेक दुःख पातीहै। बालकके जन्म मरणका, पालनका, संगाई विवाहका, संततिके अभावका, निर्धनताका, पापी लुच्चादि होनेका, संततिकी संतति नहोनेका, संततिके विवाह होने न होनेका तथा रोगादिकोंका इत्यादिदुःखोंकर मग्न हुईस्त्रीके इस उत्तम दुर्लभ मनुष्य जन्मके व्यर्थ चले जानेमें पुरुषही कारण हुआ। तैसेही उत्तम परस्त्रियोंको भी यह पुरुषही द्रव्यादि देकर, तिनके जातिमतको बिगाडके, अपने सहित दुःखका परम भागी होजाता है। इससे अतिशयकर पुरुषही निन्दनीयहै यद्यपि स्त्री पुरुषके संयोग विना जगत्का खाता उठजाताहै, तथापि मुमुक्षु स्त्रियोंके लिये पुरुष, कालानाग वा घोरा हैइससे भद्र मुमुक्षु स्त्रियोंको पुरुषकी लिखी हुई मूर्ति वा काष्टकी मूर्तिका दर्शन भी नहीं करना। बरन् स्वनिवास स्थानमें भी उत्तम स्त्रियोंकी लेखक दंपती मूर्तियोंका दर्शन कदाचित् स्वप्नमें भी नहीं करना। बल्कि राधाकृष्णादि आपसमें हांस विलास करनेवाली मूर्तियोंकाभी निज निवासस्थानमें लेख नहीं करना कारण कि, उनके दर्शनसे कामाग्नि प्रज्वलित हृदयमें उत्पन्न होती है। और आश्चर्य देखो, पुरुष तो अनेक स्त्रियोंका विवाह करता है तो भी पामर स्वभावसे लाज नहीं पाता और स्त्री जोबालविधवा हो जाती है यदि पुरुष तिसको नहीं बिगाडे, तो ब्रह्मचर्य तिसका पूर्ण होजाता है। परन्तु येन केन उपायसे पुरुष स्त्रीका ब्रह्मचर्य भंग करदेता है, बल्कि निजलडकेकी विधवा वा सधवा बहूसे वा पिताने दूसरी

शादी मौसीसे तथा भगिनीसे भी दुष्ट पुरुष मिलजातेहैं, इसमें पुरुषकाही अपराधहै, स्त्रीका नहीं। कारण कि, पहले पुरुषकाही चित्त निजसम्बन्धी स्त्रियोंसे बिगडताहै, पीछे लिहाजलोभादि निमित्तोंसे विचारी स्त्री भी बिगड जाती है। पुरुष तो शास्त्रसंस्कार द्वारा धर्माधर्मकोभी जानताहै परंतु विशेषकर स्त्री जानती नहीं। इससेभी पुरुषही बेईमान है, स्त्रीके धर्म अर्थ काम मोक्षका बिगाडनेवालाहै। स्त्रीमें पुरुषसे लज्जा अधिक है, क्योंकि पहले पुरुषको विषयकी बात कदाचित् भी नहीं कहेगी,कामातुरहुआ पुरुषही अनेक ढंग रचताहै। स्त्री तो साधु ब्राह्मणका,ईश्वर उत्तम बुद्धि करके, दर्शनकरने जातीहै परन्तु मूर्ख शठ तिनमें भोग बुद्धि करतेहैं और अनेक प्रकारकी बातचीत कर तिनका मनभी विषयलंपट करदेतेहैं। इससे पुरुषकोही धिक्कारहै।

हे मेरी प्यारी सज्जनियांहो! यह पुरुष तुम्हारे दुःखका हेतु है, भ्रमसे तुमने सुखका हेतु मानाहै;इससे स्वप्नमें भी पुरुषकी इच्छा मत करो देखो पुरुष कामातुर हुआ साठ सत्तर वर्षका भी पुनः स्त्रीभोगकी इच्छा कर विवाह करता है।इससे ऐसे कामातुर अजितेंद्रिय असंतोषी पुरुषकी इच्छा मत करो।

हे विधवा भगिनियांहो! विधवा स्त्रीतो संन्यासीके तुल्यहै,जैसे संन्यासीजितेंद्रिय ब्रह्मचर्यरूप अष्टप्रकारस्त्रीके मैथुनसेरहितहुआ; निज शीलसहित निर्विघ्न आयु व्यतीत करते हैं, ज्ञान विना उत्तमानुत्तम ब्रह्मलोकादि उत्तम गति पाते हैं। तैसेही विधवास्त्रीको भी ब्रह्मचर्यरूप अष्टप्रकारका नियम धारण करना। अर्थात्-

अष्टप्रकारका मैथुन ।

१-पुरुषकेविषयसंबंधकी बातोंको भी न श्रवण करना। २-पुरुषकीप्राप्तिका स्मरणभी न करना ३-पुरुषके विषयसंबंधका गीतभीन

गाना४-पुरुषकी प्राप्तिका चिंतन भी नहीं करना,५-पुरुषके साथ एकांत बात भी नहीं करना, ६--पुरुषकी प्राप्तिका विधवास्त्रीने दृढसंकल्प नहीं करना,७--उसके लिये प्रयत्न भी नहीं करनाऔर ८--अष्टम पुरुषके साथ निज अंग नहीं लगाना।इस अष्टप्रकारके मैथुनसे (विधवा स्त्री) रहित हुई, उत्तम नाम सम्यक् संन्यासी तुल्य गतिको पाती है।इससे हे मेरी प्राणोंसेप्रिय विधवा स्त्रियां हो सर्व प्रकारसे निर्दयी कपटी दुःखदायी आदि दूषणयुक्त पुरुषका नाममात्र भी सुनके ग्लानि करनी, जिससे इस दुःखस्वरूप स्त्री पुरुषके व्यवहारसे मन हटजावे और आगे सुख होवे। विचार देखो, जो पतिमें सुख होता तो पतिवालियां स्त्री दुःखी न होतीं और धन गृह पुत्रादिकोंमें सुख होता तो धनी गृही पुत्रवती दुःखी न होतीं।हे प्रियदर्शे विधवा स्त्रियो!जो तुम अपने जातिमतमें रहोगीतो तुम्हारा तेजबल योगिराजवत् बढेगा, उभयलोक जीत लोगी।यह वैधव्य नहीं मानो, विचारो तो उत्तम गतिका साधन है। विचाररूपी नेत्रोंकोखोल देखो, कहां तो यह तुम्हारी अवस्था कि, शरीर वस्त्र मन आत्मा पवित्र रहना, दुःखदाई संसारके व्यवहारोंसे निवृत्ति रहनी, केवल अन्न वस्त्रसेही संतोष होजाना, संतानकी उत्पत्ति आदि पीडासे छूटजाना इत्यादि सुखरूप और कहां पशु धर्मादि संसारमें मरणतक लिप्त रहना, सधवाकी अवस्था ? दिन रात्रिका भेदहै।जन्ममरण छुटनेका साधन वैधव्यरूपी चिंतामणि- को त्यागके जन्ममरणरूप संसार कांचमणीरूप गढेमें गिरनाहै इससे हे मेरी सखियांहो!इस अमूल्य उत्तम वैधव्यको निर्लज्ज कूक- रोंवत् पशुधर्ममें मतखोओ। पशुधर्म तथा पुत्रादि सामग्री तो तुमको अनंत योनियोंमें पीछेहुएहैं आगे होवेंगे।परंतु यह स्त्रीका वैधव्य जन्म, निर्विघ्न बीतनाही दुर्लभहै,नहीं तो रंडीपनाहै।

प्राणप्रिय विधवास्त्रियो ! तुम्हारे माता, सासु, सुसरे, जेठ, जिठानी, देवर, दिवरानी, आदि जिनस्थानोंमें विषयकी वातें करें, तिन स्थानोंमें तुमको निजशयन बैठनेका स्थानभी नहीं करना कारण कि, देख सुनके विषयोंके संस्कार मनमें पैदाहोतेहैं। हे शीलवंत स्त्रियो! यहपशुधर्म तो तथा वालबच्चे आदि संसार तो हर योनियोंमें मिलसक्ताहै ।इसमें क्या बड़ाईहै । यह मोक्षद्वार मनुष्यतन मिलना दुर्लभहै। यही कालहै,काम क्रोधादि शत्रुओंको जीतनेका और यही कालहै हार होनेका । मनजीते सब जगत् जीता,मनहारे जगहारा । पशुधर्मादि विषयमें जो तुमको आनंद आताहै सो इन विषयोंमें नहीं,जैसें अस्थि चाभनेमें जो कूकरको रस आता है सो रस अस्थिमें नहीं, जैसे जहां २ मधुरता चनकादियोंमें मालूम होतीहै, तहां २ शक्करकीहै, तैसे जहां २ विषय इंद्रियके संबंधसे आनंद भानहोताहै, तहां २ आत्माआनंद है, सो बुद्धिके प्रकाशक आत्मा तुम अस्तित्वमात्र हो ।

इसीपर एक कथाहै । एक कालमें नारद अभिमानकर पूर्ण हुआ चला जाताथा । एक जंगलमें पशु आपसमें निज बोलीमें आत्मनिरूपण करतेथे। नारद सुनकर स्थित होगया ।

श्वान ।

इतनेमेंभैरवका वाहन श्वान बोला-हेप्रियगणो ! मुझको यह मनुष्य नीच कहतेहैं परंतु विचारकर देखे तो,यह देहाभिमानी कुत्तेसेभी अति नीचहै, कारण कि कुत्ता निमकहलालहै अल्प निद्रावालाहै,संतोषीहै,मान अपमानमें सम रहताहै,समय अनुसार स्त्री भोगकरताहै, निज मालिक को भूलतानहीं, निज मालिकसे द्रोह नहींकरता,इत्यादि अनेक गुण कूकरोंमेंहैं।परंतु देहाभिमानी पुरुषोंमें तिससे विपरीत गुणहैं इससे वे अंतिनीच हैं । हे साधो ! नीच उच्च व्यवहार सद्गुण असद्गुणो निष्ठहै, देह, जाति, आत्मा,

निष्ट नहीं।इससे तुम आपमें पशुत्वधर्म मानके निजमें नीच बुद्धि मत करो किंतु अतिकामी, क्रोधी, लोभी, अहंकारी, द्रोही, विश्वासघाती, दंभी, कपटी, अन्यायकारी, अधीर्जी, परस्पर मित्रोंमें विरोधकर्त्ता; मातृ, पितृ, गुरु, बड़े भ्रातृ, अभक्त, झूठा, अजितेंद्रिय और निर्दोपमें दोषारोपी इत्यादि अनेक अवगुण विशिष्ट पुरुषही नीच और पशुत्वधर्मवाला कूकर सूकर है । देह अभिमान रहित सच्चिदानंद मनादि दृश्यके द्रष्टा आत्मनिष्ठावान् हम नीच और पशु नहीं ।

देवीका वाहन-सिंह ।

तिस समय देवीका वाहन सिंहने आकर कहा हे अंतर्यामियो ! स्व आत्मा सम्यक् अपरोक्ष ज्ञानवान सज्जनो ! अज्ञान तत्कार्य पशुओंको अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे पृथक् सम्यक् विचाररूप पंजे कर, पूर्वोक्त पशुओंको अत्यंताभाव वा सम्यक् मिथ्यात्व निश्चयरूप हनन करके और अद्वैत निश्चयरूप भक्षण करे सोई सिंह है ।

गजेंद्र और ग्राह ।

पुनःगजेन्द्र आकर बोला हे सत्यवक्ताओ ! श्रोत्रादिइंद्रियरूप हस्तिनियोंका यह जीव इंद्रहै सो,इस संसाररूप वनमें निजपत्नियोंसे क्रीडाकर उन्मत्त हो और अतिकाम क्रोध लोभरूप तृष्णाकर व्याकुल हुआ, अति देहाभिमान रूपी तालावविषे अतिस्नेहरूपजल पीनेलगा,तहां महामोहरूप,पुत्र,लोक,धन,एपणा,निजतासहित,अज्ञानरूप ग्राहके द्वारा भ्रांतिहो जानाही पकड लेनाहै ।अर्थ यहकि, मैं जन्ममरण सुखदुःख बंधमोक्ष धर्मवालाहूं ऐसे स्वस्वरूपका न जानकेमानताहै।पुनः श्रद्धाभक्ति सहितईश्वरके आगे सचेमतसे कर्म उपासना रूप प्रार्थनासे शुद्ध अचल उपदेश

योग्यमनकरके पुनःविष्णु रूप ब्रह्मनिष्ठगुरुसे "तत्त्वमस्यादि"महावाक्योंकातत् त्वंपद शोधनद्वारा,अखंड अर्थ प्रत्यक् आत्माके अनुभवरूप चक्रसे,वासना रूप तन्तु सहित, अज्ञान तत्कार्यरूप ग्राहको मारके निज शिष्यके जन्म मरण बंध मोक्षादि सुख दुःख रूप बंधन दूरकिया। सो मैं जीवन्मुक्त होकर विचरता विचरता तुम्हारी सभामें स्थितहूँ। यही गजेन्द्रके प्रकरणका तात्पर्य है।

शीतला देवीका वाहन गर्दभ।

पुनः शीतला देवी कर बोधित देवी के वाहन गर्दभने आकर कहा। हे साधो!श्रद्धा गुरुभक्ति सेवापूर्वक,श्रवण,मनन,निदिध्यासन,तथा तत् त्वं पदार्थ के शोधनसे,उत्पन्न संस्कार विशिष्ट शीतलादेवी रूप बुद्धि,तिस बुद्धिरूप शीतलाकी ब्रह्माकार वृत्तिरूप वाहन;मैं गर्दभ हूँ। यह वहिर पशु गर्दभ तो देहाभिमानी अज्ञानी पुरुषोंकी उपमा बोधन करताहे। इससे जो दुराचार, अन्याय; अजितेंद्रियता, परद्रोह, अनम्रता, अशांति, सदुपदेश, श्रवणकी विस्मृति,असारग्राही आदि अवगुण विशिष्टही गर्दभ है। सत्संभाषणादि धर्मानुष्ठानपूर्वक,श्रवण मनन निदिध्यासनसे"मनादियों का साक्षी मैं सच्चिदानंद आत्मा हूँ" इससे दृढ निश्चयवान् पुरुष ही ब्रह्मरूप देव है. अन्य सर्व गर्दभ पशु हैं।

वाराह भगवान्।

पुनःवाराह भगवान्संबंधिशूकर सभामें आकर बोला।हेसर्वमें आत्म उपमादर्शक सभा!सुनाम श्रेष्ठ कल्याणका है,कर नाम करनेकाहे,कल्याणको जोकरे सो सुकर कहिये।वैराग्यादि दैवीगुणोंमें भी पुरुषको कल्याण कारिता रूप सुकरता घटता है परंतु परमकल्याण तो निजसम्यक् अपरोक्ष बोधद्वारा सच्चिदानंद आत्माही करता है इस से सच्चिदानंद आत्मा का नाम सुकरहे। इसहेतु मुझ

पूर्वोक्त शूकरको निज मनादि दृश्यका साक्षी चिन्तनकरो।मनतो कोई न कोई चिंतन करेगाही; एक कालमें दो चिंतन नाम संकल्प होते भी नहीं; क्रम से ही होवेंगे। " मैं सच्चिदानंद आत्मा हूं" इस चिंतनका नामही ब्रह्माकार वृत्तिहै अन्य अनात्माकार वृत्तिको त्यागके अनात्माकार वृत्तिकरो।वस्तुसे ब्रह्माकार और अनात्माकार वृत्तियोंके प्रकाशक तुम.आत्माको दोनों वृत्तियां समहैं। हे साधो ! सम्यक् जाननाही कर्तव्य है और कुछ करना नहीं।

हयग्रीव।

इतनेमें हयग्रीव भगवान्कर उपदेशित अश्वने आयकर कहा हे सम्यक् दर्शियो। न श्व-जानाति इति अश्व अर्थ यहकि,जो अपने स्वरूप को सम्यक् नहीं जानता है,सोई अश्व अर्थात् घोडा है। इससे अज्ञानीरूप,बन्ध मोक्ष ज्ञान, अज्ञान तथा देहाभिमान,जन्म मरण,राग द्वेप,सुखदुःखादिरूप; पुरुपोंके अधीन होके खेद पाता है। परंतु निज स्वरूपको जाननेसेही अश्वपना निवृत्त होके देव भाव होता है।

गणेशका वाहन मूषा।

पुनःगणेशके वाहन मूषाने आकर कहा हे धर्मज्ञ पुरुपो ! तत्त्वमस्यादि महावाक्योंसेउत्पन्नहुई,ब्रह्मात्मअखंडाकारवृत्तिरूप,मूषसो चक्षु मनादि इन्द्रियरूप गणोंका स्वामी सच्चिदानंद आत्मारूप गणेश पूर्वोक्त निजवाहन वृत्तिरूप मूषेमें आरूढ होके, माया तत्कार्यरूप दृश्यको अत्यंताभाव निश्चयरूप छेदताहै,इससे मुमुक्षु जनकासत्संभाषणादिधर्मानुष्ठानपूर्वक,ब्रह्मविद्याके,गुरुमुखसेश्रवण,मनन,निदिध्यासनद्वारा, 'अहंब्रह्मास्मि' वृत्तिरूपमूषाकी उत्पत्तिके लियेही सर्व कर्मऔर उपासनाकांडके अनुष्ठानका फलहै।और कोई वैकुण्ठादिलोकोंकी प्राप्ति,कर्म उपासनाके सेवनका फल नहीं। हे साधो ! गणेशका मूषा वाहन है,इस कथाका पूर्वोक्त प्रकरणमें

ही तात्पर्यहै, अन्यथा मानोगे तो शास्त्रको अनुभव विरुद्ध कथन करनेसे निष्फलता होवेगी ।

नन्दीगण ।

(शिव तथा शिवके वाहन नन्दीका भावार्थ.)

तिसी सभामें मनुष्य आकृति धारके नंदीगणने आकर कहा। हे मित्रवरो। पंचभूतोंकी सात्विकी सांझीअंशरूपगौसे, मुझअन्तः-करण वैल नंदीगणकी उत्पत्तिहै, सो मैं शिवका वाहन हूँ। अर्थ यह है कि, अंतःकरण उपहित चैतन्यही, चक्षुआदि इंद्रिय देवनका देव नाम प्रकाशकहै, सोई शिव नाम कल्याणरूप है और अंतः-करण रूप हिमाचलकी बेटी "तत्त्वमस्यादि" महावाक्योंसे उ-त्पन्न होनेवाली "अहंब्रह्मास्मि" यह ब्रह्मविद्याविरूप वृत्ति गौरी अ-र्द्धांगीहै। तात्पर्य यहहै कि, सम्यक् तत्त्ववेत्ताकी सर्व चेष्टामें ब्रह्मा-कार वृत्ति बनी रहतीहै, सो ब्रह्मवेत्ताका नामही शिवहै; अज्ञानी लोग अशिववत् अशिव हैं ।

हिङ्गलाज।

तैसे "हिसि हिंसायाम्" जो मन वाणी शरीरकर; सर्वसुखदुःखादि अवस्थामें, सर्व जीवोंविषे, आत्म उपमा दर्शनरूप साधनसे, परप्रा-णीको पीडनरूप हिंसासे लज्जायमानहो, सोही हिंगलाज है। इस पूर्वोक्त हिंगलाजके स्पर्शनरूप धारणते अवश्य कल्याण होगा ।

पुष्कर ।

तैसेही मनुष्यशरीर पुष्कररूप तीर्थमें, मन मुमुक्षुरूप जीव ब्रह्माने, चक्षुआदिइंद्रियरूपदेवतानसहितविष्णुरूप आत्मानात्मा-का सम्यक् विवेकरूप यज्ञ किया। तिसमें जीवरूप ब्रह्माकीअनादि स्त्री प्रवृत्तिरूपबुद्धि सरस्वती किसीके निमित्तसे क्रोधमें होयके निज पति पास बुलाईभी नहीं आई । अर्थ यह कि, वेर,

विवेकी अशास्त्री प्रवृत्तिको प्रिय नहीं लगता । इसीसे जीवरूप ब्रह्माने पूर्वोक्त यज्ञकी सहायक निवृत्तिरूप प्रिय गायत्री स्त्रीको अंगीकार किया, पश्चात् निर्विघ्न विवेकरूप यज्ञ पूर्ण हुआ ।

रामेश्वर ।

तैसेही मुमुक्षुओंने निज शरीरमें ही त्वं पदके वाच्यार्थ जीवको राम जानना औरत्वं पदके लक्ष्य अर्थको कूटस्थ मन साक्षी ईश्वर जानना, सोई जीवका रामेश्वरस्वरूप है ।

ज्वालामुखी ।

तैसे,ज्वाला एव मुखी-ज्वालामुखी । ज्वालानाम प्रकाशस्व-रूपही है प्रधान जिसका; ऐसी जो प्रत्यक् आत्मसत्ता बुद्धि साक्षी है सोही मुमुक्षुको ज्वालामुखी जाननी ।

हरिद्वार ।

तैसेही ब्रह्मात्मा एकत्व ज्ञान द्वाराही सच्चिदानंद निजस्वरूप हरिको प्राप्त होताहै, इससे ज्ञानका नाम हरिद्वार है ।

नर्मदा ।

तैसे वेदरूप नर्मदाकेकिनारे अर्थात् वेदकासारभूतअकार,उकार मकार,अर्ध मात्रा,ये चार मात्रारूप ओंकारको जानना । जिन अ-कारादिवाचक मात्रोंका वाच्य ध्याता, ध्यान; ध्येय,जाग्रत,स्वप्न, सुषुप्ति, स्थूल,सूक्ष्म,कारण शरीर और समष्टि अभिमानी विराट् अभिन्न विश्वादि जीव इत्यादि;अनेक त्रिपुटीरूप वैदिक लौकिक वाच्य जगत्है । जाग्रत् आदि अनेक त्रिपुटीके प्रकाशक वाचक अर्ध मात्राका वाच्य तुरीय प्रत्यक् आत्माहै। इतनाही व्यवहार परमार्थका स्वरूपहै । सो वाच्यवाचकभावसे सर्व ओंकाररूपहीहै। इससे मुमुक्षुको पूर्वोक्त ओंकारकी यात्रा करनी अर्थात् निज श-रीरमेंही विवेचन सम्यक्करना,जिससेमरणरहित दर्शनका फलहो।

भागीरथी।

तैसेही मुमुक्षुरूप भगीरथके अष्टांगयोग तथा आत्मानात्माका सम्यक् विवेकरूप सांख्ययोग, यत्नरूप तपस्या द्वारा अंतःकरण-रूप हिमालयसे, ब्रह्माकार वृत्तिरूप ज्ञानस्वरूप गंगा उत्पन्न होती है पुनःब्रह्मरूप समुद्रमें एकरूपहो जाती है।मनोनाश, वासना क्षय वा उपरति, वैराग्य ज्ञानरूपी गंगासे जब मिलती है, तब जीवनमु-क्तिरूप त्रिवेणी होजाती है। पूर्वोक्त ज्ञानरूप गंगामें जो स्नान करता है, पुनः जन्मको नहीं प्राप्त होता !

बद्रीकेदार।

तैसेही इस मनुष्य शरीर वा अंतःकरण रूप उत्तराखंडमें, अस्तित्व, स्फुरणत्व, प्रियत्व, रूप सुख दुःखादि, मन सहित मनके धर्मों-का जो अनुभवकर्ता है सोही, केदार और बद्रीनाथ है । इत्यादि बहिर कथाओंका अर्थ अंतर अध्यात्ममें निजबुद्धिसे जोड लेना।

संसारके अभावका उपाय ।

इससे सत, संतोष, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, शांति, दांति, वैराग्य, आदि तीर्थोंमें स्नान करके, पुनः गुरुद्वारा वेदांत श्रवण, मनन निदिध्यासन पूर्वक, ब्रह्मात्मा निजस्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष जिस दिन यह मुमुक्षु करेगा; किसीदिन भ्रमरूप जन्म, मरणरूप संसार निवृत्त होगा, अन्य ससाररूप जन्ममरणके दूर करनेका कोई उपा-य नहीं । चाहे सर्व विद्वान् शास्त्रोंमें खोज देखो। आगे जो इच्छा हो सो करो ।

उष्ट्र ।

गौरीके शापसे सनत्कुमारके उष्ट्र होनेका आशय ।

गौरीके शापसे सनत्कुमार (उष्ट्रकी) संतति में उष्ट्र ज्ञानवान् हुये थे तिनमेंसे एक उष्ट्रने आयकर कहा हे नीतिज्ञ सभा ! उक्ति

वितर्के—टर नाम टरनेका है,अर्थ यह कि,माया तत्कार्यसे जो सम्यक् आत्मानात्माके विचारसे निज स्वरूपसेही असंग रहे तिसकानाम उष्ट्र है जैसे आकाश स्वरूपहीसे भूत भौतिकप्रपंचसे असंग रहता है सो उष्ट्रनाम पूर्वोक्त रीतिसे सच्चिदानंद आत्माका है; जैसे स्वप्नमें उष्ट्रादि रूप स्वप्नद्रष्टाही होताहै, तैसे सर्वरूप आत्माहीके होनेसे भी उष्ट्र आत्माही है । जैसे उष्ट्र सकंटक और निष्कंटक वृक्षको खाता है, तैसे मैं द्वैत अद्वैत द्वंद्वरूप संसार वृक्षोंको निजात्मामें अत्यंताभाव वा मिथ्यात्व निश्चय सम्यक् ज्ञान रूप भक्षण करताहूँ। हे साधो!हीरे मोती आदि नगोंसे जडित पलंगमें तथा मंदिरमें शयन किया तो क्या हुआ?न किया तो क्याहुआ? राजलक्ष्मी भोगी तथा देव ऐश्वर्य भोगा तो क्या हुआ?न भोगा तो क्या हुआ ? तैसे निर्द्धनी हुआ तो क्या हुआ ? जो सधनी हुआ तो क्या हुआ? कारण कि गुजर सबकी तुल्यहै,जिमि गुजरी तिमि गुजरी,चार दिना गुजरान जिमि कीनी तिमि कीनी सर्वस्वप्नवत् मिथ्याहै,कोई पदार्थ सत् नहीं।इसीसे इनके ग्रहणत्यागमेंशांतिनहींहोती।वैकुंठादिकोंमें भी इस वर्तमान जगत्वत्ही व्यवहार है,न्यूनाधिककुछ नहीं।इससे शांतिरूपएकआत्माही है अन्य नहीं।

शृगाल ।

पुनःशृगाल आकर सभामें बोला हे नीतिज्ञ सभा!शृक् नाम मालाका है; अल नाम पूर्णका है।जो इस नाम रूप अनंत ब्रह्मांड रूप मणियोंमें तागेवत् पूर्ण होवे, उसीका नाम शृगाल है।वा सूतकीमालावत् आपही मणिऔर तागारूपहोवे तिसकानामशृगाल है सो मैं सच्चिदानंद शृगाल तुम्हारे मनादिका, अपरोक्ष, अवेद्यत्व,सदा साक्षीरूप; कर हाजिर हुजूर हूँ जब मुझ निजात्माको जानोगे तो भ्रमसिद्ध बंध मोक्षादि जगत् से छूटोगे ।

वानर।

पुनः वानरने आकर कहा,हे साधो। शास्त्रमें मन और वानर की उपमा तुल्य कहीहै,परंतु मन भूतोंका कार्य्य होनेसे जडहै. और मैं तो इस वानर शरीरका तथा मनका प्रकाशकहूँ; इससे समता नहीं। तैसेही नर नाम पुरुषकाहै,पुरुष नाम पूर्णात्माकाहै। वा विकल्पनाम वेदानुकूल तर्कसे, दृश्य द्रष्टाका सम्यक् विवेककर भूमाको निजस्वरूपको संशय रहित अपरोक्ष जानताहै, सोई वानर है। वा पूर्वोक्त वानरसे भिन्न सर्व दृश्यरूप माया स्त्रीहै, इससे भिन्न मुझ भूमाको अपना आप जानेविना सुख तुमको नहीं होगा। आगे आप मालिक हो।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इसप्रकार सर्व सभा परस्पर नमस्कार करके आप अपने २ वांछित स्थानको गई।

इति श्रीपक्षपातरहितअनुभवप्रकाशस्य पंचमः सर्गः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ षष्ठ सर्ग ६.

पराशरने कहा हे मैत्रेय!तूभी आत्मदर्शी हो।मैत्रेयने कहा देखना दूसरेका होताहै;मैं स्वयं आत्मा आत्माको कैसे देखूं ? जो जो देखनेमें,सुननेमें,सुँघनेमें,स्पर्शमें, रसलेनेमें, वाक् उच्चारणमें, मनके चिंतनमें, ग्रहण त्यागमें,इत्यादि मनकर वाणी शरीरकर जानाजाताहै सो सो दृश्य जड अनित्य होताहै। इससे सर्वके द्रष्टा मुझ आत्माका अन्य द्रष्टा नहीं। पराशरने कहा हे मैत्रेय!अवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंसप्रकाशक, अवेद्यत्व. सदा अपरोक्ष साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंद ब्रह्मात्मा, अपने स्वरूपको, सम्यक् अपरोक्ष हस्तामलकवत्(जाननेवत्) जाननेका नाम आत्मदर्शनहै।

आत्मदर्शीकी कथा।

(आत्मदर्शी और वासुकर्णका आत्मतत्त्व निर्णय।)

इसी पर एक कथा सुन। एक आत्मदर्शीनाम मुमुक्षुने गुरुसे प्रश्न किया कि, हेगुरो! तुम्हारी कृपासे देवताओंको भोग प्राप्त है, सो मुझकोभी प्राप्तहै क्योंकि षट् विषयऔर षट विषयोंके ग्रहण करनेवाले षट् इन्द्रिय तथा इंद्रिय विषयके संयोग वियोगजन्य सुख दुःखका अनुभव, भोग और भोगोंके साधन विषय इन्द्रिय, ब्रह्मासे लेकर चींटी तक समही हैं, न्यूनाधिक नहीं, विचारे बिना न्यूनाधिक भासतीहै। सम्यक् विचारनहीं तो न्यूनाधिकता देखकर तप्त रहतीहै। अधिककी प्राप्तिकी इच्छा होतीहै, न्यूनमें अहंकृति होती है। सर्व प्रकार सम वस्तुमें दोनों नहीं। इसी विचारसे शांति मनमें होतीहै, अन्यथा नहीं। मैंने सर्व कर्तव्य जगत्केस्वभाव शरीरका जानाहै। जो दृश्यमान है, सो असत् भ्रम समझाहै पर यह नहीं जानता कि, मैं कौन हूँ? कहांसे आया हूँ? शरीर त्यागकर कहां जाऊँगा? मूल मेरा क्याहै? जो मैं आत्मा होऊँ तो शरीर विषे क्यों आऊँ? कारण मेरा उत्पत्तिका क्याहै? वासुकर्णने कहा हे पुत्र! मूल तेरा वहहै जिससे जगत् प्रकाशमान हुआ है। न तू कहींसे आयाहै, न कहीं जायगा, आकाशके समान पूर्ण अचल स्थितहै। आवागमनका तुझ विषे मार्गनहीं। उत्पत्ति नाश होना धर्म शरीरकाहै और शरीर शुभाशुभ कर्मोंसे होतेहैं। कर्म चाहनासे होतेहैं। चाहना अज्ञानसे होतीहै। अज्ञान अपने स्वरूपके अन पहँचाननेसे होतेहैं। औरको अपनेसे भिन्न स्थापकर और मुक्तिका सहायक मानकर (ईश्वर मेरी मुक्ति करेगा) आपको अर्थी औरको दाताजाननाही अज्ञानहै, नहीं तो वेद कहतेहैं मैं एकही ईश्वर अनेक रूपहूँ, जैसे स्वप्नद्रष्टा एकही अनेकरूप होताहै। इससे यह सृष्टि ज्योतिरूप ईश्वरहीहै; जैसे सूर्यकी किरणें सूर्यस्वरूप हैं। जब

सर्वरूप ईश्वरही पूर्ण हुआ तो आपको तिससे भिन्न शरीर वा जीव मानना केवल अज्ञान है।

सब एकही है।

एकको भला और एकको बुरा ईश्वररूपआत्माविषेकैसे गनिये। मूल विषे मनुष्य पशु स्थावर जंगमादि विचारवानको समहैं; भेद नहीं। व्यवहारक जो लघु दीर्घ नीचऊंचादि भेद भासताहै, सो फल कर्मों का है और अपने मूलके अज्ञानसे भासता है;जैसे वृक्षके शाखा पत्र फल फूलका जो भेद भासता है, सो मूल के अज्ञानसे भासताहै, जैसे स्वप्न पदार्थोंका जो भेद भासता है सो स्वप्नद्रष्टाके अज्ञानसे भासताहै,स्वप्नद्रष्टाकी दृष्टिसे नहीं।

नरक जानेका मार्ग और मुक्तिका उपाय।

हे पुत्र!इंद्रियोंका असज्जनरीतिसेपालना,जीवको नरकलेजाताहै,जौलों संग संतोंका न हो त्याग नहीं होता। अपने स्वरूपका पहँचानना जो मुक्तिहै,सत्संग से प्राप्त होती है।हेपुत्र!जो कुछ मन वाणीसे नामरूप कथन चिंतन होताहै, सो केवल आभासमात्र जान। जो असत् हो उससे प्रीति मूल अज्ञान है।

आत्मा कैसा है?

आत्मदर्शीने कहा हे प्रभो। सर्व स्वभाव पंच इंद्रियों संयुक्त यह पंचभूतरूपशरीरसहित सर्व नामरूपजगत् मृगतृष्णाके जलकेतरंग के समान है,मूल इन सर्वका चैतन्य आत्मा है,सो आत्मा कैसाहै? वासुकणने कहा-पाप पुण्यसे पवित्र, सर्व वस्तुविषे स्थितभी अलिप्त,कर्मोंविषे बंध नहीं होता, मरण जीवन और बंध मोक्षसे अतीतहै। तत्त्वोंसे आदिलेके सर्व वस्तु तिस आत्माको नाश नहीं कर सकते हैं। तात्पर्य यह कि नाम रूप जगत् असत् है और आत्मा सत् है। दोनोंका स्वभाव अन्यथा नहीं होता।

उत्पत्तिऔर नाशवान् पदार्थ आत्मासे भिन्न मिथ्याहै।

तब हे गुरो! उत्पत्ति होकर जो विनशता है पुनः कर्मोंमेंबंधहोता है सो कौनहै? वासुकर्णने कहा हे पुत्र! स्वप्नप्रपंच विषे; जैसे उत्पत्ति विनाश;कोईकर्मोंमें,कोई मुक्त,कोई सुखी कोई दुःखी होताहै, इत्यादि अनेक प्रकारकी जो प्रतीति होतीहै सो केवल निद्रारूप अविद्याकर है,वास्तवसे स्वप्नद्रष्टामें नहीं। तैसेही अपने स्वरूप अधिष्ठानके अज्ञानसे विषमता भासती है,वास्तवसे नहीं।

नाम और नामी ।

आत्मदर्शीने कहा नारायणादि नाम भी नाशरूप होवेंगे वानहीं। व्यासकर्णने कहा नाम शब्दमात्रहै आकाशका गुण है,इससे नाशीहै परंतु नामी नाशी नहीं क्योंकि, नाम रूपका तथा तिनके नाशकाभी (आत्मा) स्वरूप है। हे पुत्र। नामरूप जगत्की बुद्धिसे है, नामरूपका अधिष्ठान आत्मा बुद्धि नहीं होता।

आत्मप्राप्तिके हेतु गुरुशिष्य कैसा चाहिये?

पर इस भेदके पावने निमित्त गुरु पूर्ण और शिष्य श्रद्धावान् चाहिये और संतोंके संगसे अचेत न होवे तो पावे।

स्वरूप क्या है ?

हे पुत्र!यहसर्व स्तुति चैतन्य आत्माकी है और स्तुतिसे अतीत भीहै,उपजने विनशनेका इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामेंमार्ग नहींऔरनकभीइसकोकिसीनेदेखाहै,स्वयंप्रकाशहोनेसे;जैसे-स्वप्न पुरुष स्वप्नद्रष्टाको कभी भी स्वप्न नर नहीं देखसक्ते।इस चैतन्यसे भिन्न कौन है जो देखे?पुरुषको विचारकरना चाहिये कि,इस जड संघात की चेष्टा कौन् करता है? जिस चैतन्यकर यह संघात चेष्टा करता है वही मेरा रूप है नामरूप व्यवहार जगत्का है,जो परंपरा विचारे तो नामरूप भी आत्मारूप है भिन्न नहीं क्योंकि कल्पित

नामरूप जगत्की निवृत्ति अधिष्ठान आत्मरूप है। हे पुत्र! तुझे जो आत्मदर्शी कहते हैं सो कौनसे अंगको कहते हैं? क्योंकि सर्व अंग आप अपने नाम रखते हैं पुनः तिनका भी सूक्ष्म विचार करें तो निकसता भी कुछ नहीं; जैसे केलेके पत्ते निकासते जाओ तो शून्यही शेष रहता है। इससे नामरूप केवल कहने मात्र हैं।

पुरुष नित्य है।

हे पुत्र! उत्पत्ति नाश शरीरका धर्म है, क्षुधा तृषा प्राणोंका धर्म है, हर्ष शोकादि मनका धर्म है, जैसे पुराने वस्त्र उतारके पुरुष नवीन ग्रहण करता है, पर पुरुष नित्य है-वस्त्र अनित्य है; तैसे देह अनित्य है और देही नित्य है।

पूर्ण और पवित्र कब होता है ?

आत्मा देहाभिमान त्यागके पूर्ण होता है; जैसे बूँद वा नदियां अपना नामरूप अहं त्याग के समुद्ररूप होती हैं। जब शरीर त्यागता है पीछे भला बुरा रह जाता है। हे पुत्र! जैसे नदीसे थोडा जल निकास कर अपवित्र ठौर डाला, तब कोई तिसको अंगीकार नहीं करते और अपवित्र कहते हैं जब पुनः नदीसे मिला पवित्र होता है अपवित्र उसका नाम नहीं रहता। तैसे सत चित् आनंद आत्मा रूप समुद्रके अज्ञानसे आपको भिन्न मानकर, अल्प जीव जानना और अपवित्र शरीरको अपना आप परिच्छिन्न मानना यही अपवित्रता है।

स्वरूपसे कबतक भिन्न रहताहै ?

जबलग असत् जड दुःखरूप शरीरादिकोंमें अहंकृति है, तबलग अपने स्वरूप समुद्रसे भिन्न रहताहै। जब शरीरादिकोंमें सम्यक् विचारसे अहंकृति न रही और आत्मास्वरूप सम्यक्अ परोक्षजाना तब पूर्ववत् सत्चित्आनंदरूप आत्मरूप समुद्र होता है।

व्यवहारोंविषे असमता है सम कैसे कहूँ?

आत्मदर्शीने कहा हे गुरो। तुम्हारे वचनसे मैं आपको पूर्णब्रह्मात्मा जानता हूँ,पर शुभाशुभ शरीरके स्वभाव मुझे प्राप्त होतेहैं, तिन विषे सम कैसे होऊँ? मैं देखताहूँ कि, शुभ विषे प्रसन्न अशुभविषे अप्रसन्न होताहूँ,जो मैं पूर्ण आत्मा हूँ तो न होना चाहिये। व्यासकरणने कहा हे पुत्र। तू आपही कहता है,मैं देखता हूँ,शुभाशुभ विषे हर्ष शोकी होताहूँ,इससे यह सिद्ध हुआ, तू हर्ष शोकको देखनेवाला है, हर्ष शोक किसी औरको होता है, तुझको नहीं। यह हर्ष शोकादिक मनादिक संघातके धर्म हैं, इससे इनकी वासनाके त्यागविषे दृढ हो।

अपने विचारेविना सुख नहीं।

ब्रह्मा विष्णु शिवादिक तुझे उपदेश करें और आप देहादिकोंकी वासना न त्यागे,तो स्वरूपकी पहँचानरूप मुक्ति कठिन है। भावे जितनी शुभ कर्म करनेविषे तथा विद्या पढनेविषे अवधि(आयु)बितावे। जिसकी जगत् (असत्)से प्रीति है, विषयोंसे अघाता नहीं,उसको दोनों लोककी अप्राप्ति होतीहै,जो चाहनासे अचाह है, सोई मुक्त है।

हे पुत्र!सर्व श्रवण मनन निदिध्यासनादि साधन मनकीशुद्धि वास्ते हैं, जब मन वश हुआ मानो त्रिलोकीका राज्य मिला।तुझे किसी अन्यने बंधन नहीं किया,तुझे चैतन्यने आपही देहाभिमान कर आपको आप बंधन किया है। जब तू आप सम्यक् देहाभिमान त्यागे मुक्त हुआ हुआ मुक्त होवेगा।

स्वरूपकी प्राप्ति अति सुगम और अति कठिन है।

अपनेस्वरूपका बोध सत्संगसे होताहै,ज्ञान,विज्ञानस्वरूपपानेतक है,आगे नहीं इससे आपको नित्यसुख चिद्रूपजान जो कर्मरूप

शरीरके बन्धनसे छूटे। स्वरूप जाने विना अति कठिनभीहै और जानेपर अति सुगम भी है।

किसको कठिन है?

जिसने इंद्रिय मन नहीं जीता और देहविषे अहंकार पूर्वक वासना नहीं त्यागी, तिसको कठिन है।

किसको सुगम?।

जिसने पूर्वोक्त मन इंद्रिय जीतपूर्वक सर्व वासना त्यागी हैं तिसको सुगम है।

बुद्धिमानको सैनही बहुतहै,मूर्ख सारी आयु सत्संगमें वितावे तो भी कोराका कोरा रहजाता है; जैसे गंगामें पत्थर कोरेके कोरे रहजाते हैं। इससे इसशरीर सहित जगत्को स्वप्नवत् मिथ्याजान और आपको शरीर मनादि संघात का द्रष्टा जान जो काल के भय से छूटे।

आत्मदर्शीने कहा संसारको मैंने असार जानाहै, पर कहो मैं कौनहूँ? व्यामकरणने कहा तू संसारके असार जाननेवालेका अनुभव करनेवालाहै,तेरा अनुभव करनेवाला कोई नहीं। यह जगत् तरंग तुझ चैतन्य समुद्रसे हुआहै,तुझही विषे लीन होता है; पर तू चैतन्य एकरसहै। जगद्रूप कर्मसे अतीतहै। जो दृश्यमान हैं तिन सवका तू जीवनरूपहै, जैसे तरंगादिकोंका समुद्र जीवन रूपहै। पर तूने आपको भुलाकर शरीर मानाहै, इसीसे तू अनेक भ्रमोंमें वध्यमान हुआ है। मुक्तरूप तू मुक्तिको भ्रमकर चाहताहै अपनी पहँचान कर, जब तू आपको सम्यक् जानेगा तो बन्धकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा न करेगा; उलटा बंध मुक्तको भ्रमरूप जानेगा।

साधन कबतक है?

हे पुत्र! तीर्थ; यात्रा, जप, तप, नियम, योग, यज्ञ, व्रत, पूजादि, सा-

व्यवहारोंविषे असमता है सम कैसे कहैं ?

आत्मदर्शीने कहा हे गुरो। तुम्हारे वचनसे मैं आपको पूर्णब्र-ह्मात्मा जानता हूँ,पर शुभाशुभ शरीरके स्वभाव मुझे प्राप्त होतेहैं, तिन विषे सम कैसे होऊँ ? मैं देखताहूँ कि, शुभ विषे प्रसन्न अशु-भविषे अप्रसन्न होताहूँ,जो मैं पूर्ण आत्मा हूँ तो न होना चाहिये। व्यासकरणने कहा हे पुत्र। तू आपही कहता है,मैं देखता हूँ,शुभा-शुभ विषे हर्ष शोकी होताहूँ,इससें यह सिद्ध हुआ, तू हर्ष शो-कको देखनेवाला है, हर्ष शोक किसी औरको होता है, तुझको नहीं। यह हर्ष शोकादिक मनादिक संघातके धर्म हैं, इससे इनकी वासनाके त्यागविषे दृढ हो।

अपने विचारेविना सुख नहीं।

ब्रह्मा विष्णु शिवादिक तुझे उपदेश करें और आप देहादिकों-की वासना न त्यागे,तो स्वरूपकी पहँचानरूप मुक्ति कठिन है। भावे जितनी शुभ कर्म करनेविषे तथा विद्या पढनेविषे अ-वधि(आयु)बितावे। जिसकी जगत् (असत्)से प्रीति है, विषयोंसे अघाता नहीं,उसको दोनों लोककी अप्राप्ति होतीहै,जो चाहनासे अचाह है, सोई मुक्त है।

हे पुत्र।सर्व श्रवण मनन निदिध्यासनादि साधन मनकीशुद्धि वास्ते हैं, जब मन वश हुआ मानो त्रिलोकीका राज्य मिला।तु-झे किसी अन्यने बंधन नहीं किया,तुझे चैतन्यने आपही देहाभि-मान कर आपको आप बंधन किया है। जब तू आप सम्यक् देहाभिमान त्यागे मुक्त हुआ हुआ मुक्त होवेगा।

स्वरूपकी प्राप्ति अति सुगम और अति कठिन है।

अपनेस्वरूपका बोध सत्संगसे होताहै,ज्ञान,विज्ञानस्वरूपपाने-तक है,आगे नहीं इससे आपको नित्यसुख चिद्रूपजान जो कर्मरूप

शरीरके बन्धनसे छूटे। स्वरूप जाने विना अति कठिनभीहै और जानेपर अति सुगम भी है।

किसको कठिन है?

जिसने इंद्रिय मन नहीं जीता और देहविषे अहंकार पूर्वक वासना नहीं त्यागी, तिसको कठिन है।

किसको सुगम?।

जिसने पूर्वोक्त मन इंद्रिय जीतपूर्वक सर्व वासना त्यागी है तिसको सुगम है।

बुद्धिमानको सैनही बहुतहै, मूर्ख सारी आयु सत्संगमें वितावे तो भी कोराका कोरा रहजाता है; जैसे गंगामें पत्थर कोरेके कोरे रहजाते हैं। इससे इसशरीर सहित जगत्को स्वप्नवत् मिथ्याजान और आपको शरीर मनादि संघात का द्रष्टा जान जो काल के भय से छूटे।

आत्मदर्शीने कहा संसारको मैंने असार जानाहै, पर कहो मैं कौनहूँ? व्यामकरणने कहा तू संसारके असार जाननेवालेका अनुभव करनेवालाहै, तेरा अनुभव करनेवाला कोई नहीं। यह जगत् तरंग तुझ चैतन्य समुद्रसे हुआहै, तुझही विषे लीन होता है; पर तू चैतन्य एकरसहै। जगद्रूप कर्मसे अतीतहै। जो दृश्यमान है तिन सबका तू जीवनरूपहै, जैसे तरंगादिकोंका समुद्र जीवन रूपहै। पर तूने आपको भुलाकर शरीर मानाहै, इसीसे तू अनेक भ्रमोंमें बध्यमान हुआ है। मुक्तरूप तू मुक्तिको भ्रमकर चाहताहै अपनी पहँचान कर, जब तू आपको सम्यक् जानेगा तो बन्धकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा न करेगा; उलटा बंध मुक्तको भ्रमरूप जानेगा।

साधन कबतक है?

हे पुत्र! तीर्थ; यात्रा, जप, तप, नियम, योग, यज्ञ, व्रत, पूजादि, सा-

धन तबतकहैं,जबतक साध्यरूप ब्रह्मात्माका सम्यक् अपरोक्ष नहीं हुआ,जब हुआ तो साधनोंसे क्या प्रयोजनहै ? जैसे लडकियां तबलग गुडियोंसे खेलतीहैं जबलग पति नहीं मिला, जब पति मिला तो गुडियोंसे खेलनेका क्या प्रयोजनहै ? कुछ नहीं ।

ईश्वरकी प्राप्तिका उपाय ।

जो सत् चित् आनंदरूप ईश्वरकी प्राप्तिवास्ते अपने स्वरूपकी पहँचानका उपाय सत्संग सहित सच्छास्त्रके विचारको त्यागकर अन्य साधनमें प्रवृत्ति करतेहैं,तो वे जैसे कोई गंगाके किनारेजाय कर गंगाजलको त्यागकर और जल पीवे और स्नान करे,उसके समान है। इससे आपको पहँचान और असत् कर्मोंका त्यागकर ।

सब स्वप्नवत् है ।

आत्मदर्शीने कहा हे पिता ! मैंने जगत्को मृगतृष्णाके जलवत् जानाहै उसमेंमन नहींबांधता । शरीरकोमिथ्याजानकरइनकेपालनेकी इच्छाभी नहीं करता । पट् इंद्रियोंकोठग जानकर उनकीचाहना पीछे भी नहीं दौरता । चाहनासे अचाह होकर अपनेस्वरूपको पहँचानना परमार्थ है यह निश्चय किया है । जबतक आपकोसम्यक् नहीं जाना तबतक हर्ष शोकादिरूप द्वैतमें वन्ध है,पर आपको कैसे पहँचानूं ? कौन वस्तु हैजिससे आत्माका निश्चय करूँ ? वह कौन भजन है जिससे उसको प्राप्त होऊँ ? मैंने सुना हैं कि, रूप नहीं राखत अरूपको कैसे देखिये ? ठौर उसकी कौन है ? यहसंसारक्षणविषे उत्पत्ति विनाश होनेवाला है इससे कैसे छूटूं ? व्यासकरण हँसा और कहा हे पुत्र ! हर्ष,शोक, बन्ध,'मोक्ष, धर्मअ,धर्म,राजा, रय्यत,चंद्र,सूर्यादि,अनेकप्रकारके;स्वप्नमें निद्राकर जगत भासतेहैं,पर जब जागा तब तिनकी रेखाभी नहीं मिलती।तैसेजाग्रत जगत्भी जबलग अज्ञान है,तबलग अनेकभाँतिके प्रतीतहोतेहैं । जब

सम्यक् अपने स्वरूपकी पहँचान करेगा तो नानारूप भासतेभी एक रूपजानेगा। तुझ मनादिकोंके साक्षी चैतन्य विना और दूसरा कौन चैतन्यहै, जो तुझको जाने ? क्योंकि,ज्ञानरूप तूही चैतन्य है अन्य नहीं।

जीव कैसे ईश्वर होता है ?

आत्मदर्शीने कहा हे पिता ! मैंने जाना है कि, मन इंद्रियोंके वश सहित स्वरूपका पावना सत्संगसेहै। पर यह पराधीन तुच्छ अल्पबुद्धि जीव कैसे ईश्वर होताहै ? व्यासकर्णने कहा ईश्वरका स्वरूप क्याहै ? आत्मदर्शीने कहा सत् चित् आनंदरूप,ईश्वरका है। संतने कहा सोई सत् चित् आनंदरूपता इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामें घटे तो तद्रूपता हुई वा नहीं? जैसे दाहकता उष्णता प्रकाशकता महान् अग्निमेंहै, सोई चिनगारीमें है। महानता तुच्छता अग्निमें नहीं काष्ठमें है। जहां काष्ठ बहुत हैं वहां अग्नि महान् प्रतीत होतीहै, जहां काष्ठ थोडाहै वहां अग्निकी तुच्छता प्रतीत होतीहै।इसीरीतिसे समुद्रजलका और बून्दजलका तथा महाकाश घटाकाशादिकोंकाभी दृष्टांत अपनी बुद्धिसे विचार लेना।

स्वरूपप्राप्तिमें किसका अधिकार है ?

हे आत्मदर्शी ! सारग्राहीको तो इस बातमें विरोध नहीं पड़ता, विवादीका इस विषयमें अधिकारही नहीं क्योंकि- यह धन सरलबुद्धिवालोंका है अन्यका नहीं।

आत्मा सच्चिदानंदरूप कैसे है ?

आत्मदर्शीने कहा यह प्रत्यक् आत्मा सत्चित् आनंदरूप कैसे है ? गुरुने कहा तीनों कालोंविषे तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा सत्त्व, रज,तम जड आदि परस्पर भावाभव होतेभी यह प्रत्यक् आत्मा अबाध्यहै, इसीसेसत्है। तथा मनादिक सर्व संघातके सर्व

व्यवहारको स्वयरूपताकर जानताहै इसीसे चैतन्यहै। परम प्रेमका आस्पद होनेसे आनंदरूपहै। हे पुत्र ! ईश्वर व्यापकहै, राजाके समान किसी देशमें सभा लगाकर बैठा नहीं सर्वके हृदयमें ईश्वर साक्षीरूपताकर स्थितहै, अन्य रीतिसे नहीं। यह वेद महात्मा पुकारतेहैं। किसीरीतिसेभी सत्चित् आनंदरूप आत्मासे पृथक् ईश्वरका स्वरूपसिद्ध नहींहोसक्ता। जो भिन्न सिद्ध करोगे तो असत् जडदुःख रूप सिद्धहोगा क्योंकि, देश काल वस्तु भेदवान् पदार्थ अनित्य होता है।

सबका जाननेवाला सबसे भिन्न है।

हे पुत्र ! यह विचारभी रहने दे परंतु जिसको तू जानता है, चाहे वह वस्तु सत्हो; वा असत् पर तिसको जाननेवाला तू तिससे भिन्न है। इसमें तू आपको मनादिकोंका साक्षी द्रष्टा जान, चाहे तू ईश्वररूप है वा अनीश्वररूप है।

पण्डित अपण्डित कौन है ?
बंध मोक्ष कैसे होताहै ?

हे पुत्र ! आपको बुद्धिमान् जानके विषयोंमें लीन होता है, स्वरूपका विचार नहीं करता पर यह नहीं जानता कि चारों वेद षट् अंगों सहित पढे और आत्मस्वरूप नहीं जाने तो अपंडितहै जो एक अक्षर पढना नहीं जानता पर गुरु आदिकी कृपासे अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जानाहै, तो वह पंडित है।

शास्त्रके तीन काण्ड।

हे साधो ! शास्त्ररूपी सडकोंमें यह पाटी लिखरक्खीहै कि, सर्व कर्मकांड अंतःकरणकी शुद्धि परहै और अनेक प्रकारकी उपासना सगुण वा निर्गुण मनकी निश्चलताके अर्थहै तथा ज्ञानकांड अज्ञान रूप आवरणका निवृत्तिपरहै। बंध मोक्षादि जगत् भ्रममात्रहै और ब्रह्मात्मा त्रिकालाबाध्यस्वरूप है, यही सर्व शास्त्रोंका तात्पर्य है

देहाभिमानही मूढताका सूचक है कि,अपने समुद्ररूप स्वरूपको भूलकर तरंग जानना,जैसे लिखारी कलमको कानमें रखके अन्य स्थानमें ढूंढे तो कैसे मिले, जब सुधि आवे तबही पावे। तैसे आपको बिसारकर औरसे मुक्त चाहता है, यह नहीं जानता कि;मैं आप मुक्तरूपहूँ। इससे जिनके ज्ञाननेत्र खुलेहैं और शरीरादिकोंके अहंकारसे अनहंकार हुयेहैं सो आपको शुद्ध जानते हैं। अपने संकल्पसे अनेक प्रकारकी देहोंविषे तू आता है; तेरी चाहेविना तुझको कोईभी देहविषे नहीं लाता,जैसे पक्षीको कोई भी दूसरा जालविषे बंधन नहीं करता, लोभमें आपही बन्ध होता है।

श्रेष्ठशास्त्र कौन है ?

हे पिता। शास्त्रों मध्ये कौन शास्त्र श्रेष्ठहै? (उत्तर)हे पुत्र ! जिस शास्त्र कर अपने ब्रह्मात्मा स्वरूपका सम्यक् धर्मपूर्वक,शमदमादि सहित, सम्यक् अपरोक्ष बोध होवे सोई शास्त्र श्रेष्ठ है,चाहे संस्कृत हो चाहे भाषा हो, चाहे फारसी हो चाहे बंगाली हो, चाहे अंगरेजी हो,चाहे अरबी हो,चाहे गीता हो, चाहे इतिहास कथा हो वही परमविद्या है। सर्वशास्त्रोंका परंपरा साक्षातसे अपने सत् चित् आनंद रूप आत्माके बोधमें तात्पर्य है अन्यमें नहीं और शास्त्रोंमें धर्म अर्थ काम मोक्षके प्रतिपादक वाक्य मिले हुये हैं, वेदांत शास्त्रविषें केवल मोक्ष उपाय कथन किया है।

राजा सत्यव्रतकी कथा।

इसीपर एक कथा सुन,हे पुत्र! पूर्व एक सत्यव्रत राजा हुआ है, तिसने विष्णुकी आज्ञासे अनेक अश्वमेधयज्ञ कियेथे। नित्यप्रति ब्राह्मणोंको भोजन देता था; सुवर्णके पात्र देता था,प्रातःकाल रोज अनेक गौ दूध देनेवाली शास्त्रविधिपूर्वक दान देता था; अनेक अश्व रत्नजडित और अनेक हस्ती इत्यादि अनंत

सामग्री अर्थियोंको देता था । कभी भी कठोर वचन मुखसे नहीं कहता था, सत्यवादी वेद-आज्ञाकारी सर्वगुणसम्पन्न राजा था।

ब्रह्माने पूर्वकालमें एक यज्ञ किया, तिस यज्ञमें ऋपीश्वर मुनीश्वर देवतादि और सर्व पृथिवीके राजा तथा महादेव आये थे। राजा सत्यव्रत भी तिस यज्ञमें था। उसीने महादेवसे प्रश्न किया हे त्रिलोकीनाथ! मेरे मनमें एक संशय है, आप अनुग्रह करके दूर करो। हे महादेव! तीस सहस्र वर्ष आयु मेरी बीती है और बीससहस्र वर्ष मेरे पिताको शांत हुये हुये हैं, मैं उनकी ठौर राज्यसिंहासनपर बैठकर राज्य करताहूँ। शास्त्र आज्ञानुसार राज्य किया है, तप दानादिक यथाशक्ति किया है पर अबतक मेरे मनको शांति नहीं हुई। जहां मन चाहता है तहां जाता है, चाहनासे अचाह नहीं होता। हे भक्तवत्सल! मैं जानना चाहता हूँ कि, मैं कौन हूँ? महादेवने सुनकर ब्रह्मा विष्णु इंद्रादि देवतोंकी ओर देखा। सब राजाके उत्तर देनेके विचारमें पडे; किसीने उत्तर नहीं दिया। यह लीला ब्रह्मा देखकर हँसा और कहा हे राजन्! तू धन्य है। तूने जो पूछा है सो देवताऋपीश्वरमुनीश्वरादि, सभी इस आत्मज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करतेहैं पर नहीं जानते। किसीएक अधिकारीको ही प्राप्त होता है, सर्वको नहीं। मैंने इस आत्मज्ञानको चारों भेदोंमें गुह्य छिपा हुआ देखा है और वेदांत शास्त्रमें वेदोंमेंसे लेकर इकट्टा कर जमा किया है उसको उपनिपद बोलते हैं।

ब्रह्मतत्वको विशेप प्रगट करनेसे क्या होता है?

ब्रह्मात्मज्ञानके प्रतिपादक शास्त्र अतिप्रगट करनेसे संसारका मूल उखड जाता है, बंध, मुक्त, तप, दान, पाप, पुण्य, नरक, स्वर्ग, गुरु, शिष्य, दास, स्वामी भावादिक मर्यादा उठ जाती है, क्योंकि ज्ञानके अधिकारी धर्मात्मा पुरुप विरलेही हैं। अनधिकारी आत्म-

ज्ञानके प्रतिपादक वाक्य सुनके विषयोंमें उलटा संसक्तिको प्राप्त होतेहैं और पूर्वोक्त संसारतारक मर्यादाको कपोलकल्पित जानकर उठा देते हैं। इससे गुप्त रखने योग्य है। परंतु यह त्रिनेत्री महादेव ज्ञानके समुद्र हैं, अतिकृपालु हैं; इसीसे तेरे प्रश्नका उत्तर देवेंगे। दया के समुद्र भोलानाथ महादेव कहने लगे हे ऋषीश्वरो! मुनीश्वरो! सत्यव्रतके प्रश्नका उत्तर कहता हूँ।

महादेवजी सत्यव्रतप्रति आत्मनिरूपण करते हैं।

(आत्मासंसारसे भिन्न है संसार मनोमात्र है)

ईश्वरने कहा हे राजन्! मन . वाणीका गोचर जो यह नाम रूपात्मक संसार है सो केवल मनोमात्रहै, क्योंकि जब मन सुषुप्ति मूर्च्छा के समय अपने उपादान कारणमें लीन होता है,तब संसारकी गंध भी नहीं प्रतीत होती। जो संसार मनोमात्र न होताता सुषुप्तिमें मनके लीन हुये संसार (पुरुषका) भासता, पर भासता नहीं। इससे जाना जाता है संसार मनोमात्र है, अन्य इसका स्वरूप नहीं। तूने जो आपको सत्यव्रत माना है,सोशरीरके अंगोंके भिन्न भिन्न नाम हैं,उसमें से कौनसी वस्तु का सत्यव्रत तूने माना है; जैसे विचार से यह शरीर असत् है, तैसे ही जगत् को जान।

आत्मा सबका ज्ञाता सब से भिन्न है।

तू सत् चित् आनंदरूप आत्मा, जाग्रत् में मनको फुरणारूप संसारके सद्भावको और सुषुप्तिमें मनके अफुर्णारूप संसारके असद्भावको अनुभव करनेवाला अनहुआ असंसारका द्रष्टा पुरुष है। जो तू संसाररूप होताता मनादिकसंसारके भावाभावको कैसे जानता?जो जिसको जानताहै सो तिससे भिन्न होताहै; जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्न प्रपंचके भावाभावको अनुभव करनेवाला स्वप्नप्रपंचसे भिन्न है। ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सर्वके हृदयमें ईश्वर साक्षीरूप कर सम

व्यापकहै और इस मन बुद्धि देहादिक संघातको तथा संघातके फु-
रने आदि धर्मोंको,संघातके धर्मोंके न्यूनाधिक भावाभावको,काल
व्यवधान रहित,एक रस जो जानता है, सोई तेरा स्वरूप है । जो
देश देशांतरकी अन्तरकल्पना मनमें होती है,पुनःलीन होजातीहै।
तिन दोनों प्रकारकी कल्पनाओंको जो जानताहै सो तूहै। अपने
क्रोधादिक कार्य सहित सत्त्व,रज,तम,गुणोंकी अंतरप्रवृत्ति निवृ-
त्तिका जिसकर अनुभव होता है सो निर्विकार साक्षी आत्मा तेरा
स्वरूप है।तूही आत्मा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदि प्रपंचका द्रष्टाहै,
आगे तुझ चैतन्य आत्माका द्रष्टा कोई नहीं । तूचैतन्य स्वयंप्रकाश
स्वरूप है । यह जो घट पट दृष्टि आते हैं सो स्वभाव पंचभूतरूप
दृश्य शरीरादिकोंके हैं,तुझ द्रष्टा चैतन्यके नहीं । जैसे अनेकरूपता
स्वप्नकी स्वप्नद्रष्टामें स्पर्श करती नहीं;जैसे अनेक रूपता इंद्रजाल-
की हैं; इन्द्रजालीको स्पर्श करती नहीं, तैसे कार्य कारण भावसे
रहित तूचैतन्य अद्वैत आत्मा है,बंध मोक्षादि कल्पनाकेवल मनका
मननहै तेरा नहीं, क्योंकि जब मन आपको बंध, अज्ञानी, सुखी,
दुःखी, जन्म मरणवान् मानता है, तब भी तू चैतन्य आत्मा इस
व्यवहारका साक्षी रहताहै । जब विचारद्वारा अज्ञानकी निवृत्तिसे
आपको मोक्षरूप,सत्‌चित् आनंदरूप,आत्मा मानता है, तब भी
तू साक्षी रहता है । तद्वत् और व्यवहार भी जान लेना ।

बन्धमोक्षादि मनकी कल्पना है ।

इससे बंध मोक्षादि मनकी कल्पनाहै,वास्तवसें नहीं।जो वास्तव
व्यावहारिक वस्तु होतीहैसो अविचारसे तो उत्पन्न नहीं होती औ
विचारनेसे निवृत्ति नहींहोती,जैसेघटपटादिक पदार्थहैं जिनका अ
विचार और विचारसे उत्पत्ति नाश नहीं होता।सारांश यहकि ज्ञान
अज्ञान से जो उत्पत्तिनाशवान् वस्तु होती है सो भ्रममात्र होती

निद्रा दोषकर स्वप्नद्रष्टाके अज्ञानसे तथा निद्राकी निवृत्तिरूप स्वप्नद्रष्टाके जाग्रत्‌रूप ज्ञानसे, स्वप्न प्रपंचका उत्पत्ति नाश होता है इससे मिथ्या है। स्वप्नद्रष्टाकी यह रीति नहीं। जिस अधिष्ठान वस्तुके अविचार और विचारसे बंधमोक्षादि प्रपंच भान होता है, तथा उसकी निवृत्ति होती है. सो वस्तु सत् है हे राजन्! बंध मोक्ष मनका फुर्णे अफुर्णेसे प्रथम तू चैतन्य स्वतःसिद्ध है। मध्यमें बंध मोक्षादि मनके फुरणेका साक्षीहै। बंध मोक्षके अभाव माननेका अवधिरूप अधिष्ठान है इसप्रकार सर्व पदार्थ परस्पर भावाभावरूप हैं तथा परस्परव्यभिचारी हैं. तू चैतन्य साक्षी आत्मा सर्वमें पूर्ण भी है, तथा तुझ चैतन्य करही सर्व देह मनादिक जड पदार्थोंकी चेष्टा होती है। देहादिक अपनी प्रतीति कालमेंही हैं, अन्यकालमें नहीं। तू चैतन्य सर्वकालमें एकरस निर्विकार मनवाणीसे अगोचरहै और सर्व मन वाणीका गोचर प्रपंच तुझ चैतन्यकी दृश्यहै, तू एकही द्रष्टा सूर्यवत् प्रकाशमानहै ।

न्यूनाधिक प्रतीति क्यों होती है ?

तुझ चैतन्य बिना और कुछ नहीं तू नामरूप स्थावर जंगमरूप जगत्‌से अतीतहै, कर्मजालसे रहितहै। न्यूनाधिक जो प्रतीत होताहै सो स्वभाव मायाका हैं, मूढोंकी दृष्टिमें है। आत्म विद्वान् पुरुषोंकी दृष्टिमें नहीं। जैसे सुवर्ण माटी जलादि स्वरूपके अज्ञात पुरुषोंको तरंग भूषण घटादिकोंमें अनेकता भान होती है, जल माटी सुवर्णके सम्यक् विद्वान् पुरुषोंको नहीं । हे राजन्! उत्पत्ति नाशादिक षट्‌विकार देहके हैं, तुझ चैतन्य आत्माके नहीं । तू हर्ष शोकादिक मनके धर्मोंसे रहित नित्य मुक्त है, आवागमनका तुझमें मार्ग नहीं।

जप तप और दानादिकोंका फल ।

हे राजन् ! जप, दान, तप, यज्ञादिकोंका फल यही है कि, अपने स्वरूपको जाने । कर्म, शरीर मनादि संघातकरता है, मान आप

लेता है, जिससे फल तिन कर्मोंका अनेक देहोंमें सुख दुःखभोगताहै। जितने मूर्ख कर्म अधिक करते हैं, उतनाही अहंकार तिनको अधिक होता है; इसीसे आत्मस्वरूपको पाते नहीं। सर्व पदोंके चाहसे अचाह होवे, चाहना अपने स्वरूपके पहचाननेकी करे। निजस्वरूपके अपरोक्ष हुये ब्रह्मकी जिज्ञासा भी न रहेगी; केतकरेणुवत्।

सर्व दुःखोंकामूल क्याहै ? उससे छूटना कैसे होताहै ?

हे राजन्! सर्व दुःखोंका मूल अहंकार पूर्वक देहादिकोंकी वासना हैऔरसुखोंका मूल आपकी पहचानहै अर्थात् आपको सर्वमनादिकोंका द्रष्टा जानना, मनादिकोंको दृश्य मिथ्या जानना। शरीरादि संघातकी जैसे अज्ञात कालमें चेष्टा होती है तैसे ज्ञातकालमेंहोती है केवल दृष्टि भेदहै। वा आपसहित सर्व अस्ति भातिप्रिय रूपआत्माही है, यह निश्चयही परम निर्विकल्प अवस्था है। एक आत्मा अद्वितीय बिना और कुछ नहीं, जब ऐसे जाना तब आप होताहै सर्व कर्मोंके फलका दाता होता है राजावत्। जो देखे सुने सूँघे स्पर्श रस लेवे, सो आपही करता भोक्ता होता है। कर्ता भोक्तापनेसे अतीतभी आपहीहोताहै, जानताहै, मुझ चैतन्यसाक्षीको नकिसीनेउपजायाहै और न मैं किसीसे उत्पन्नहुआहूँ न मैं इसशरीरविषे कर्मोंसे आयाहूँ; क्योंकि मैं व्यापक आत्मा शरीरकी उत्पत्तिसे प्रथम स्थित हूँ। जैसे घटकी उत्पत्तिसे प्रथमही आकाश स्थित है। इस विचारके निश्चयसे शरीररूप संसारमें रहताभी पद्म कमलवत् संसारकी मलिनता रूप बंधनसे मुक्त रहता है। यह आप ऊपर अपनी दया है।

कर्म और उसमें अहंकारका फल।

कर्म देहादिकोंसे स्वाभाविक पडे होते हैं, तिनमें अहंकार करना आपको नरकमें गेरना है। जो अहंकार नहीं करते तो उनका निर्वाह नहीं होता हो ? किंतु होता है।

नाम जपनेका फल।

जो नारायणादि नामों को जपतेहैं, वे अंतःकरणकी शुद्धिको पातेहैं, परन्तु आत्मसुखसे अप्राप्त होतेहैं। क्योंकि मुझ नारायण विषे और अपनेविषे भेद समझतेहैं,इसीसे दीन रहते हैं।जब अपने आत्माको मेरारूप और मुझ नारायणको अपना रूपजाने तो कर्म-जाल संसारसे मुक्त होवे; जैसे घटाकाशको महाकाशरूप और महा-काशको घटाकाशरूपता निःसंगता बनसक्ती है. जैसे मृगकी नाभिमें कस्तूरीहै,तिसको न जानके तिसकी प्राप्तिवास्ते वन वनमें ढूंढता फिरताहै। तैसे तू चैतन्य आत्मा नित्य मुक्तस्वरूपहै,भ्रम-कर आपको न जानके मुक्तिकी आशा औरोंसे करता है अनेक कर्म उपासनादिका भ्रमसे क्लेश सहताहै।

गुरुशास्त्रादिकी सत्ता।

ऐसा भ्रम करताहै कि, गुरु शास्त्र ईश्वर मेरीमुक्ति करेगा तो होगी यह नहीं जानता कि,मुझ नित्यमुक्त चैतन्य साक्षी आत्मा-की स्वप्नवत् गुरुशास्त्रईश्वरादि सर्व संसार कल्पनाहै; मैं नहीं कल्पूं तो कहांहै ?

सर्वभोक्ता और सर्वकर्ता।

आपको शरीर मानके आप बन्धनमें पडाहै और भोगोंकी चाहना करताहै। यह नहीं जानता कि, मैं चैतन्यही सर्व जडपदार्थोंमें स्थित हुआ २ सर्वका भोक्ताहूं. तथा सर्वका कर्ताहूं। वास्तवसे मैं चैतन्य मायाकर कर्त्ता भोक्ता हुआ २ भी वास्तवसे अकर्ता अभोक्ता हूं।

बंधनसे मुक्तहोनेका मुख्य कर्तव्य।

इससे हेराजन्। देहाभिमानके त्यागका त्याग कर देख जो शेषहै सो तेरा स्वरूप है। जो जो मनवाणी का कथन चिंतन है

तिस तिस कथन चिन्तनका तू साक्षी हुआ २. तिस तिस कथन चिन्तन से अतीत है। आपको जीवमानकर मनकी तथा शरीरकी चाहनाविषे बँधाहुआ और मूल अपना बिसाराहै। सुखरूप तू आप है और अन्यसे सुख चाहताहै कैसे प्राप्त हो? जब तू अपने सम्यक् स्वरूपको जाने तब सब भ्रममात्र बन्धनोंसे मुक्तहोवे। अथवा आपको बीचसे उठादेवे कि, मैं नहीं सर्व भगवत्हीहै, कर्ता भोक्ता, सुख दुःख, बन्ध मोक्षादि सर्व ईश्वरहीहै। इस निश्चयसेभीसर्व बंधनोंसे मुक्त होवेगा। करनेकी अकरनेकी इच्छासे छूटकर, सदा भगवत्की इच्छामें रहे। आपको शुभाशुभमें तप्त न करे, जो शुभाशुभ कर्म करे सर्व भगवत्को अर्पण करे और आपको बीचमें भूलकरभी न लावे, ऐसा दृढ निश्चयकरे कि, जो इच्छा भगवत्की होगी सोईहोगा अन्यथा नहीं तो इससे मुक्त होगा। हेराजन्! ज्ञान, वा भक्ति, वा कर्म, किसी एक निश्चय पर दृढता राख। ऐसा न करे कि, कभी आपको, जीव बन्ध मोक्षवान्, मानके यह चिंता करे कि; हम भजन ईश्वरका करेंगे तो बंधनसे छूटेंगे। कभी आपको सर्व कर्मोंसे तथा बंध मोक्षादि सांसारिक धर्मोंसे मुक्त मानना यह कैसे है? जैसे कोई नदी पार हुआ चाहै और दो नौकापर पग राखे तो वह डूबेगाही। इससे एकही निश्चय करना चाहिये।

स्वर्ग नरक पापपुण्यादिकी प्राप्ति क्यों होतीहै?

सत्यव्रतने कहा हे गुरो जो सर्वात्माहीहै तो पाप पुण्य स्वर्ग नरकादिकोंको क्यों प्राप्त होताहै? महादेवने कहा हे राजन्। निस्संशय तू सर्वात्माहीहै, आवागमन, मलिनता, शुद्धता, बंध मोक्षादि संसारधर्मोंसे मुक्त स्वतःसिद्ध है, कोई यत्नसे नहीं। तुझ चैतन्य साक्षीआत्माका न नाशहै, न जन्महै, न आनाहै न जानाहै क्योंकि तू देशकालवस्तु के परिच्छेद से रहित, पूर्ण सदानिर्भय स्थितहै

आपको भुलाकर जीव माना है,इसीसे पुण्य पापादिकोंके भ्रमसे बंधनमें पडा है, वास्तवसे नहीं। भ्रमहीसे अनेक शरीरोंमें अभिमानपूर्वक सुख दुःख पाता है। कल्पित बंध मोक्षको सत्यमानकर मूल अपना बिसाराहै। हे राजन् ! जैसे सुवर्ण भूषणोंमें व्यापक है, पर विचार करेसे भूषण कहना मात्रहै यथार्थ सुवर्णही है,तैसे अस्ति भाति प्रियरूप तूही आत्मा अद्वैत है,नामरूप सर्व जगत् कहना मात्र है। वा आपको ऐसें जान जैसे इक्षुविषे मधुर रस, दूधविषे घृत, पृथिवी और जलविषे तथा तिनके कार्योंविषे अग्नि व्यापक है;जैसे-पृथिवी,आप,तेज, वायु महाभूतोंविषे तथा तिनके कार्योंविषे आकाश व्यापकहै,तैसे तू आकाशके समानसर्वका द्रष्टा सर्वमें सत् चित् आनंदरूपसे व्यापक है. क्योंकि जहां तू चैतन्य नहीं,तहां किसी पदार्थकी स्फूर्ति नहीं। जो तू है तोही सर्व भान होतेहैं। आपको शरीरादिक मानना भ्रमसे है। शरीररूप जगत् कैसा है ? नेत्रके खोलने मीचनेसे उत्पत्ति नाश होता है। सारांश यह कि,मनके फुरणे अफुरणेसे उत्पत्ति नाश होताहै । बुद्धिमान् वही है जो शरीर सहित जगत्को मिथ्यास्वप्न इन्द्रजालवत् जाने और आपको सत्यरूप आत्मा जाने।

सबका जीवन (सार)क्या है ?

हे राजन् ! यह बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा सर्व जगत्का जीवनरूपहै क्योंकि असत् जड दुःखरूप इस शरीरसहित संसारको अपने स्वरूपसे सत् चित् आनंदरूप करताहै; जैसे तरंगादिकोंको जड मधुरता,शीतलता,द्रवतारूप करता है। जैसे चणकादिक पदार्थोंको गुड मधुर करता है। तैसेही आत्माकीबल नियंत्रता निमलता सर्व वस्तुपर है, सर्व ब्रह्मात्माही तो अपने सत् चित्

१-जोजानहु जगजीवना, तो जानहु यह जीव। पानी चाहहु आपना, तो पानी मांग,न पीव।

आनंद साक्षीआत्मासे परमेश्वर को भिन्न माननाऔरआपकोदास मानना अखंडकोखंडन करना है। दूसरा सत् चित् आनंद रूप आत्मासे भिन्न परमात्माको माने तो परमात्मा असत् जडदुःख-रूप अनात्मा सिद्ध होगा और परमेश्वर इसपर अत्यंत कोप करेगा क्योंकि अखण्ड ईश्वरको इसने असत् जड दुःखरूप अ-नात्मा जानाहै। इससे इस ज्ञानसे इसका अनिष्ट होगा, क्योंकि कोई मनकर किसीका बुरा चिंतन. वा कथन करताहै तो वह जानकर तिसपर महान् रंज होताहै। तैसेही अंतर्यामी परमात्माको पूर्वोक्त प्रकारसे, असत् जड दुःखरूप अनात्मा चिंतन कथनसे क्यों न कोप करेगा? अपनी हानि समझके। हे राजन्। कौन बुद्धिमानहै? जो घटाकाशको महाकाशसे भिन्नमानेतथा तरंगोंकोभूपणोंकोतथाघटादिकोंको,जल,सुवर्ण,मृत्तिकासेभिन्नमाने। हे राजन्। तू मनादिकोंका साक्षी आत्माहै, तुझको कभी जन्म मृत्यु नहीं सदा जसेका तैसा समान है यह मन वाणीका गोचर दृष्टिमान् संसारभी तूहीहै क्योंकि तुझहीसे प्रगट होताहै, तुझही में लीन होताहै और तुझहीमें स्थित है। इसप्रकार तेरा रूपही जल तरंगवत् है। अस्तिभाति प्रियरूप तुझे आत्माविना और कुछ नहीं। सम्यक् विचार देख अपनी बुद्धिसे और इन विद्वानोंसे पूछ देख मैं सत् कहताहूँ कि, असत्। हे राजन्! वेदांत सिद्धांत तो यहीहै और सर्व विद्वानोंका अपने स्वरूपके विपयही अनुभवहै आगे जो तेरीइच्छा होसो कर। जैसे पंचभूतोंका कार्यघटपटादि सर्व पंचभूतरूपहैं. तैसे यह नामरूप प्रपंच अस्ति भाति प्रियरूप तूही आत्माहै जब तूने सम्यक् आपको जाना, सर्व जगत्को, प्रकाश अपना जानेगा जैसे घटने जब अपना स्वरूप पंचभूतरूप जाना, तो सर्व जगत्के पदार्थोंको अपना स्वरूपही जानताहै कि, मैंही सर्वरूप हूँ, ऐसेही तू जानेगा। हे राजन्।

जिसने चाहना बंधमुक्तिकी मनसे दूर की है,जगत्से निराश हुआ है,आपको सम्यक् अपरोक्ष जाना है सो ब्रह्मादि शरीर त्रितय संयुक्त संसार रूप पुतरी घडी घडीमें अनेक खेल खेलै है,तिसका आपको द्रष्टा मानताहै । करने अकरने,सुख दुःख, बंध मोक्षादि संसार सर्व धर्मोंमें लिप्त नहीं होता,जैसे सूर्य सर्व जगत्का व्यवहार सिद्धकरता हुआभी अलिप्त रहता है । हे राजन् । जो तूने मन वाणी कर माना है सो तेरा स्वरूप नहीं, तू इस माननेसे भिन्न है । शरीर प्रारब्धको सौंप,सूर्यरूप आपकी जगत् किरणजान, ब्रह्मात्मअपने स्वरूप समुद्रके जगत् तरंग जान । यह जो तूने भ्रम बुद्धिमें की कि, मुक्ति मेरी और कोई करेगा, तिस भ्रमको त्यागकर । नित्य मुक्त, नित्य शुद्ध, अक्रिय,अविनाशी सर्वमें आकाशवत् व्यापक आपको जान । अपने अहंकारसे तू आप बंध है और अपने ज्ञान पहँचाननेसे आप मुक्त है । इतनाही बंध मुक्तका स्वरूप है । अपने स्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष जाननाही, बंधकी निवृत्ति, मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है,अन्य नहीं । जो सचे बंध मोक्ष होते तो स्वरूपके पहँचाननेसे दूर न होते,सम्यक् स्वरूप विज्ञानी पुरुष आपको बंधमोक्षसे रहित मानते हैं।इसीसे मिथ्या है इस आत्मासे भिन्न जो इसकी मुक्तिकरेगा सो आपहीअनात्मा हुआबंधहै,मुक्तकैसेकरेगा?

व्यवहार विचार ।

हे राजन् । देहाभिमान साथही, कर्म धर्म भक्ति उपासना संसार है जब देहाभिमान त्यागा मुक्त हुआ । अहंकारका नाम बंध है,अहंकार मुक्तसे मुक्तहै । ईश्वरकी प्राप्ति और मुक्तिका भावना, अपना पछानना है । परमेश्वर और अपने बीच भेद देखेगा तो दुःखसे न छूटेगा । सर्वको आपसहित सर्व ब्रह्मरूप आत्मा जान; बढ घट नीच ऊँच स्वरूपसे नहीं ।

देख। व्यवहारमें जिस वर्णाश्रममें स्थित है,तिसीके अनुसार पंगती बेटी लेनदेनादि व्यवहार करे, कोई व्यवहारको एकमेक करनेसे एकता नहीं होती। किंतु ज्ञानदृष्टिसे सर्वप्रकार एकता है; जैसे सर्व पदार्थोंमें गुण दोष जुदे जुदे हैं जिस स्थानमें घट चाहिये तिस स्थानमें पट नहीं चाहिये,जिस स्थानमें पट चाहिये तिस स्थानमें घट नहीं चाहिये,इत्यादि सर्व पदार्थोंमें जान लेना परंतु पंचभूतरूपता करके सर्व पदार्थ सम हैं;जैसे अनेक औषधियोंके अनेक गुण जुदे जुदे हैं और अनेकही पुरुषोंको रोग होतेहैं, यह नहीं कि एक रोगपर सर्व औषधी चलें, परंतु जल सर्वमें एक है।हे राजन्! अंतर काम.क्रोधादिकोंका, तथा बाहिर शब्द, स्पर्श रूप,रस गंधादिकोंका, साथी ज्ञान स्वरूप तूही आत्मा है। इस सर्व पदार्थोंके न्यूनाधिकव्यवहारके परिमाण करनेवाले ज्ञानसे पृथक् कोई इस शरीरमें ईश्वर प्रतीत होता नहीं। ईश्वरको पूर्णहोनेसे, इस शरीरमें भी ईश्वरका स्वरूप मानना पडेगाही और कोई ज्ञानसे भिन्न ईश्वरका स्वरूप सिद्ध होता नहीं। जो भिन्न होगा तो जड अज्ञानरूप सिद्ध होगा। इससे अज्ञानसे लेकर देह तक,अंतर बाहर सर्व पदार्थोंका परिमाण करनेवाला, अंतर्ज्ञान स्वरूप कोई वस्तु है, तिसको ईश्वर कहो, चाहे आत्मा कहो, चाहे खुदा कहो, चाहे कोई और नाम राखो, चाहे द्रष्टा कहो। हे राजन्! जो तू और कुछ नहीं जानता तो यह निश्चय कर कि, अंतर अज्ञान, देहतक मनादिकोंके व्यवहारकी न्यूनाधिक भावाभावको, परिमाण करता है,सो वस्तु संसार तथा संसारके धर्मोंसे रहित है सोई सम्यक् स्वरूप मेरा है। इसमें संशय नहीं. चाहे संसार वस्तु सत् हो,चाहे असत् हो;चाहे जीव शिवका भेद हो, चाहे अभेद हो। हे राजन्! मुक्ति जो तू चाहता है, यही तुझमें बंधनका कारण है,क्योंकि तू आप मुक्तरूपहै और

मुक्तकी इच्छा करताहै । हे राजन्! मनका संकल्प विकल्प स्वभावहै, कभी आपमें बंधका संकल्पकरलेताहै, कभी मुक्तिका संकल्प करलेताहै तू दोनों संकल्पोंका द्रष्टा है इससे बंध मोक्ष कुछ वस्तुनहीं, केवल मनका फुरणाहै । मनका तो बंध मोक्ष भ्रम मात्र माननेका अभ्यास चला आताहै इससे तू सर्वबंध मोक्षादि चाहनासे अचाह हो मनके पीछे मत पड । देह वासना सहित बंध मोक्षादि वासना त्याग । इनसे विपरीत वासनाका प्रथम अभ्यास ग्रहण कर, पीछे तिनकेभी त्यागका त्यागकर क्योंकि जैसे मनका अभ्यास दृढ होताहै;तैसेही आगे भासता है ।

मुमुक्षुओंको क्या अभ्यास करना चाहिये।

(अहंग्रह उपासना (अभेद भक्ति) का वर्णन)

इससे पूर्वके विपरीत यह अभ्यास कर कि, मैं नित्यमुक्त सत् चित् आनंद आत्माहूँ,सर्व मनादिकोंका साक्षीहूँ,बंध मोक्षादिसर्व संसारके धर्मोंसे अतीतहूँ,स्वभावसे ही निर्विकारनिर्विकल्प हूँ, आकाशके समान असंगपूर्णहूँ ।भ्रममात्र बंध मोक्षकीनिवृत्तिप्राप्ति वास्ते मुझ चैतन्यको किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं । इस मन वाणीके गोचर संसारसे अगोचरहूँ इत्यादि अनेक विशेषणअपने आत्मस्वरूपका चिंतनकर। यही देहादि वासनासे विपरीत वासना है। इस पूर्वोक्त दृढ निरंतर अभ्याससे वही रूप होवेगा,क्योंकि विपरीत स्वरूपभी(भृंगीकी न्याई)अभ्यासके बलसे उलटकर तद्रूपहोताहै,तू तो ही वहीरूपहै।तेरे तद्रूप होनेमें क्या आश्चर्य है ?इसीके नाम अहंग्रह उपासना भीहै,इसीको अभेद भक्ति भी कहतेहैं । हे राजन् ! चाहना बंध मुक्तकीकभी भी न करियो; क्योंकि बंध मुक्त तेरे अज्ञानसे हुयेहैं अपनेमें कल्पित बंध मोक्षादि पदार्थोंके पीछे मत फिरियो, यह भ्रमियोंका व्यवहारहै । तुझ चैतन्यसे ऊंच

कोई पद है नहीं,जिसके वास्ते यत्नकरे और तेरी मुक्ति करे ऐसा कोई नहीं । तूआपको आप बंध जानताहै,नहीं तो वेदांतशास्त्रके अनुसार विचार देख। तू चैतन्य निर्बंध नित्यमुक्तरूपहै; सर्व जगत्का प्रभु प्रकाशकहै । ऐसा होकर भी आशा अपने ऊपर भलाईकी औरोंसे राखे सो अविद्याहै । नहीं तो असत् जडदुःखरूप अनात्म पदार्थ तुझ करही सत् चित् आनंदरूप आत्मा प्रतीत होतेहैं । इससे तेरीही सर्वपर भलाईहै,तुझपर कोई भलाई नहीं करसक्ता ।

राजा महादेवके ज्ञानरूप अमृत वचनको धारके अज्ञान तत्कार्य मृत्युसे रहित हुआ । सर्व लोग महादेवके यथार्थ वचन सुनकर स्वरूपमें लीनहुये और सभाके लोग आप अपने वांछित स्थानको गये ।

व्यासकरणने कहा हेआत्मदर्शी।जिस निश्चयका उपदेश महादेवने राजा सत्यव्रतको कियाहै और राजा जिससे अपने स्वरूपविषे लीन हुआहै, तूं भी तिसी निश्चयको धारण कर । हेआत्मदर्शी। जो पुरुष बुद्धिके श्रवणसों पूर्वोक्त वचन सुनेगा,निश्चय स्वरूपको पानेवत् पावेगा और बंध मोक्षादि संसारभयसे रहित होवेगा ।

पूजनीय देव कौनहै ?.

मैत्रेयने कहा हे पराशर । देव (पूजने योग्य) कौनहै ? पूजन तिसका कैसे होताहै, पराशरने कहा हे मैत्रेय ! हस्तपादादिसंयुक्त ब्रह्मा,विष्णु, शिवादिक भी देव नहीं । सूर्य,चन्द्रमा, वायु, अग्नि, पृथिवी, इंद्र, यम, कुबेरादिक भी देव नहीं। न तू, न मैं देवहूँ। न ब्राह्मणादि,न वर्ण,न आश्रम,न मन इंद्रिय देहादिक देवहैं; किन्तु सर्वके हृदयविषे वर्तमान कालका ज्ञाता, अकृत, अनादि; सत, चित्, सुखरूप, अस्तित्वमात्र देवहै । हे मैत्रेय । अहं यह दोअक्षर जबलग कथन चिन्तन नहीं करे, तबलग भविष्यत् अहंपना है।अकार कथन चिन्तनके आरंभ करतेही,अकार भूतमें गया और

हकार भविष्यत्में है,मध्यके कालमें अहं कथन चिन्तन नहीं है, सो काल निर्विकल्प है। इसीप्रकार सर्व पदार्थ भविष्यत्के भूत कालहोते चलेजातेहैं, यहीइनमेंमिथ्यात्वहैपरन्तुपूर्वोक्तरीतिसेवर्त-मानका निर्विकल्पहै,तिस निर्विकल्पवर्तमानकालकाज्ञाता। अति निर्विकल्प निर्विकारहै सोई देवहै,सोई अपना स्वरूप है। हे मैत्रेय! भूत् भविष्यत कालतथा भूत भविष्यत् कालमें होनेवाले पदार्थ, सर्व वर्तमान कालके ज्ञाता देवसेही सिद्धहोतेहैं। परन्तु अपनेस्व-रूपके सुखेन बोधवास्ते तथा अपने स्वरूपके निर्विकल्पताकेबोध वास्ते, वर्तमान कालका ज्ञाता कहाहै। द्रष्टा दृश्यके मिलापविषे जो आनंदरूप अनुभवहै सो देवहै। तथा अंतर द्रष्टा, दर्शनदृश्यके मिलाप वियोगको तथा द्रष्टा दर्शन दृश्यको तथा द्रष्टादर्शनदृश्यके न्यूनाधिक भावाभावको जो पहँचान करता है और आप पहँचान करना रूप अभिमानसे रहितहै,आपही पहँचान नाम ज्ञानस्वरूप है।मनादिकोंसे जोपहँचान किया जाता नहीं, उलटा मनादिकोंके न्यूनादिक भावाभावका पहँचानकरता है सोई स्वयंप्रकाशसबका अपना आप स्वरूप देवहै।इष्ट अनिष्टके संयोगवियोगसे जो आ-नंद उदय होताहै, जिसकर विषय आनंदका अनुभव होताहै और आप आनंदरूप,है, सोई देवहै।जो द्रष्टा,दर्शन, दृश्य,इस त्रिपु-टीके उदय होनेसे प्रथम त्रिपुटीका प्रकाश है,तथा त्रिपुटीकी जो समाप्तिको प्रकाशता है,आप सर्वको प्रकाशता हुआ भीनिर्विकल्प है,स्वप्नद्रष्टावत् सोई देव है। अतर सत् असत् नाम भावाभाव पदार्थ जिसकर सिद्ध होते हैं,तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा तिनमें वर्तनेवाले मनादि जगत् जिसकर सिद्ध होते हैं,जो आप किसी मनादिकोंसेसिद्ध नहीं होता, सोई सबका अपनाआप स्वरूप देव है।यह साकारवस्तुहै,यह निराकार वस्तुहै,यह वस्तु जाननेमेंआती

है,यह नहीं,यहत्यागकरने योग्यहै,यह नहीं इत्यादि अंतर जिस-
कर मनके मननका व्यौरा पडता है, सोई देवहै । हे मैत्रेय ! जो
मनादिकोंका साक्षी है, सो देव है । हृदयदेशसे प्राणवायु उठकर
नासिकासेद्वादश अंगुल बाहर जाताहै,तिसको प्राण कहते हैं, तथा
सूर्य अग्निकहतेहैं।तैसेही सो वायु वहांसे लौटकर हृदयदेशको प्राप्त
होता है तिसको अपान चन्द्रमाबोलते हैं। जब प्राणने अपने प्राण-
स्वभावको त्यागा,पुनःअपान हुआ नहीं, तिसदेशकालको परि-
माण करनेवाला है, सोई देव है। तथा प्राणोंकी समाप्तिको तथा
अपानके अनुदयकोसंधिमेंनिर्विकल्पस्थितहुआहुआतिनसंधियों
विषे स्थितपदार्थोंको जानताहै सोई देव है । तथा प्राण अपानको
तिनके न्यूनाधिक भावको जो जानताहै सोई देवहै।तैसे बाहरसे
उठकर अपानवायुने अपनेअपानभावको त्यागाऔर जबलगप्राण
उदय हुयेनहीं,तिसदेशकालको तथा तिन देशकालमेंहोनेवालेप्राण
अपानादिपदार्थोंको संधिमेंस्थितनिर्विकारनिर्विकल्परूपजोवस्तु
प्रकाश करताहै सोई देवहै।तैसेही जब हृदयसे प्राण उदय होतेहैं,
तिनदेशकालसहितप्राणोंकेउदयको,तिनकेगमनके आरंभकोतथा
तिनके गमनको जो अनुभव करता है सोई देव है। तथा प्राणों
सहित प्राणोंकामध्य,कंठादिदेशकालकोतथा प्राणोंसहितप्राणोंके
नासाग्रांतदेशकालको जो जानता नाम परिमाण करताहै सोईदेव
है।तैसे अपानके उदयको तथा अपान गमनारंभको जोजानताहै,
सोई देवहै।तथा अपान गमनके मध्यदेशकालको तथाअपानोंकी
हृदयमें अंत समाप्तिदेशकालको, असंग होकरजो प्रकाशकरताहै
सोई देवहै । जाग्रत्के उदयको तथा स्वप्नके अनुदयकोजोजानता
है सोई देवहै। तथा स्वप्न जाग्रत्के अनुदयको सुषुप्तिकेउदयकोजो
जानताहै सोईदेवहै। तथा सुषुप्तिके अनुदयकोतथा जाग्रत्स्वप्नके

उदयको जो जानता है सोई देव है । तथा शुभसंकल्पके उदयको तथा अशुभसंकल्पके अनुदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभसंकल्पके अनुदयको तथा अशुभसंकल्पके उदयको जोजानता है सोई देव है । तथा शुभ अशुभ संकल्प के उदय अनुदय देश कालको जो संधिमें स्थित हुआ जानता है सोई देव है।सो यही देव ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सर्वका अपना आप स्वरूप है, इसीसे जाननेसे बन्ध मोक्षके भ्रमसे छूटता है ।

किस प्रकारकी पूजासे देव मिलता है ?

इस पूर्वोक्त देवको सम्यक् अपरोक्ष जाननाही देवकी पूजाहै।इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी देवको जो सम्यक् अपना आप नहीं जानता सो साकारोंकी पूजा करे, सो बालकक्रीड़ावत् है। पूज्य पूजक पूजा इस त्रिपुटीका इसी देवसे प्रकाश होता है, त्रिपुटी इस देवसे कुछभी भिन्न नहीं, स्वप्नद्रष्टावत् ।

हे मैत्रेय ! यहदेव किसी साधन द्वारा नहीं मिलता क्योंकि अपना आप स्वरूपहै।अपने स्वरूपको अवाङ्मनसगोचर जानना ही इस देवका पूजन है । हे मैत्रेय! मनके संकल्प करके रचित जो देव है-सो देव नहीं । सर्व संकल्पसे रहित और सर्व संकल्पोंके साक्षी देवको सम्यक् निज स्वरूप जाननाही देवके आगे पूजा है। देशकाल वस्तु भेद रहित पूर्ण जाननाही पुष्प है ।शब्दादि ग्राह्य जड विषय और श्रोत्रादिक ग्राहिक जड इंद्रियोंके, संयोग वियोगविषे जो अनुभवसत् रूप है,तिसको अपना आपस्वरूप जानना ही इस देवकी पूजा है।ऐसा पदार्थ कोई नहींजो इस मनादिकोंके प्रकाशक देवमें असत् न होवे और ऐसाभी पदार्थ कोईनहीं जो इस आत्मदेव कर सत् न होवे। तात्पर्य यह कि,इस अस्ति भाति प्रिय रूपदेवसे भिन्न सब नामरूप असत् है और मिले हुये सत है।उसीसे यह सर्वहै,वही सर्वरूपहै,सर्वसे अतीत भी है,सर्वके मध्यमें नित्य

है,यह नहीं,यहत्यागकरने योग्यहै,यह नहीं इत्यादि अंतर जिस-कर मनके मननका ब्यौरा पडता है, सोई देवहै । हे मैत्रेय ! जो मनादिकोंका साक्षी है, सो देव है । हृदयदेशसे प्राणवायु उठकर नासिकासेद्वादश अंगुल बाहर जाताहै,तिसको प्राण कहते हैं, तथा सूर्य अग्निकहतेहैं।तैसेही सो वायु वहांसे लौटकर हृदयदेशको प्राप्त होता है तिसको अपान चन्द्रमाबोलते हैं। जब प्राणने अपने प्राण-त्वभावको त्यागा,पुनःअपान हुआ नहीं, तिसदेशकालको परि-माण करनेवाला है, सोई देव है। तथा प्राणोंकी समाप्तिको तथा अपानके अनुदयकोसंधिमेंनिर्विकल्पस्थितहुआहुआतिनसंधियों विषे स्थितपदार्थोंको जानताहै सोई देव है । तथा प्राण अपानको तिनके न्यूनाधिक भावको जो जानताहै सोई देवहै।तैसे बाहरसे उठकर अपानवायुने अपनेअपानभावको त्यागाऔर जबलगप्राण उदय हुयेनहीं,तिसदेशकालको तथा तिन देशकालमेंहोनेवालेप्राण अपानादिपदार्थोंको संधिमेंस्थितनिर्विकारनिर्विकलपरूपजोवस्तु प्रकाशे करताहै सोई देवहै।तैसेही जब हृदयसे प्राण उदय होतेहैं, तिनदेशकालसहितप्राणोंकेउदयको,तिनकेगमनके आरंभकोतथा तिनके गमनको जो अनुभव करता है सोई देव है। तथा प्राणों सहित प्राणोंकामध्य,कंठादिदेशकालकोतथा प्राणोंसहितप्राणोंके नासाग्रांतदेशकालको जो जानता नाम परिमाण करताहै सोईदेव है।तैसे अपानके उदयको तथा अपान गमनारंभको जोजानताहै, सोई देवहै।तथा अपान गमनके मध्यदेशकालको तथाअपानोंकी हृदयमें अंत समाप्तिदेशकालको, असंग होकरजो प्रकाशकरताहै सोई देवहै । जाग्रत्के उदयको तथा स्वप्नके अनुदयकोजोजानता है सोई देवहै। तथा स्वप्न जाग्रत्के अनुदयको सुषुप्तिकेउदयकोजो जानताहै सोईदेवहै। तथा सुषुप्तिके अनुदयकोतथा जाग्रत्स्वप्नके

उदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभसंकल्पके उदयको तथा अशुभसंकल्पके अनुदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभसंकल्पके अनुदयको तथा अशुभसंकल्पके उदयको जोजानता है सोई देव है। तथा शुभ अशुभ संकल्प के उदय अनुदय देश कालको जो संधिमें स्थित हुआ जानता है सोई देव है।सो यही देव ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सर्वका अपना आप स्वरूप है, इसीसे जाननेसे वन्ध मोक्षके भ्रमसे छूटता है।

किस प्रकारकी पूजासे देव मिलता है ?

इस पूर्वोक्त देवको सम्यक् अपरोक्ष जाननाही देवकी पूजाहै।इस बुद्धि आदिकोंके साक्षी देवको जो सम्यक् अपना आप नहीं जानता सो साकारोंकी पूजा करे, सो बालकक्रीड़ावत् है। पूज्य पूजक पूजा इस त्रिपुटीका इसी देवसे प्रकाश होता है, त्रिपुटी इस देवसे कुछभी भिन्न नहीं, स्वप्नद्रष्टावत्।

हे मैत्रेय! यहदेव किसी साधन द्वारा नहीं मिलता क्योंकि अपना आप स्वरूप है।अपने स्वरूपको अवाङ्मनसगोचर जानना ही इस देवका पूजन है। हे मैत्रेय! मनके संकल्प करके रचित जो देव है सो देव नहीं। सर्व संकल्पसे रहित और सर्व संकल्पोंके साक्षी देवको सम्यक् निज स्वरूप जाननाही देवके आगे पूजा है। देशकाल वस्तु भेद रहित पूर्ण जाननाही पुष्प है।शब्दादि ग्राह्य जड विषय और श्रोत्रादिक ग्राहिक जड इंद्रियोंके, संयोग वियोगविषे जो अनुभवसत् रूप है,तिसको अपना आपस्वरूप जानना ही इस देवकी पूजा है।ऐसा पदार्थ कोई नहींजो इस मनादिकोंके प्रकाशक देवमें असत् न होवे और ऐसाभी पदार्थ कोईनहीं जो इस आत्मदेव कर सत् न होवे। तात्पर्य यह कि,इस अस्ति भाति प्रिय रूपदेवसे भिन्न सब नामरूप असत् हैं और मिले हुये सत हैं।इसीसे यह सर्वहै,वही सर्वरूपहै,सर्वसे अतीत भी है,सर्वके मध्यमें नित्य

स्थित हुआहुआ सर्वकी चेष्टाका कारणहै, इसका कारण कोई भी नहीं (स्वप्नद्रष्टावत्) । संसार रूप नटनीकों माया विशिष्ट स्फुरणरूप चैतन्य प्रेरता है, तेरा स्वरूप देव निर्विकार निर्विकल्प साक्षीवत् स्थित है ।

देव प्रजाविधि ।

हे मैत्रेय ! तिस देवका तीन कांडोंकी रीतिसे पूजनहै।इससुखरूप मनादिकोंके साक्षीदेवके सम्यक् दर्शन वास्ते और अन्तःकरणरूप आदर्शकी मलिनताके दूर करने वास्ते,देव अर्पण,निष्काम कर्मकी श्रद्धा, शमदमादि साधन पूर्वक अनुष्ठानरूप पूजा है। दूसरा पूजन यह कि, अन्तःकरणकी चंचलताके दूर करनेवास्ते चित्तादिकोंके पहँचान करनेवाले देवका ध्यान करना रूप उपासनाही पूजा है।वा अपने सहित सर्व जगत् को सत् चित् सुख हरिरूप जानना नाम भावना करना यह दूसरी अहंग्रह उपासना ध्यानरूप पूजा है। वा सम्यक् अवाङ्मनसगोचर करके निजांतर ज्ञान रूप देवका सत् भापणादि संसाधनपूर्वक, ध्यानरूप देवकी पूजा है पूर्वोक्त ध्यानका विपय देव; सम्यक् मैं चैतन्य हूँ, सोई भया ज्ञान, तिससम्यक्ज्ञान करके देवकी पूजा होती है, सारांश यह कि यही पुष्पहैं। हे मैत्रेय।अवाङ्मनसगोचर करके वा अस्ति भाति प्रिय रूप करके निज स्वरूप बुद्धिमें जचे जानाही ज्ञानहै। जब तक दृढ निश्चय नहीं हुआ तबतक गुरुवाक्यसे वारंवार अहंकार करके निरंतर भावना करनाही अहंग्रह उपासना है।सर्वका कर्ता भी अकर्ता है, सर्व विपे सर्व प्रकार,सर्वदा काल,सर्वसे असंग,सर्वकप्रिकाशक,सर्वरूपस्वप्नद्रष्टावत्अद्भुतरूप,चैतन्यदेवकोअपनाआप साक्षीभूतसम्यक् जानना।मनवाणीशरीरकेन्यूनाधिक व्यवहारमें अन्यथा भाव कदापि न होना।तात्पर्य यह कि, संघातमें अध्यास न होनाहीदेवकी पूजाहै।अंतर ज्ञानस्वरूपदेवका

बाहिर धूपदीपादिकों करके क्लेश रूप पूजन नहीं होता किन्तु क्लेश विनाही संघातके कर्त्तव्यमें अपनेको अकर्ता साक्षी मानना ही ईश्वर देवकी परमपूजा है। हे मैत्रेय ! अपना अहं परिच्छिन्न भाव त्याग करनेसेही, पूणभावको प्राप्त होता है, पूर्ण होनेवास्ते यत्न नहीं क्योंकि, आगेही यह आत्मा पूर्ण है, भ्रांति कर अपूर्ण था; जैसे घटाकाशने जबीपरिच्छिन्नअहंकारत्यागा तबीपूर्ण महाकाशहुआ।

हेमैत्रेय! शास्त्ररीति अनुसार जो कुछ आनप्राप्त होवे, सो हेयोपादेय बुद्धिरहित होकर निजदेवको भोग लगाना, आप तिस भोगका भी साक्षीभूत रहना यही पूजन है। यथाप्राप्त समभावरूप जलविषे स्नान कर सर्व नामरूपात्मक दृश्य का सम्यक् द्रष्टारहना दृश्यरूप कदाचित् भी न होना,यही देवका पूजन है। इन अविद्याके स्वप्न पदार्थोंमें हेय उपादेय बुद्धि न करनीही देवका पूजन है। मृत्यु आवे तो देवपूजन है। जीवन हो तो देवपूजन है। दरिद्र हो वा राज्य हो पर कायिक वाचिक मानसिक नाना प्रकारको अहं अभिमान रहित चेष्टा करनाही देवपूजा है नष्ट हुआ सो हुआ, प्राप्त हुआ सो हुआ, अहं त्वं रहित सर्व जगत्को आत्मवत् आत्मा जानना सोई देवपूजा है। अंतर असंग निर्विकार निर्विकल्पबंध मोक्ष रूप सुख दुःखसे रहित स्वभावसेही मैं निष्कर्तव्य हूँ, मुझको बंध मोक्षकी प्राप्ति हानि वास्ते किंचित मात्रभी कर्त्तव्य नहीं, इस निश्चयका नाम देवपूजन है।

जो भरूटकी सली(तृण) वा बालूका कणका यह चिंतनकरे कि यह भूत भौतिक दृश्यमान जगत् सर्व मैं ही हूँ, तो यह चिंतन तिसका ठीकही है क्योंकि, सली पंचभूत रूप है और जगत् भी पंच भूतरूप है।तैसे मैं अस्ति भाति प्रिय रूप आत्माही सर्वरूपहूँ, यह निश्चयही देवका पूजन है। हे मैत्रेय ! जैसे सुईके नाकेका आकाश यह चिंतन करे कि, "मैं महाकाशरूप" हुआ २ अनंत ब्रह्म ६ "

अवकाश देता हूँ समुद्रमें स्थित हुआ २ समुद्रको अवकाश देता हूँ, तथा घटमें स्थित हुआ२मनभर अन्नको अवकाश देता हूँ, तात्पर्य्य यह कि, सर्व जगत्में स्थित हुआ भी तिनके व्यवहारसे निर्लेप हूँ, तो यह चिंतन तिसका ठीकही है।तैसे बुद्धि आदिकोंका साक्षी, मैं चैतन्य आत्मा, सर्व जगत्का निर्वाहक हूँ, यह चिंतन विद्वान्का ठीकही है, इस दृढनिश्चयका नामही देवपूजा है। इस निश्चय अनिश्चयमेंभी अपने आत्मस्वरूपको सम जानना देवपूजन है।हर्ष हो तो मनको है, शोक हो तो मनको है, मोक्ष हो वा न हो तो मनको है बंध है वा नहीं तो मनको है, जन्म मरणादि विकार षट् ऊर्मी संघातकी हैं, ज्ञान अज्ञानादि मनके धर्म हैं, इनके साक्षी मुझ चैतन्यके पूर्वोक्त व्यवहार एकभी नहीं, इस निश्चयका नाम पूजन है। मन, वाणी, प्रणवका चिंतन कथन करे, वा न करे, वा लौकिक शब्दोंका कथन चिंतन करें वा न करें पर मुझ चैतन्य-साक्षी आत्माकी किंचित् मात्रभी हानि लाभ नहीं, इस दृढनिश्च-यका नाम पूजन है। द्रष्टाके दृश्यको साथ मिला हुआ न देखना सोई देवका पूजन है। अंतःकरणके धर्म सत्व, रज, तम, गुणोंकी प्रवृत्ति निवृत्तिका आपको द्रष्टा साक्षी सम जानना, हर्ष शोकका न होनाही देवका पूजन है।

मनका धर्म हर्ष शोक होते भी, अपने आत्मस्वरूपमें हर्ष शोक न मानना, यही दृढ निश्चयही देव आगे पुष्प हैं। नाम रूप भूषणोंविषे अस्ति भाति प्रियरूप आत्माको सुवर्णरूप जाननाही देवका पूजन है। निर्विकल्पहोना, सविकल्प होना, फुरणा अफु-रणा, सर्व मनके धर्म हैं, मुझ साक्षीको धर्म नहीं, यह निश्चय देवके आगे पुष्प हैं।

भजन कैसे करना चाहिये?

हे मैत्रेय! मैं सत् चित् आनंद स्वरूप द्रष्टा हूँ, असत् जड दुःख रूप दृश्य में नहीं यही निरंतर भजन कर क्योंकि यह भजन नहीं

करेगा तो,इससे भिन्न कोई न कोई भजन करेगाही। बिना भजन किये मनमाने नहीं और यहभी वेदोक्त भजनहै। इससे यही भजन कर वा अस्ति भाति प्रियरूप मैं आत्माही सर्वरूप हूँ, यह भजन करे। वा मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचरहूँ वाङ्मनसगोचर संघात-रूप प्रपंच मैं,नहीं,यह निरंतर भजन कर। जो मन वाणीके गोचर देवता पूजन करतेहैं, सो वाङ्मनसगोचर अनित्यही फलको पाते हैं,परंतु कुछ न करनेसे यह करनाभी अच्छा है .क्योंकि परंपरा करके यह भी वाङ्मनसगोचर परमदेवके पूजन करनेका साधन है।

अधोगति प्राप्त होनेका हेतु।

जो दोनों पूजनोंसे रहितहै और निज देहसहित स्त्री पुत्रादिकों-काही पूजन करताहैं, तात्पर्य यह कि, शिश्नोदरपरायण है सो अधोगतिको प्राप्त होता है।

इससे तू देहरूप दिवालेमें निर्विकार साक्षी आत्मदेवको अ-पना स्वरूप जान, जो जन्म-मरण फांससे छूटे।

हे मैत्रेय! सर्व शुभाशुभ संघातकी चेष्टा तुझ आत्मदेवके आगे पुष्प है, सर्व ब्रह्माण्डोंमें तूही सच्चिदानंद देवहै, जैसे-सर्व स्वप्न सृष्टिमें एक स्वप्नद्रष्टाही देवहै। तुझ चैतन्यकी पूजासे सर्वकी पूजा होजातीहै,तुझचैतन्यको भोग लगानेसे सबको भोग लग जाता है, तुझ चैतन्यकी प्राप्तिसे सर्वकीप्राप्ति होजातीहै, हे मैत्रेय! कार-णकी प्राप्तिसे सर्व कार्यकी बलात्कारसे प्राप्ति होजातीहै।

हेमैत्रेय! जो सच्चिदानंद निज प्रत्यक् आत्माको देव नहीं मा-ने तो माया और मायाका कार्यरूप(नामरूप) इससंघात सहित प्रपंचमें, प्रत्यक् विचारकर हा कौन देवहै।सत् चित आनंदरूप

निज देवसे भिन्न असत् जड दुःख अप्रकाशरूप माया,तथा मायाका कार्य्य इस संघातसहित सर्वनामरूप प्रपंचतो, देवशब्दका अर्थ, पक्षपातरहित सम्यक् विचारसे बन नहीं सक्ता । हे मैत्रेय ! दर्पणमें तथा स्फटिकमणिमें अनेक पर्वतादिकोंके प्रतिबिंब पडते हैं,परंतु तिन प्रतिबिंबनसे दर्पण तथा स्फटिक मणिकी हानिनहीं होती, तैसेही अनेक जाग्रतादिक जगतोंके प्रतिबिंब मुझ चैतन्यरूप आदर्शमें पडतेहैं; तथा मिट जातेहैं,परंतु मुझ चैतन्यके हानि लाभ कुछ नहीं होते । यह दृढनिश्चयही परमदेवका पूजनहै । हे मैत्रेय । यह आत्मदेव,मनका अपना आप स्वरूप होनेसे, किंचिन्मात्रभी स्मरण करनेसे, यत्न बिना, सबको शीघ्रही हाजिर हजूर प्राप्त होताहै;इससे ऐसे कृपालुदेवकाही सब पुरुषोंको श्रद्धा पूर्वक अवश्यमेव पूजन करना अर्थात् आपसहितसर्वको अस्ति भाति प्रियरूप देवकोही जानना योग्यहै ।

ज्ञान प्राप्त होनेपर शिष्यानुभव वर्णन ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तू अपना अनुभव कह । तुझको क्या निश्चयहै? मैत्रेयने कहा श्रोत्रादिकइंद्रिय अध्यात्म,तथा चक्षुआदिक इंद्रियोंके सूर्यादिक देवताअधिदेव,तथा तिन चक्षुआदिक इंद्रियोंके रूपादिक विपयरूप अधिभूत यह संघातहै;सो मेंनहीं क्यों कि मायारूप पंचभूतोंसे इस संघातकी उत्पत्तिहै, इसीसे जडहै तथा क्षणभंगुरहै,अनित्यहै । ये आप अपने कार्यमें प्रवृत्ति निवृत्तिकरते हुयेभी,आपको परको,अपने कार्य्यको तथा अपने प्रकाशकको जानतेनहीं, इसीसे जड हैं । एकरसनहीं रहते इसीसे अनित्यहैं । देशकाल वस्तु भेदवालेहैं इसीसे दुःखरूपहैं । अन्यकी सहायता विना,जो सत् चित् आनंदरूप प्रत्यक् आत्मा,पूर्वोक्त त्रिपुटीको प्रकाशनाम अनुभव करनेवालाहै;सोई स्वयंप्रकाश हमारा स्वरूप

है; जैसे दीपक कर घटपटादिक पदार्थ भासते हैं,तैसे अंतर मुझ चैतन्य अनुभवकरही,सुखदुःखादिक सर्वपदार्थ भासते हैं जो मैं इन कोनहीं प्रकाशताहूँ तो इन सुख दुःखादिकोंका व्यौराकेसे होताहै ? क्योंकि मुझ नित्य चिद्रूप आत्मासेभिन्न मनादिक जड व्यांवहारिक,जाग्रत,सत्, घट, पटादि, तथा प्रातिभासिक,असत् स्वप्न रज्जु सर्पादि भावाभाव पदार्थोंको मैं चैतन्य तुल्यही प्रकाशताहूँ,मुझको पक्षपातनहीं जैसे इंद्रजाल कर रचित जलसंयुक्त असत् घट विषे तथा साक्षात् सत् घटविषे सूर्यका प्रतिबिंब समही पडता है,न्यूनाधिक भाव नहीं । तथा; जैसे सूर्य मृगतृष्णाके जलको तथा गंगादिजलको समही प्रकाशता है;तैसे मैं चिद्घन देव,जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया समाधि आदि,सब पदार्थोंको समही अनुभव करता हूँ । जैसे स्वप्नके सत् असत् पदार्थोंको स्वप्नद्रष्टाही प्रकाश करताहै,विषय इंद्रियके संयोग वियोगविषे,संघात विषे अहंकार पूर्वक,जैसे पूर्व मैं सुख दुःख पाता था,तपायमान होता था तथा हर्ष शोक करता था भ्रमकर सो अब मेरे शांत होगये हैं क्योंकि भ्रमरूप संघात विषे अज्ञान पूर्वक अहंकारका अभाव है । अब मैं चैतन्य मनके फुरनेरूप विक्षेपसे तथा मनके अफुर्णरूप समाधिसे असंग हूँ । यह मैं नहीं,यह पर है, यह अपर है, यह मेरा है, यह मेरा नहीं, यह मेरा शत्रु है,यह मेरा मित्र है,यह उदासीन है, इस प्रकार मुझ अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मामें भ्रमरूप मनकी कल्पना थी,सो अब शांत होगई है । यह दृश्य आदि अंत मध्य एकरस नहीं, इसीसे मिथ्याहै । मैं चैतन्य आदि अंत मध्य एकरस हूँ, इसीसे सत् हूँ । पाने योग्य पद मैंने पाया है । अब मैं जीवताही मृतक हुवाहूँ । मृतक हुआही जीवता हूँ । अबमैं स्वराज हुआ हूँ । सम शांत सुखरूप, मैं पूर्वभी था अब भी मैं परंतु मध्यमें भ्रांतिकर औरका और जानता था,सोभ्रांति मेरी दूर हुई

है। पूर्ववत् शोभायमान हुआहूँ। अब मैं अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा, किस नाम रूप पदार्थकी इच्छा करूं ? अप्राप्त वस्तुकी इच्छ होती है, मैं आगेही सर्वमें प्राप्त हूँ वा मुझको सर्व प्राप्त है। हेयोपादेय फाँसीसे मैं रहित हुआ हूँ, इसीसे मैं अमृतरूप हूँ। जो हेयोपादेय बुद्धि सहित है सो, जीवताही मृतक है। बुलाये खैंचे विन मैं सर्वको प्राप्त होता हूँ, सर्व व्यवहार राजसी, तामसी, सात्विकी इस संघातसे करता हुआ भी, अकरता निर्लेप हूँ। सर्व संघातक (मैं चैतन्यही) चेष्टा करता हूँ, जैसे वायु सर्व वृक्षोंकी चेष्टा करत है। जैसे आकाश मुट्ठीमें नहीं आता तथा दीपककी प्रभा बाँधनें नहीं आती, तैसे मैं कालकाभी आत्मा कालकर नष्ट नहीं होता उलटा कालकी उत्पत्ति लीनता मुझ चैतन्यसेही होती है। ज़ जावे सो जावे और जो आवे सो आवे, न मुझको सुखकी इच्छा है, न दुःखकी इच्छा है क्योंकि अज्ञानपूर्वको देहमें अहंकाररूप पिशाच था सोसम्यक् आत्मबोधरूप मंत्रकर शांत होगया है तथा तिस अहंकारके कर्तृत्व भोक्तृत्व पुत्ररूप कार्यभी शांत हुये हैं, अब चैतन्य सर्वकर्ताभी अकर्ता हूँ (स्वप्नद्रष्टावत्) आत्मा अल्प बुलानेसेभी प्रत्यक्ष होता है क्योंकि अपना आप है; जैसे अपना शरीर भंगादि निमित्तसे भूल जावे, पुनःस्मरण होवे तो चिरकाल बांधवके मिलनेकी समान जैसे अपना शरीर मस्तो अल्पबुलानेमें प्रगट होता है, तैसेही मैं बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा- सर्व नामरूप, देह मनादि पदार्थोंविषे, व्यापकहूँ. जैसे मिरच विषे तीक्ष्णता व्यापक होती है, जैसे चंद्रमाविषे तथा बर्फविषे शुक्लता शीतलता व्यापक होती है। जो पाना था; जो जानना था, जो देखना था, जहां पहुचानाथा, ज़ो जो बंध मोक्ष वास्ते कर्तव्य करना था जिसका अंत करना था, जिसवास्ते कर्म उपासना तथा श्रवण मनन निदिध्यासन समाधि आदिकरने थे; जिस भ्रमकी निवृत्तिकरनीथी

जिस जन्म मरणरूपी भयको दूरकर निर्भय होनाथा, जिससे मनुष्य शरीरकी सफलता करनीथी, जो कुछ भोगोंकी सीमाको भोगना था सो सर्व हो चुका है। धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष, जो होनेथे, सो सर्व हो चुकेहैं अब सर्व कामोंसे निपटकर, पांव पसारकर निश्चित सोवेंगे। मुझ चैतन्यको समाधि असमाधि सम है. जैसे स्वप्नद्रष्टाको स्वप्ननरोंकी समाधि असमाधि सम है।

कामधेनु और कल्पतरु।

पुनः मैत्रेयने कहा हे गुरु! कल्पतरु तथा कामधेनुगो स्वर्गमें सुनाजाताहै,जो स्वर्गमें कल्पतरु तथा कामधेनु गौ होवें तो पुण्योंकी न्यूनाधिकके अनुसार सुखोंकी तारतम्यता होतीहै और सर्व जीवस्वाभाविकहीअधिकसुखकी इच्छाकरतेहैं;इससे न्यूनसुखवाले देवता इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यकी कल्पतरुके नीचे इच्छा करेंगे। इंद्र ब्रह्माके ऐश्वर्य्यकी इच्छा करेगा तिनका संकल्पभी सिद्ध होना चाहिये। जो सिद्ध न होगा तो कल्पतरुका महत्व जो शास्त्रोंने कथन किया है, सो असंगत होगा। यह बात विद्वानोंके अनुभवसे भी जचनहीं सकती क्योंकि तिनका संकल्प सिद्धहोगा तो,कर्मोंकी व्यवस्था विगंड जावेंगी। जो कहो कल्पतरुके पास कोई देवतादि जाने नहीं पाता, तो कल्पतरु निकम्माही हुआ? पराशरने कहा हे मैत्रेय। कल्पतरुनामहै शुद्ध मनका। शुद्ध मनमें जो इच्छाहोती है सोई पुरुषको पूर्ण होती है,सिद्ध योगीवत्। वा सम्यक् अपने स्वरूपका अपरोक्षबोधही कल्पतरु और कामधेनु गौ है, जिसकी प्राप्तिसे सर्व कामनाकी पूर्णता,वा सर्व कामनाकी कल्पतरु सहित सर्व जगत्की निवृत्तिताका फल पुरुषको प्राप्त होताहै। वासम्यक् संतोष विचारपूर्वक स्वधर्मानुष्ठानरूप तपही कल्पतरु है, अन्य नहीं।वा कल्पतरुके फल और फूल अन्य वृक्षोंसे अति मधुर

सुगंधिवान् होवेंगे, तथा तिसकी आकृति अन्य वृक्षोंसे सुंदरहोगी यह तिसमें विलक्षणताहै, अन्यनहीं। कामधेनुगौ अन्य गौसे सुंदर स्वभाववाली, सुन्दर आकृतिवाली, दूध कोअधिक देनेवालीहोगी।

मोक्षप्राप्तिका प्रधान साधन क्या है ?

मैत्रेयने कहा दुःखरूपसंसारबंधकी निवृत्ति और परम सुखरूप मोक्षकी प्राप्तिका प्रधान साधन कौन है? पराशरने कहा हे मैत्रेय! सम्यक् अपरोक्ष, सत् चित् आनंद स्वरूप, निरावरण, शमदमादिक साधन पूर्वक, निजात्मबोधही प्रधान साधन है, अन्य समाधिका साधन नहीं। शम दम समाधि प्राणायामादि तथा कर्म उपासनादि, अनेक साधन निजात्मबोधकीउत्पत्तिवास्तेहैं; जैसे अंधकारमें चिन्तामणि पडीहोवे, तो मणिकी प्राप्तिवास्ते और अपने भयादि कार्यसहित अंधकारकी निवृत्ति वास्ते, केवल दीपकका चसानाही आवश्यकहै, अन्य जपतपादि साधन नहीं। परन्तु दीपकके चसानेके अनेक साधनहैं, जैसे काष्ठादि भोजनकी सिद्धि वास्ते अनेक साधन हैं भी परन्तु प्रधान अग्निही साधन है। हे मैत्रेय! जैसे सूर्य्य बादलों कर पुरुषोंको ढका प्रतीत होता है और किसी रीतिसे बादलोंके दूर होनेसेसूर्य्य स्वयंप्रकाश करपुरुषोंकोस्फुरण होताहै, तैसे अज्ञान रूपी बादल दूर होनेसे, आत्मा स्वयंज्योति रूप कर तुझको प्रतीतहोवेगा। हे मैत्रेय! जैसे प्रतिबिंबको, घट जल संबंधी, निज विक्षेपोंके दूरकरनेवास्ते और निर्विकार निज भावकीप्राप्तिवास्ते, निजबिम्बस्वरूपका सम्यक् जाननाही प्रधान साधनहै, अन्य नहीं। जैसेवायुकरके विक्षेपवान जो तरंग है, तिसके विक्षेपकी तथा गमनागमनरूप जन्म मरणकी निवृत्ति और अगाध समुद्रकी प्राप्तिका प्रधान साधन मधुरता शीतलता द्रवतारूप निज जल स्वरूपका सम्यक् जाननाहै। वा जैसेस्वप्नरोंको स्वप्नक्लेशरूपजन्ममरणादि दुःखोंकी निवृत्ति

वास्ते,तथा सुखकीप्राप्तिवास्ते निजस्वरूप स्वप्नद्रष्टाका सम्यक् जाननाही प्रधान साधनहै, अन्य नहीं। हे मैत्रेय! सत् चित् आनंद स्वरूप निजात्माकोअज्ञानकर असत् जड दुःखरूप मानताहै और ज्ञानकर अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति नाम मिथ्यात्व वाअभावनिश्चय होतेही कतकरेणुवत् पीछे ज्ञानकी निवृत्ति नाम मिथ्यात्व वा अभाव निश्चय होता है।हे मैत्रेय!.सच्चिदानंदरूप आत्मासे जोकुछ पृथक् प्रतीत होताहै, सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति मरण समाधि आदि सर्व प्रपंच स्वप्न भ्रांतिरूप है। स्वस्वरूप अज्ञानकालमेंही भ्रांतिके विषे जाग्रतादिपदार्थ सत्यवत् नाम जाग्रतवत् भानहोते हैं,सम्यक् अपरोक्ष अस्ति भाति प्रियरूप निजात्माका बोधरूप जाग्रत्के हुये नामरूप स्वप्नप्रपंच अत्यंत असत् हो जावेगा। हे मैत्रेय! स्वप्नप्रपंच प्रतीति होते भी, स्वप्नद्रष्टा निर्विकार है। जैसे स्वर्गमें नामरूप भूषण प्रतीत होते भी, केवल कहनामात्र है, तैसे अस्ति भाति प्रियरूप आत्मामेंनामरूप जगत् प्रतीत होता भी कहनामात्र है

काशी विश्वेश्वर।

हे मैत्रेय! इस संघात कायारूपकाशीमें तू प्रत्यक् चैतन्य (इस देहरूप काशीका प्रकाशक) विश्वेश्वर बन्ध मोक्षसे रहित काशी प्रकाशक है।

कृष्ण।

(गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, द्वारका रासक्रीडा आदि।)

इस क्षेत्रज्ञरूप द्वारकाका प्रकाश तू साक्षी चैतन्य क्षेत्ररूपकृष्ण है। हे मैत्रेय! गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, और द्वारकावत्,जाग्रत्, स्वप्न,सुषुप्ति,तुरीय,तुझ क्षेत्रज्ञरूप कृष्णकी क्रीडाके स्थान हैं। तुरीयरूप वृन्दावनमें "सर्वमिदमहंचवासुदेवः" इसप्रकार सर्ववृत्तिया रूपी गोपी,आप अपने सांसारिक शब्दादि विषयरूप पतियोंको

तथा विषयजन्य पुत्ररूपी सुखोंको त्यागकर,तुम क्षेत्रज्ञरूप कृष्ण-कोही आश्रयण करती हैं। वा विषय इंद्रियोंके संबन्धरूप पतियोंको और विषयजन्य सुखरूपी पुत्रोंको त्यागकर वा विषय इंद्रिय संबं-धरूप पतिसे तथा अंतःकरण अविद्यारूप मातासे उत्पन्न हुईं जो वृत्तियां,तिनमें जो सत् चित् आनंदरूप क्षेत्रज्ञ कृष्णका प्रतिबिंब रूप आभासहै,सोई हुये पति,तिनको तथा विषय वा विषयजन्य सुख सोई हुये पुत्र,तिनको त्यागके नाम मिथ्या जानके,तुझ क्षेत्रज्ञ कृष्णको प्राप्त होती हैं;नाम "सर्वमिदमहं च ब्रह्मैव" इस प्रकार सर्व तुझ क्षेत्रज्ञ ब्रह्मकोही विषय करती हैं । तू क्षेत्रज्ञ कृष्ण तिन सर्व वृत्तियां रूप गोपियोंको प्रकाशता है, यही रासक्रीडा है ।

आत्मा और संघात भिन्न२ हैं कि, एकरूप ?

हे मैत्रेय ! इस पंचकोशरूप, अनित्य जड दुःखरूप स्वभाववा-ले, संघातसे अविवेकीको,नित्य सुख चिद्रूप आत्मा भिन्न प्रतीत होता नहीं,परन्तु विवेकी भिन्न जानता है, जैसे बालक तुपसहित तंदुलोंको इक्षु रसको, दूधघृतको,जल दूधको,लवण जलको, देह देहीको, प्रकाश प्रकाशको; आत्मानात्मादिक पदार्थोंको, एक रूप जानता है । परन्तु विवेकी बुद्धिमान् भिन्न भिन्न स्वभाववाले पदार्थोंको,एकरूप प्रतीत होते हुए भी, एक रूप नहीं मानता । इससे तू हे मैत्रेय ! बुद्धिमान् हो, मूर्ख मत हो ।। जैसे लालादि पुष्पोंके संबंधसे स्फटिकमणि लालादि रूप प्रतीत होती हुई भी विवेकी लालादि रंग रहित केवल शुद्ध स्फटिकमणि जानता है और अविवेकी लालादि रंगों सहित जानता है । जैसे लालादि रंग रूप वस्त्र भासता भी है, परन्तु विवेकी वास्तवसे शुद्ध वस्त्रमें लालादि रंग आगंतुक देखता है सत नहीं । जैसे जल लवणादि अनेकरूप भान होता भी, वास्तवसे विवेकीकी दृष्टिसे

शुद्ध शुक्तरूप है ।.तसे पंचकोशरूप, तीन शरीररूप, आत्मा प्रतीत होता भी है, परन्तु विवेकी वास्तवसे अपने आत्मस्वरूपको असंग,निर्विकार,निर्विकल्प,स्वभावसेही जन्मादि विकार रहित जानता है । अविवेकी ऐसे नहीं जानता, इसीसे जन्मता मरता है । हे मैत्रेय ! आत्मा,भिन्न भिन्न जो प्रतीत होता है सो उपाधिसे प्रतीत होता है, वास्तवसे आकाशवत् नहीं ।

आत्मायदि व्यापकहैतो सर्वत्र प्रतीतक्योंनहींहोता ?

हे मैत्रेय ! अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा सर्वत्र व्यापक है भी, परन्तु जहां स्पष्ट अंतःकरण होता है तहांही सत् चित् आनंदसाक्षी विशेषरूप करके भान होताहै तहां ही इस जड संघातकी चेष्टा होतीहै, जैसे उष्णता, प्रकाशता, दाहकता, सूर्य्यरूपता, सर्वत्र व्यापक है भी, परन्तुजहां दर्पणादिस्वच्छपदार्थ होते हैं,तहां सर्व लोगोंको प्रसिद्ध एक आभास,दूसरा समान(तेज)द्विगुण प्रकाश होता है,हे मैत्रेय। जैसे राजाका हुक्म अपनी सर्व प्रजाके ऊपर होता है, तथा राजा प्रजाके भिन्नही होताहै;तैसेही देहइंद्रियमनादि जड़ प्रजाको, यह साक्षी आत्माही, अपनी महिमामें स्थित हुआ हुआ; निज संत्ता स्फूर्ति देकरही, चेष्टा करताहै।तथा आत्मा देह इंद्रिय मनादि प्रजासे भिन्न है तथा देह इंद्रिय मनादि प्रजाके कर्तव्योंसे अकर्तव्य है, जैसे चन्द्रमा बादलों के चलनेसे चलता बालकों को प्रतीत होता है, परन्तु विवेकीकी दृष्टिसेचन्द्रमा अचल है।हे मैत्रेय ! यावन्मात्र मन वाणीका गोचर नाम रूप प्रपंच है तथा सुखदुःख है सो सर्व मनोमात्र है क्योंकि जब मन सुषुप्तिमें लीन होताहै, तब सर्व नाम रूप प्रपंच की लेश भी नहीं मिलती, जो प्रपंच मनोमात्र न होता तो; सुषुप्तिमें प्रतीत होता सो प्रतीत होता नहीं। इससे मनोमात्रही कल्पना है।आत्मातो सर्वदा एकरस

सुषुप्तिमें भी है,परंतु सुख दुःखरूप प्रपंच नहीं।इससे यह सिद्धहु-आ कि,आत्मा सुखदुःखरूप प्रपंचसे रहित निर्विकार है।

हे मैत्रेय ! नामरूप संसारको दधिरूप जानो,मनको मंथारूप जानो, ब्रह्माकार वृत्तिको रज्जुरूप जानो, और सत् चित् आनंद निजरूप प्रत्यक् आत्मा को घृत रूप जानो। इस प्रकार अभ्यास करते २ तुझको अपना स्वरूप साक्षात्कार होगा। पुनः नाम रूप प्रपंचरूप छाँछमें तू प्रत्यक् चैतन्यरूप माखन पडाभी, कदाचित भी एकरूप न होवेगा। हे मैत्रेय ! जैसे भीतीमें वा खम्भेमें वा अन्यत्र कहीं वस्त्रादिकोंमें चित्रेलेकी लिखी जो अनेक प्रकार की मूर्तियां, विशेष हैं सी यद्यपि मूर्खोंको मूरतीही सन्मुख दीखती हैं, थम्भभीति वस्त्रादि आधार सन्मुख नहीं दीखता, परंतु विचारें तो आधार दर्शन पूर्वक ही सर्व मूर्तियों का दर्शन है जो आधारको अदृश्य माने और मूर्तियों को प्रत्यक्ष माने तो, दृष्टि विरोध है तथा विद्वानों के अनुभव से विरुद्ध है। तैसे ही यह नाम रूप भूत भौतिक कारण कार्यरूप प्रपंच; वा अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज रूप मूर्तियांही, मनरूप चित्रेलेकी, अनंत चित्सुखरूप आत्मारूप आधारमेंही लिखी प्रत्यक्ष दीखती हैं परंतु नित्य सुख चिद्रूप मूर्तियोंके आधार परमेश्वरको अविवेकी दूर मानतेहैं,यह नहीं जानते कि, आधार दर्शन पूर्वकही इस नामरूप मूर्तियोंकी प्रतीत होतीहै, अन्यथा नहीं। तात्पर्य यहहै कि, पहले आधार होताहै पीछे मूर्तियां लिखीजाती हैं। यह नहीं कि, आधारको परोक्षमाने और मूर्तियोंको अपरोक्षमाने, यह मूर्खोंकी दृष्टि है। इससे आधारही अपरोक्षहै मूर्तियां नहीं। जो मूर्तियोंकी अपरोक्ष प्रतीत होती सो,आधार दर्शनपूर्वकही प्रतीत होती है इससे आत्मारूप आधार सर्वसे पहिलेही सिद्ध है।

अध्यात्मक सिद्धोंकी कथा।

हे मैत्रेय! इसीपर एक कथा सुन। एक समय में वनविषे विचरता था। तिस वन विषे एक महान अद्भुत बँगला था। तिसमें बहुत तपस्वी सिद्ध बैठे थे और आपसमें सिद्धाइयोंकी बातें करते थे। जो पूछे सिद्ध कौन थे? सो पंच ज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रिय, पंच प्राण, चतुष्टय अंतःकरण, पंचमहाभूत तथा तीन सत्व, रज, तम गुण, देशकालादि अनेकप्रकारके भिन्न भिन्न स्वभावोंवाले सिद्ध बैठेथे। मैंने पूछा हे मित्रो! तुम क्या करते हो? उन्होंने कहा कि, इहां तप करके, अपने अनंत, चित् सत् रूप आत्मस्वरूपको सिद्ध किया है वा करते हैं वा करेंगे। तिन्होंके मध्यमें प्रथम मैंने ज्ञानेंद्रियोंको कहा कि, हे ज्ञानेंद्रियों! तपस्वी! सिद्धो! तुम शब्द स्पर्श रूपरस गंधके, अपरोक्ष सिद्ध करनेके साधन हो, तुम साधनद्वारा, आत्माही शब्दादिकोंको सिद्ध करता है; जैसे मंदिर बाहिर धरे पदार्थोंको, मंदिर भीतर सचक्षु पुरुषही बारीद्वारा अपरोक्ष सिद्ध करता है, बारियां नहीं। इससे साक्षात् शब्दादिकभी अपरोक्ष नहीं हो सके तो आत्माको कैसे अपरोक्ष करोगे। भला जो तुम किसी रीतिसे अपरोक्ष सिद्ध करते हो, तो भी शब्दादिकोंकोही अपरोक्ष सिद्ध करते हो, शब्दादिकोंसे रहित जो अवाङ्मनसगोचर आत्मा है, तिसको तुम कोटि जन्मोंमें कोटि तरहके तपसे भी सर्वथा नहीं जानोगे क्योंकि, जो आत्मा शब्दादिरूप होवे तो तुम जानो, अन्यथा कैसे जानोगे?

तैसेही मैंने कहा हे कर्मेंद्रियों सिद्धो! तुमतो प्रसिद्धही वाक्उच्चारण, ग्रहण त्याग, गमनागमन, मल मूत्रका त्याग, मात्रही व्यवहार सिद्ध कर सक्ते हो। अन्य नहीं, यहबात प्रसिद्धहै। इससे तुम्हारा कहना भी निष्फल है कि, हम आत्मा को अपरोक्ष करते हैं।

प्राण ।

तैसेही मैंने प्राणोंको कहा हे प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान सिद्धो । तुमभी जड वायु हो,श्वासोच्छ्वासादिक ही प्रसिद्ध क्रिया करते हो, अन्य नहीं।जो आत्मा श्वासोच्छ्वासादिक क्रिया रूप होवे तो तुम आत्माको ग्रहण करो, अन्यथा नहीं ।

अंतःकरण ।

तैसेही मैंने चतुष्टय अंतःकरणसे पूछाहे,हे मन,बुद्धि,चित्त अहंकार तपस्वी सिद्धो ! तुमभी संकल्प विकल्प, निश्चय अनिश्चय चिंतन अचिंतन, अहंपण तथा न अहंपण, केवल इनहीको सिद्ध कर सके हो, पूर्वोक्तसंकलपादिकोंसे रहित जो नित्य सुख चिद्रूप प्रत्यक् आत्मा है,तिसको तुम कैसे सिद्ध कर सक्के हो?जो आत्मा संकल्पादिरूप होवे तो तुमसे ग्रहण होवे,सो आत्मा संकल्पादिकोंसे रहित है इससे तुम कोटि जन्मोंमें तपस्या करनेसे भी,आत्माको न सिद्ध कर सकोगे । उलटा तुम अपने धर्मोंसहित मनादि आत्मा करकेही सिद्ध होते हो।तुम जड आपको तथा परको भी नहीं जानसक्के तो, अन्यको कैसे सिद्ध करोगे ? इससे तुम संकलपादिकोंकेही सिद्ध कर्ता हो अन्यके नहीं। इससे तुम निष्फलही अहंकार करतेहो कि,हम आत्माको जानते हैं। हां, तुम आत्माके साक्षात् करनेके साधन परंपरासे हो, यह बात तो ठीक है । आत्मा तुम्हारी उत्पत्तिसे पहले सुषुप्तिमें स्वतः सिद्धहै तथा तुम्हारेसुषुप्तिमें लीन हुये पीछे स्वतः सिद्ध है । वर्तमानमें तुम्हारे साक्षीहुये आत्माको तुम नहीं जानते तो, सुषुप्ति आदिकोंमें कैसे जानोगे ? हे मनादिको सिद्धो ! जैसे सूर्यही नेत्रोंमें स्थित होकर अपनेआपकोदेखता है, तथा अन्यपदार्थोंको भीप्रकाशताहै।नेत्र निमित्तकर जो नेत्रोंको सूर्य्यके देखनेकी ताकत होवे तो,अंधकारमें भी किसीपदार्थको प्रकाशे परंतु नहीं प्रका-

शता है। तैसे आत्माही तुम मनादिकोंविषे स्थित होकर तुमको-भी तथा अन्य सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है तथा तुमसे विनाभी सुषुप्तिमें, समाधिमें; स्वयंप्रकाशरूपताके समाधि सुषुप्तिमें होनेवाले पदर्थोंको प्रकाशता है।

त्रिगुण।

तैसेही मैंने सत्वादि गुणोंको कहा हे सत्वादि गुणो! तुम्हारी प्रवृत्ति निवृत्ति मनको हर्ष शोक करती है। सर्वके द्रष्टा आत्माको तुम्हारा कुछ भी असर नहीं पहुँचता। सत्वगुण होनेसे चित्तविषे शमदमादि तथा जाग्रत् अवस्थाकी प्रवृत्ति होती है। रजोगुणके होनेसे भोगादिकोंकी तथा स्वप्नअवस्थाकी कामना करके चित्त चंचल होता है। तमोगुणके होनेसे क्रोधादिक पापकर्म करके तथा सुषुप्ति अवस्थासे चित्त स्तब्ध भावको प्राप्त होता है। इत्यादि कामही तुम गुण सिद्ध करसक्ते हो, अन्य नहीं। आत्मा पूर्वोक्त इन गुणोंसे परे है। इससे तुम्हारा कहना निष्फल है कि, हम आत्माको अपरोक्ष सिद्ध करते हैं।

पंचभूत।

तैसेही मैंने कहा हे पंचभूतो! तुमभी मायाके कार्य्य हो, असत् जड दुःखरूप हो, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधगुणोंवाले हो तथा कार्य कारणरूप हो। इससे मायासे परे, तथा कार्य्य कारण भावसे रहित निर्गुण प्रत्यक् आत्माको कैसे अपरोक्ष सिद्ध करसक्ते हो? नहीं करसक्ते हो।

अज्ञान।

तैसेही मैंने अज्ञान सिद्धको कहा-हे आवरण, विक्षेप, शक्तिवाले अज्ञान सिद्ध! ज्ञानरूप प्रकाशसे विलक्षण अज्ञानरूप अंधकार होता है। प्रकाश स्वरूप आत्माके तुम सम्मुखही नहीं होसक्ते तो

आत्माका दर्शन कैसे करोगे ? उलटा तुम ज्ञान अज्ञान दोनों भाई आत्माकरकेही अपरोक्ष सिद्ध होते हो । जो तुम दोनों आत्माको तथा पदर्थोंको, निरावरण सर्व अपने कार्य, मनकी तरफसे करसक्ते हो, स्वयप्रकाश आत्माकी तरफसे नहीं करसक्ते हो । जैसे बादल मनुष्योंकी तरफसे सूर्यको आच्छदन निरावरण करसक्ते हैं सूर्यकी तरफसे नहीं । इससे तुम्हारा वृथा अभिमानहै कि, हम आत्माको अपरोक्ष सिद्ध करते हैं ।

शब्दादिगुण ।

तैसेही मैंने शब्दादिक गुणोंको कहा है भूतोंके पुत्ररूप शब्दादिक गुणो । जब तुम्हारे आप अपने आकाशादि पंचभूतरूप पिता, तथा पंचभूतोंका अज्ञानरूप परपिता; तुम्हारा पितामह, आत्माको नहीं अपरोक्ष करसक्ता तो तुम कैसे करोगे, किंतु नहीं करोगे । इससे यह जगत् मूर्तियां भी, अपरोक्ष सर्वके अनुभवसिद्ध हैं और इनका आधार अधिष्टानरूप चित् सुख नित्य आत्मा भी अपरोक्षही मानना चाहिये ।

हे मैत्रेय । अनित्य जड दुःखरूप जो जाग्रत, स्वप्न समाधि सुपुप्ति आदि, कार्य कारण भाव, नाम रूप चित्ररूप, दृश्य प्रपंचमें क्या स्थित होना है? जिसमें यह भासमान चित्र है तिसीमें स्थित हो, जो निर्भय होवे, अन्यथा नहीं । धन्य वही है जो शरीरकर, मनकर, वाणीकर, व्यवहार करतेभी विचारसे इस दृश्यरूप जगत्को साक्षीके समान देखते हैं । हे मैत्रेय ! जैसे भारवाही बैलादिक पशुओंको, नफे टोटेका हर्ष शोक नहीं होता, चाहे चन्दन कस्तूरी, सुवर्णादि उत्तम पदार्थ लादो, चाहे मलीन पदार्थ ल[illegible] ेसके अभीमानी पुरुप स्त्रियोंको नफे टोटे[illegible] शोकहोत[illegible] ।न रहितको हर्ष शोक नहीं। तैसे मन [illegible] अथवा

अशुभकृत्य करें,वे अभिमान नहीं करते तब तू चित्सुख नित्य असंग अक्रिय,आकाशके समान आत्मा अभिमान क्यों करताहै? अभिमान करनेसे दुःख होगा। हे मैत्रेय !जिसे नगरमें कुम्हारके गधोंकी उत्पत्ति नाशमें कुम्हारकोही सुखदुःख होताहै(अभिमानी होनेसे)स्वमहिमा स्थित राजाको नहीं। जो राजा हर्षशोककरेगा तो मूर्ख बाजेगा। तैसेही इस देहरूप नगरमें; इंद्रियरूपी गदहोंके जन्म मृत्युरूपी;इष्ट अनिष्टकीप्राप्ति निवृत्तिमें, मनरूपी कुम्हारही हर्ष शोकवाला है तू सम्यक् विचार देख? तू चैतन्य राजा; स्वमहिमामें स्थित, हर्ष शोकका भागी कहां है? जबर्दस्ती करें तो तेरी इच्छा है।

इति पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशका षष्ठसर्ग समाप्त ॥६॥

अथ सप्तम सर्ग ७.
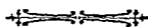
जगदुपत्तिप्रकरणवर्णनम्।

मैत्रयने कहा हे भगवन्! अमायिक निरावयव आत्मासे यह जगत् कैसे उत्पन्न होता है? कोई प्रत्यक्ष दृष्टांत कहिये।पराशरने कहा हे मैत्रेय! जैसे आकाश निरावयवपूर्णसे वायु उत्पन्न होती है,जानी नहीं आती कि,किस रीतिसे उत्पन्न हुईहै। पुनः तिसमें लीन होजाती है और स्वप्नद्रष्टाकादृष्टांत अनुभवसिद्ध है। मैत्रयने कहा मुझको शिष्य करो। परशरने कहा शिष्य नाम सेवा करनेवालेकाहै सो इंद्रिय मनादि मेरी सेवा करतेहैं इसीसे मेरेशिष्य हैं।मैत्रेयने कहा मुझकोउपदेश करो। परशरने कहा उपदेष्टा,उपदेश और उपदेशकरने योग्य त्रिपुटी मुझमें है नहीं क्योंकि मैं उन-

का साक्षी हूँ।परंतु उपदेश यही है कि,जान आप सहित सर्व हरि है।उपदेश तो वीथियोंके त्रणभी सारग्राहीको कर रहे हैं,संतननेतो उपदेशकी गिरमिटही ले रक्खा है।संत विनाउपदेश किसकोलगता भी नहीं क्योंकि संत निष्काम होनेसे सर्व बातोंका सार निकालके यथार्थ उपदेश करते हैं। इसी पर एक कथा सुन।

स्थूल समष्टि अभिमानी वैराट्भगवान्ने व्यष्टि अभिमानी विश्वनाम जीवको उपदेश दियाहै। वा प्रतिबिंबी रूप जीवको बिंबरूप ईश्वरने उपदेश दिया है। तिस स्थानमें संतोंने आप अपना पक्षपात रहित संभाषण भी किया है।

विश्वात्मा और विराटात्माका संवाद।

विश्वने कहा हे भगवन्!तुम्हारे हजारों शीश हस्त पादादि अवयव शास्त्रमें कहे हैं परंतु यह मनुष्यव्यक्ति तुम्हारी हमारी एक सरीखी है,इसके तो हजारों हस्त पादादि अवयव बनसक्ते नहीं। जो तुमको आकाशवत् निरावयवपूर्ण मानै,तौभी अवयव बनसक्ते नहीं और जो स्थूल ब्रह्मांडरूप तुम अपना शरीर कहो तो,शीश आपका आकाश, पाद, पाताल, अग्नि मुख, दशों दिशा भुजा, इत्यादि तुम्हारे अवयवोंका शास्त्र वर्णन करते हैं सो तो भावना मात्र चित्तके ठहराने वास्ते प्रतीक उपासना है कोई विचारे तो अवयव मालूम नहीं होते। जो मानेतो अग्नि पातालादियोंसे प्रजाकी उत्पत्ति हमको नहीं प्रतीत होती। सर्व वैराट् रूप वैश्वानरने कहा हे विश्व। जैसे तुम इस देहके देही हो, तैसे मैं ब्रह्मांडरूप देहका देही हूँ। अनंत जीवोंका समुदायरूपही ब्रह्मांड है। जो तुम्हारे अनंत व्यष्टि जीवोंके हस्त पादादि अवयव हैं सोई सर्व मेरे अवयव हैं.जैसे एक वृक्षके अवयवों सहित अवयवी क[illegible] अभिमानीके जो अवयवहैं सोई सर्व[illegible] अभि[illegible]

जैसे स्वप्नमें जो व्यष्टि स्वप्ननरोंके हस्त पादादि अवयव हैं सोई सर्व अवयव समष्टि वैराट् स्वप्नद्रष्टाके हैं, अन्य कोई व्यवस्था है नहीं।

वर्णाश्रम और वेदादिकी उत्पत्ति।

जैसें स्वप्नमें चार वर्णाश्रम तथा वेद-पदार्थप्रतीत होते हैं,परन्तु विना हुये पदार्थका ज्ञान होता नहीं,क्योंकि पदार्थ अपने ज्ञानमें निमित्तकारण होते हैं। जाग्रत्के वर्णाश्रम तथा वेद स्वप्नमें हैं नहीं, क्योंकि जो जाग्रत्में देशकालवस्तु है सो स्वप्नमें तिससे देशकाल वस्तु विलक्षणहै। इससे स्वप्नमें किसी रीतिसे, सत् वामिथ्या,नवीन वर्णाश्रम, वेदकी उत्पत्ति होती है सो तुम विचार देखो।स्वप्नके वैराट् स्वप्नद्रष्टाके किस अवयवसे किस वर्णाश्रम और वेदकी उत्पत्तिमाने सो, तुमही पक्षपातरहित विचारकर कहो? यह सर्वके अनुभवकी वातहै। क्योंकि जो स्वप्नमें स्वप्ननरोंके मुख हस्त ऊरू पादादि अवयव हैं, सोई अवयव स्वप्न वैराट् स्वप्नद्रष्टाके हैं।

यदि हिंदू समाजकेसर्व शास्त्र अनुकूल, वर्णाश्रमकीउत्पत्तिमाने भी तो"ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्" ब्राह्मण इसका मुखहै,नाम प्रधान है।पंचमीके अभाव होनेसे उत्पत्ति नहीं बनती। तैसेही राजन्यादि पदोंका अर्थ भी जानलेना।जैसे स्वप्नमें वर्णाश्रम तथा वेदादि पदार्थोंकी उत्पत्ति माने तो स्वप्ननरोंकी देहमें मुखादि अवयवोंसे ही वर्णाश्रमकी उत्पत्तिमाननी होवेगी. परन्तु स्वप्नद्रष्टा निरवयवहै तिसको मुखादि अवयव बनते नहीं।औरभी शब्दादि लेन देनादि क्रिया गुणविनाऔर किसी वर्णाश्रमकीतोउत्पत्ति मुखादि अवयवोंसे देखनेमें आती नहीं।दृष्टकल्पनाके अनुकूलही अदृष्टकल्पनाकी जाती है; अन्यथा नहीं की जाती।शास्त्रमेंभी समष्टि व्यष्टिकी,सर्व प्रकारसे व्यवस्थातुल्य कही है। जो पिंडे सोई ब्रह्मण्डे, जोखोजे सो पावे। इससे व्यष्टिके दृष्टांतसे समष्टि वैराट् में दार्ष्टांत जोड लेना।

वर्णाश्रम क्यों और किसने स्थापित किया ?

इसवास्ते पक्षपातरहित धर्मात्मा, सत्यवक्ता पुरुषोंने बेटी पंगत लेन देनरूपी व्यवहारकी, सुखपूर्वक सिद्धिके लिये तथा संकर-वर्णकी निवृत्तिके लिये;तथा धर्मके न्यूनाधिककी उत्कर्षता और अधर्मकी न्यूनाधिककी अपकर्षताके लिये, तत् तत् धर्माधर्म-संबंधी पुरुषोंकी सात्विकी, राजसी,तामसी, स्वभावोंके अनुसार उत्तम, मध्यम; निकृष्ट; अधम, चारप्रकारकी संज्ञा ईश्वरने वा पूर्वोक्तसज्जन पुरुषोंने बांधी है ।

ब्राह्मणादि वर्णोंकी उत्पत्ति मुखादि अवयवोंसे किसप्रकार है ?

हां ! मनके चिन्तनपूर्वक और मुखको शब्दउच्चारणपूर्वकही उत्तमादि संज्ञा कल्पना कीजाती है, इससे मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रमकी उत्पत्ति कही है । नहीं तो और किसी भी समाजके शास्त्रोंमें ईश्वरके मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रमरूप जगत्कीउत्पत्ति कही नहीं। हां। ईश्वरकी इच्छासे जगत्की उत्पत्ति बनतीहै और सर्व शास्त्रोंमें कही भी है, सो इच्छा अन्तःकरणमें है. मुखमें नहीं वा इच्छा मायामें है। इससे सर्व सम्मत सिद्धांतही ठीक होता है । ईश्वरके मुखादि अवयवोंसे, वर्णाश्रमरूप जगत्की उत्पत्ति सर्व सम्मत सिद्धांत नहीं, किन्तु आप अपने घरके सिद्धांत स्थापन करते हैं किसको सत् कहें किसको असत् कहें ।

समाज अनुसारीशास्त्रमध्ये अनादिपक्षमाननेवालोंमें तो वर्णाश्रमरूप जगत्की उत्पत्ति ईश्वरसे वा जीवसे बनती ही नहीं। सादिमें बनती है।सो भी मुखादि अवयव देहमेंही बनते हैं,देही में बनते नहीं, देहीको निरवयव होनेसे। तैसे ईश्वर देहीकी, यह कार्य्य कारणरूप माया देहहैसोमायाकेसत्व,रज,तमादि,मुखादिअवयववत्अवयव हैं-सो मायाकेसत्वादि गुणरूप, मुखादि अवयवोंकी प्रधानता अ-

नतासे,तत् तत् संबंधी पुरुषोंकी भी, प्रधानता अप्रधानता संज्ञा कीगई है। सो अदृष्ट वा संगतिके प्रतापसे, सात्त्विकीसे तामसी राजसी होता है,तामसीसे राजसी सात्त्विकी होताहै। मायारूप उपाधिके धर्म माया उपहत ईश्वरमें वर्तते हैं,इससे ईश्वरके मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रम रूप जगत् की उत्पत्ती कही है। अन्यथा कहोगे तो निरवयव पूर्ण आकाशवत् ईश्वरके कौन मुखादि अवयव हैं? किंतु कोई नहीं। जैसे निरावयव पूर्ण आकाश के किस अवयवसे वायु उत्पन्न होती है? तद्वत् ही ईश्वरभी निरावय वपूर्ण सर्व शास्त्रोंमें लिखाहै, तिसके मुखादि अवयव बनते नहीं।

सर्व देशोंमें भिन्न २ व्यवहारोंकी कल्पना किसने की है? परस्पर भेद क्यों दीखता है?

जो ईश्वरको सगुण मानो वा निर्गुण मानो तो पूर्व कही व्यवस्थाही ठीक मालूम देती है,आगे ईश्वर जाने क्या तदबीरहै परंतु उत्तमादि व्यवहार,देशकाल वस्तुओंमें देखनेमें आताहै। क्या जाने यह उत्तमादि व्यवहार ईश्वरने स्थापन कियाहै वा जीवोंने किया है, वा अनादि, वा सादि है। परंतु यहभी देखनेमें आता है कि, देशकाल वस्तुओंमें, उत्तमादि व्यवहार तत् तत् देश निवासी पुरुषोंने किया है; वा आप अपने सामाजिकपुरुषोंने सर्व देशकाल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार स्थापन किया है। क्योंकि जिनदेशकाल वस्तुमें हमारे सामाजिक पुरुषोंने उत्तमादि व्यवहार किया है सो अन्य सामाजिक पुरुषोंने नहीं किया, जो अन्य सामाजिक पुरुषोंने जिन २ देशकाल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार स्थापन किया है सो, हमारे सामाजिक पुरुषोंने नहीं किया इसी रीति से सर्वमें जान लेना। इस रीतिसे सर्व देशकाल वस्तुओं में उत्तमादि व्यवहार जीवोंने मनके चिंतन पूर्वक वाणी से बांधा है।

सम और साधारण नियम।

परंतु सत् संभापणादियोंकी न्यूनाधिक प्रयुक्त, उत्तमादि व्यवहार सर्व देशमें सर्व समाजोंमें सम है।

चार वर्ण।

इसी रीतिसे तो सर्व वर्णाश्रमोंकी उत्पत्ति मुखसे ही वन सक्ती है। इन उत्तमादि पुरुपोंके ही पर्यायशब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संज्ञा है।

चार आश्रम।

इनहीं पुरुपोंमें हिंदुओंके समाजमें प्रथम विद्या पढनेतक ब्रह्मचर्य रखनेसे ब्रह्मचारी संज्ञा, पुनः गृहस्थ करनेसे गृहस्थी संज्ञा, वनमें तप करनेसे वानप्रस्थसंज्ञा और सर्वको त्याग करनेसे संन्यस्तसंज्ञा बांधी है।

चार वर्णाश्रम सब देशोंमें हैं।

यह चार वर्णाश्रमोंकी संज्ञा, सर्व देशों, विलायतोंमें, आप अपने समाजमें, मुसलमान और अंग्रेजादि, अच्छे पुरुपोंने, निज निज देश भापाके अनुसार कल्पना की हुई है केवल नामांतरका भेद है, स्वरूपसे भेद नहीं।

उत्तम कैसे होता है ?

आप अपने समाजमें, बेटी पंगती खान पानादि, व्यवहार भिन्न २ करनेसे वा एकमेक करनेसे तो उत्तमादि संज्ञा पुरुपोंको प्राप्त नहीं होती किंतु उत्तमादि संज्ञा तो गुणोंसे प्रयुक्त है। जातिसमाजके अनुसार उत्तमादि संज्ञा नहीं प्राप्त होती किंतु धर्म अधर्मकी उत्कर्पता अपकर्पताके अधीन है।

नीच कौन है ?

यह नहीं कि,ब्राह्मणसे क्षत्रिय नीच है, क्षत्रियसे वैश्य नीच है, वैश्यसे शूद्र नीच है, वरन् नीच कर्म करनेसे नीच कहाता है, ऊँच कर्त्तव्य करनेसे ऊँच कहाता है। भले बुरे कर्तव्यके अधीनसे ऊँच नीच हो जाता है, नीच ऊँच होजाता है । यह प्रकरण शास्त्रोंमें भी लिखाहै और प्रत्यक्ष देखनेमें भी आता है ।

भिन्न २ जाति आदि संज्ञा बांधनेसे क्या लाभ है ?

सर्व पुरुष एक कामको नहीं करसक्ते और सर्वकामोंको एक पुरुष भी नहीं करसक्ता । अनेकही काम हैं, अनेकही पुरुष हैं । इस वास्ते जुदे २ कामोंके अनुसारी पुरुषोंकी, जुदी जुदी संज्ञा बांधे विना व्यवहार सुख पूर्वक सिद्ध होता नहीं ।

ब्राह्मण कौन ह ?

इसवास्ते शास्त्र अध्ययनपूर्वक तथा शास्त्रोक्त कामोंके अनुष्ठान पूर्वक, पक्षपातरहित और मर्यादा बाहर लोभरहित,उपदेशक पुरुषोंकी ब्राह्मण संज्ञा की गई है, क्योंकि पक्षपातरहित उपदेशक पुरुषोंविना प्रजाके कल्याणरूपी उन्नति नहीं होती ।

क्षत्रिय किसे कहते हैं ?

वैसेही पक्षपातरहित धर्मपूर्वक युद्धमें उत्साही तथा अदालती प्रजापालक पुरुषोंकी क्षत्रियसंज्ञा की है क्योंकि ऐसे शूरोंमें विना प्रजाका कल्याण होता नहीं; प्रजाको चौरादि लूटलेवें ।

वैश्यनाम किनका है ?

व्यापार कर धन संग्रह करनेकी जिन पुरुषोंकी बुद्धि है,तिनकी वैश्यसंज्ञा की गई है,।इन विना भी प्रजाका कल्याण नहीं होता क्योंकि अन्य देशकी वस्तुओंको इस देशमें, इस देशकी वस्तुओंको अन्य देशमें, लेजाने विना प्रजा सुखी नहीं होती ।

शूद्र किसको कहते हैं ?

तैसेही काष्ठ, लोह, कपडे, दर्जी, धोबी, नाई, सोनी, आदि जो पूर्वोक्त तीन बुद्धिरहित जो पुरुष हैं; तिनकी शूद्रसंज्ञा की गई है। इन बिना भी प्रजाका कल्याण नहीं होता क्योंकि मकानादियोंबिना प्रजाको सुख कैसे होगा ? किंतु नहीं होगा।

नीच कैसे होता है ?

इन मध्ये जो नीचकामोंको करेगा सो नीच होगा अन्यथा नहीं जीवोंके जीवनवास्ते काम अनंत हैं, धर्मपूर्वक तिनकामोंको करनेसे नीच नहीं होता। जो जाति वा समाज नीच हो तो जज्जके बेटेको जज्जीअधिकार लायकी बिना मिलना चाहिये, पंडितके बेटेको पढे बिना पांडित्यताका अधिकार नहीं मिलता। इसप्रकार कर्मही प्रधान है। इसी वास्ते "स्वस्वकर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः" आप अपने धर्मपूर्वक नाम सचावट पूर्वक व्यवहार करते अंतःकरणकीशुद्धि सर्व जीवोंकी होती है यदि इनमें कोई नीच होता तो तिसके चित्तकी शुद्धि नहीं होनी चाहिये।

वर्णाश्रम विभाग प्रजाकी उन्नतिका कारण है।

इससे कर्त्तव्योंके अधीनही उत्तमादि व्यवहार रखनेसे प्रजाकी उन्नति तथा कल्याण होता है, क्योंकि नीचकर्म करनेसे नीचपद मिलनेका भय होताहै, ऊँच कर्म करनेसे ऊँचपद मिलताहै। इससंकेतसे सर्व जीव सर्वविद्यामें प्रसन्नशीलरहतेहैं, आलसीनहींहोते। आलसही बुद्धिकी क्षीणताका कारणहै, आलससे ही सर्वकामबिगडतेहैं।

परशुराम।

इतनेमें परशुराम आकर बोले हे सत्सभा! इन अधिकारीपुरुषोंको, कामादि क्षत्रियनाम शूरोंने (इक्कीस २१ को चारवार गननेसे चौरासी ८४ होताहै, सो चौरासीलक्ष योनियोंसे इन कामादिकोंने अस्मदादि जीवोंको) जीता था सो, अवमाया तत्कार्यसेपरेअर्थात

तिस माया तत्कार्य मनादिकोंका सच्चिदानंदस्वरूपसे जो साक्षी है सोई मेरा स्वरूप रामहै।इस दृढ निश्चयवान मुमुक्षु वा आत्मज्ञानी रूपपरशुरामने अब कामादिक्षत्रिय नाम शूरोंको (चौरासीलक्ष योनियोंमें जो शत्रुथे तिनका) निक्षत्रायण किया अर्थात् जीताहै। वा पूर्वोक्त लक्षणयुक्त जो मुमुक्षु परशुरामको ब्रह्मवेत्ता गुरुके इक्कीस वार अन्वय व्यतिरेक करके स्वजातीय, विजातीय, स्वगत भेदरहित वा देशकाल वस्तु भेदरहित जो सच्चिदानंद ब्रह्म एकहै; सोई बुद्धि आदियोंका ईशनाम नियामक तू चैतन्य सत् सुखरूप है। पश्चात् नववार उपदेशसे मुमुक्षु निक्षत्रायण नाम अज्ञान तत्कार्यका अत्यंताभाव वा मिथ्यात्व निश्चय करता है, यही अंतर परशुरामके निक्षत्रायणका अर्थ है।

राम।

(रामकथाका यथार्थ आध्यात्मिक आशय)।

पुनः दशरथके पुत्र राम आयकर सभामें बोले कि, हे पक्षपातरहित सभा!रामनाम है,सर्व नाम रूप वाङ्मनसहितदृश्यमें अवाङ्मनसगोचर जो अस्ति भाति प्रियरूप. आत्मा रम रहा है नाम पूर्ण होरहाहै, तिसका तिस अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष मनादिकोंके साक्षी रामको जो अपना स्वरूप संशयरहित जानता है,सोई योगी ज्ञानी है सो अज्ञानरूपीसमुद्रको,ज्ञानरूपी सेतु बनाके, अज्ञान तत्कार्य जो काम क्रोधादि राक्षस, तिनको स्वरूपसे पृथक्सत्ताका अत्यंताभाव वा मिथ्यात्व निश्चयरूप धनुषसे मारकरके, निष्कर्तव्यता बुद्धिरूप सीतासहित,प्रारब्धरूपी पुष्पकविमानपर बैठकर, इस संघातरूप अयोध्यामें जीवन्मुक्तिरूपी सिंहासनपर स्थित होते हैं,सोई पुरुष राम जानना पुनः रामने कहा।

ईश्वर भावनामें है।

हे जगत् हितचिंतक सत्सभा! सर्व स्त्रीमात्रमें प्रकृतिरूप

सीताको भावना करे और सर्व पुरुषमात्रमें सच्चिदानंद आत्मा ब्रह्मराम भावना करे, वा आपसहित सर्व स्थावर जंगम, स्थूल, सूक्ष्म, मूर्तामूर्ती, नाम रूप, जड चेतन सर्व सृष्टिमें केवल सच्चिदानंद हरि भावना करे तो सर्व दर्शन हरिकाही सर्व देशमें सर्वकालमें सर्व वस्तुमें इनको होता रहेगा क्योंकि परोक्ष वा अपरोक्ष, जड वा चैतन्य हस्त. पादादि अवयवों सहित, वैकुंठादि देशनिवासी वा ऐहिक (इस) लोक निवासी, ब्रह्मा विष्णु शिव राम कृष्ण नरसिंहादि मूर्तियोंमें, वा अन्य मूर्तियोंमें, ईश्वर भाव वा देवभाव, तुम्हारी भावनामेंही सिद्ध है। नहीं तो तिनमेंनिज ईश्वर भावकी स्फूर्ति नहीं कि, हममें ईश्वरभाव करो वा न करो। संघात और संघातके सर्व धर्म, सर्व सामग्री; दृश्यमान प्राणीमात्रमें समही है तथा अंतर्यामी मनादिकोंके साक्षी आत्मा भी सर्व संघातोंमें समही है (घटादिकोंमें आकाशवत्) इससे माया तत्कार्यविषे, जिस किसी व्यक्तिमें, ईश्वरभाव कल्पना है, सो पुरुषकी भावनाके अधीन ईश्वरता है, व्यक्तिके स्वरूपसे नहीं सो मायामें वा मायाके कार्य पंचभूत व्यक्तियोंमध्ये, किसीमें भी ईश्वरताका अंगीकार है तो शास्त्र, प्रमाणसे केवल पुरुषकी भावनाके अधीन ईश्वरता है और कोई नियामक है नहीं, क्योंकि निर्गुण निराकार ईश्वर, ध्यानकर्ताका निजात्मा है सो ध्यानमें आता नहीं, जो ध्यानमें आता है सो. माया वा मायाका कोई न कोई कार्यही होता है। इसवास्ते एक मूर्तिमें भी ईश्वरता शास्त्रप्रमाणसे, भावनाके अधीन है और सर्व सृष्टिमें भी ईश्वरता शास्त्रप्रमाणसे भावनाके अधीन है। जो एक मूर्तिमें शास्त्रप्रमाणसे ईश्वरभावसे पवित्रता मनकी होगी तो सर्व सृष्टिमें शास्त्र प्रमाणसे ईश्वरभावसे, पवित्रता क्यों न होगी? किंतु तिससे भी अधिक होगी

जैसे तुमको धातु पाषाणादिक एक मूर्तिमें,ईश्वरभावकरके मंदि-
रमें दर्शन करनेसे पवित्रता होतीहै, तथा तिसकालमें तुम कोई
भी असत संभाषणादि तथा काम क्रोध दंभकपट द्रोहादि पाप
कर्म नहीं करतेतैसे जब तुम स्थावर जंगमोंके देहरूपी मंदिरोंमें
शास्त्रप्रमाणसेःईश्वरभाव करोगे तो एक तो तुमको पवित्रताकी
अत्यंत उत्पत्ति होगी दूसरा मनवाणी शरीरसे किसीसे भी तुम
द्रोहादि तथा अनिष्ट सपादनादि न करोगे क्योंकि जो द्रोहादि
तुम किसीसे करोगेतो तुम्हारा सांगोपांग सर्वमें ईश्वरभावही नहीं
सिद्ध होगा । जो किसी एक दृढ भावनामें गोलमाल करोगे तो
सर्व भावनामें गोलमाल होगा क्योंकि सर्व भावना शास्त्रप्रमाण
होनेसे तथा अंतःकरणके धर्म रूप होनेसे समही है । एक भावना
माननी एक न माननी यह सिद्धांत घरके हैं । भावनाके दृढ
अदृढके भेदहैं, स्वरूपसे नहीं । जो आगे इच्छाहो सोई करो । यह
पक्षपातरहित रामके बचनसुनके सर्वसभाकेलोग श्लाघाकरने लगे।

कृष्ण कौन है ?

इतनेमें कृष्ण आकर बोले हे सर्व में आत्मोपमादर्शी अधिकारी
जनो ! अज्ञान तत्काय मनादि, यह संघात समष्टि व्यष्टि क्षेत्रहै,
इस क्षेत्रके न्यूनाधिक भावाभावको तथाइसके धर्मोंको जो चैतन्य
जानताहै,तिसका नाम क्षेत्रज्ञहै । सो क्षेत्रज्ञही तुम्हारा हमारातथा
सर्व जगत्का स्वरूप है।इस क्षेत्रज्ञको अपना आप स्वरूप जान-
नेसे सर्व अत्यंत दुःखोंकी निवृत्ति होतीहै । इस क्षेत्रज्ञका और
कोई क्षेत्रज्ञ है नहीं,इसीसे स्वयंप्रकाश स्वरूपहै । हे साधो ! जैसे
कपडेकी गीरनीमें एक इंजनसे आगे हजारों कलें जुदेजुदे कामकी
चलतीहैं,तैसे एक क्षेत्रज्ञरूप इंजनकरके देहरूपगिरनीमें इंद्रिय
प्राण मनादि जुदी जुदी आप अपने कामकी कला चलती हैं ।
हे सम्यक्दर्शी जानो ! यह स्वयंप्रकाश,क्षेत्रज्ञही, ब्रह्मा विष्णु

शिवादिकोंका, तथा तुम्हारा, हमारा सर्व जगत्का स्वरूप है इसीके जाननेसे मोक्ष होती है।

नरसिंहावतार।

एतनेमें नरसिंह आयकर बोले हे सत्संभापणादिदिव्यगुणवान सज्जनलोगों। अज्ञानरूप जीव हिरण्यकशिपु जानो। विषयबुद्धि तिसकी स्त्री जानो। मोक्षरूप आत्म दृढनिश्चयरूप प्रह्लाद जानो। काम क्रोध लोभ, वा सत्वादि तीनगुण, वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, वा स्थूल सूक्ष्म कारण, वा कायिक वाचिक मानसिक, भिन्न भिन्न क्रिया वा पृथिवी, आप, तेज, आध्यात्मिक, आधिदैविक आधिभौतिक; वा द्रष्टा दर्शनदृश्यादि, त्रिपुटीरूप त्रिलोकीका राजा जीवरूप हिरण्यकशिपु हुआ अर्थात् इनका अभिमानी हुआ। विषय इंद्रियके संबंधजन्य सुखको यज्ञ कहते हैं " यज्ञो वै विष्णुः" पूर्ण वस्तुका नाम यज्ञ है, भूमामेंही पूर्ण वस्तु सुखरूप है, इसवास्ते सुखको यज्ञ कहा है। तिस यज्ञको करते, जीवरूप हिरण्यकशिपु, देहरूप स्वर्गमें, सुख दुःखके अनुभवरूपभोगको भोगनेलगा अर्थात् तिनके धर्मोंमें तादात्म्यअध्यास किया। निश्चयरूप प्रह्लाद, सत्संगके प्रतापसे, विष्णु व्यापक चैतन्य जो जीवरूप प्रतिबिंबका स्वरूप बिंब है, तिसका भजन करताथा नाम अपना स्वरूप जानताथा। परंतु सगुणभक्तिकी उत्कर्षता दिखलाने वास्ते सगुणमूर्तिका निश्चय किया। तात्पर्य यह कि, अन्तःकरण रूप जलादिकोंमें, आत्मारूप सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, तिसका आगे, दिवालरूपीइंद्रियादिकोंमें भी पडताहै, सोसर्व प्रतिबिंबादिकोंकास्वरूपचैतन्यआत्मारूप बिंबसूर्यहीहै। इससे प्रतिबिंबजीव (हिरण्यकशिपु) रूप विद्वान् अपनेबिंबस्वरूप आत्मसूर्यको, अपरोक्ष जानताहै। देहाध्यासरूप निश्चयको प्रह्लादके पढानेवाला पडित जानना। मोक्षनिश्चय (प्रह्लादरूपमुमुक्षु) जीव हिरण्यक-

शिपु) रूप राजासे वा प्रारब्धसे वा कुसंगसे हुआ जो देहमें पीडारूप दंड तिससे (मोक्ष निश्चयरूप प्रह्लाद) न चलायमान हुआ। तथा इंद्रियरूप दैत्योंके, शब्दादि विषयरूप लोभ देनेसे भी, चलायमान न हुआ। तात्पर्य यह कि; गुरु शास्त्र स्वअनुभवसे हुआ यथार्थ निश्चयको, मुमुक्षु जन अनेक भयानक रोचक वाक्य सुनके भी त्यागते नहीं । वही मुमुक्षुताका दृढ निश्चयरूप प्रह्लादके प्रतापसे, अन्तःकरणरूपी थंभेसे, नृसिंहरूप बोध, उत्पन्न हुआ।

नाद और बिंदसे दो प्रकारकी सृष्टि।

तात्पर्य यह कि, वीर्य और नादसे दो प्रकारकी सृष्टि होतीहै। माता पिताके सकाशसे वीर्यसृष्टि होती है और गुरुके सकाशसे नादी सृष्टि होती है. क्योंकि प्रथम अज्ञान कालमें में वर्णी आश्रमी हूँ, मल मूत्रका शरीररूप भी मैं हूँ मैं सुखी दुःखीरूप हूँ, मैं कर्ता भोक्ता जन्म मरणवान्हूँ, मैं गमनागमनवान् हूँ, बंध मोक्षवान् हूँ; क्षुधा पिपासावान् हूँ, इत्यादि देहाध्यासके लिये निश्चय होता है। जो निश्चय अन्तर दृढ होता है सोई पुरुषका शरीर नाम स्वरूप होता है, अंत भी वही रूप होता है। कदाचित् पूर्वसंचित पुण्योंके वशसे सद्गुरुके उपदेशके सकाशसे पुनः यह निश्चय होता है कि, यह अज्ञान तत्कार्य असत् जड दुःखरूप जो समष्टि व्यष्टि संघात रूप स्थूल सूक्ष्म कारण देह है; सो देहरूप संघात अपने धर्मो सहित मैं नहीं और यह मेरा नहीं। यह पंचभूतरूप है, वा मायारूप है और मैं इनका साक्षी घट द्रष्टाके समान सत चित् आनंदरूप अवाङ्मनसगोचर आत्मा हूँ। यह पूर्वदेहरूप निश्चयको नाश करता है तिससे विलक्षण उत्तर कालमें आत्मरूप निश्चय शरीर उत्पन्न होता है। वही तिसकी गति होती है। सो आत्मनिश्चय नृसिंहरूप बोधने जगत् सहित जीवत्वरूप हिरण्यकशिपुको

शास्त्रोंमें हमारा त्याग लिखाहै तो दुःख दायक अधिक अंशकाही त्याग लिखाहै, सामान्यका नहीं। सामान्य से हमारा त्याग हो ही नहीं सकता,क्योंकि ज्ञानइच्छा और यत्नपूर्वकही सर्वजीवोंके प्रवृत्ति निवृत्तिरूप, संघातका व्यवहार होता है। शरीर होते कामादि कैसे त्यागे जावेंगे? शरीरके कारण होनेसे, जो इससे अन्यथा मानोगे तो संसार खाता ही उठ जावेगा क्योंकि समूह अंतःकरण की वृत्तियां रूप इच्छाका नाम काम है, तिन कामरूप इच्छाओं के मध्यमें,स्त्रीके भोगने की इच्छा का नाम भी काम है, सो स्त्री संभोग काम गृहस्थ विमुख संन्यासीको नहीं चाहिये,गृहस्थीको तो मना नहीं। अधर्म से भोग मना है,जो धर्मसे स्त्री संभोग मना हो तो आप लोगोंका दर्शन कहांसे होगा? हां अधिक निज स्त्रीसे भोग करनेसे और तो कोई दोष है नहीं, परंतु शरीरके नाताकती, वीर्यक्षीण, संततिका संशय और शरीरमें रोग आदि परमदोष हैं इसवास्ते मर्यादासे अधिकका त्याग है।

क्रोध।

तैसे ही पूर्व तथा वर्तमानमें भी किसी हेतुसे वर शाप लोगोंको लोग भी देते सुनते और देखते हैं। सो क्रोध मोह अर्थात् रागद्वेष विना हो नहीं सक्ता। यह कायदा ही है जो निज अनिष्ट संपादन करनेवाले पर द्वेषरूप क्रोध करना ही पडताहै। कदाचित् सात्त्विकादि हेतु से कोई कुरूप द्वेषरूप अनिष्ट करता पुरुषपे क्रोध नहीं भी करता परंतु हमेशःका नियम नहीं। यह अनुभव सिद्ध बात है।

मोह।

तैसेही मनवाणी शरीरसे वा धनादिसे सेवक पुरुषपर पूर्व तथा अबभी, ज्ञानी भी प्रसन्न होते सुनते देखते हैं,किसी रीतिका राग रूप मोह विना दूसरे पर प्रसन्नता होती नहीं,यहभी अनुभव सिद्धहै

मारा नाम मिथ्यात्व निश्चय वा अत्यंत अभाव निश्चय किया। किंचित् काल पीछे नृसिंहरूप बोध आप भी शांत हो जावेगा, जैसे अग्नि काष्ठादि तृणोंको जलाके आपही शांत होजाती है ।

नरसिंह शब्दका अर्थ ।

तात्पर्य यह कि, नरनाम देह बुद्धि त्यागके,सिंहनाम आत्मा-नात्मा नामा विचारसे आत्मबुद्धि होनी यही नृसिंह शब्दका अर्थ है । इंद्रियरूप देवता बोधरूप नृसिंहकी स्तुति करते हैं । हे देवात्मा । तुझ चैतन्य सत् सुख साक्षीकी सत्ता स्फूर्ति करके ही,हम जड मन इंद्रियादि संघातकी चेष्टा होती है । हम वाङ्मनसगोचर दृश्यकी, तुझ अवाङ्मनसगोचर द्रष्टासेही सिद्धि होती है । हम असत् जड दुःख रूप भी; तुझ सत् चित् आनंदसेही सत् चित् सुख सरीखे होरहे हैं इत्यादि । इससे हे नर बुद्धिरहित आत्मरूपसिंह बुद्धिमान् अधिकारी जनो! तुम भी जीवत्वरूप हिरण्यकशिपुको मारके, बुद्ध्यादिकोंके साक्षी, नृसिंह आत्माको अपना आप स्वरूप जानो । तिससे पृथक् सर्वको अनित्य जानो ।

काम क्रोधादि ।

इतनेमें काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि मनुष्यमूर्ति धारकर तिस सभामें आये और कहने लगे । हे प्रजा!हमारा सज्जन लोगोंकी रीतिसे अनुष्ठान करता, कदाचित् भी,राजादि दण्डका अधिकारी नहीं देखनेमें आता, उलटा धर्मात्मा बाजता है । अधर्म रीतिसे हमारा अनुष्ठान करता ही राजादि दण्ड पाता देखाहै अन्य नहीं। दृढ कल्पनाके अनुसारही अदृष्ट कल्पनाकी जाती है, क्योंकि पक्षपातरहित न्यायकारी पुरुषोंको संकेतरूप कायदा; जैसे इस भारतवर्षमें है, तैसेही अन्य देशोंमें भी है। तैसेही उम्मेद है कि, परलोकमें भी होगा । जो अन्यथा है तो अन्यथा है, न्याय नहीं। जो

शास्त्रोंमें हमारा त्याग लिखाहै तो दुःख दायक अधिक अंशकाही त्याग लिखाहै, सामान्यका नहीं। सामान्य से हमारा त्याग हो ही नहीं सकता,क्योंकि ज्ञानइच्छा और यत्नपूर्वकही सर्वजीवोंके प्रवृत्ति निवृत्तिरूप, संघातका व्यवहार होता है। शरीर होते कामादि कैसे त्यागे जावेंगे ? शरीरके कारण होनेसे, जो इससे अन्यथा मानोगे तो संसार खाता ही उठ जावेगा क्योंकि समूह अंतःकरण की वृत्तियां रूप इच्छाका नाम काम है, तिन कामरूप इच्छाओं के मध्यमें,स्त्रीके भोगने की इच्छा का नाम भी काम है, सो स्त्री संभोग काम गृहस्थ विमुख संन्यासीको नहीं चाहिये,गृहस्थीको तो मना नहीं। अधर्म से भोग मना है,जो धर्मसे स्त्री संभोग मना हो तो आप लोगोंका दर्शन कहांसे होगा ? हां अधिक निज स्त्रीसे भोग करनेसे और तो कोई दोष है नहीं, परंतु शरीरके नाताकती, वीर्यक्षीण, संततिका संशय और शरीरमें रोग आदि परमदोष हैं इसवास्ते मर्यादासे अधिकका त्याग है।

क्रोध।

तैसे ही पूर्व तथा वर्तमानमें भी किसी हेतुसे वर शाप लोगोंको लोग भी देते सुनते और देखते हैं। सो क्रोध मोह अर्थात् रागद्वेष विना हो नहीं सक्ता। यह कायदा ही है जो निज अनिष्ट संपादन करनेवाले पर द्वेषरूप क्रोध करना ही पडताहै। कदाचित् सात्त्विकादि हेतु से कोई पुरुष द्वेषरूप अनिष्ट करता पुरुषपे क्रोध नहीं भी करता परंतु हमेशःका नियम नहीं। यह अनुभव सिद्ध बात है।

मोह।

तैसेही मनवाणी शरीरसे वा धनादिसे सेवक पुरुषपर पूर्व तथा अबभी, ज्ञानी भी प्रसन्न होते सुनते देखते हैं,किसी रीतिका राग रूप मोह विना दूसरे पर प्रसन्नता होती नहीं,यहभी अनुभव सिद्धहै

लोभ ।

तैसेही लोभ अनेक रीतिका है, किसी न किसी निज प्रयोजनरूप लोभ को लिये ही पुरुषों की प्रवृत्ति निवृत्तिरूप अनेक रीति के व्यवहार में प्रवृत्ति होती है। प्रयोजन बिना मूढ़ पुरुष भी निज कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। ऐसा नहीं मानोगे, तो संसार खाता ही उठ जावेगा इत्यादि।

अहंकार ।

तैसेही अहंकार बिना शरीरकी रक्षा होती नहीं, तथा खान पानादि व्यवहार भी सिद्ध होता नहीं, क्योंकि अहंपूर्वकही त्वं-आदि व्यवहार होते हैं और जबलग शरीर है तबलग अहं त्वं व्यवहार होता ही रहेगा अन्यथा नहीं होगा। यह बात सर्वको अनुभवसिद्धहै, ग्रंथविस्तार भयसे विषेष लिखा नहीं।

"अतिसर्वत्र वर्जयेत्"इस न्यायसे मर्यादासे अधिकही कामादिकों का त्याग है। इससे हे अधिकारीजनो! आप अपने वर्णाश्रमके अनुसार, धर्मपूर्वक, लक्षों तरहके, विषय इंद्रिय सम्बंधजन्यसुख दुःख का, तथा काम क्रोधादिकों का भोग भोगो नाम अनुभवकरो, तुम किंचिन्मात्र भी दंडके अधिकारी (इस लोक में तथा परलोक में) नहीं होगे। परंतु सज्जन पक्षपात रहित पुरुषों के संकेत (धर्मरूप कायदे) को उल्लंघन करोगे तो इसी लोक में पकडे जाओगे। आगे जो इच्छा हो सो करो।

वैरागादि दैवी गुण ।

इतनेमें वैरागादि दैवी गुण मनुष्य आकृतिधारकरआये और कहने लगे हे गुरु! शास्त्रमें श्रद्धावान् संतो! वैरागादि गुणभी शरीर रक्षापूर्वकही धारणकरना चाहिये क्योंकि शरीरकीआरामदारीसेहीसर्व धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ सिद्धहोतेहैं अन्यथा नहीं। "अ-सर्वत्रेति वर्जयेत्" देखो अति यज्ञ दानादि शुभ कर्म करनेसे बलि

पातालको और युधिष्टिर वनवासको गये हैं।इससेअतिकोई बातकी भीकरनीनहीं।जिनंजिनकामोंसे पापरूपदुःखभविष्यत्वावर्तमान कालमें होवे,तिन तिन कामोंकाहीत्यागकरना रूप वैराग्य चाहिये क्योंकि सत्वगुणके कार्य,चित्तकी एकाग्रतापूर्वक जो जो मन वाणी शरीरसे लौकिक सुख वा पारलौकिकसुखवास्ते शुभ कार्य करोगे तो अत्यंत वह कार्य फलवान होवेगा।सो चित्तकी एकाग्रता सत्वगुणके अधीन है क्योंकि एकाग्रता सत्वगुणका कार्य है शास्त्री वा अशास्त्री साधनोंसे अत्यंत पीडितशरीरमें,विशेष सत्वगुण होता नहीं, तमगुण वा तमगुणके कार्य क्रोध आलस्य अहंकारादिही होते हैं क्योंकि यह मनका स्वभावहै,जो जो वस्तु मनके (इंद्रिय द्वारा वा अंतरही) सन्मुख होवे, तिसके आकारही मन होजाता है। सो दुःखपीडित कालमें दुःखही सन्मुख है सुख नहीं; इससे तिस कालमें दुःखाकारही मन होवेगा, सुखाकार नहीं । इसीकारण अत्यंत शरीर पीडनपूर्वक, वैरागादि तपस्या करनी नहीं चाहिये,यह नहीं कि,हम अत्यंत पीडित होकर हरिको याद करेंगे, तबही हरि अंगीकार करेगा, जो हम सुखपूर्वक हरिको याद करेंगे तो ईश्वर अंगीकार नहीं करेगा यह ज्ञाननेत्रहीन मूर्खोंकी दृष्टिहै, किंतु सच्चे दिलसे ईश्वर प्रेम चाहता है, शरीरका पीडन अपीडन नहीं चाहता।

धर्माधर्म।

(श्रेष्ठ अश्रेष्ठ नीच ऊंच, कुलीन अकुलीन, भले बुरेका विचार.)

इतनेहीमें,दैवी आसुरी गुणरूपी शुभाशुभकर्मोंके पुत्र धर्माधर्म मनुष्य रूप धारके इसलिये आये और बोले।

अपना सदाचरणही कल्याणका कारण है कोई धर्म (मजहब) नहीं।

हे धार्मिक सज्जन पुरुषो! हम दोनोंका किसीसे भी पक्षपात नहीं

शुभाशुभ कर्मोंसे हमारी उत्पत्ति है । इसलिये जो कोई हिंदू वा मुसलमान व कोई अन्य जाति, सत्संभाषणादि शुभकर्म अथवा असत् संभाषणादि अशुभ कर्म करैंगे तो तत् तत् जन्म, हम धर्माधर्म, कर्मकर्ताको, पक्षपातरहित, न्यायपूर्वक सुख दुःखका अनुभव रूप फल भुगावेंगे इसमें किसी हिंदू मुसलमानका पक्षपात न होगा ।

उत्तमता मध्यमता धन और कुल आदिके अधीन नहीं।

तुम लोग प्रत्यक्ष देखो। झूँठा लुच्चा पुरुष, बडा कुलवान तथा धनवान भी बाजता है तो भी सर्व जगहमें तिरस्कारही पाता है और जो सच्चा ईमानदार गरीब किसी जातिका भी क्यों न हो परंतु वह पुरुष सर्व स्थानमें सत्कार ही पाता है, अन्य नहीं । चोरी किसी जाति पंथका करेगा पकडा जावेगा और रीत्यनुसार तिसको सजा मिलेगी । अन्यथा सजा नहीं होगी । जो जाति और भेष प्रयुक्त,शुभाशुभ कर्मोंका, सुखदुःखरूप फल होता तो उत्तमता मध्यमता जातिके अधीन होती है सो ऐसा देखनेमें नहीं आता । इससे उत्तमता मध्यमता कर्मके अधीन है ।

नीच कौन है ?

देखो हजारों देशोंकी बोलियोंमें,आप अपनेशास्त्रके संस्कारोंके अनुसार,ईश्वरका भजन तथा ईश्वरनिमित्तभूँखे प्यासे दुःखी जीवोंको,सर्वमनुष्य अन्न जलादि अर्पण करते हैं सो सर्वका भजन तथा दान ईश्वर अंगीकार करता है। यह नहीं कि,एकका लेता है एकका नहीं । जो विषमदर्शी है सो हमारा भाई बंधु जीव है, ईश्वर नहीं क्योंकि सर्व सृष्टि ईश्वररूपी पिताके बाल बच्चे हैं। तथा ईश्वर सर्वज्ञ है।इससे जिस जिस समाज और जातिके पुरुषोंका भजन दानादि किया हुआ ईश्वर अंगीकार नहीं करे, तिसको नीच जानना

चाहिये। तथा राजा अपराध विना जिसको दंड देवे अर्थात् उत्तम जातिसंज्ञक जुलमीको त्यागके, तिसके बदले अन्यको दंड दे तो उसको नीच जानना चाहिये। सो ऐसे देखनेमें आता नहीं।

आप अपने समाज शास्त्रके संकेतसे सर्व संमत, सत्संभापणादि रूप धर्मपूर्वक, मन वाणी शरीरसे लौकिक वा पारलौकिक कर्म करनेसे सर्वके अंतःकरणकी शुद्धि होती है। "स्वेस्वेकर्मण्यभिरतः संसिद्धिंलभतेनरः" इससे मनशुद्धिपूर्वकही, सगुण वा निर्गुण ईश्वरकी उपासना होती है। निश्चल मनमेंही ज्ञान होता है। ज्ञानसेही मोक्ष होता है। इससे सर्व जीव समही हैं, व्यवहार भिन्न भिन्नहैं। सो व्यवहार एक शरीरमें भी इंद्रियभेदसे भिन्नभिन्न हैं। तो भिन्न भिन्न शरीरोंमें, भिन्न भिन्न व्यवहारहैं इसमें कहनाही क्या है? परंतु गुण दोप प्रयुक्त उत्तमाता, नीचता, श्रेष्ठ अश्रेष्ठ कर्तव्यके अधीन है, शरीर जाति समाजके अधीन नहीं।

उत्तमता संपादन करनेवालेका कर्त्तव्य।

इससे जिसको उत्तमता संपादन करनेकी अभिलापा हो सो सत्संभापणादि, मुझ धर्मसे निरंतर प्रीतिकरे और असत् संभापणादि अधर्मसे अरति करे।

प्रयागादितीर्थ।

इतनेमें प्रयागादि तीर्थ आये। प्रयागने कहा हे महाशयो! तीर्थनाम पवित्रताका है; सो पवित्रता मनको, सत्संभापणादि पवित्रतीर्थोंमें स्नान अर्थात् उनको धारण करनेसे होतीहै, अन्यथा नहीं। जो पुरुप जाग्रत् स्वप्न सुपुप्ति; वा प्रिय, मोद, प्रमोद, सुपुप्ति अरंभमें वृत्ति, वा भूत, भविष्य वर्तमान काल, वा इन जाग्रतादिकोंमें होनेवाले स्थूल, सूक्ष्म, कारण, शरीर वा सत्व, रज, तम वा द्रष्टा, दर्शन, दृश्य वा ध्याता ध्यान, ध्येय, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय; ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयादि, त्रिपुटीरूप त्रिवेणीमें स्नान

करता है अर्थात् "मैं सच्चिदानंद इन जाग्रंतादि त्रिपुटीरूप त्रिवेणी दृश्यका साक्षी आत्मा हूं" ऐसे दृढ निश्चयरूप जलमें जो स्नान करता है सो पवित्रात्मा जीवन्मुक्त हम लोगोंको भी अपनी चरणधूरि कर पवित्र करता है।

एकादशी आदि व्रत।

(व्रत और महाव्रत.)

इतनेमें मनुष्य मूर्ति धारकर एकादशी आदि व्रत आकर बोले। हे सर्व जगत्के मित्रो! एक केवल व्रत है और एक महाव्रत है। महाव्रतोंके अन्तर्भूतहीं सर्व व्रत आजातेहैं, जैसे नव गनतीके भीतरही सर्व गिनती आजाती है।

पञ्चमहाव्रत।

(१ सत्य, २ अस्तेय, ३ अहिंसा, ४ ब्रह्मचर्य, ५ शास्त्र आज्ञा पालन)

सो देशकाल वस्तु भेदरहित सत्य बोलना १, चोरी (मन, वाणी, शरीरसे) न करना २, मन वाणी शरीरसे परप्राणीको पीडित न करना ३, निज पाखानेमें पेशाब करना नाम ब्रह्मचर्यसे रहना ४, मन वाणी शरीरसे सत्य शास्त्रके विरुद्ध कामोंको न करना ५, यह पंच महाव्रत हैं। तात्पर्य यह कि; तीर्थस्थानमें झूंठ नहीं बोलना, अन्यत्र बोलना, एकादशीके दिन सत्य बोलना अन्यत्र नहीं, साधु महात्माके सन्मुख झूंठ नहीं बोलना, अन्यत्र बोलना, (ऐसेही हिंसा आदिकोंमें भी जानलेना) ऐसा नहीं, किन्तु सर्वकालमें सर्वदेशमें सर्ववस्तुमें सत् संभाषणादि महाव्रत करना चाहिये।

चार महाव्रत।

(चारमानसीपाप १ अमित्रता २ अमुदिता ३ करुणा ४ कुसंगति है और जिनके निवृत्तिकी औषधी ४ महाव्रत १, मैत्री २, मुदिता ३, करुणा ४ उपेक्षाहैं)

वा यह महाव्रत करना चाहिये चारही प्रकारके मानसीतापहैं, चारही तिन तापोंके दूर करनेकी मैत्र्यादि औषधी हैं। सारांश

यह कि,सर्व धनादि सामग्रीसे अपने तुल्य जीवोंमें मित्रता करनी, इससे अमित्रताजन्य तापकी निवृत्ति होगी।तैसे ही अपनेसे अधिक सामग्रीवाले मनुष्योंमें मुदिता करनीं,अमुदिताजन्य तापकी हानि होगी। तैसे दुःखी जीवोंमें करुणा करनी, अकरुणाजन्य तापकी हानिहोगी।तैसेही कुसंगति जीवोंमें उपेक्षा करनी अर्थात् अनिंदापूर्वक तिनका त्याग करना जिससे कुसंगतिजन्य दुःख न होवे।

नेवमहाव्रतोंका फल।

हे अधिकारी जनो!पूर्वोक्त नव महाव्रतोंके अनुष्ठानवाले मनुष्यमात्रको, इसी लोकमें मानसीतापोंकी हानि तथा अभय और सर्वमें सत्कारादि प्रत्यक्ष फल सर्व विद्वानोंको अनुभव है। अंतःकरणकी शुद्धि भी इनही व्रतोंसे होती है,परमधर्मभी यही है,महाकर्मभी यही है और यही परममोक्षके साधन हैं। इनहींके अंतर्भूत सर्व पूज्य माननीय कर्म धर्म आचारहैं।इनहींके पालनसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका अधिकारी होता है। यही सर्वसंमत सिद्धांत है।

अन्य पंचमहाव्रत!

दृष्ट कल्पनाके अनुकूलही अदृष्ट कल्पना होती है। इससे पर लोकमेंभी इनहीका महत्त्व होगा।

वा यह पंचमहाव्रत जानना। पंच अन्नमयादि कोशोंका, तथा पंच पृथिवी आदि स्थूलसूक्ष्म भूतोंका,तथा पंचज्ञानेन्द्रिय तथा पंचकर्मेंद्रिय; तथा चतुष्टय रूप, मन बुद्धि चित्त अहंकार और इन सर्वके कारण माया, तथा पंचप्राण, तथा पंच शब्दादिक विषयादि,ये सब पंचक मुझ सच्चिदानंद आत्माके नहीं और मैं इनका नहीं किन्तु यह माया तत्कार्य भ्रमरूप है, मैं इनके न्यूनाधिक भावाभावका द्रष्टा हूँ (घटद्रष्टाके समान) इस दृढ निश्च-

१ उपरोक्त-१ सत्य,२ आस्तेय, ३ अहिंसा, ४ ब्रह्मचर्य,५ धर्मपरायणता, मैत्री ७ मुदिता, ८ करुणा ९ उपेक्षा-यही नव व्रत हैं।

यका नाम पंचमहाव्रत है। इनका अनुष्टान करनेवाला जीवताही मुक्त होता है।

सप्त समुद्र।

इतनेमें मनुष्य मूर्ति धारके सप्तसमुद्र आकर बोले हे साधो! इस शरीर संघातरूप पृथिवीमें रस रुधिर, मेद, मांस, अस्थि, मज्जा, वीर्यरूप धातु सप्तसमुद्र हैं। वा जीवरूप पृथिवीमें, आवरण, विक्षेप, ज्ञान अज्ञान, गमनागमन, निरंकुशता, सप्त अवस्थारूप सप्त समुद्रहैं। वा सर्व नामरूप प्रपंच रूप सप्त पदार्थ रूप सप्त समुद्र हैं। वा भूरादि सप्तव्याहृतियां सप्त समुद्र हैं वा सप्त स्वर रूप सप्त समुद्र हैं। जैसे आकाश सप्त समुद्रोंमें व्यापक भी असंग है तैसे आत्मा सप्तव्याहृति आदि सप्त समुद्रोंमें व्यापक भी असंग है। सो पूर्वोक्त समुद्र मुझ सच्चिदानंद आत्माके नहीं और मैं आत्मा इन का नहीं; मैं इनके सर्व न्यूनाधिक भावाभावका द्रष्टा हूँ (घट द्रष्टाके समान) वा मुझ अस्ति भाति प्रिय आत्माके पूर्वोक्त समुद्र हैं मैं इनका हूँ; जैसे स्वप्नसृष्टि स्वप्नद्रष्टामें कल्पित होनेसे, स्वप्नद्रष्टाकी है। स्वप्नद्रष्टा स्वप्न प्रपंचका स्वरूप होनेसे स्वप्न द्रष्टा स्वप्नसृष्टिका है। यह विचार पूर्वक जो दृढ निश्चय रूप जहाजपर बैठे तो ब्रह्मनेष्ठी ब्रह्मश्रोत्री गुरुनावकसे पूर्वोक्त समुद्रोंते पार नाम बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते, निष्कर्तव्यता बुद्धि प्राप्त होगी।

वीरभद्र।

(दक्षप्रजापति और यज्ञध्वंस)

इतनेमें वीरभद्र आकर कहने लगे-हे सदसद्विवेचनीय सभा! प्रपंच कारण कार्य शरीररूप संघात यज्ञशालाहै। जीव दक्षप्रजापति है चक्षु आदि इंद्रिय ऋत्विज हैं। शब्दादिक विषय कुंडहै। चक्षु आदि इंद्रियोंकी दर्शनादि वृत्तियां शाकल्य आहुतीकी सामग्री है

विषय इंद्रिय संबंधजन्य सुखदुःखका अनुभवी जीवरूप अन्तःकरण ब्रह्माहै, विवेक और ब्रह्म विद्या महादेव पार्वतीहैं। तिनोंसे वीरनाम अज्ञान तत्कार्य निजशत्रुको मिथ्यात्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चय रूप हनन करने वाला और दुःखरहित कल्याण स्वरूप वीरभद्ररूप सम्यक् ब्रह्मात्मबोध उत्पन्न होताहै। सोपूर्वोक्त कारण कार्य संघात रूप यज्ञशाला सामग्री सहित को ध्वंस करताहै अर्थात् मिथ्यात्व वा अत्यंताभाव निश्चय करता है यही दक्षप्रजापतिके यज्ञध्वंस का आशय है।

सहस्रबाहु।

हजारों युद्धादि विद्या रूप भुजा सयुक्त होने से सहस्रबाहु कहते हैं। वा हजारों बंधुरूप भुजा होने से सहस्रबाहु है। सो सहस्रबाहु आकर कहने लगा हे सन्त मंडली! हजारों ही हैं वासना वा इच्छारूप भुजा जिसकी, ऐसा मनरूप अहंकार सहस्रबाहु है। तिसको पर नाम परमात्मा तत्पदका लक्ष्यार्थ, स (शु) नाम सोई मेरा त्वंपदका लक्ष्यार्थ प्रत्यक् आत्मा स्वरूप राम है। इस ब्रह्मात्मा एकत्व ज्ञानीरूप निश्चय परशुरामने हीं, पूर्वोक्त सहस्रबाहुरूप देह अभिमान को और आसुरी संपदा निज परिवार सहित मारा है नाम जगतको मिथ्यात्व निश्चय किया है सोई सहस्रबाहु है। कोई मनुष्य सहस्रबाहु नहीं हो सक्ता।

वाराह भगवान्।

वाराह संज्ञा वाले भगवान् का विष्णु अवतार हुआ है, इस वास्ते विष्णु अवतार को वाराह बोलते हैं। सो वाराह भगवान् आये और कहने लगे। हे यथार्थ वक्ताओ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका, जाग्रत् (विद ज्ञाने) जो वेदरूप चार ज्ञान हैं। वा अंडज; जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज चार खानिका जो जाग्रत् स्वप्न में चार वेद रूप चार ज्ञान हैं; वा जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरी

याका जाग्रत् स्वप्नमें जो चार वेदरूप चार ज्ञान हैं; वा समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारणके जाग्रत् स्वप्नमें जो चार वेदरूप चारों ज्ञान हैं; वा प्रमाता चेतन, प्रमाण चेतन, प्रमेय चेतन, फल चेतन, यह एक ही चेतन की उपाधि भेद से, जाग्रत् स्वप्नमें चार वेदरूप चार ज्ञानरूप परमान हैं, इत्यादि सभास अंतःकरण, जीव रूप हिरण्याक्ष, वा शबल ब्रह्मरूप हिरण्याक्ष, सुषुप्ति रूप समुद्रमें वा अविद्यारूप समुद्रमें; व्यष्टि अहंकाररूप, वा समष्टि अहंकाररूप पृथिवीको महाप्रलय रूप (माया रूप) समुद्रमें, वा तूला विद्यारूप पृथिवीको अज्ञान रूप समुद्रमें, सुख दुःख रूप भोग देनेवाले कर्म,जाग्रत् स्वप्नमें उपराम निमित्तसे पूर्वोक्त चार ज्ञानरूप चार वेद सहित, व्यष्टि अहंकाररूप पृथिवीको, पूर्वोक्त सभास अंतःकरण जीवरूप हिरण्याक्ष लेके प्रवेश करजाता है। पुनः जाग्रत् स्वप्नमें, सुख दुःख के अनुभव रूप भोगनेवाले, अदृष्ट रूप वाराह,पूर्वोक्त समुद्रोंसे, वेदरूप ज्ञानोंका, तथा पूर्वोक्त पृथिवी का, जाग्रत् स्वप्न में प्रादुर्भाव नित्य नित्य करता है। वा अविवेक रूप हिरण्याक्ष पूर्वोक्त वेदरूप सम्यक् ज्ञानोंको लेके, अविद्यारूप समुद्रमें प्रवेश करता है। पुनः जीवके पुण्योंके वशसे,विवेकरूप वाराह,अविवेकरूप हिरण्याक्षको मारके अविद्यारूपसमुद्रसे उद्धारनामविचारकर, सम्यक् वेदरूपज्ञानोंको प्रवृत्त करता है यही वाराह औतार का यथार्थ आशय है।

शेषनाग।

इतनेमें शेषनाग आकर कहने लगे। हे साधो! नाग नाम समष्टि व्यष्टि माया तत्कार्यकाहै।तिसकानेति नेति इस श्रुतिके वाङ्मनस-गोचर माया तत्कार्यको निषेध करनेसे जो अबाधभूत अवाङ्मनस-गोचर सच्चिदानंद शेष रहताहै सो तिसका नाम शेषनागहै। सो पूर्वोक्त शेषनाग तुम्हारा,हमारा तथा ब्रह्मासे लेकर चींटीतक सब जीवोंका निजात्मा स्वरूप है। वही इस माया तत्कार्य, जगत

रूप नागका आधार है। कोई अस्मदादि मूर्तिमान् इसका आधार नहीं क्योंकि जो जिसका स्वरूप होताहै सोई तिसका आधार होता है। जैसे स्वप्नसृष्टिका स्वरूप स्वप्नद्रष्टा है, सोई तिसकाआधार है; कोई भी स्वप्नपदार्थ आपसमें आधार आधेय भाव नहीं। जैसे भूषण तरंग सर्प दंडादिकोंका स्वरूप; सुवर्ण, जल, रज्जुआदि स्वरूप हैं, सोई तिनका आधार है, भूषण तरंग सर्पादि आपसमें आधार आधेय भाव नहीं। तैसेही नाम रूप मुझ मूर्ति सहित जगत्का अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्माही स्वरूप है, सोईइसका आधार है नाम रूप पदार्थ आपसमें आधार आधेय भाव नहीं।

रावण।

पुनः रावण आकर बोला हे विचारशील सभा! यह शरीररूप लंका देश है, रजोगुण अविवेकरूपरावणहै। कायदे बाहर सुख दुःखके अनुभव रूप भोग विलासोंमें अनुराग तिसका राज्यहै। श्रोत्रज ज्ञान, त्वाच ज्ञान, चाक्षुप ज्ञान, रसना ज्ञान, घ्राणजज्ञान, अनुमिति ज्ञान, शाब्दी ज्ञान, उपमिति ज्ञान, अर्थापत्ति ज्ञान, तथा अभाव ज्ञान; १० यही उपाधि भेदसे, असम्यक् वृत्तिरूप ज्ञान, रजोगुण अविवेकरूप रावणके दश १० शिर हैं। नहीं तो अस्मदादियोंके समान मनुष्योंका सम्यक् ज्ञान रूप एक ही शीश है। पांच ज्ञानेंद्रिय ५ पांचकर्मेंद्रिय५पांच प्राण ५, चतुष्टय अंतः-करण ४ और एक प्रवृत्ति निवृत्तिरूप क्रिया १यही वीस२० भुजा हैं। मान दंभादि तथा अति कठोरतादि आसुरी गुणरूप राक्षस तिसकी सेना है। तमोगुणरूप कुंभकर्ण और सत्त्वगुण रूप विभी-षण तिसका भाई है, सो रजोगुण अविवेकरूप रावण विवेकरूप रामकी ब्रह्मविद्यारूप सीता हरणकरता है। सो विवेकरूप राम अमानित्वादि तथा अति कृपालुतादि, दैवी गुणरूप वां,ें

सेना सहित, तथा तत् त्वंपदका जो लक्ष्यार्थ ब्रह्मात्म एकत्व स्वरूप है तिसीमें है मनकी वृत्ति जिसकी तिस लक्ष्मण सहित, नाम नवीन अपरोक्ष ज्ञानसंयुक्त, संसाररूप समुद्रमें विचाररूप सेतु बांधके, अविवेकरूप रावणकी राजधानी अंतःकरणरूपी लंकामें प्राप्त होकर सत्त्वगुणरूप विभीषणकी सहायतासे, तम-गुणरूप कुम्भकर्ण सहित, तथा दंभादि आसुरी सेना सहित रजोगुण अविवेकरूप रावणको विवेकरूप राम हनन करता है। पुनः वाङ्मनस सहित; नाम रूप वाङ्मनसगोचरका, सच्चिदानंद अवाङ्मनसगोचर मैं द्रष्टा आत्माहूँ; अपने सहित सर्व वासुदेव है वा अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे भिन्न; सर्व नामरूपमें, मिथ्यात्वनिश्चय वा अत्यंताभाव निश्चयरूप बुद्धि अर्थात् ब्रह्मविद्या रूप सीताके सहित, प्रारब्ध क्षयतक, शरीररूपी अयोध्यामें, जीवन्मुक्तरूपी तख्तपर, योगी ब्रह्मवित् विराजमान होताहै। परन्तु हे प्रियदर्शन। पूर्वोक्त राम रावण सेनासहित; इनकी न्यूनाधिक भावाभाव; जिस साक्षी चैतन्य, सत् सुखरूप आत्मासे सिद्ध होते हैं सोई वस्तु राम, तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का स्वरूप है।

सप्तव्याहृति।

भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् तात्पर्य यहकि, ब्रह्मलोकादि सप्तव्याहृतियां मनुष्यआकृति धारकर तिससभामें आयकरकहनेलगीं, हे समदर्शियो। जैसे भूर्व्याहृति अर्थात् इस पृथिवी लोकमें, जोजोव्यवहारहैं, सोईसोईसर्वब्रह्मलोकादि व्याहृतियोंमें व्यवहारहैं विलक्षण नहीं क्योंकि सबकी भूत भौतिक सामग्री तुल्यहीहै। जैसे षट्प्रकाररस तथा षट्प्रकारका कृष्णादिरूप यहां है; तैसे ब्रह्मलोकादिकोंमें भी है। जैसे इहां शब्दादिविषय और श्रोत्रादि इंद्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभव, रागद्वेष, ईर्षा निंदादि, खान पानादि, षड्भाव विकार षड्ऊर्मीसंयुक्त शरीरहै। तथा अपने अनु-

कूलमें रागपूर्वक प्रवृत्ति, प्रतिकूलमें द्वेषपूर्वक निवृत्ति है; तैसेही वहां है। जैसे यहां दैवीगुणोंकी स्तुति है, आसुरी गुणोंकी निंदा है तथा तिन गुणोंका न्यूनाधिक भाव शरीरोंमें है, तैसे ब्रह्मलोकादिकोंमें है। जैसे यहां नदियां, समुद्र, तालाब, पर्वत, वनस्पति हैं; तथा गौ, बैल जमीन फल है, तैसे वहाँहै। जैसे यहां स्त्री पुरुषका व्यवहार होता है तथा नाक कानादि अवयव स्त्री पुरुषोंके जिन जिन स्थानमें यहां शोभा देते है; अन्यथा अशोभा है, तैसे ही ब्रह्मलोकादिकोंमेंहै। जैसे यहां सुख दुःखके जो जो साधनहैं, तैसे वहांहैं। जैसे यहां पंचभूत पृथिवी आदि हैं, तैसे वहां हैं। जैसे यहां १७तत्त्वका सूक्ष्म शरीर हैऔर स्थूल शरीर अन्नमयादिकोशरूप है, कारण शरीर है, रज तम सत्वगुण है, तथा भूल अभूल हर्ष शोकादि हैं, तैसे वहां हैं। जैसे यहां राजाकी अधीनता तथा कायदा धर्माधर्मका है तैसे वहां है। जैसे यहां मनादिकोंका साक्षी अन्तर्यामी सर्व देहोंमें देही एक आत्मा है, तैसे ब्रह्मलोकादि व्याहृतियोंमें है। जैसे यहां शास्त्रमें कर्मकांड, उपासना कांड, ज्ञान कांड हैं, तैसे वहां हैं। जैसे यहां ज्ञान अज्ञान है, जल पाषाणादिकोंका तीर्थोंमें दर्शनहै, तैसेही वहां भी है। ईश्वर कहीं इस सृष्टिसे पृथक् देखनेमें आतानहीं, हृदयदेशमेंमनादियोंके साक्षीविना तैसे ब्रह्मलोकादि व्याहृतियोंमें है। जैसे यहां मनुष्योंके हस्त आदि अवयव हैं, तैसें ब्रह्मलोकादिकोंमेंहैं। तात्पर्य यह कि, सर्व प्रकारसे, सर्व ब्रह्मादि लोकोंमें सर्व व्यवहार इस लोकके सम हैं। जैसे धर्म अर्थ काम मोक्ष और तिनके साधन यहाँ हैं, तैसे वहां हैं। इससे यहां ही ज्ञान संपादनकरना, ब्रह्मलोकादि लोकोंकेजानेकी इच्छा नहीं करना क्योंकि अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिवास्तेइच्छा होती है, सो पूर्वोक्त प्रकारसे यहां वहां भेद नहीं। जो यह मिथ्या है तो वह भी मिथ्याहै। यह सत् है तो वह भी सत् है। इससे मना-

दिकोंके साक्षी सम ब्रह्मात्माको अपना आप जानो, जो शांति होवे, अन्यथा नहीं होगी। मूल ग्रहणसे शाखाका ग्रहण आपसे ही होजाता है।

राजा जनक।

पुनः राजा जनक आये और कहा हे श्रेष्ठ पुरुषो! जैसा जिस वस्तुका स्वभाव है सो, कोटि उपाय करनेसे भी दूर नहीं होता, जैसे अग्निका स्वभाव शीतल नहीं होता; तैसे बुद्धि आदिकोंका सच्चिदानंद द्रष्टा आत्मा, स्वभावसेही माया तत्कार्यमें होनेवाले, बंध मोक्षकी कल्पनासे रहित है और दृश्य बंध मोक्षकी कल्पनासे कदाचित् भी रहित नहीं हो सक्ता। इससे दोनों वस्तुका सम्यक् जानना ही कर्तव्य है, करना कुछ नहीं। हे साधो! विषय इंद्रिय संबंधजन्य,सुख दुःखका अनुभव, जैसे अज्ञानकालमें होता है, तैसे ज्ञान कालमें भी होता है,संघातका व्यवहार कुछ अदल बदल नहीं होता,केवल मनका संकल्प पूर्वसे विलक्षण होजाता है।पहले में अज्ञानी हूँ, पीछे सत्संगसे मैं ज्ञानी हूँ, इतना संकल्प मात्रही बंध मोक्ष हुआ और कुछ अन्य नहीं हुआ।परन्तु ज्ञान अज्ञानादि सभास अंतःकरणकी अवस्था हैं, तिन दोनों अवस्थाके अनुभव करनेवालेको निजस्वरूप सम्यक् जानना चाहिये!

विश्वामित्र।

पुनःमिश्वामित्र आकर बोले। हे तपस्वियो!इस मनादिकोंका साक्षी चैतन्यकाही नाम विश्वामित्र है,क्योंकि इस नामरूप असत् जड दुःखरूप विश्वको, अपनी सत्ता स्फूर्त्तिसे, सत् चित् आनंद सरीखे कर देताहै। इससे यह आत्मा सर्व विश्वका मित्रहै औरअसंग होनेसे सर्व विश्वका अमित्र भी है; जैसे आकाश सर्वको अवकाश देताभी, सर्व सृष्टिके व्यवहारोंके गुण दोषसे असंग है। जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नसृष्टिको सत्ता स्फूर्ति देनेसे विश्वका मित्र है और स्वप्नसृष्टिके गुण दोषके न भागी होनेसे असंग है, इससे स्वप्न

विश्वका अमित्रभी है। बुद्धि आदिकोंका साक्षीआत्मा विश्वके मित्र अमित्र भावसे रहित भी है। अवाङ्मनसगोचर होनेसे और मन वाणी सहित अवाङ्मनसगोचर भी आपही होनेसे सर्व विश्वका मित्र अमित्र भी आपही है।

आत्मज्ञानके साधनरूप तपस्या।

(सात्त्विकी तपस्या)

हे साधो! इस समझके समझाने वास्ते, अनेक प्रकारकी सत् संभाषणादि परमतपस्या है। तथा मैत्रता, करुणा, मुदिता, उपेक्षा सम्यक् धारण करना भी परमतपस्या है। तथा अमानित्वादि अति कृपालु आदिभीपरमतपतथा सज्जनलोगोंकेकायदे अनुसारचलना भी परमतपस्या है, तथा यथा लाभ सदा सुखी रहना, रागद्वेष न करना, राजयोग भजन करनादि पूर्वोक्त सर्व सात्त्विकी तपस्या है।

तामसी राजसी तपस्या।

निज शरीर पीडित कर तथा अन्यको किसी प्रकार दुःखी कर जो तपस्या होती है सो राजसी तपस्या है।

सर्वोत्कृष्टतप।

परंतु ब्रह्मनिष्ठ महात्माकी सम्यक् सत्संग सात्विकी सर्वसे अधिक तप है।

तपस्याका फल।

सर्व तपस्याका फल चित्तकी एकाग्रताहै, चित्तकी एकाग्रतासे सर्व चित्तादिकोंमें अनुगत सच्चिदानंद मनादिकोंके साक्षी निजात्मस्वरूपका, स्वयंप्रकाशरूपता करके, अनुभव होता है, जैसे किसी भी साधनसे वायुस्थित होनेसे, जलगत सूर्य भी स्पष्ट भान होता है। इससे जिस किसी साधनसे चित्तकी एकाग्रता द्वारा, जिस किसी अधिकारीको, निजात्मस्वरूपका सम्यक् बोध होवै, सोई साधन श्रेष्ठ है। जैसे आंब खानेसे मतलबहै चाहे किसी वृक्षसे मिले। यह लोक प्रथाका दृष्टांत है।

शास्त्रोंकी व्यवस्था।

हे संतो! बंध मोक्षतो शास्त्रोंमें किंचित्‌किंचित्‌कामोंमें मनराखी है। ठाकुरके चरणामृतसे, परिक्रमासे, तुलसी रुद्राक्ष धारणसे, तप्त मुद्रा शरीरको लगानेसे, काष्ठका दंड धारनेसे, मोक्षलिखाहै। गंगाके एक बूँदके पान करनेसे, गंगा यमुनादि तीर्थोंके स्नान तथादर्शनसे बेल भक्षणकरनेसे, काशी मथुरादि पुरियोंमें तीन दिन वा एक दिन भी निवासकरनेसे तथा एकबार भी भूलसे वा विलापादि करतेहुये रामहरि महादेवादि ईश्वरके नाम उच्चारण मात्रसेही मोक्ष लिखा है। नेति धोती आदि क्रिया करनेसे मोक्षादि फल लिखा है। श्राद्धोंके करनेका फल भी मोक्ष ही लिखा है। सूर्यादिके दर्शनसे, एकादशी आदिव्रतोंसे, सूर्यादिकोंके स्तोत्र पढ़नेसे मोक्ष लिखाहै। गोदर्शन, पंचगव्य ग्रहणसे, बड़ा पुण्य लिखा है। गोदान तो मोक्षका कारणही है। कहांतक लिखें हजारों कामोंमें "पुनर्जन्म न विद्यते" ऐसाफल लिखाहै परंतु सो सर्वमरे पीछे होगा प्रत्यक्ष नहीं।

ऐसेही मरे पीछे दुःखरूप बंधके कारण भी अनेक लिखे हैं। पेशाब करनेकी विधि जो लिखी है सो अत्यंत कठिन है; तिससे अन्यथा करनेसे बंधरूप नरक लिखा है सो गृहस्थ विमुख सज्जन साधुओंसे भी, पेशाबविधि कदाचित्‌भी पालन नहीं होता, तो व्यवहारियोंसे कहां होगा, इत्यादि और भी जान लेना। इससे यह मालूम होता है, निर्यत्नही सर्व स्त्रीपुरुष मनुष्योंनि बंध होवेंगे, छूटनेका कोई उपाय नहीं और मोक्ष कथनवाले शास्त्रको देखें तो, अनायास सर्व मोक्ष होने चाहियें क्योंकि ऐसा स्त्रीपुरुष कोई नहीं जो मोक्षके कारण एक बार भी हरिका नाम उच्चारणादि मोक्षदायक कर्म न करे। तथा बंधके कारण मलत्यागादि विधिको उल्लंघन न करे।

सर्व बातें शास्त्रकी हैं, किसको सत् कहैं किसको असत् कहें। कुछ अकल काम नहीं करती; सत् है तो सर्व सत् हैं; असत् है तो सर्व असत् हैं। इससे न बंध सिद्ध होता है, न मोक्ष सिद्ध होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, मोक्षशास्त्र तो शुभकामोंमें प्रवृत्तिबोधक है और बंधबोधकशास्त्र अशुभ पापकामोंसे निवृत्तिबोधक है। क्योंकि भय लोभ विना, शुभ अशुभ कामोंमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती नहीं। इसी बातमें बंध मोक्ष कथनवाले शास्त्रोंकी चारितार्थता है अन्यथा मानेंगे तो सर्व प्रकारसे जगदंध प्रसंग आजावेगा।इससे क्या हुआ कि, अशुभ कामोंके निवृत्तिसे और शुभकामोंमें प्रवृत्तिसे अंतःकरणकी शुद्धि होती है। शुद्ध अंतःकरणमेंही, यथार्थ सर्वसंमत सिद्धांत शास्त्रका, पक्षपातरहित यथार्थवक्ताके सत्संगसे, यथार्थ अर्थ जानाजाता है, अन्यमें नहीं। तिससे भ्रम निवृत्तिद्वारा यथार्थ अर्थ ग्रहणसे मोक्षरूप सुख शांति प्राप्त होती है।

सुखशांतिका साधन।

मोक्षरूप सुखशांतिका साधन, सर्वशास्त्र संमत सिद्धांत, पूर्वोक्त सत्संगसहित, सत्संभाषणादि नवव्रतादि हैं और देश काल वस्तु भेदादि दोषरहित, पूर्णवस्तु, सम ब्रह्मात्म, निजस्वरूप मनादियोंका द्रष्टाही, मोक्ष सुख शांतिरूप है। तिस कारणसे बुद्धि आदियोंके न्यूनाधिक भावाभावके साक्षी ब्रह्मात्मामेंही स्थित होना चाहिये। "मन वाणी सहित, मन वाणीके गोचर का; मैं सच्चिदानंद द्रष्टा हूं, मैं दृश्य नही" इस दृढ निश्चयका नाम ब्रह्मस्थिति है।

द्रौपदी।

हे साधो! संसाररूप इस सभामें मायारूप द्रौपदीका; दुःशासन दुर्योधनादि अनेक वादीरूप सत्तादि, अनेक युक्तियोंरूप हाथोंसे, मायारूप द्रौपदीका स्वरूप नाम शरीरको, निर्णयरूप नग्न करने लगे परन्तु निर्णयरूप नग्न न हुई। भक्तिमान नाम रूप अनिर्व-

चनीय स्वभाव होनेसे तथा परमात्मारूप कृष्णके आश्रयरूप सहायता होनेसे। इससे हे साधो! माया तत्कार्य नाम रूप मनादिकोंको निज दृश्य जानो और अपनेको सच्चिदानंद द्रष्टा जानो। माया तत्कार्य निजधर्मोंसहित दृश्य;तुमद्रष्टा असंगको स्पर्श नहीं करते। आकाशके समान जो तुम सच्चिदानंद द्रष्टा आपको नहीं मानोगेतो द्रष्टा भिन्न माया तत्कार्य दृश्य मध्ये, किसी न किसी पदार्थको अपना स्वरूप मानेंगे, तो दृश्य संसार दुःखमयरूपही होवोगे क्योंकि जो मति है, सोई अंत पुरुषकी गति होती है। आगे जो इच्छा हो सोई करो।

अहंकार।

समष्टि व्यष्टि फुरना रूप अहंकार।

इतनेमें अंतःकरणरूप अहंकार मन वा समष्टि वा व्यष्टि फुरणारूप अहंकारने मनुष्यरूप धरके सभामें आकर कहा हे संतमंडली! व्यष्टि अविद्यारूप,वा समष्टि अज्ञान प्रकृति मायारूप मेरी माता है और सच्चिदानंद मनादियोंका साक्षी ब्रह्मात्मा मेरा पिताहै। जिन दोनों स्त्री पुरुषको शबलब्रह्म और अविद्या उपहित चैतन्य शास्त्रवेत्ता बोलते हैं। विशिष्टसे शुद्ध भिन्न होताहै, इस शास्त्रप्रक्रियासे शुद्ध ब्रह्म हमारा पितामह है और यह नामरूप, सुखदुःखादि, बंध मोक्षरूप पंचभूत भौतिक प्रपंच मेरा परिवार है। मैं निज परिवारसहित पिताके पास नहीं रहता। निज माता पासवत् पासही हमेशःमें रहताहूं। पिताके पास रहनेकी मेरी बहुत मरजी भीहै और मैं यत्नभी अनेक करता हूं, पिताके पास रहनेका परंतु पिताजी पास मुझको नहीं रखते, वह असंग निर्विकार निर्विकल्प हैं। मेरे माता पिताके माता पिता हैं नहीं और मेरी माताके साथ, मेरा पिता स्पर्श भी नहीं करता। इससे परिवारसहित मेरी उत्पत्ति और मरण आश्चर्यरूप है। तथा मेरे परिवार

नाम रूप,सुख, दुःखादि, बंध मोक्षरूप पंचभूत भौतिक रूप जगत्काभी जन्म मरण आश्चर्यरूपहै क्योंकि किसी निमित्तसे जब मैं माताकीगोदमें प्रियादि वृत्तिद्वारा बैठताहूँ, तबमैं परिवार-सहित मरणवत् मरजाताहूँ नाम माताके साथ एकरूपवत् एकरूप होजाता हूँपुनःकिसी निमित्तसे माताकी गोदसे बाहरवत्बाहर आता हूँ तो मैं निज परिवार सहित उत्पत्तिवत् उत्पन्न होताहूँ।यह मेरी दिनदिन प्रतिक्रीडा समुद्रतरंगवत् है । हे साधो ! मेरेसे, तथा मेरे नामरूप सुखःदुखादिबन्धमोक्षरूप प्रपंच,निज परिवारसहित मेरीमातासे, मोहरूप स्नेह प्रीति हमारापिता करताही नहीं और न अप्रीति करताहै, नपरिवारसहित मेरी उत्पत्ति मरणमें हर्ष शोक करताहै वरन्एकसारहताहै।तात्पर्य यह कि, पौत्रयोंसहित हममा बेटेकेकर्त्तव्योंसे अस्पर्शहैं; जैसे वायुकेचलने न चलनेमें आकाश एकसा है । हमारा पिता मेरी माताको तथा हमारे सर्व परिवार सहित,सब न्यूनाधिक भावाभाव वृत्तांतको जानताहै और हम निज पिताका हाल कुछ जानते नहीं न कहसक्तेहै । हमारी माता भी नही जानसक्ती कि मेरापति कौनहै ? रखता रूप कैसा है? तो हम कैसे जानेंगे, जडहोनेसे । हमारा पिता हमारेमेंही रहता है और हमारी पालनाभी करताहै, तो भी हम निज पिता को, जानसक्ते नहीं । बडा आश्चर्य है । मेरी माता तो पतिव्रत धर्म वाली हैं और हमारा पिता सदा ब्रह्मचारी है, इसीसे हमारी उत्पत्ति आश्चर्यरूप है । मुझ पुत्रका परिवारसहित स्वभाव सर्व प्रकारसे मातापर हुआ हैं, निज पितापर नहीं । परन्तु मूर्ख निजपरिवारसहित मुझको और मेरे पिताको एकरूप जानतेहैं इसीसे दुःख पाते है । विवेकी नहीं जानते इसीसे सुख पातेहै । हे महाजनो! मेरे पिता तो असंगहैं परन्तु मेरीमाता भी किसीको सुख दुःख नहीं देती । सुषुप्तिमें प्रत्यक्ष देखलीजिये । इससे सर्वकेसुख

दुःखका कारण मैंहीहूँ।निजपरिवारसहित हम पिताकेधनसे जीवन करतेहैं;अपनी पूंजी कुछ नहीं रखते । पिताकेधनसेही यह संसार-रूप बगींचा हमने खडाकियाहै, परन्तु पिताको इसका हर्ष शोक नहीं । पिता विना हम कुछ भी करसक्ते नहीं। जहां हम दशोंदिशा जातेहैं पिता हमको आगेही लांघताहै;जैसे वायु जहांजावे आकाश आगेही लांघता है।हे साधो!जो मेरे पिताको अस्तिभाति प्रियसर्व रूप जानता है वा मनवाणी सहित वाङ्मनसगोचर नामरूप बुद्धयादि दृश्यके, (अवाङ्मनसगोचर;सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस-प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन,विशुद्धानंद, ब्रह्मात्मा)द्रष्टाको निजस्वरूप जानता है सो मेरा बापहै, तिसको माया तत्कार्य हमलोगोंकी गति (प्राप्ति) नहीं होती ।

राजा प्रियव्रत ।

(जिसके रथके चक्रसे सात समुद्र बनजाना लोकप्रसिद्ध है)

पुनःराजा प्रियव्रत आकर सभामें कहनेलगे-हे प्रियदर्शनसभा ! व्रत नाम है नियमका और प्रिय नाम हैं आनंदका । जो वस्तु नियमसे आनंदस्वरूप होवे, तिसका नाम है प्रियव्रत । सो ऐसा मनादिकोंका तथा सुखादिकोंका साक्षी, प्रत्यक् ब्रह्मात्मा रथीने, अविद्यारूप वा मायारूपरथकी,वृत्ति रूप नेमी नाम नियम करने-वालेका नाम प्रियव्रत है। सो पृथिवी, आप, तेज, वायु, आका-शादि पदार्थोंका नियम नाम स्वभाव जो रचायगा है, सो कोटि-उपायोंसे भी अन्यथा न होना,इस संकल्पवालेका नाम नेमी है । तिस नेमीवृत्तिसे समुद्र उपलक्षमाया वा अविद्यामें लीन सर्व समुद्रादि जगत्को प्रादुर्भाव किया है, जैसे सुषुप्तिमें लीन जगत् जाग्रत् स्वप्नमें प्रादुर्भाव होताहै। जो ऐसे नहीं मानें तो अनादि पक्षमें तो उत्पत्ति प्रकारही नहीं बन सक्ता ,जो आदि माने भी तो क्या प्रियव्रत मनुष्य राजासे प्रथम, मनु आदि

राजाओंके वक्त समुद्र नहीं थे; ऐसे नहीं किंतु थे क्योंकि समुद्रादिजगत्की उत्पत्ति सद्ग्रकरणोंमें, मनुष्य व्यक्ति राजासे होती है, ऐसा नहीं लिखा और योग्यता भी नहीं है । जीवकी अल्प सामग्री होनेसे। इससे प्रत्यक् आत्मारूप प्रियव्रतको अपना स्वरूप सम्यक् जानो जो अनेक अर्थवादोंसे शांत होवोगे क्योंकि जो २ चैतन्यके नाम हैं सो सो मनुष्योंके भी नाम हुआ करते हैं । नामकी समता देखकर भ्रम नहीं करना । दृष्टांतः-

जैसे सहस्रबाहु एक पुरुषका नाम था। युद्धादि करनेकी हजारों तिसको विद्या रूप भुजा यादथीं, इससे सहस्रबाहु नाम था नहीं तो एक मनुष्य व्यक्तिमें हजार भुजा बनती नहीं।

पृथुराज ।

इतनेमें पृथुराजाने सभामें आकर कहा-हे नीतिज्ञसभा! अशुद्ध मन रूप वेणु राजा है । नीतिको छोड़के अधर्मपूर्वक विषयोंमें प्रवृत्ति यह इस मनरूप वेणुकी अन्यायकारिताहै। असत् संभाषणादियोंसे मौनी और सत् उपदेशको श्रवण करके मनन करनेवाले जो मुनि हैं, तिनके (विचारपूर्वक) जो सम्यक् सत्संगका अभ्यास है सोई मन रूप वेणुका मथनहै। वा ऋषि नामहै इंद्रियांका, तिनकी जो स्वस्व विषयमें सज्जनलोगोंकी रीतिसे धर्मपूर्वक प्रीतिका अभ्यास सोई है मथन। तिससे रजतमसे दवानहीं हुआ जो शुद्ध सत्वगुणरूपी वा बोधरूपी पृथुराज प्रादुर्भाव होताहै सोई विचाररूपी धनुषसे, अंतःकरणरूपी पृथिवीके रज तम रूप वा काम क्रोधादिरूप वा नाम रूपादि पर्वतोंको, एक तरफ करता है । नाम आत्मानात्माके विचारसे आत्माको त्रिकाल अबाध्य सत् स्वरूप सम्यक् जानता है और अनात्मरूप पर्वतोंको आत्मा से भिन्न मिथ्यात्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चय जानताहै।

दुःखका कारण मैंहीहूँ। निजपरिवारसहित हम पिताकेधनसे जीवन करतेहैं; अपनी पूंजी कुछ नहीं रखते। पिताकेधनसेही यह संसाररूप वगींचा हमने खडाकियाहै, परन्तु पिताको इसका हर्ष शोक नहीं। पिता विना हम कुछ भी करसक्ते नहीं। जहां हम दशोंदिशा जातेहैं पिता हमको आगेही लांघताहै; जैसे वायु जहांजावे आकाश आगेही लांघता है। हे साधो! जो मेरे पिताको अस्तिभाति प्रियसर्व रूप जानता है वा मनवाणी सहित वाङ्मनसगोचर नामरूप बुद्धचादि दृश्यके, (अवाङ्मनसगोचर; सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंसप्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंद, ब्रह्मात्मा) द्रष्टाको निजस्वरूप जानता है सो मेरा बापहै, तिसको माया तत्कार्य हमलोगोंकी गति (प्राप्ति) नहीं होती।

राजा प्रियव्रत।

(जिसके रथके चक्रसे सात समुद्र बनजाना लोकप्रसिद्ध है)

पुनः राजा प्रियव्रत आकर सभामें कहनेलगे-हे प्रियदर्शनसभा! व्रत नाम है नियमका और प्रिय नाम है आनंदका। जो वस्तु नियमसे आनंदस्वरूप होवे, तिसका नाम है प्रियव्रत। सो ऐसा मनादिकोंका तथा सुखादिकोंका साक्षी, प्रत्यक् ब्रह्मात्मा रथीने, अविद्यारूप वा मायारूपरथकी, वृत्ति रूप नेमी नाम नियम करनेवालेका नाम प्रियव्रत है। सो पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाशादि पदार्थोंका नियम नाम स्वभाव जो रचायगा है, सो कोटिउपायोंसे भी अन्यथा न होना, इस संकल्पवालेका नाम नेमी है। तिस नेमीवृत्तिसे समुद्र उपलक्ष माया वा अविद्यामें लीन सर्व समुद्रादि जगत्को प्रादुर्भाव किया है, जैसे सुषुप्तिमें लीन जगत् जाग्रत् स्वप्नमें प्रादुर्भाव होताहै। जो ऐसे नहीं मानें तो अनादि पक्षमें तो उत्पत्ति प्रकारही नहीं बन सक्ता, जो आदि माने भी तो क्या प्रियव्रत मनुष्य राजासे प्रथम, मनु आदि

राजाओंके वक्त सुमुद्र नहीं थे; ऐसे नहीं किंतु थे क्योंकि समुद्रादिजगत्‌की उत्पत्ति सद्प्रकरणोंमें, मनुष्य व्यक्ति राजासे होती है, ऐसा नहीं लिखा और योग्यता भी नहीं है । जीवकी अल्प सामग्री होनेसे। इससे प्रत्यक् आत्मारूप प्रियव्रतको अपना स्वरूप सम्यक् जानो जो अनेक अर्थवादोंसे शांत होवोगे क्योंकि जो २ चैतन्यके नाम हैं सो सो मनुष्योंके भी नाम हुआ करते है । नामकी समता देखकर भ्रम नहीं करना । दृष्टांतः-

जैसे सहस्रबाहु एक पुरुषका नाम था। युद्धादि करनेकी हजारों तिसको विद्या रूप भुजा यादथी, इससे सहस्रबाहु नाम था नहीं तो एक मनुष्य व्यक्तिमें हजार भुजा बनती नही।

पृथुराज ।

इतनेमें पृथुराजाने सभामें आकर कहा-हे नीतिज्ञसभा। अशुद्ध मन रूप वेणु राजा है ! नीतिको छोड़के अधर्मपूर्षक विषयोंमें प्रवृत्ति यह इस मनरूप वेणुकी अन्यायकारिताहै। असत् संभाषणादियोंसे मौनी और सत् उपदेशको श्रवण करके मनन करनेवाले जो मुनि है, तिनके (विचारपूर्वक) जो सम्यक् सत्संगका अभ्यास है सोई मन रूप वेणुका मथनहै। वा ऋषि नामहै इंद्रियांका, तिनकी जो स्वस्व विषयमें सज्जनलोगोकी रीतिसे धर्मपूर्वक प्रीतिका अभ्यास सोई है मथन। तिससे रजतमसे दबानही हुआ जो शुद्ध सत्वगुणरूपी वा बोधरूपी पृथुराज प्रादुर्भाव होताहै सोई विचाररूपी धनुपसे, अंतःकरणरूपी पृथिवीके रज तम रूप वा काम क्रोधादिरूप वा नाम रूपादि पर्वतोंको, एक तरफ करता है । नाम आत्मानात्माके विचारसे आत्माको त्रिकाल अबाध्य सत् स्वरूप सम्यक् जानता है और अनात्मरूप पर्वतोको आत्मासे भिन्न मिथ्यात्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चय जानताहै।

तिसके उपरांत सर्वदोषोंसे रहित अंतःकरणरूपपृथिवी, सत्सं-भाषणादि तथा मित्रतादि गुणरूप रत्नोंको देतीहै। तथा सत्व गुणकर युक्त हुई २ अंतःकणरूप पृथिवीमें धर्मरूप वर्षाकर मुमुक्षुओंके व्यवहारोंमें सचावट रूप अन्न होता है। तिससे मुमुक्षु स्वरूपमें संशय आदि शत्रुओंसे रहित निष्कर्तव्यता रूप तख्तमें बैठके निरतिशय आनंदको अनुभव करता है। इससे जो मुमुक्षु बोधरूप पृथुराजाको, मनरूपी वेणुसे, पूर्वोक्त अभ्यास रूप मथनसे उत्पन्न करेगा सो परम आनंदको प्राप्त होवेगा।

शब्दादि विषय।

पुनःशब्दादिविषय मनुष्य मूर्ति धारकर सभामें आयके बोले हे पंचपरमेश्वरो! सर्व लोक हमारेमें दोष आरोपण करते हैं कि, यह विषय बंधनके कारण हैं। परंतु पक्षपातरहित होकर यथार्थ विचार देखें तो हम किसीके भी बंधनके कारण नहीं,सर्व अपनेको आपही बंधन करते हैं बंदरवत्। क्योंकि आकाशादि पंच भूतोंके, हम शब्दादि पंचगुणरूप पुत्र हैं, वा हम शब्दादि पंचसूक्ष्म भूत हैं। प्रथम पक्षमें तो पंचज्ञानेन्द्रिय,पंचकर्मेन्द्रिय,पंचप्राण,मन,बुद्धि, चित्त,अहंकारये हमारे भ्राता हैं। दूसरेपक्षमें स्थूलपंचभूतों सहित यह हमारे पुत्र पौत्र हैं। सो हम निज भ्रातनसे वा निजपुत्रनसे स्वाभाविक वा राग द्वेषसे आपसमें व्यवहार कररहे हैं। अनुकूलता प्रतिकूलता हम शब्दादियोंसे,हमारे भ्राता वा निजपुत्र मनादि वा श्रोत्रादि इन्द्रियोंको हर्ष शोक हो वा न हो। तात्पर्य यह कि, हम शब्दादियोंमें अनुकूलता प्रतिकूलता हमारे भ्राता वा पुत्र मनने मानी है, श्रोत्रादि इंद्रियोंने भी नहीं मानी।वा मनकेसाथ मिलके श्रोत्रादि इंद्रियोंने भी मानीहै। सो हमारे पुत्र भ्राता हमारीअनुकू-लता प्रतिकूलताकी प्राप्ति निवृत्तिका अनेक यत्न करे वा न करे वा हम उनके उपायको माने वा न माने वा हमारे माता पिता

शवलब्रह्म (अविद्या अन्तःकरण विशिष्ट चेतन) को हम पुत्र पौत्रोंके कर्तव्योंका हर्ष शोक हो वा न हो । वा हम उनका कहा माने वा न माने । इन कामोंका हर्ष शोक हमलोगोंको हो न हो। परंतु पूर्वोक्त हम लोगोंके साक्षी प्रत्यक् आत्मा तीसरेको हमारे बीच पडनेमें क्या प्रयोजन है ? यह मनादिकोंका साक्षी आत्मा अपनी महिमामें रहो और हम अपने घरमें निजसंस्कारोंसे जैसा होगा वैसा भुक्तेंगे । परंतु हम लोगोंके व्यवहारोंको यह आत्मा निज धर्म मानके, दुःखी सुखी होवे तो इसमें हमारा क्या अपराध है ?

आत्माके विहार करनेका स्थान ।

इस प्रत्यक् आत्माने हम लोगोंको अपनी क्रीडावास्ते बनाया है;हम सर्व लोक इस आत्माके खेलनेके खिलौने हैं, विरोधी नहीं । अब हमसे दुःख माननेसे क्या मतलबहै ? अब भी हमको खेलनेके साधनही जानना चाहिये । मिलके भोजन करे पीछे जाति पूछनी नादानीका काम है । हम शब्दादि विपयोंसेही इस साक्षी आत्माके रमनेका यह नामरूप संसार चमन शोभ रहा है । जो हम नहीं होवें तो चमनमें, वृक्षोंके समान तो फिर संसार क्या है ? हम लोगोंहीका तो संसारहै ।

शब्दादिविषयको कैसे ग्रहण करनेसे सुखीहोताहै ?

श्रोत्रादि इंद्रियोंसे शब्दादिविपय ग्रहण वेशक करो ई को दोप नहीं । परंतु जुल्मसे असज्जन पुरुपोंके समान मत ग्रहणकरो। हम इस जीवके आनंदवास्तेही उत्पन्न हुये हैं, दुःखकेलिये नहीं। न्यायपूर्वक श्रोत्रादि इंद्रियोंसे शब्दादि हम विपयोंको ग्रहण करता पुरुपको राज्यदण्ड और अपयश होता नहीं देखा। दृष्ट कल्पनाके अनुसारही अदृष्ट कल्पना होती है,अन्यथा नहीं । जिन जिन कामोंसे यहां दंड और अपयशहोताहै, तिन तिन कामोंसेही परलोकमेंभी दंड और अपयश होता होगा।श्रोत्रादि इंद्रियोंका शब्दा-

दि विषयोंको ग्रहण करना स्वाभाविक धर्महै, धर्मीके होते धर्मका निवारण नहींहोता यह ईश्वरी नियमहै ।जो स्वाभाविक धर्मका निवारण किसी उपायसे होगा तो जगदांध प्रसंग होजावेगा । पुनः जो हमको बुरा निज बंधनका कारण जानताहै तो तिसको शपथ है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादि हम विषयोंको मत ग्रहणकरे हम तिसको निमन्त्रण नहींभेजते । हमारी निंदाभी करताहै पुनः हमारा-ग्रहणभी करताहै, . सो बान्ताशीहै ! हमारे बिना किसी भी ब्रह्मासे लेकर चींटीतक;ज्ञानी अज्ञानीके व्यवहार सिद्ध होते नहीं । जो अभिमान करे विषय क्याहै ? सो· हमसे रहित होकर देख लेवे ।

हे साधो ! हम शब्दादि विषयोंका, किसीभी ज्ञानी अज्ञानीके साथ पक्षपात नहीं । जो श्रोत्रादि इंद्रियोंसे हमारा ग्रहण करेगा तिसको जैसा हमारा स्वरूपहै तैसा अनुभव करनाही पडेगा । शब्दादि विषय इसको दुःख नहीं देते, इसके अनाचरकर्मही इसको दुःखदेतेहैं । जो शब्दादि विषयोंके साथ श्रोत्रादिइंद्रियोंके संबंधजन्य दुःखोंका जनक पाप होता होवे तो किसीकोभी सुख नहीं होना चाहिये क्योंकि यह बात अनिवारणहै । जो तीनों कालोंमें सुषुप्ति विना किसीभी साधनसे निवारण न होवे,तिसके भोगनेसे पाप नहीं होता ।इन विना शरीर तो रहताही नहीं तो पाप कैसे होगा ? किंतु नहीं होगा ।

पंचविषयोंसे दुःख क्यों और कब होताहै ?

स्वस्ववर्णाश्रम अनुसार यथायोग्य धर्मपूर्वक शब्दादिविषयोंमें श्रोत्रादि इंद्रियोंका प्रवृत्तिरूप कायदेको छोडके अकायदेसे वरतेगा तो दुःखों का जनक पाप होगा,अन्यथा नहीं। हे साधो! यह पुण्यपाप, हर्ष, शोक, सुखदुःख; बंध मोक्षादिकी पंचायत, माया तत्कार्यमें हमलोक असत् जड दुःखरूप, दृश्यकोटिमें वर्तनेवालोंकीहै, हम दृश्यका द्रष्टाको, देश, काल वस्तु भेद रहित

सत्‌चित् आनंदरूप,प्रत्यक् आत्मा असंग होनेसे उसको पूर्वोक्त पंचायत नहीं चाहिये। अर्थात् कार्यकारणरूप अनात्माके धर्म आत्मामें नहीं मानने चाहिये। आत्मानात्माका सम्यक् दर्शन ही कर्त्तव्यहै, असम्यक् दर्शनही अज्ञानहै शारीरकधर्म ज्ञानी अज्ञानी के तुल्यही है केवल संकल्पका भेद है।

वामन भगवान्।

वामन भगवान् आकर बोले हे शांतिदा सभा ! निश्चयकर वा प्रसिद्ध जो अमन वस्तुहै तिसका नाम वामनहै। सो मनरहित मनादिकोंका द्रष्टा प्रत्यक् आत्माहै। कार्यसहित मूलाज्ञारूप, कश्यपकी परंपरासंतति,सत्त्वगुण,न्यूनाधिकरज तमगुण विशिष्ट तूला ज्ञानरूप वलिराजा जानना "यज्ञो वै विष्णुः" यज्ञनाम विष्णुकाहै वा "विश्वप्रवेशने पूर्णे" वा विष्णु नाम पूर्णवस्तुकाहै जो पूर्ण वस्तुहै सोई आनंदरूप वस्तुहै जो आनंदरूप वस्तुहै सो सत् ज्ञानस्वरूप वस्तुहै जो सत् ज्ञानरूप वस्तुहै सोई आनंदरूप वस्तुहै इससे सो पूर्वोक्त वलिराजा, असत् जड दुःख अनात्मा-रूपहैही,परंतु कार्याध्यासके बलसे वा चिदात्मअध्यासके बलसे आपको सत्‌चित् आनंद आत्मा पूर्ण यज्ञप्रतीतिरूप यज्ञ कर-ताहै कैसाहै तो.बालि ? तीन शरीरादि त्रिक त्रिपुटीरूप त्रिलो-कीका ब्रह्मात्म अपरोक्ष ज्ञानवान् पुरुषरूप वैकुंठ देश छोडके राज्य करता है और शुद्ध अन्तःकरणरूप स्वर्गमें शुद्ध सत्त्वगुण-रूप मुमुक्षु वा विवेकरूप मुमुक्षु इंद्र विचार करताहै कि, पंच ज्ञानेंद्रिय ५ पंच कर्मेंद्रिय ५ पंचप्राण ५ मन बुद्धि २ पंचमहा-भूत-५ देश और काल २ ये जो चौवीस भाव कार्य पदार्थहैं एक अभाव पदार्थहै,सब मिलके पचीस २५ हुये। वा काम क्रोधादि पचीस प्रकृतिरूप पदार्थ जानना। वेदांतोक्त वा सांख्योक्त पचीस

२५ तत्त्वरूप पदार्थ जानने इत्यादि और पचीसही तिनके देवता पचीसही २५ तिनके विषय, पचीसही २५ तिनकी वृत्ति। वे सर्व मिलके शत पदार्थ असत् जडदुःख अनात्मारूपहैं । इनमें जब क्रमसे सत्चित् आनंद, आत्मबुद्धि पूर्वोक्त अज्ञानरूप बलिराजाका; पूर्वोक्त यज्ञ पूर्ण होजावेगा तो शुद्ध अंतःकरणरूपी स्वर्गमेंभी इसीका राज्य होजावेगा। तात्पर्य यहकि, दृढ अध्यास होजावेगा,तब हम तिरोभाव हुये २ जन्मांतरोंको पावेंगे । इसवास्तेपूर्वोक्त अज्ञानरूपबलिराजाका यज्ञभंग करो नाम देहाध्यास छोडके आत्माको सच्चिदानंद सम्यक् निजरूप जानेंगे तब हम सत्संभाषणादि देवतोंसहित अंतःकरणरूप स्वर्गमें सुखी होवेंगे यह कार्य ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप विष्णु विना अन्यसे होगा नहीं। यह विचारकर मुमुक्षुरूप इंद्र सत्संभाषणादिदेवतों सहित, विष्णुरूप गुरुकेपास,शास्त्ररीतिके अनुसार जाकर प्रार्थनाकर बोलताहै; हे भगवन्! अज्ञानरूपबलिने,सत्सभाषणादिदेवतोंसहित,हमको अंतःकरणरूप स्वर्गमेंसे निकासनेकी इच्छा कर पूर्वोक्त शतयज्ञ पूर्णमें दृढ प्रवृत्तिकी है हमारे रक्षक आपहीहो,अन्यकोई नहीं क्योंकि ब्रह्म श्रोत्री ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप विष्णुही अज्ञानरूपतमको,ज्ञानरूप दीपकसे दूर करसक्ता है, अन्य नहीं। इत्यादि प्रश्न सुनके गुरुरूप विष्णु, ब्रह्मविद्याका मुमुक्षुरूप इंद्रको उपदेशकरताहै—हे देवतो! तत्पदका लक्ष्य अर्थ जो सत् चित् आनंद लक्षणोंवाला मैंब्रह्म ही तुम्हारे अंतःकरण-देशमें, त्वंपदका लक्ष्यार्थ मनादिकोंकासाक्षी रूप करके स्थितहूँ । तत्पद और त्वंपदके वाच्यार्थ अज्ञान तत्कार्यको, असत् जड दुःख अनात्मा जानो इत्यादि गुरुरूप विष्णुके उपदेशसे इंद्ररूप मुमुक्षुको उत्पन्न हुई जो ब्रह्मात्माको विषयकरनेवाली अंतःकरणकी परमात्मारूप वृत्ति और इस वृत्ति आरूढ वृत्तिका साक्षी चैतन्य,दोनों मिले हुयेका नाम बोधरूप वामन अवतारहै । जैसे महाकाशका घटाकाश अवतार

होता है। सो बोधरूप वामन वूला अज्ञानरूप बलिके निकट जाके तीन कदमरूप पृथिवीका दान मांगता है, तात्पर्य यह कि तीन कदमरूप सत्व रज तम त्रिगुणात्मकरूपही अज्ञान तत्कार्य जगत्‌है और अज्ञान तत्कार्यको असत् जड दुखःरूप सम्यक् जो जानना नामिथ्यात्व निश्चय वा अभाव निश्चय जानना है,यही तीन कदमों का नापना है । मैं सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा अज्ञान ततकार्य ब्रह्मांडरूप कार्यकासाक्षी हूँ, यही ब्रह्मांडका फोडना है,क्योंकि आत्मा अज्ञान तत्कार्य ब्रह्मांडका साक्षी होनेते ब्रह्मांडसे बाहर है। तिसके दृढनिश्चय रूप पादसे जीवन मुक्तिरूपी गंगा उत्पन्न होती है। तिसमें मुमुक्षु स्नानकर पवित्र होते हैं।तात्पर्य यह कि, उपदेशसे सद्गतिरूप पवित्रताको प्राप्त होते हैं।

श्रोत्रादि इन्द्रिय।

इतनेमें श्रोत्र मनादि इन्द्रिय मनुष्य मूर्ति धारकर आय बोले हे जितेंद्रियपूर्वक आत्मदर्शियो! शब्दादिविषयोंकोही हम श्रोत्रादिइंद्रिय ग्रहण करसक्ते हैं । शब्दादिकोंसे भिन्न शब्दादिकों के साक्षीप्रत्यक् आत्माको हम ग्रहण नहींकरसक्ते; क्योंकि शब्दादि आकाशादि पंच.भूतोंके गुण नाम पुत्र हैं और हम श्रोत्रादिइंद्रिय भी पृथिवी आदि भूतोंके कार्यनाम पुत्र हैं। इससे इनका हमाराही आपसमें सम्बन्धहै, इसीसेही हमारा इनका हमेशः सुषुप्ति बिना) संयोगबना रहता है । शब्दादिकोंके अनुकूलता प्रतिकूलतादि हमारेभ्राता मनको हर्ष शोक होता है।हम श्रोत्रादि इंद्रियोंको भी होतानहीं। तब हम लोगोंके साक्षी आत्माको कहांसेहर्ष शोक होवेगा ? जो आत्मा हमारे धर्मको अपना धर्म मानेगा तो तिसको भ्रांति सिद्ध होगी। हमारा बड़ा भ्राता, अन्तःकरणरूप मन भी जाति गुणक्रियावान्, सम्बन्धवान्, माया तत्का-

यं पदार्थोंकाही,शोभन अशोभन चिंतन पूर्वक हर्ष शोककरताहै । मनादिकोंके साक्षी आत्माको तो वृत्तिरूप मनादि चिंतनही नहीं करसक्ते,क्योंकि चिंतनका भी आत्मा साक्षीहै।जो शब्दादि विषयरूप तथा संकल्पादि वा जाति गुण क्रिया सम्बन्धादि पदार्थ रूप आत्मा होवे तो हम लोगोंका विषय आत्माहोवे सो शब्दादि विषयरूप आत्मा है नहीं । इससे हमारा विषय भी आत्मा नहीं हमलोग तो शब्दादि विषयको विषय करकेही चरितार्थ हैं; उससे आगे हम अन्ध हैं । विधि पक्ष देखते हैं तो चक्षुआदि इंद्रियोंका,विषय सुवर्ण चीनी मृत्तिका तन्तु स्वप्नद्रष्टा जल पंच भूतादि हैं; भूषण खिलौने घट पट स्वप्न पदार्थ तरंग मौक्तिकादि पदार्थ नहीं । कल्पितकी सत्ता तथा कार्यकी सत्ता अधिष्ठानकी सत्तासे तथा उपादान कारणकी सत्तासे भिन्न नहीं होती इससे सर्व नामरूप माया तत्कार्य, असत् जड दुःखरूप जगत्का सत चित् आनंदरूप आत्माधिष्ठानविषे कल्पित होनेसे, सर्व प्रकारसे अस्तिभातिप्रियरूप आत्माही श्रोत्र मनादिइंद्रियोंका विषय है । कल्पित नामरूप पदार्थ हम लोगोंके विषय नहीं और कर्मेन्द्रिय तथा प्राण हमारे भ्रातनमें तो ज्ञान शक्ति है नहीं । केवल वाक् उच्चारण, लेन देन, गमनागमन, मलमूत्रका त्याग एतावन्मात्रही व्यवहार करते हैं और प्राणादि अन्नपानादि व्यवहार करते हैं इतनीही क्रियामात्रसे हम चरितार्थ हैं । इससे साक्षी आत्मा अवाङ्मनसगोचर है ।

भरव ।

इतनेमें भैरव आकर बोले-हे अभयदायक सभा ! जिसके भयसे इंद्र,सूर्य,चन्द्रमा,अग्नि,वायु,यमादि चलतेहैंनाम आपअपनेव्यवहारमें नियम पूर्वक प्रवृत्ति निवृत्ति करते हैं(सूर्य [illegible]ादि ग्रहणसे चक्षुमनादि इंद्रियोंका भी ग्रहण [illegible] ।),ऐ[illegible] [illegible] सोच देखतेहैं तो अभय भय जड [illegible] नहीं है

भी भयदेना बनता नहीं; जैसे आकाश चार भूत भौतिक पदार्थोंको अवकाश देताहै, तैसे ब्रह्मात्मा सर्वनाम रूप माया तत्कार्य प्रपंचको अभयदान नाम सिद्ध करताहै। चैतन्य पूर्वकही जडपदार्थोंके न्यूनाधिक व्यवहारको, जैसे चलानेका संकेत करता है तैसाही चलता है।बुद्धिविना चैतन्यपुरुप भी कुछ नहीं करसक्ता यह सर्वके अनुभव सिद्ध है। संकेतको तोडना अतोडना तथा भय अभय जड पदार्थ जानतेही नहीं, चैतन्य पुरुपही संकेतको तथा तिसके तोडने न तोडनेको तथा तिनके न्यूनाधिक होने न होनेसे भय अभयको जानता है और चैतन्य भिन्न सर्व जड है।

अनादि पक्षमें तो जगत् कर्ता ईश्वर है नहीं, तिसमें तो ईश्वरके भयसे सूर्य्यादि चलतेहैं, यह बात बनती नहीं। जगत्के अवांतर अनेक प्रकारके द्रव्यगुण संयोगसे पुरुपोंकी बनावट बन सक्ती है। सादि पक्षमेंही उत्पत्तिबनेगी परन्तु सादि अनादिका कुछमालूम पडता नहीं।

सादि अनादि पक्ष।

मनुष्योंके बनाये शास्त्रद्वाराही जगत्को सादि अनादि आदि व्यवहार कहना पडताहै। जीवतोंने शास्त्र बनायेहैं, मृतकोंने बनाये नहीं। क्या जाने क्या तदबीरहै। प्रत्यक्ष दृष्टांत तो तार रेलादि अनेकजड पदार्थोंको, अनेक प्रकारके प्रजाके व्यवहारकी सिद्धिके लिये चैतन्यपुरुपोंनेही संकेत कियेहैं। रेलादि पदार्थोंको भय अभयादि कुछ नहीं। इससे भय शब्दका अर्थ संकेत करना। तात्पर्य यह कि, जिस रीतिका जड पदार्थोंको चैतन्यपुरुपने संकेत बांधाहै, वैसेही चलताहै, अन्यथा नहीं। सो संकेत चैतन्य पुरुप है, चाहे इश्वर हो, चाहे जीव हो, चाहे आत्मा हो, चाहे खुदा हो। नामांतर भेद वेशक हो परन्तु चैतन्यपुरुपमें भेद नहीं।

हिमाचल पर्वत ।

पुनःहिमवान् पर्वतोंका कोई मनुष्य राजा था तिसका नाम हिमालय पर्वत था सो आकर बोला। हे एकाग्रचित्तवान् सभा! गुरुका शरीर हिमालय पर्वत है और जिज्ञासुका शरीर तिसकी स्त्री मैना जानो। तिनके परस्पर आत्मानात्माके विचाररूप मैथुनसे, ब्रह्माकार वृत्तिरूप पार्वती होती है और मैत्र्यादि वृत्तियां तिसकी सखियां होती हैं। सो प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मात्मारूप महादेवका तथा पूर्वोक्त पार्वतीका अज्ञान तत्कार्य अनर्थकी निवृत्ति और निरतिशय परम आनंदकी प्राप्तिरूप विवाह करता है नाम "यत्रयत्र मनो याति तत्रतत्र समाधयः" यही अर्थ जिज्ञासुओंको उपादेय है। नहीं तो बाहरकी कथाका मुमुक्षुओंको कुछ उपयोग नहीं। मनुष्योंके व्यवहार जड पर्वतोंसे नहीं होते।

मच्छ कच्छ।

तैसेही मच्छ कच्छ संज्ञावाले समुद्रके तीर मनुष्य योनियोंमें विष्णुके अवतार हुये हैं वा तिनके राजोंके भी मच्छ कच्छ नाम थे सो मच्छ कच्छ पूर्वोक्त सभामें बोले कोई जलजंतु मनुष्यवत् बोल नहीं सक्ते।

ध्रुव ।

पुनः ध्रुव बोला हे साधो! जीवरूप स्वायंभुव मनुके कुलविषे मन रूप उत्तानपाद जानना। तिसकी राजसी तामसी वृत्तिरूप प्रवृत्ति तथा सात्त्विकी वृत्तिरूप निवृत्ति दो स्त्री हैं। तिस निवृत्तिरूप स्त्रीसे पूर्व पुण्योंके वशसे, सर्व वैरागादि दैवी गुणों संयुक्त मुमुक्षुतारूप व्यवसाय दृढ सात्त्विकी वृत्तिरूप निश्चय उत्पन्न होता है, सोई ध्रुव जानना। प्रवृत्ति वृत्तिरूप स्त्री, मनरूप उत्तानपाद राजाको; अतिप्रिय होनेसे, सदा सन्मुख रहती है, निवृत्ति नहीं यह सर्वके अनुभव सिद्ध है।

और प्रवृत्ति निवृत्तिका विरोध भी सर्वके अनुभव सिद्धहै। तज्जन्य प्रजाका विरोध भी सर्वके अनुभव सिद्ध है। सो कदाचित् निवृत्ति कापुत्र दृढ सात्त्विकी निश्चयरूप ध्रुव प्रवृत्तिरूपस्त्रीके सन्मुखहोता हैं, तब प्रवृत्ति अपना तथा निज बालबच्चोंका मुमुक्षुतारूप दृढ सात्त्विकी निश्चयरूप ध्रुवको अनिष्ट जानके तिरस्कार करतीहै। तात्पर्य यह कि, राजसी तामसी प्रवृत्तिमें जो प्रवृत्तपुरुष हैं तिनको वैरागादि सहितमुमुक्षुपुरुषोंका सम्बन्ध नहींबनता. यहीतिरस्कार है। कदाचित्जो वैराग्यवान् मुमुक्षुपुरुष किसी अदृष्ट निमित्तसे प्रवृत्ति करते भीहैं तो तिस राजसी व्यवहारमें अवश्यमेव दुःख पाते हैं। परन्तु निज पूर्वपुण्योंके वशसे वा ईश्वर अनुग्रहसे कल्याणकारी पुरुष पुनः निवृत्तिरूप ब्रह्मविद्या स्त्रीकोही प्राप्त होतेहैं। सो ब्रह्मविद्यारूप माता मुमुक्षुओंको उपदेश करती है। हे मुमुक्षुजनो जो तुमको प्रवृत्तिजन्य विषय सुख भोगना है तो प्रवृत्तिके उदर नाम तिसके बीचमेंही रहो और ब्रह्मानंद सम्यक् विचाररूप निवृत्ति-रूप स्त्रीमें है, आगे जो इच्छा हो सोई करो। सो पूर्वोक्त ध्रुवरूप मुमुक्षु ब्रह्मविद्यारूप माताके उपदेशसे चित्तकी एकाग्रतारूपतपको करता है नाम चित्तकी वृत्ति और प्राणोंको सर्व ओरसे खींचकर एक अगुष्टमें धारण करता है। तब सकाम मनरूप इन्द्र, सज्जनोंकी नीतिसे अधिक, शब्दादि विषयोंके ग्रहण करनेवालेको, श्रोत्रादि इंद्रियरूप देवतासहित यह शरीररूप स्वर्गही विषयसुख भोगनेका स्थान है। जब मुमुक्षु चित्तकी एकग्रतादि तप साधन कर आत्मज्ञान सपादन करेगा तो पुनःदेह धारणका अभाव होगा इससे पूर्वोक्तमनइन्द्ररूपकामादि आसुरी सपदासहित देवंतोकेसमाजका भी मनुष्य देहरूप स्वर्गमें अभावहोगा।इसवास्तेअपनेइष्टकीरक्षाके हेतु पूर्वोक्त मन इन्द्रियरूप देवता मुमुक्षुरूप ध्रुवको विघ्न करतेहैं।

जो ऐसा नहीं माने तो इन्द्रकी शास्त्रमें नियत आयु अबाध लिखी है, तथा इन्द्र सर्वज्ञ लिखा है । जो किसीके उग्रतपसे इंद्र निजपदसे गिरेगा तो इन्द्रकी नियत आयु कथन करनेवाला शास्त्र व्यर्थ होजावेगा । इससे पूर्वोक्त व्यवस्थाही ठीक है।

हनुमान ।

इतनेमें हनुमान आयकर बोले हे सन्तो । पट्वस्तु अनादि पक्षमें जीव ईश्वर दोनों भाई हैं । राम ईश्वर हैं और लक्ष्मण जीव रूप मुमुक्षु हैं । मन इंद्रियरूप इन्द्र देवतोंको जीतनेवाला, इन्द्र-
रूप मुमुक्षु हैं । मन इंद्रियरूप इन्द्र देवतोंको जीतनेवाला, इन्द्र-
जीतरूप गुरुके ज्ञान रूप शक्ति मारनेसे, मुमुक्षुरूप लक्ष्मणको मूर्छा हुई (आवरण विशिष्ट अज्ञानांशका नाशही मूर्छा है) तब विक्षेप विशिष्ट अज्ञानांशरूप हनुमानने, शरीररूप पर्वतसे, प्रार-ब्धरूप संजीवन बूटीसे, तथा रामरूप ईश्वरकी कृपासे, निज स्वरूपसे भिन्न सर्व नामरूप जगतका मिथ्यात्व वा अभावनिश्चय रूप बाधित जानना अर्थात् संसारकी प्रतीतिपूर्वक जो जीव-न्मुक्ति सोई मूर्छा खुलनी है।

"ह इति प्रसिद्धं नु इति वितर्के" करके जो मान्यके योग्य होवे वा माया तत्कार्य में नहीं और यह मेरा नहीं किन्तु मैं तिसका द्रष्टा हूँ, इस निश्चयवानका नाम हनुमान् है। सो मन इंद्रियादि जड पदार्थोंकर प्रत्यक्‌ आत्माही चैतन्य होनेसे मान्य देने योग्य है, इससे प्रत्यक्‌ आत्माकोही हनुमान् कहते हैं । इस हेतु हे अधिकारी जनो ! मुझ प्रत्यक्‌ आत्मा हनुमान्‌कोही अपना आप स्वरूप जानो जो जन्म मरणसे रहित जीवन्मुक्त होकर मेरे समान विचरोगे ।

इति पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशका सप्तमसर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

अथ अष्टम सर्ग ८.

कारणदेव तथा कार्यदेवके परस्पर संवाद द्वारा व्यवहार तथा परमार्थ निरूपण ।

कारणदेवका पुत्र कार्यदेवने, छोटी अवस्थामेंही, गुरुके गृह जाके वेदादि विद्या सर्व पढके, निज गृहमें आकर, माता पिताका, शास्त्र रीति अनुसार पूजन किया, परंतु नित्यनैमित्यादिकर्म रहित तूष्णीं स्थित होरहा । पिता यह अवस्था पुत्रकी देखकर बोला । हेपुत्र! कर्मों की पालना तू क्यों नहीं करता ? तात्पर्य यहकि, कायिक वाचिक मानसिक कर्मनाम करनेकाहै, कर्म नहीं करनेसे शरीर नष्ट होवेगा । पुत्रनेकहा हे पिता ! वेदमें कहाहै कर्मोंकरही बंधन होताहै, इससे मोक्ष प्राप्तिके यत्नवान, मुमुक्षु पुरुष कर्म नहीं करते । न कर्मोंकर मोक्ष होताहै; न धनकर, न पुत्रकर होताहै, केवल कार्य कारण रूप इस संघातरूप अहंकारके त्याग करही मोक्ष होताहै। इत्यादि अनेक वाक्यहैं और पुनः यहभी वेदमें कहाहैकि, उपनयन से वा विवाहके उपरांत, जितने दिनतक जीवे अग्निहोत्र कर्म करताहुआ ही जीवनेकी इच्छा करे । इत्यादि अनेक वेदमें वाक्य देखने में आतेहैं इसवास्ते दोनोंके मध्य मुझको क्या कर्तव्यहै तात्पर्य यह कि कर्मनाम करनेका है, कायिक वाचिक मानसिककर्म करनेसेही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नाम सुखकी प्राप्ति होती है । इस संशय रूप समुद्र विषे मैं डूब रहाहूँ, मुझको पार करो । मैं आपकी शरणागत हूँ । पिता ने कहा हे पुत्र! कर्म उपासना ज्ञान तीनों के प्रतिपादक वेदविषे वाक्यहैं। तात्पर्य यहकि, अन्तःकरणकी शुद्धिवास्ते कर्मकांडहै, अतःकरणकी निश्चलता वास्ते निर्गुण वा सगुण वस्तुकी अनेक प्रकारकी अहंग्रह वा प्रत्यक् ध्यान भक्तिरूप उपासना कांडहै

जो ऐसा नहीं माने तो इन्द्रकी शास्त्रमें नियत आयु अबाध लिखी है, तथा इन्द्र सर्वज्ञ लिखा है। जो किसीके उग्रतपसे इंद्र निजपदसे गिरेगा तो इन्द्रकी नियत आयु कथन करनेवाला शास्त्र व्यर्थ होजावेगा। इससे पूर्वोक्त व्यवस्थाही ठीक है।

हनुमान।

इतनेमें हनुमान आयकर बोले हे सन्तो! पट्वस्तु अनादि पक्षमें जीव ईश्वर दोनों भाई हैं। रामईश्वर हैं और लक्ष्मण जीव रूप मुमुक्षु हैं। मन इंद्रियरूप इन्द्र देवतोंको जीतनेवाला, इन्द्र-
रूप मुमुक्षु हैं। मन इंद्रियरूप इन्द्र देवतोंको जीतनेवाला, इन्द्र-
जीतरूप गुरुके ज्ञान रूप शक्ति मारनेसे, मुमुक्षुरूप लक्ष्मणको मूर्छा हुई (आवरण विशिष्ट अज्ञानांशका नाशही मूर्छा है) तब विक्षेप विशिष्ट अज्ञानांशरूप हनुमानने, शरीररूप पर्वतसे, प्रारब्धरूप संजीवन बूटीसे, तथा रामरूप ईश्वरकी कृपासे, निज स्वरूपसे भिन्न सर्व नामरूप जगतका मिथ्यात्व वा अभावनिश्चय रूप बाधित जानना अर्थात् संसारकी प्रतीतिपूर्वक जो जीवन्मुक्ति सोई मूर्छा खुलनी है।

"ह इति प्रसिद्धं नु इति वितर्के" करके जो मान्यके योग्य होवे वा माया तत्कार्यमें नहीं और यह मेरा नहीं किन्तु मैं तिसका द्रष्टा हूँ, इस निश्चयवानका नाम हनुमान् है। सो मन इंद्रियादि जड पदार्थोंकर प्रत्यक्‌ आत्माही चैतन्य होनेसे मान्य देने योग्य है, इससे प्रत्यक्‌ आत्माकोही हनुमान् कहते हैं। इस हेतु हे अधिकारी जनो! मुझ प्रत्यक्‌ आत्मा हनुमान्‌कोही अपना आप स्वरूप जानो जो जन्म मरणसे रहित जीवन्मुक्त होकर मेरे समान विचरोगे।

इति पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशका सप्तमसर्ग समाप्त॥ ७॥

अथ अष्टम सर्ग ८.

कारणदेव तथा कार्यदेवके परस्पर संवाद द्वारा व्यवहार तथा परमार्थ निरूपण ।

कारणदेवका पुत्र कार्यदेवने, छोटी अवस्थामेंही, गुरुके गृह जाके वेदादि विद्या सर्व पढके, निज गृहमें आकर, माता पिताका, शास्त्र रीति अनुसार पूजन किया, परंतु नित्यनैमित्यादिकर्म रहित तूष्णीं स्थित होरहा। पिता यह अवस्था पुत्रकी देखकर बोला। हेपुत्र! कर्मों की पालना तू क्यों नहीं करता ? तात्पर्य यहकि, कायिक वाचिक मानसिक कर्मनाम करनेकाहै, कर्म नहीं करनेसे शरीर नष्ट होवेगा। पुत्रनेकहा हे पिता! वेदमें कहाहै कर्मोंकरही बंधन होताहै, इससे मोक्ष प्राप्तिके यत्नवान, मुमुक्षु पुरुष कर्म नहीं करते। न कर्मों-कर मोक्ष होताहै; न धनकर, न पुत्रकर होताहै, केवल कार्य कारण रूप इस संघातरूप अहंकारके त्याग करही मोक्ष होताहै। इत्यादि अनेक वाक्यहैं और पुनः यहभी वेदमें कहाहैकि, उपनयन से वा विवाहके उपरांत, जितने दिनतक जीवे अग्निहोत्र कर्म करताहुआ ही जीवनेकी इच्छा करै। इत्यादि अनेक वेदमें वाक्य देखने में आतेहैं इसवास्ते, दोनोंके मध्य मुझको क्या कर्तव्यहै तात्पर्य यह कि कर्मनाम करनेका है, कायिक वाचिक मानसिककर्म करनेसेही धर्म, अर्थ; काम, मोक्ष नाम सुखकी प्राप्ति होती है। इस संशय रूप समुद्र विषे मैं डूब रहाहूँ, मुझको पार करो। मैं आपकी शरणागत हूँ। पिता ने कहा हे पुत्र! कर्म उपासना ज्ञान तीनों के प्रतिपादक वेदविषे वाक्यहैं। तात्पर्य यहकि, अन्तःकरणकी शुद्धिवास्ते कर्मकांडहै, अंतःकरणकी निश्चलता वास्ते निर्गुण वा सगुण वस्तुकी अनेक प्रकारकी अहंग्रह वा प्रत्यक् ध्यान भक्तिरूप उपासना कांडहै

और अंतःकरण विषे ब्रह्मात्माके आवरणकी निवृत्ति वास्ते ज्ञानकांडहै क्योंकि शुद्ध और निश्चल अंतःकरण विषेही ज्ञान होता है, अन्यथा नहीं । इससे ब्रह्मात्म एकत्व ज्ञानसे प्रथमही कर्मउपासनाके प्रतिपादक वाक्योंका मुमुक्षको अनुष्ठान कर्त्तव्यहै और ज्ञान उत्तरकालमें कर्मोंका त्याग कर्तव्य है; जैसे छोटे वृक्ष कोही जलसिंचनादि व्यवहारहै, दृढको नहीं । तथा पक्षी बच्चाके माता पिता,तबलगही बच्चेको सेवन करतेहैं, जबलग परवृद्धि नहीं होती उपरांत सेवन करेंगे तो पर गल जावेंगे । यही तिन वेदवचनोंकी व्यवस्थाहै इससे हे पुत्र ! तू ब्रह्मात्मा एकत्व ज्ञानके योग्य है ।

ब्रह्मका अनुभव क्या है ?

पुत्रने कहा हे पिता! ब्रह्मका अनुभव क्याहै ? पिताने कहा हे पुत्र ! जो चैतन्य वस्तु अंतर,आप मन बुद्धि आदिकोंसे अज्ञात हुआ २ और अज्ञान तत्कार्य मन बुद्धि आदियोंके अंतर ज्ञाता करके,जो चैतन्य की स्फूर्ति है, सोई जानना ब्रह्मका अनुभव है । तथा देश देशांतर जो वृत्ति जाती है तथा स्वप्न में स्वप्नांतर जो मनको होता है, तिनके अनुभव करनेवालेको ब्रह्म निजात्म जानना ही ब्रह्मका अनुभव है ।

मैं ब्रह्म को जानताहूँ,यह जो निश्चयहै सो अब्रह्म अनात्ममिथ्या निश्चयहै क्योंकि जो जाननेमें आताहैसो निश्चय दृश्यहोताहै,जैसे जो सूर्यसे प्रकाशने में आता है सो निश्चय प्रकाश्य सूर्यका दृश्य होताहै और सूर्यचैतन्य भिन्न किसी प्रकाश्यरूप दृश्यसे प्रकाशने योग्य नहीं।इससे दृष्टांतविषे सूर्य स्वयंप्रकाशहै क्योंकि घटपटादि प्रकाश्यसूर्यको अन्य प्रकाशकके अभाव होनेसे प्रकाशते नहीं। तैसेब्रह्मरूप आत्मा बुद्धि आदिसेजाननेमें आवेगा तो ब्रह्मात्मा दृश्य

होजावेगा और बुद्धि स्वयंप्रकाशहोवेगी। सो यह अर्थ श्रुति तथा विद्वानोंको अंगीकार नहीं। इससे मैं ब्रह्मरूप आत्माको जानता हूँ, यह निश्चय ठीक नहीं। किंतु ब्रह्मरूप आत्मा तो, जाननेवालेका स्वरूप, स्वयंप्रकाश, सर्व बुद्धि आदियोंका द्रष्टा है, बुद्धि आदियोंसे जाननेमें कैसे आवेगा ? किंतु नहीं आवेगा जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्ननरोंके मन बुद्धि आदियोंसे नहीं जाना जाता; है उलटा स्वप्ननरोंको जानता है। इसीसे स्वयप्रकाश है। हे पुत्र! ब्रह्मात्माका स्वरूप केवल शुष्क तर्कों करकेही सम्यक् अपरोक्ष जाननेमें नहीं आता, न बहुत श्रवण करनेसे जाना जाता है, न केवल चतुराईसे जाना जाताहै, न अभिमानपूर्वक वेदादि विद्याध्ययनसे प्राप्त होता है, किंतु केवल अहंकार रहित, सरल बुद्धिपूर्वक उत्कट जिज्ञासा सहित, सम्यक् श्रद्धालु आचारवानको ही, यह आत्मा सुलभ प्राप्त होता है।

प्रेरक जीव है कि, ब्रह्म ?

पुत्रने कहा हे पिता! इस मनादिजडसंघातका प्रेरक जीवहै कि, ब्रह्मात्मा ? पिताने कहा हे पुत्र! इसमें एक दृष्टांत सुनो जिससे तुमसे जीव, ईश ब्रह्मस्वरूप तथा प्रेरक प्रेर्य भाव जाना जावेगा। जैसे आकाश सूर्यकेप्रतिविंब विना जल नहींहोताहै और जलविनाप्रतिविंब नहीं होता है। जल प्रतिबिंब इकट्ठेही होते हैं, जलके ग्रहणसे प्रतिविंबकाभीग्रहण होता है। तात्पर्य यह कि,जिस सूर्य वा चक्षुवा आकाशने जलको प्रकाशा है,वा अवकाश दियाहै,तथा जिसने सर्व जगत्को प्रकाश अवकाश दिया है सोई जल सहित प्रतिविंबको प्रकाशता है,वा अवकाश देताहै, यह दृष्ट सिद्ध है। इससे जलको प्रकाश्य योग होनेसे प्रतिबिंब भी अवश्य प्रकाश्य योग्य होवेगा। तैसेही अतःकरणरूपपी जलमें,वा अविद्या अंशमें,ब्रह्मात्मारूप सूर्य वा आकाशका प्रतिबिंबवत् प्रतिविंब पडता है, दोनों मिले हुयेका

नाम जीव है और बिंबका नाम ब्रह्म ईश्वर आत्मा है। अंतःकरण वा अविद्या सहित प्रतिबिंब रूप जीवसे भिन्न और कहीं जीवकी सिद्धि होती नहीं और होती हो तो तुमहीं कहो; तुम भी शास्त्रज्ञ निज अनुभव वाले हो। इससे अंतकरण सहित प्रतिबिंब जीव है। तात्पर्य यह कि, त्वं पदका वाच्यार्थ है। यही पूर्वोक्त जीवही जल सहित प्रतिबिंबके गमनादिक समान कर्ता भोक्ता, परलोकमें गमन, पुनःइसलोकमें आगमन, ज्ञान अज्ञान, हर्षशोक, सुख दुःख, बंध मोक्षादि धर्मोंवालाहै, बिंब नहीं। जैसे जल जलमें प्रतिबिंबका लक्ष्यरूप जो सूर्यादि बिंब है, सो पूर्वोक्त सर्व सहित प्रतिबिंबके धर्मोंसे रहित है। तैसे अंतःकरण सहित प्रबिंबरूप जीवका, लक्ष्यरूप जो ब्रह्मात्मा, बिंब स्वरूप साक्षी चैतन्य ईश्वर अंतर बाहिर स्थितहै, सो पूर्वोक्त सर्व समान प्रतिबिंब मनका रूप जीवके धर्मोंसे रहित स्वतःही निर्विकार निर्विकल्प है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, अंतर वस्तु मन बुद्धि आदियोंसे अज्ञात हुई २ और सर्व बुद्धि आदियोंको जो अंतर प्रकाश करे नाम जाने तिस वस्तुको ब्रह्म कहो, चाहे अल्ला, खुदा, रहिम, ईश्वर, चाहे नारायण, चाहे कृष्ण, चाहे राम, चाहे अंतर्यामी, चाहे गाड, चाहे परमात्मा कहो। चाहे ईश्वर, चाहे आत्मा, प्रत्यक् कहो, चाहे पुरुष कहो; चाहे सत् चित् आनंद कहो। परंतु पूर्वोक्त लक्षण युक्त बिंबभूत वस्तुही तुम्हारातथा हमारा सर्व जगत्का निःसंदेहस्वरूपहै। यही वस्तु सर्व इंद्रिय प्राण देह मनादि संघातका प्रेरक है। अन्य जीव नहीं, जीव प्रेरक है क्योंकि पूर्वोक्त रीतिसें जीव दृश्य होनेसे मिथ्या है। तात्पर्य यह कि, जो अंतःकरण रूप दृश्यकी व्यावहारिक वा प्रातिभसिक सत्ता है, सोई प्रतिबिंबकी भी सत्ता है भिन्न नहीं, अंतःकरणके अनुयायी प्रतिबिंब है क्योंकि बिंब मनके अनुसारी नहीं परन्तु संसारदशा में नाम ब्रह्मात्म अज्ञा-

त दशामें पूर्वोक्त जीव अबाध्य रूप सत् है,इसीसे शास्त्रने जीवको सनातन सत् कहा है, परंतु जीवका परमार्थ लक्ष्य स्वरूप बिंबभूत ब्रह्मात्मा त्रैकालिक सत्स्वरूप अबाध्यहै,अन्य जीवादि नहीं। जैसे जल सहित प्रतिबिंब मिथ्या है,बिंब भानु सत् है। हे पुत्र! यह सर्वबुद्धि आदियोंके प्रकाशक प्रेरकब्रह्मरूप आत्माको श्रुति कथन करतीहै कि,प्राणोंका प्राण है, चक्षुओंका चक्षु है, श्रोत्रोंका श्रोत्र है, त्वचाका त्वचारूप है, मनका मनरूप है, आकाशका आकाशरूप है इत्यादि सर्वको जान लेना। तात्पर्य यह कि,सर्व नाम रूप दृश्य वस्तुओंका अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा स्वरूपभूत है;जैसे सर्व नाम रूप तरंगादियोंका मधुरता द्रवता शीतलतारूप जल अपना स्वरूप है,तथा जैसे सर्व स्वप्न पदार्थोंका स्वप्नद्रष्टा स्वरूपभूत है, जैसे भूषणोंका स्वरूप सुवर्ण है; जैसे खिलोनोंका स्वरूप चीनी है, जैसे कल्पित सर्प दंड माला आदियोंका रज्जु अपना स्वरूप है,इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। तैसे नाम रूप प्रपंच का अस्ति भाति प्रिय रूप मैंही स्वरूप हूँ वा कार्य कारण रूप प्रपंच, मन वाणी सहित वाङ्मनसगोचरसे मैं आत्मा अवाङ्मनसगोचर हूँ। ऐसे निश्चयवाला पुरुष जीवत अवस्थामेंही अमृतभावको प्राप्त होता है। हे पुत्र! जो चेतन्य मन बुद्धि श्रोत्रादि इंद्रियोंके अंतर मन श्रोत्रादि इंद्रियोंसे अभिन्न हुयेके समान स्थित हुआ,जो मन बुद्धि प्राण श्रोत्रादि जड इंद्रियोंको आप अपने व्यवहारमें (जड़पुतलीको पुरुषवत्) प्रेरकर जोडताहै,तथा तिनके न्यूनाधिक व्यवहारको जानताहै और मन, इंद्रियादि जिस (अपनेप्रेरक) को नहींजानते,उलटा मनादियोंको जो प्रेरना जानता है,नाम सत्तास्फूर्ति प्रदान करता है। सोई देव मनादि इंद्रियोंसे भिन्न मनादियोंका साक्षी तुम्हारा स्वरूप है। ऐसेही पृथिवी आदि सर्वपदार्थोंमें जोडलेना।हे पुत्र! जैसे धान काटनेमें शस्त्रको पुरुष धान काटनेवास्ते प्रेरता है, तैसे यह एक

आत्मा मनादि इंद्रियोंको, भिन्न होकर, उनके व्यवहारमें प्रेरता नहीं,किंतु जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नइंद्रियादि पदार्थोंमें स्थित हुआ २ निर्विकार होकर प्रेरताहै। जैसे आकाश सबमें स्थितहुआ२सर्वको अवकाश देता असंगहै, यही तिसका प्रेरणत्वहै। तैसेतुम ब्रह्मात्मा नामरूपमनादि दृश्यविषेस्थित हुये२तथा मनादि दृश्यके प्रेरक प्रकाश हुए२भी असंग होनेसे स्वतःनिर्विकार निर्विकल्प शांत रूप स्थितहो।यद्यपि मनादि जड प्रेर्य और तुम्हारे स्वरूपचैतन्य प्रेरक एक रूप अविवेक दृष्टिसे भासते भी हैं,जैसे काष्ठ और अग्नि अविवेकसे एक रूप भासते भी है, तथा दूध घृत विचारे विना एकमेक भासते भी हैं परंतु एक नहीं। तथापि विवेक दृष्टिसे प्रेर्य प्रेरक,जड . चैतन्य तथा अग्नि और काष्ठ,एक रूप होते नहीं, प्रसिद्ध तंत्र तंत्रीके समाना वा देहविषे देहीके समान वा देहविषे पिशाचवत् वास्तव भिन्नही हैं। तुम आपको मनादियोंका प्रेरक अंतर्यामी ब्रह्मात्मा जानो।

जीव शुभाशुभ कर्मोंका भोक्ता है अथवा नहीं?

पुत्रने कहा हे पिता! जब मन इंद्रियादियोंका. उनके शुभाशुभ व्यवहारकी प्रवृत्ति निवृत्तिमें प्रेरक कोई अन्यदेव है तो, इस जीवको शुभाशुभ कर्मोंका फल सुख दुःख न होना चाहिये। दुःखकी इच्छा न करता हुआ बलात्कार, राजपुरुषके शुभाशुभमें जोडते हुयेके समान दुःखके साधनोंमें पुरुष जुडता है। तैसेही सुखके साधनोंमें भी जान लेना। हे पुत्र! शुभाशुभ कर्म संघातके प्रसिद्ध धर्म हैं;धर्मसहित इस संघातके द्रष्टा आत्माके नहीं, परंतु भ्रांतिसे निज धर्म मानता है। इसीसे कर्मका फल सुख दुःख भोक्ता है, पर संघातका धर्म निजधर्म नहीं माने तो नहीं भोक्ता। जैसे पुत्रके सुख दुःखसे पिता भ्रम कर सुखी दुःखी होता है, विचारे तो पिताको पुत्रका सुख दुःख नहीं।

आत्मा असंग है।

हे पुत्र। जैसे घटाकाश तथा स्वप्नद्रष्टा घट स्वप्नको अवकाश सत्ता स्फूर्ति देतेभी, घट स्वप्नके व्यवहारसे, आकाश स्वप्नद्रष्टा सदा असंग निर्विकार है वैसे ही निजात्मा इस संघातको प्रेरताभी सदा असंग है।ऐसे जाननाही कर्तव्यहै और शारीरिक साधन कुछ करना नहीं। पुनः पिताने कहा हे पुत्र। इस प्रश्नके उत्तरका पूर्वही हम स्वप्न और स्वप्नद्रष्टाके दृष्टांतसे तथा आकाशके दृष्टांतसे, समाधान कहा चुकेथे। अर्थात् धान काटनेवाले पुरुषके समान यह चैतन्य आत्मा मनादियोंको नहीं प्रेरता, किन्तु जैसे आकाश सर्व व्यापी होकर सर्वकी अवकाश देता भी असंग हैं ऐसेही आत्मा सर्वमें सर्वको सत्ता स्फूर्ति देता भी सबसे असंगहै। परन्तु स्वप्नद्रष्टाका दृष्टांत अनुभव रूप होनेसे प्रधान है। तैसे यह साक्षी चैतन्य देव तुम्हारा आत्मा सर्व,ध्याताध्यान ध्येयादि त्रिपुटियोंका स्वरूप भूत हुआ २नाम सर्वको सत्ता स्फूर्ति प्रदान करता हुआभी असंगहै। हे पुत्र। जैसे भूमि अनेक बीज अंकुरोंका आधारहै, तथा अंकुरोंमें अनुस्यूत है, भूमि विना एक अकुर भी स्थित नहीं हो सक्ता। सारांश यह कि, जैसे आकाश सर्व अंकुरमें तथा पत्र फल फूलमें, तथा भूमिमें व्यापक और असंग हुआ २ सर्वको अवकाश देताहै, जो आकाश अवकाश नहीं देवे तो सर्वका व्यवहार कैसे होवे। परंतु अनेक बीजोंमें तथा अंकुरोंमें आप अपने पूर्वसंस्कारके अनुसार, अनेक प्रकारके गुण व्यक्ति फल फूल पत्र सहित भिन्न भिन्न अंकुर निकसतेहैं, और आकाश अवकाश सर्वको देनेवाला एकहीहै। तथा भूमि भी एकहीहै। यह दृष्टांत संमदार्ष्टांतमें जोड लना। तैसे अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मा,सर्व नाम रूपात्मक जगत्में व्यापक आधार अधिष्ठान हुआ २ तथा द्रष्टा प्रकाशक हुआ २ भी तिनके व्यवहारोंसे

अलिप्त है। कर्तव्य अकर्तव्यके गुण दोषको प्राप्त नहीं होता और असत् जड जगत्का नियामक भी है। तुम्हारे प्रश्नके अनुसार, तो औषधियोंके गुण दोष आकाश और भूमिमें होने चाहिये क्योंकि भूमि और आकाश तिनके निर्वाहके कारण हैं। सो ऐसा देखनेमें नहीं आता। जैसे सूर्यादिकोंके तेज कर सर्व सृष्टि आप अपने व्यवहारमें बहिर जुड़तीहै परन्तु तेज किसीको अंगुली पकडके नहीं जोडता। इसीसे सूर्य किसीके गुण दोषको नहीं प्राप्त होता, आप संस्कारके अधीन सर्व सृष्टि निज निज व्यवहारमें जुडतीहै। तैसेही चैतन्यदेव अन्तर्यामी तुम्हारा आत्मा मन बुद्धि आदि सर्वसृष्टिका नियामक हुआ२भी असंगहै। सृष्टिके कर्तव्य अकर्तव्यजन्य गुण दोषको नहीं प्राप्त होता, मनादिसृष्टि आप अपने संस्कारके अनुसार आपअपने संकल्प विकल्पादि व्यवहारमें जुडती है इससे हे पुत्र! अन्त मनादि दृश्यका द्रष्टा, विकार रहित, निर्विकल्प, एकरस अक्रिय अन्तर अमृत अभय अजन्मा सुख दुःखरूप बंधमोक्षसे रहितहै। तात्पर्य यहकि, सर्वसंसार और संसारके धर्मोंसे रहित स्वतःसिद्ध अन्तरकोई वस्तु है ऐसा अनुभव होताहै। सोई आकाशवत्, सर्व मनादियोंको सत्ता स्फूर्ति करता हुआ भी असंग है; सोई हमारा तुम्हारा स्वरूपहै। यह जाननाही कर्तव्य है करना कुछ नहीं। स्वतःही बनरहा है। हे पुत्र! इस निज आत्मवस्तुको मन वाणी कथन चिन्तन नहीं कर सके क्योंकि कथन चिन्तनसे प्रथमही, कथन चिन्तनके भावाभावको प्रकाशताहै जो प्रथम सिद्धन होवे तो कथन चिन्तनकी उत्पत्ति, अनुत्पत्ति कैसे जाननेमें आवेगी जैसेलडकेकी उत्पत्तिसे प्रथम दाई सिद्ध लडकेकी उत्पत्तिको, तथा उत्पत्तिके स्थानको जानती है। जो दाई प्रथम सिद्ध नहीं होवे तो लडकेके सर्वव्यवहार जाने कैसे जावें ? इत्यादि अंकुरादि अनेक दृष्टांत

हैं। जैसे अंकुरके प्रथम ही पुरुष वा आकाश सिद्ध है । इसी से स्वतः निजात्मा निर्विकार निर्विकल्प है क्योंकि निर्विकार सविकार, निर्विकल्प सविकल्पादि कथन चिन्तन, वाणी मनमें हीहै। जब सुषुप्तिमें मन वाणी लीन होते हैं तो, विकार अविकार निर्विकल्पादि कथन चिन्तन भी नहीं रहते। परंतु जो वस्तु जाग्रत में कथन चिन्तनके भावका साक्षी है, सोई वस्तु सुषुप्तिमेंतिन जाग्रतादियोंके अभाव कल्पनाका साक्षी है। जो चेतन सुषुप्तिमें निर्विकार है सोई चेतन जाग्रत्में है। वास्तव में सोइ वस्तु निर्विकल्प निर्विकार है, सोई प्रत्यक्ष आत्मा तेरा स्वरूप है, तू चैतन्य आत्मा ही इस जड संघात की चेष्टाका कारण है। हे पुत्र। जैसे अचल जड वृक्षोंको चलावनेसे अरूप वायु अनुमान होता है वा त्वचा इंद्रिय से अनुमान होता है, यह घटवत् वायु की मूर्ति है। ऐसे वायुका चाक्षुष स्वरूप दिखावनेको कोई भी समर्थ नहीं हुआ न है न होगा। ऐसेही ब्रह्मात्मा तेरा स्वरूप है, ऐसा है वा तैसा है, इस प्रकार किसी धर्म विशिष्ट म नहीं कह सक्ते। न उपदेश करसकते क्योंकि जबयह मन बुद्धि आदियोंका साक्षी, आत्मा मनादि इन्द्रियों का विषय होवे तो जाति गुण क्रिया सम्बंधादि विशेषणोंसे तुझको उपदेश करें, सो आत्मा जाति आदि विशेषणों नाम धर्मों वाला है नहीं, नाम कैसे तुझको गोशृंगकी समान आत्मा दिखलाने को समर्थ होवें ? किंतु नहीं दुर्घट समझ है। अवाङ्मनसगोचरको अपरोक्ष अपने हस्तविषे अपरोक्ष फल के समान जाननेवत् जाननाही दुर्घट समझ है। इससे जो अन्तर बुद्धि आदि संघात जडका प्रेरक अंतर्यामी है सोई तुम्हारास्वरूप है। यह प्राण, मनादि संघात व्यभिचारी है और तुम्हारा स्वरूप आत्मा अव्यभिचारी एक रसहै। इसीसे सत् है। जो सत् चित् पूर्ण है, सोई आनंद रूप है। इससे सत् चित् सुख रूप तुझ आत्मासे भिन्न, असत् जड दुःख अनात्मा अव्यभिचारी रूप

मनादि दृश्यका द्रष्टा तेरा स्वरूप है। सो यह द्रष्टा विदित वस्तुसे न्यारा है नाम वृत्तिरूप ज्ञानके विषय समष्टि व्यष्टि भूत भौतिक, मायाके कार्यरूप प्रपंचवस्तुसे न्यारा है। तैसे विदित से विपरीत अस्पष्ट पूर्वोक्त कार्यका कारण प्रकृति, प्रधान, माया, अज्ञान; अविद्याहै सो, वृत्ति; ज्ञानका अविषय होनेते अविदित है। तिस अविदित वस्तुसे भी तेरा स्वरूप न्यारा है क्योंकि विदित अविदित का तू द्रष्टा है। तात्पर्य यह कि, प्रसिद्ध सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत्में अविदित विदित माया तत्कार्यका तू चैतन्य द्रष्टा है। इसीसे तू इनते भिन्न है। हे पुत्र। विदित आविदितपना दृश्यकोटिमेंही है, तिस दृश्यकाही विद्यत अविद्यतसे ग्रहण त्याग होता है, जैसे स्वप्नसृष्टिमेंही विदित अविदितपना तथा ग्रहण त्यागपना है,स्वप्न द्रष्टामें नहीं; तैसे तेरा स्वरूप स्वाभाविक ग्रहण त्याग के योग्य नहीं, जैसे अपना शरीर ग्रहण त्यागके योग्य नहीं क्योंकि ग्रहण त्याग करनें वाली वस्तु अपनेसे भिन्न परिच्छिन्न दुःखरूप होती है, तथा दृश्य मिथ्यात्व स्वप्नवत् वस्तु होती है। सो तेरा स्वरूप आत्मा ऐसा नहीं, न सुख दुःखका साधन है, किंतु ग्रहण त्याग विदित अविदितादि सर्व पदार्थोंका तथा सर्व पदार्थोंको विषय करने वाली विदित अविदिताकार सर्व वृत्तियों का साक्षी है। हे पुत्र। विचार देखिये तो विदित अविदितरूप ग्रहण त्यागादि वस्तु भी, अपने अस्ति भांति प्रियरूप आत्म स्वरूप से भिन्न नहीं, जैसे सूर्य वा लाल किर्ण की दमकामें हम किस किर्ण दमकका ग्रहण करें किसको त्यागें और कौन किर्ण दमक विदित है कौन नहीं? यह सब कहना मात्र है। तात्पर्य यह कि, सर्व नाम रूपात्मक जगत् अपना स्वरूप सूर्यकी किर्ण हैं। दुःख सुख भी किर्ण हैं, समाधि असमाधि भी किर्ण हैं। मन वाणी शरीर सहित जो संघातकी चेष्टा है

सो सब आत्माकी दमकां हैं । कोई राजसी किर्ण हैं, कोई तामसी किर्ण हैं, कोई सात्विकी किर्ण हैं कोई मायारूप किर्ण हैं और कोई आकाशादि किर्ण हैं । ऐसा हुआ २ भी आत्मारूप सूर्य लालअपनी महिमासे स्थित है, जैसे स्वप्नके पदार्थ विदित अविदित ग्रहण त्यागके योग्य प्रतीत होते भी हैं, परन्तु वास्तवसे स्वप्नद्रष्टासे भिन्न नहीं । जैसे जलसे तरंगादिक भिन्न नहीं, तैसे तुझ मनादिकोंके साक्षी चैतन्य सूर्य लालकी, यह नाम रूपात्म जगत् किर्णादमका है । ग्रहण त्याग किसकाकरें, किसका नं करें? सूक्ष्म विचारे तो, अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे भिन्न कल्पित नामरूप पदार्थोंमें वृत्तिरूप ज्ञानकी विदित अविदितरूप विषयता अविषयता है नहीं किंतु आत्मामेंहीहै क्योंकिवृत्तिरूपज्ञानकीविषयता अविषयताका आवरण भंग अभंग मात्र प्रयोजन है सो, आवरणरूप अज्ञान चैतन्यके आश्रय होवे है, जैसे नीलिमा आकाशके आश्रयहै, तैसे आत्मासे भिन्न सर्व पदार्थ कल्पित अज्ञान आवरण रूपहीहैं । आवरणरूप अज्ञान अज्ञानकें आश्रय होवे नहीं, जसे अन्धकारके आश्रय अंधकार नहीं । जैसे स्वप्न पदार्थोंके आश्रय स्वप्न पदार्थ नहीं, किन्तु स्वप्नद्रष्टाके आश्रय हैं । जैसे रज्जुमें कल्पितसर्पदंडमालादि है सो, परस्पर किसीके आश्रय नहीं, किन्तु रज्जुकेही आश्रय है । जैसे आकाश भिन्न नीलिमा किसीके आश्रय नहीं । इससे वृत्तिरूप ज्ञानकी विदित अविदित रूप आवरण भंग अभंगरूप विषयता अविषयता आत्मा रज्जुमेंही है । भूषणों, तरंगों, घटों, पटोंमें, भौतिक पदार्थों और स्वप्न पदार्थोंमें, जो वृत्ति ज्ञानकी विद्यत अविद्यत रूप विषयता अविषयता भासती है सो, सुवर्ण जल, मृत्तिका, तंतु, पंचभूत, स्वप्नद्रष्टामेंही है, अन्यभूषणादियोंमें नहीं इसी दृष्टिके लिये ब्रह्मात्म अपरोक्ष विद्वानकी वृत्ति जहां २ जाती है, तहां तहांही तत्तत् पदार्थ उपहित ब्रह्मात्माकोही विषय करती है। नामरूप कार्यका विवर्तउपादान, सर्वरूप . .

होनेसे वृत्तिज्ञानका विषय परोक्ष अपरोक्ष ब्रह्मात्माही है। इसी वास्ते विद्वानकी स्वतःसिद्ध नित्य समाधि अयत्न सिद्ध है। इत्यादि श्रुति है।

हे पुत्र। घट, पट, भूषण, तरंग, शास्त्र, सर्प, रजत, स्तंभस्थित पुतली, आदि कल्पित पदार्थोंमें वृत्तिरूप ज्ञानकी विषयता अविषयता प्रतीति होती भी है, परन्तु मृत्तिका तंतु सुवर्ण जल लोहा रज्जु शुक्ति स्तंभादि वृत्ति ज्ञानके विषय हैं अन्य घटादि नहीं। इससे सर्वभेद रहित, सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस प्रकाशक स्वतः बंध मोक्षरहित, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानन्दको, श्रुति अनुभवद्वारा, जब अपना आप स्वरूप जानोगे, तभी शांतिहोगी, अन्यथा नहीं। हे पुत्र। काम संकल्प, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, भय, अभय, लज्जा, अलज्जा, शांति अशांति, राग और वैराग, बन्ध मोक्ष, ज्ञान, अज्ञान, क्रोध अक्रोध, उदारता, अनउदारता, अहंकारता, अनहंकारता, मान अपमानादि, जितने आसुरी, दैवी, सद् असद्गुणरूपी धर्म अधर्म हैं सो अंतःकरणकी वृत्तिरूप धर्महैं। सो अंतःकरण अपने वृत्तिरूप धर्मोंसहित, अपने प्रकाशक ज्योति ब्रह्मात्माको मनन नहीं कर सक्ता, नाम जानता नहीं क्योंकि आत्माको मनादि प्रकाश्य नियमका प्रकाशक नियामक होनेसे। प्रकाश्य अपने प्रकाशकको नहीं जानता, सूर्यादि दृष्टांत प्रसिद्ध हैं। उलटा चैतन्य ज्योति आत्मासेही मनादि प्रकाशते हैं इससे जिस वस्तुने अन्तर पूर्वोक्त निश्चयादि वृत्ति रूप धर्मसहित मनको मनन किया है, तिसीको तू ब्रह्मात्मा निजरूप जान। जिस वस्तुको मन मनन करता है सो, तुम्हारा स्वरूप नहीं; वह माया तत्कार्य रूप है, सो मनसहित तुम्हारी दृश्य है। इसी प्रकार सर्व इंद्रिय प्राणादिमें तथा अन्य पदार्थोंमें भी जोड लेना, इत्यादि श्रुति है।

आत्मा-जाना जाताहै अथवा नहीं ?।

हे पुत्र ! ग्रहण त्याग योग्य वस्तुसे विपरीत तू ब्रह्म रूप आत्मा है। इस हमारे उपदेशसे तुझको निज स्वरूपका अनुभव हुआहै वा नहीं सो कह ? पुत्रने कहा हे पिता ! मैं सम्यक् अपने आत्मा स्वरूपको जानता हूँ। पिताने कहा हे पुत्र ! "मैं सम्यक् आत्म-जानता हूँ यह तेरा जानना भ्रांतिरूपहै क्योंकि जैसे अग्निसे जला-वनेयोग्य काष्ठादि वस्तुहैं सो काष्ठादि जलानेवाले अग्निकेस्वरूप नहीं, किंतु भिन्नहैं और दाहक शक्तिका अग्नि आत्मा होनेसे, अग्नि-को जलातानहीं; तैसे जानने योग्य ब्रह्मात्मवस्तु किसीका विषय होवे तो, सम्यक् जाननेको सामर्थ्य होवे। परन्तु ब्रह्मात्मा जानने-वालेका स्वरूप है। जानना त्रिपुटीमें होता है, ब्रह्मात्मा त्रिपुटीका प्रकाशक त्रिपुटीका विषयनहीं, यह सर्व वेदांतका सिद्धांतहै, इससे सम्यक् जाननेवालेका ब्रह्मात्मा स्वरूप होनेसे कोईभी जाननेको शक्य नहीं है। जैसे अग्निकी दाहशक्ति अग्निसे पृथक् काष्ठादि वस्तुको जलातीहै। परंतु दाहशक्तिका जो अपना आत्मा अग्निस्व-रूप है, तिसको नहीं दाह करसक्ती; तैसे दाहरूप वृत्तिज्ञानका विषय काष्ठके समान ज्ञानसे भिन्न ब्रह्मात्मा होवे तो जानने योग्यहोवे परंतु दाहशक्तिका आत्मा अग्निकेसमान जाननेवालेका स्वरूप ब्रह्मात्माहै इसीसे ब्रह्मात्माका अन्य जाननेवाला कोई नहीं। जैसे स्वप्नद्रष्टाको स्वप्ननर जानने योग्य नहीं, स्वप्ननरोंका स्वप्नद्रष्टा आत्मा है। जैसे किर्णोंका सूर्य आत्मा होनेसे सूर्य किर्णोंसे अ-ज्ञातहै; जैसे देहसे देही अज्ञातहै क्योंकि स्वप्नद्रष्टासे भिन्न सर्व स्वप्न कल्पितहै इसीसे स्वयंप्रकाशहै। जो अन्य किसी साधनसे जानाजाताहै सो, स्वयंप्रकाश नहीं होता, किंतु परप्रकाश होताहै। जो परप्रकाश होता है सो मिथ्या होताहै। इससे हे पुत्र ! तू जब ब्रह्मात्माको सम्यक् जानताहै तो, तू निश्चयकर परिच्छिन्न

असत् जड दुःखदृश्य मिथ्या वस्तुकोही जानताहै क्योंकि ब्रह्मात्मा केसाहै ?अशब्द, अस्पर्श, अरस, अगंध; अरूप; अचित्, अमन, अप्राण, अनहंकार, अक्रिय, निर्विकल्प, निर्विकार, गमनागमनादि रहित, अशरीर, अव्रण, शुद्ध, पापरहित, जाति गुण क्रियादि धर्मोंसे रहित अस्तित्वमात्रहै, बुद्धिके निश्चयमें नहीं आता, बुद्धिका द्रष्टा होनेसे क्योंकि जातिगुण क्रियासंबंधवान पदार्थोंकोही बुद्धि जानतीहैं, इनसे रहितको नहीं जानती। ऐसे अवाङ्मनसगोचर ब्रह्मात्माको तू कैसे जानताहै ? तू आपको बुद्धिरूप मानके आत्माको जानता है, वा आत्मा आपको जानता है; वा आभास आपको मानके आत्माको जानताहै। जो आत्मा कहे तो आत्माश्रयादि दोष होवेंगे और चिदाभास सहित निश्चयात्मक वृत्तिरूप बुद्धि, सो आत्माकी दृश्य होनेसे स्वप्रद्रष्टाको जानती नहीं; जो जाने तो आत्मादृश्यमिथ्या होगा, घटवत्। इससे हे पुत्र! अवास्तव स्वरूपके जाननेसे कल्याण नहीं होता।
[पु]त्रने कहा हे पिता! जिस धर्मसे जो निरूपण कियाजाताहै [स]ोई तिसका स्वरूपहोताहै जैसे मनुष्यका मनुष्यत्व धर्मसे निरू[प]ण किया जाताहै; सोई तिसका स्वरूप है। तैसे ब्रह्मात्माका [क्य]ोंकिसत् चित् आनंदरूप विशेषणोंसे, जो निरूपण किया [ज]ाताहै, सोई तिसका स्वरूपहै। पिताने कहा हे पुत्र। जितने शब्द [हैं], सो सर्व सापेक्षक, सविकल्प, जाति गुणक्रियावान् वस्तुकाही [नि]रूपण करसक्तेहैं। ब्रह्मात्माजाति आदि गुणोंसे रहित निरपेक्ष, [नि]र्विकल्प है आत्मा सर्व मनादिकल्पनाके आदि सिद्ध है सो [कै]से निरूपण किया जावे? तथापि मुमुक्षुके बोधवास्ते "सत [चित्] आनंदरूप जो वस्तुहै सोई, ब्रह्मात्मा तुम्हारा स्वरूपहै" ऐसा श्रुतिने कहा है सो, सत्चित आनंदभूत भौतिक कार्य कारणरूप [प्रपं]च, किसीभी मन प्राण श्रोत्र इंद्रियादि अनात्म पदार्थोंमेंभी

घटतानहीं तथा आकाशादि भूतोंमें भी घटता नहीं,भौतिकोंमें भी घटता नहीं। तात्पर्य माया तत्कार्य किसी पदार्थमें भी घटता नहीं किंतु बुद्धि आदियोंके साक्षी आत्मामेंही घटता है। इससे सत्‌चित् आनंदरूपवस्तुही अपना आप आत्मा जान।हेपुत्र। यह आत्माका स्वरूपभी, मन प्राण देह इंद्रियादि संघात समष्टि व्यष्टिके असत् जड दुःखरूप उपाधि द्वारा कहा है। वास्तवसे अवाङ्मनसगोचर अपनी आत्मा है; जैसे वृक्षकी चलनरूप क्रियाकरही वायुकारूप जाननेमें आताहै, अन्यथा नहीं। तैसे सर्वमनादि जड पदार्थोंका प्रेरक होनेसे आत्मा जाना जाता है; परंतु वास्तवसे ब्रह्मात्माका स्वरूप जाननेवाले को अज्ञात है और न जाननेवालेको ज्ञात है। तात्पर्य.यहकि, वाङ्मनसगोचरकर जानने वालेको अज्ञातहै और अवाङ्मनसगोचरकर जानने वालेको ज्ञात है।

हे पुत्र! देह प्राण इंद्रिय मन बुद्ध्यादि आनंदमयादिकोष अध्यात्म उपाधि परिच्छिन्न रूप पदार्थों मध्ये किसीको तू ब्रह्मात्माको स्वरूप जानता है। तो तुच्छ जानता है तैसे चक्षु आदि इंद्रियोंके सूर्यादि आधिदैव परिच्छिन्नरूप पदार्थोंमें किसी एकको तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानताहै सोभी तुच्छही जानता है। तैसे भूत भौतिक शब्दादि अधिभूत पदार्थोंमें किसी एकका तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानता है तो,तू अत्यंत तुच्छ जानता है। तात्पर्य यहकि, माया तत्कार्य मध्ये किसीभी पदार्थको, तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानेगा तो ब्रह्म, असत् जड दुःखदृश्य मिथ्यासिद्ध होवेगा क्योंकि जो जाननेमें आताहै सो ब्रह्मात्मा नहीं, किंतु ब्रह्मात्मा सर्व मनादियोंको जानने वालाहै। इससे सर्व पूर्वोक्त उपाधि रहित ब्रह्मात्माका स्वरूप जाना जाता नहीं क्योंकि स्वयंप्रकाश है। बुद्धिकी वृत्तिरूप ज्ञानका विषय नहीं। इससे तुमको स्वात्मविचार

करना योग्य है। पुत्रने कहा मैंवत् मैं ब्रह्मात्मा, अपने निज स्वरूप स्वाभाविक बंध मोक्ष रहित, अवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान जगद्विध्वंस प्रकाश अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष साक्षी सच्चिद्घन विशुद्धानंदको सम्यक् निजात्मा-जाननेवत् जानताहूँ, कोई विषय विषयी भावकर नहीं जानताहूँ, किंतु स्वयंप्रकाश भूमांमें सर्वका अनुभवी आत्मा विदितसे भिन्न ग्रहण त्यागके योग्य नहीं और सर्व विदित अविदित ग्रहण त्याग रूपभी मैंहीहूँ (स्वप्नद्रष्टावत्) पिताने कहा हे पुत्र । तू धन्यहै ऐसा जाननाही सम्यक् जाननाहै।

ज्ञानी अज्ञानीका भेद।

पुत्रने कहा हे पिता। विधिपक्षसेभी ब्रह्मात्मा सर्वथा अज्ञातहीहै क्योकि सर्वरूप आप होनेसे तथा अन्यके अभावसेभी अज्ञातही हुआ। निषेधी पक्षसेभी अवाङ्मनसगोचर होनेसेभी अज्ञात ही हुआ। तो ज्ञानी अज्ञानीका क्या भेदहै ? तिसके जाननेके साधन भी व्यर्थ ही हुये। पिताने कहा हे पुत्र! अनेक विधि आप अपने वस्तुओंके स्वरूपहैं, जो जिस वस्तुको जैसा स्वरूपहै सो, तैसाही जानताहै, सोई सम्यक्दर्शी है। अन्य असम्यक्दर्शीहै। जैसेप्रकाश्य प्रकाशक; दृश्यद्रष्टा, प्रेर्य प्रेरक, आत्मा अनात्माके भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक् असम्यक्दर्शी कहतेहैं। तथा वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर, ब्रह्मात्माके स्वरूप भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक् असम्यक्दर्शी ब्रह्मवेत्ता कहतेहैं। जैसे आत्मा सत् चित् आनंदरूप वा सत् चित् आनंद आत्मा के गुण जानने वालेको सम्यक् असम्यक्दर्शी कहतेहैं और सम्यक् ब्रह्मात्मा-एकत्वज्ञानसे सुखरूप मोक्ष और ज्ञान भिन्न अन्यसाधन से सुख रूप मोक्ष जाननेवालेको सम्यक् असम्यक्दर्शी विद्वान् कहते हैं । तैसे चाक्षुष आदि ज्ञानोंमें भी जानलेना। इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं।

तैसेही जो अवाङ्मनसगोचर ब्रह्मात्माके स्वरूपको जानते हैं सोई आत्मज्ञानी हैं, अन्य अनात्मज्ञानी हैं।

हे पुत्र ! शमादिपूर्वक कर्म उपासनाके अनुष्ठानसे, शुद्ध अचल अन्तःकरण विषेही गुरु उपदेश द्वारा ऐसा निश्चय होता है, अन्य रीतिसे नहीं। साधन भी कर्मउपासना शमादि सफल है और जो अवाङ्मनसगोचरकर ब्रह्मात्माको जानता है सोई अनात्मदर्शी है। ज्ञानीअज्ञानीके शिरपर कोई शृंग अशृंग नहीं, जो भिन्नभिन्न पहँचान होवे।

हे पुत्र ! इष्टसाधनता, योग्यता, स्वकृतिसाध्यता, ज्ञानपूर्वकही ब्रह्मासे आदिलेके चींटी पर्यंत सर्व ज्ञानी अज्ञानीकी प्रवृत्ति होती है; इससे विपरीत हेतुओंसे सर्वकी निवृत्ति होती है परन्तु परमा अपरमा ज्ञानका नियम नहीं। कह भेद ज्ञानी अज्ञानीका क्या हुआ?हेपुत्र ! सर्व पदार्थोंके सामान्य विशेष ज्ञानमें मायाविशिष्ट ईश्वर विना सर्व जीव ज्ञानी भी हैं, तथा अज्ञानी भी हैं, एकपदार्थके ज्ञानमें भी ज्ञानी अज्ञानी जीव कहे जाते हैं, जैसे माणिककी सम्यक् परीक्षावाला माणिकका ज्ञानी कहा जाता है, अन्य नहीं। तैसेही शिल्पविद्यावाला शिल्पज्ञ कहाजाता है और वहीमनुष्य धनुषविद्यामें अल्पज्ञ है। धनुषविद्यावाला शिल्पविद्यामें अल्पज्ञ है, इसी रीतिसे सर्वसमष्टिव्यष्टि पदार्थोंमें जानलेना। इससे यथार्थस्वरूप पदार्थोंका सम्यक् असम्यक् जाननाही ज्ञानी अज्ञानीपना है और कोई चिह्न नहीं; केवल दृष्टिका भेद है सो भी स्वसम्वेद है, परसंवेद नहीं।

हे पुत्र ! जब यह अधिकारी अपने नित्य ज्ञान अनंत रूप सर्वात्माको सम्यक् अपरोक्ष निजस्वरूप जानता है तब, किस चक्षु आदि साधनोंकर वा चाक्षुषादिजन्य ज्ञानोंसे किस रूपादिक पदार्थोंको देखे नाम जाने। किन्तु किसीकर भी नहीं

करना योग्य है। पुत्रने कहा मैंवत् मैं ब्रह्मात्मा,अपने निज स्वरूप स्वाभाविक बंध मोक्ष रहित, अवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान जगद्विध्वंस प्रकाश अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष साक्षी सच्चिद्घन विशुद्धानंदको सम्यक् निजात्मा जाननेवत् जानताहूँ, कोई विषय विषयी भावकर नहीं जानताहूँ,किंतु स्वयंप्रकाश भूमामें सर्वका अनुभवी आत्मा विदितसे भिन्न ग्रहण त्यागके योग्य नहीं और सर्व विदित अविदित ग्रहण त्याग रूपभी मैंही हूँ (स्वप्नद्रष्टावत्) पिताने कहा हे पुत्र ! तू धन्यहै ऐसा जाननाही सम्यक् जाननाहै।

ज्ञानी अज्ञानीका भेद।

पुत्रने कहा हे पिता ! विधिपक्षसेभी ब्रह्मात्मा सर्वथा अज्ञातहीहै क्योंकि सर्वरूप आप होनेसे तथा अन्यके अभावसेभी अज्ञातही हुआ। निषेधी पक्षसेभी अवाङ्मनसगोचर होनेसेभी अज्ञात ही हुआ। तो ज्ञानी अज्ञानीका क्या भेदहै ? तिसके जाननेके साधन भी व्यर्थ ही हुये। पिताने कहा हे पुत्र!अनेक विधि आप अपने वस्तुओंके स्वरूपहै,जो जिस वस्तुको जैसा स्वरूपहै सो, तैसाही जानताहै,सोई सम्यक्दर्शी है। अन्य असम्यक्दर्शीहै। जैसेप्रकाश्य प्रकाशक;दृश्यद्रष्टा, प्रेर्य प्रेरक,आत्मा अनात्माके भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक् असम्यक्दर्शी कहतेहैं। तथा वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर, ब्रह्मात्माके स्वरूप भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक् असम्यक्दर्शी ब्रह्मवेत्ता कहतेहै। जैसे आत्मा सत् चित् आनंदरूप वा सत् चित् आनंद आत्मा के गुण जानने वालेको सम्यक् असम्यक्दर्शी कहतेहैं और सम्यक् ब्रह्मात्मा.एकत्वज्ञानसे सुखरूप मोक्ष और ज्ञान भिन्न अन्यसाधन से सुख रूप मोक्ष जाननेवालेको सम्यक् असम्यक्दर्शी विद्वान् कहते हैं। तैसे चाक्षुष आदि ज्ञानोंमें भी जानलेना। इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं।

तैसेही जो अवाङ्मनसगोचर ब्रह्मात्माके स्वरूपको जानते हैं सोई आत्मज्ञानी हैं, अन्य अनात्मज्ञानी हैं।

हे पुत्र! शमादिपूर्वक कर्म उपासनाके अनुष्ठानसे, शुद्ध अचल अन्तःकरण विषेही गुरु उपदेश द्वारा ऐसा निश्चय होता है, अन्य रीतिसे नहीं। साधन भी कर्मउपासना शमादि सफल है और जो अवाङ्मनसगोचरकर ब्रह्मात्माको जानता है सोई अनात्मदर्शी है। ज्ञानीअज्ञानीके शिरपर कोई शृंग अशृंग नहीं, जो भिन्नभिन्न पहँचान होवे।

हे पुत्र! इष्टसाधनता, योग्यता, स्वकृतिसाध्यता, ज्ञानपूर्वकही ब्रह्मासे आदिलेके चींटी पर्यंत सर्व ज्ञानी अज्ञानीकी प्रवृत्ति होती है; इससे विपरीत हेतुओंसे सर्वकी निवृत्ति होती है परन्तु परमा अपरमा ज्ञानका नियम नहीं। कह भेद ज्ञानी अज्ञानीका क्या हुआ! हेपुत्र! सर्व पदार्थोंके सामान्य विशेष ज्ञानमें मायाविशिष्ट ईश्वर विना सर्व जीव ज्ञानी भी हैं, तथा अज्ञानी भीहैं, एकपदार्थके ज्ञानमें भी ज्ञानी अज्ञानी जीव कहे जाते हैं, जैसे माणिककी सम्यक् परीक्षावाला माणिकका ज्ञानी कहा जाता है, अन्य नहीं। तैसेही शिल्पविद्यावाला शिल्पज्ञ कहाजाता है और वहीमनुष्य धनुपविद्यामें अल्पज्ञ है। धनुपविद्यावाला शिल्पविद्यामें अल्पज्ञ है, इसी रीतिसे सर्वसमष्टिव्यष्टि पदार्थोंमें जानलेना। इससे यथार्थस्वरूप पदार्थोंका सम्यक् असम्यक् ज्ञानन‌ाही ज्ञानी अज्ञानीपना है और कोई चिह्न नहीं; केवल दृष्टिका भेद है सो भी स्वसम्वेद है, परसंवेद नहीं।

हे पुत्र! जब यह अधिकारी अपने नित्यज्ञान अनंत रूप सर्वात्माको सम्यक् अपरोक्ष निजस्वरूप जानता है तब, किस चक्षु आदि साधनोंकर वा चाक्षुपादिजन्य ज्ञानोंसे किस रूपादिक पदार्थोंको देखे नाम जाने। किन्तु किसीकर भी नहीं

देखता क्योंकि सर्वरूप आपही है। जैसे पंचभूतोंका कोई कार्य अपने स्वरूपको सम्यक् जानता है तो सर्व नामरूप प्रपंच आप होता है, इदंता कर अपनेसे भिन्न अन्यको नहीं देखता। जैसे तरंग अपने मधुर शीतल द्रवता स्वरूप जलको सम्यक् जानता है तो सर्व जलरूप आप होता है जैसे स्वप्नद्रष्टा निज विज्ञानसे सर्व स्वप्नपदार्थोंको अपना आपही जानताहै, सो सर्वात्मा होता है तो किससे किसको देखे, किन्तु भिन्न नहीं देखता। अन्यथा आपको भिन्न कल्पताहै, अन्यको भिन्न जानके ही दुःखपाता है।

चक्षु आदि इन्द्रिय आत्मा नहीं।

हे पुत्र! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और मैथुनजन्य सुख, अनिष्ट संबंधजन्यदुःख, इष्टसंबंधजन्यसुख और संकल्पनिश्च-यादि जिसकर जाने जाते हैं सोई तेरा स्वरूप है। पुत्रने कहा चक्षु मन आदि इंद्रियों कर रूपादिविषय जाननेमें आते हैं इससे चक्षु आदि इंद्रियें ही आत्मा हुये। पिताने कहा हे पुत्र! जैसे तीर (बाण) से वा बन्दूकसे निशाना वेधा प्रतीत होता भी है, परंतु जब विचारें तो चैतन्य पुरुष बिना जड परतंत्र तीरादि निशानेको कैसे वेधेंगे किन्तु नहीं वेधेंगे क्योंकि निशाना तीर बन्दूक धनुष और हाथ चक्षु मनादि पुरुष प्रयत्न-विना कुछ नहीं करसक्ते तथा न जानसक्ते हैं। पुरुषही सब तीरादियोंके न्यूनाधिक हाल को जानता है तथा न्यूनाधिक भाव करसक्ता है। जैसे मंदिरमें दीपक बारियोंद्वारा बाहिरपदार्थोंको प्रकाशता है, बारियां नहीं तैसे दार्ष्टांत जानलेना। तीरादियोंके तुल्य मनादि है, लौकिक पुरुष वत् आत्मा हैं। इससे जड परतंत्र मन इंद्रियादि आत्मा नहीं जैसे तीरादि पुरुष नहीं। हे पुत्र। जैसे रज्जु सर्पके सम्यक् विवेक सम कालमेंही, रज्जुविषे सर्पकी निवृत्ति और अकंपादियोंकी प्राप्ति वास्ते भी अन्य प्रमाण वा अन्य साधनादि खोजने जाना नहीं,

जो खोजताहै सो भ्रांतिवान् है। किन्तु ज्ञानसमकालही भयकंपकी निवृत्ति और रज्जुकी प्राप्ति होती है तैसे प्रत्यक् आत्माके सम्यक् जाननेसेही बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्तेअन्य प्रमाण वा अन्य साधन वा अन्य फल खोजने योग्य नहीं,जो खोजे सो भ्रांतिवान् है। हे पुत्र। यद्यपि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकर यहसंसार सत्भी भासताहै, तथा प्रत्यक्षादियोंके ज्ञानमें साधन भी प्रतीत होतेहैं, तथा रूपादिज्ञेय भी प्रतीत होते हैं तो भी यह त्रिपुटी मिथ्या मायामात्र है। प्रमाता प्रमाण प्रमेयका ज्ञाता द्रष्टा तुम्हारा स्वरूपहै। त्रिपुटी तुम्हारा स्वरूप नहीं। जैसे स्वप्नकी प्रमाता प्रमाण प्रेमयत्रिपुटी सद्रूपसे भासतीभीहै, तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण रूपादियोंके साधन भासतेभी हैं तोभी, मिथ्या मायामात्र हैं। स्वप्नके सर्व इंद्रियादि पदार्थ एक द्रष्टा चैतन्य आत्मासेही प्रकाशमान हैं, तिस द्रष्टा विनाकोई भी स्वप्नके इन्द्रिय सूर्य घटपटादि पदार्थ आपसमें प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं तैसे आत्माही प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका तथा सर्व दृश्यका प्रकाशकहै। इंद्रिय सूर्यादियोंसे घटपदादि प्रकाशते नहीं किन्तु आत्माही इन्द्रिय सूर्यादि पदार्थोंमें स्थित हुआ २ मन इन्द्रियादि सहित सर्व पदार्थोंको प्रकाशताहै। जैसे पुरुषही मंदिरमें स्थित बारीद्वारा बाहर सर्व पदार्थोंको देखताहै, बारियां नहीं। जैसे दर्पणमें अनेक प्रतिबिंबोंको पुरुषही प्रकाशताहै, दर्पण नहीं। जैसे दूरबीनमें पुरुषही देखताहै दूरबीन नहीं। परन्तु दूरबीनादि देखनेके साधनहैं। हे पुत्र। इस कार्यकारण संघातकी ही अविवेक दृष्टिसे प्रतीतिकी प्रधानता होनेसे, आत्मा अधिष्ठानकी स्फूर्ति नहीं होती। जैसे रज्जुके अज्ञानसें कल्पित सर्पादियोंकी प्रधानताके प्रतीत होनेसे रज्जु भासती नहीं, तैसे आत्मा सर्पादि,और इस संघातके अंतर गूढ छिपा हुआ है। विवेकीको आत्मा रज्जुकी प्रधानता स्फुट भान होतीहै, अविवेकीको नहीं।

देखता क्योंकि सर्वरूप आपही है। जैसे पंचभूतोंका कोई कार्य अपने स्वरूपको सम्यक् जानता है तो सर्व नामरूप प्रपंच आप होता है, इदंता कर अपनेसे भिन्न अन्यको नहीं देखता । जैसे तरंग अपने मधुर शीतल द्रवता स्वरूप जलको सम्यक् जानता है तो सर्व जलरूप आप होता है जैसे स्वप्नद्रष्टा निज विज्ञानसे सर्व स्वप्नपदार्थोंको अपना आपही जानताहै, सो सर्वात्मा होता है तो किससे किसको देखे, किन्तु भिन्न नहीं देखता । अन्यथा आपको भिन्न कल्पताहै, अन्यको भिन्न जानके ही दुःखपाता है।

चक्षु आदि इन्द्रिय आत्मा नहीं ।

हे पुत्र! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और मैथुनजन्य सुख, अनिष्ट संबंधजन्यदुःख, इष्टसंबंधजन्यसुख और संकल्पनिश्च-यादि जिसकर जाने जाते हैं सोई तेरा स्वरूप है । पुत्रने कहा चक्षु मन आदि इंद्रियों कर रूपादिविपय जाननेमें आते हैं इससे चक्षु आदि इंद्रियें ही आत्मा हुये । पिताने कहा हे पुत्र! जैसे तीर (बाण) से वा बन्दूकसे निशाना वेधा प्रतीत होता भी है, परंतु जब विचारें तो चैतन्य पुरुष बिना जड परतंत्र तीरादि निशानेको कैसे वेधेंगे किन्तु नहीं वेधेंगे क्योंकि निशाना तीर बन्दूक धनुप और हाथ चक्षु मनादि पुरुप प्रयत्न-विना कुछ नहीं करसक्ते, तथा न जानसक्ते हैं। पुरुपही सब तीरादियोंके न्यूनाधिक-हाल को जानता है तथा न्यूनाधिक भाव करसक्ता है। जैसे मंदिरमें दीपक बारियोंद्वारा बाहिरपदार्थोंको प्रकाशता है, बारियां नहीं तैसे दार्ष्टांत जानलेना। तीरादियोंके तुल्य मनादि है, लौकिक पुरुप वत् आत्मा है। इससे जड परतंत्र मन इंद्रियादि आत्मा नहीं जैसे तीरादि पुरुप नहीं। हे पुत्र। जैसे रज्जु सर्पके सम्यक् विवेक स-कालमेंही, रज्जुविपे सर्पकी निवृत्ति और अकंपादियोंकी प्राप्ति वास्ते भी अन्य प्रमाण वा अन्य साधनादि खोजने जाना नहीं

जो खोजताहैं सो भ्रांतिवान् है। किन्तु ज्ञानसमकालही भयकंपकी निवृत्ति और रज्जुकी प्राप्ति होतीहै तैसे प्रत्यक्आत्माके सम्यक् जाननेसेही बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्तेअन्य प्रमाण वा अन्य साधन वा अन्य फल खोजने योग्य नहीं,जो खोजे सो भ्रांतिवान् है। हे पुत्र ! यद्यपि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकर यहसंसार सत्भी भासताहै, तथा प्रत्यक्षादियोंके ज्ञानमें साधन भी प्रतीत होतेहैं, तथा रूपादिज्ञेय भी प्रतीत होतें हैं तो भी यह त्रिपुटी मिथ्या मायामात्र है। प्रमाता प्रमाण प्रमेयका ज्ञाता द्रष्टा तुम्हारा स्वरूपहै। त्रिपुटी तुम्हारा स्वरूप नहीं। जैसे स्वप्नकी प्रमाता प्रमाण प्रेमयत्रिपुटी सद्रूपसे भासतीभीहै, तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण रूपादियोंके साधन भासतेभी हैं तोभी; मिथ्या मायामात्र हैं। स्वप्नके सर्व इंद्रियादि पदार्थ एक द्रष्टा चैतन्य आत्मासेही प्रकाशमान हैं, तिस द्रष्टा विनाकोई भी स्वप्नके इन्द्रिय सूर्य घटपटादि पदार्थ आपसमें प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं तैसे आत्माही प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका तथा सर्व दृश्यका प्रकाशकहै। इंद्रिय सूर्यादियोंसे घटपदादि प्रकाशते नहीं किन्तु आत्माही इन्द्रिय सूर्यादि पदार्थोंमें स्थित हुआ २ मन इन्द्रियादि सहित सर्व पदार्थोंको प्रकाशताहै। जैसे पुरुषही मंदिरमें स्थित बारीद्वारा बाहर सर्व पदार्थोंको देखताहै, बारियां नहीं। जैसे दर्पणमें अनेक प्रतिबिंबों को पुरुषही प्रकाशताहै, दर्पण नहीं। जैसे दूरबीनमें पुरुषही देखताहै दूरबीन नहीं। परन्तु दूरबीनादि देखनेके साधनहैं। हे पुत्र। इस कार्यकारण संघातकी ही अविवेक दृष्टिसे प्रतीतिकी प्रधानता होनेसे, आत्मा अधिष्ठानकी स्फूर्ति नहीं होती। जैसे रज्जुके अज्ञानसें कल्पित सर्पादियोंकी प्रधानताके प्रतीत होनेसे रज्जु भासती नहीं, तैसे आत्मा सर्पादि,और इस संघातके अंतर गूढ छिपा हुआ है। विवेकीको आत्मा रज्जुकी प्रधानता स्फुट भान होतीहै, अविवेकीको नहीं।

देखता क्योंकि सर्वरूप आपही है। जैसे पंचभूतोंका कोई कार्य अपने स्वरूपको सम्यक् जानता है तो सर्व नामरूप प्रपंच आप होता है,इदंता कर अपनेसे भिन्न अन्यको नहीं देखता । जैसे तरंग अपने मधुर शीतल द्रवता स्वरूप जलको सम्यक् जानता है तो सर्व जलरूप आप होता है जैसे स्वप्नद्रष्टा निज विज्ञानसे सर्व स्वप्नपदार्थोंको अपना आपही जानताहै, सो सर्वात्मा होता है तो किससे किसको देखे, किन्तु भिन्न नहीं देखता । अन्यथा आपको भिन्न कल्पताहै, अन्यको भिन्न जानके ही दुःखपाता है।

चक्षु आदि इन्द्रिय आत्मा नहीं ।

हे पुत्र! शब्द, स्पर्श, रूप, रस,गंध और मैथुनजन्य सुख, अनिष्ट संबंधजन्यदुःख,इष्टसंबंधजन्यसुख और संकल्पनिश्चयादि जिसकर जाने जाते हैं सोई तेरा स्वरूप है ।पुत्रने कहा चक्षु मन आदि इंद्रियों कर रूपादिविषय जाननेमें आते हैं इससे चक्षु आदि इंद्रियें ही आत्मा हुये । पिताने कहा हे पुत्र!जैसे तीर (बाण)से वा बन्दूकसे निशाना बेधा प्रतीत होता भी है,परंतु जब विचारें तो चैतन्य पुरुष बिना जड परतंत्र तीरादि निशानेको कैसे वेधेंगे किन्तु नहीं वेधेंगे क्योंकि निशाना तीर बन्दूक धनुष और हाथ चक्षु मनादि पुरुष प्रयत्न-विना कुछ नहीं करसक्ते तथा न जानसक्ते हैं ।पुरुषही सब तीरादियोंके न्यूनाधिक-हाल को जानता है तथा न्यूनाधिक भाव करसक्ता है। जैसे मंदिरमें दीपक बारियोंद्वारा बाहिरपदार्थोंको प्रकाशता है,बारियां नहीं तैसे दार्ष्टांत जानलेना। तीरादियोंके तुल्य मनादि है,लौकिक पुरुषवत् आत्मा है। इससे जड परतंत्र मन इंद्रियादि आत्मा नहीं जैसे तीरादि पुरुष नहीं । हे पुत्र। जैसे रज्जु सर्पके सम्यक् विवेक सम कालमेंही,रज्जुविषे सर्पकी निवृत्ति और अकंपादियोंकी प्राप्ति वास्ते भी अन्य प्रमाण वा अन्य साधनादि खोजने जाना नहीं

जो खोजताहै सो भ्रांतिवान् है। किन्तु ज्ञानसमकालही भयकंपकी निवृत्ति और रज्जुकी प्राप्ति होती है तैसे प्रत्यक् आत्माके सम्यक् जाननेसेही बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्तेअन्य प्रमाण वा अन्य साधन वा अन्य फल खोजने योग्य नहीं, जो खोजे सो भ्रांतिवान् है। हे पुत्र ! यद्यपि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकर यहसंसार सत्‌भी भासताहै, तथा प्रत्यक्षादियोंके ज्ञानमें साधन भी प्रतीत होतेहैं, तथा रूपादिज्ञेय भी प्रतीत होते हैं तो भी यह त्रिपुटी मिथ्या मायामात्र है। प्रमाता प्रमाण प्रमेयका ज्ञाता द्रष्टा तुम्हारा स्वरूपहै। त्रिपुटी तुम्हारा स्वरूप नहीं। जैसे स्वप्नकी प्रमाता प्रमाण प्रेमयत्रिपुटी सद्रूपसे भासतीभीहै, तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण रूपादियोंके साधन भासतेभी हैं तोभी, मिथ्या मायामात्र हैं। स्वप्नके सर्व इंद्रियादि पदार्थ एक द्रष्टा चैतन्य आत्मासेही प्रकाशमान हैं, तिस द्रष्टा विनाकोई भी स्वप्नके इन्द्रिय सूर्य घटपटादि पदार्थ आपसमें प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं तैसे आत्माही प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका तथा सर्व दृश्यका प्रकाशकहै। इंद्रिय सूर्यादियोंसे घटपदादि प्रकाशते नहीं किन्तु आत्माही इन्द्रिय सूर्यादि पदार्थोंमें स्थित हुआ २ मन इन्द्रियादि सहित सर्व पदार्थोंको प्रकाशताहै। जैसे पुरुषही मंदिरमें स्थित बारीद्वारा बाहर सर्व पदार्थोंको देखताहै, बारियां नहीं। जैसे दर्पणमें अनेक प्रतिबिंबोंको पुरुषही प्रकाशताहै, दर्पण नहीं। जैसे दूरबीनमें पुरुषही देखताहै दूरबीन नहीं। परन्तु दूरबीनादि देखनेके साधनहैं। हे पुत्र ! इस कार्यकारण संघातकी ही अविवेक दृष्टिसे प्रतीतिकी प्रधानता होनेसे, आत्मा अधिष्ठानकी स्फूर्ति नहीं होती। जैसे रज्जुके अज्ञानसे कल्पित सर्पादियोंकी प्रधानताके प्रतीत होनेसे रज्जु भासती नहीं, तैसे आत्मा सर्पादि, और इस संघातके अंतर गूढ छिपा हुआ है। विवेकीको आत्मा रज्जुकी प्रधानता स्फुट भान होतीहै, अविवेकीको नहीं।

मायावी (इन्द्रजाली) पुरुषके दृष्टांतसे आत्माकी असंगता ।

जैसे मायावी इन्द्रजालिक पुरुष एक तंतु ऊपर अकाशमें फेंकके आप आयुधसहित तंतुपर आरूढ होके, अदृश्य हुआ युद्ध करताहै, पुनःखंड खण्ड होयके आपही नीचे पतन हुआभी प्रतीत होताहै पुनः पूर्ववत् वैसाही उठ खडा होताहै। परन्तु तिस इंद्रजालिकके सम्यक् सत् स्वरूपको जाननेवाले पुरुष, तिस इंद्रजालिककी रची माया और मायाके कार्य स्वरूपोंको, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अपरोक्ष देखते भी इन्द्रजालकी लीलामात्र मिथ्या मानतेहैं। स्वमाया कर आच्छादितभी अमायिक परमार्थरूप एक इन्द्रजालिककोही सत् मानतेहैं। अन्य सर्व लीला मिथ्या मानतेहैं। मूर्ख आश्चर्यमान् हुये २ लीलासहित मायिक इंद्रजालको ही सत् मानै हैं तैसे नित्य सुख प्रकाश निजात्मारूप महामायावी इन्द्रजालीने, यह नामरूप जाग्रतादि मिथ्या प्रपंच तंतु पसारा है, तंतुपर आरूढ इन्द्रजालीके समान, जाग्रतादियोंके अभिमानी समष्टिवैराट् आदियोंसे अभिन्न, विश्व तैजस प्रज्ञादि सभास अंतःकरण जीवहै, सो अप्रमार्थरूप हैं। तिनोंमेंही युद्ध करना खंड खण्ड होना पुनः पूर्वरूप होना आदि सर्व व्यवहारहै, जैसे तंतु आरूढसे भिन्नही, परमार्थरूप मायावीइन्द्रजाली पृथिवीविषे स्थितभी स्व मायासे आच्छादित अदृश्यहै, पूर्वोक्त युद्धादि सर्व विकारोंते रहित स्थितहै, बुद्धिमान् जानतेहैं अन्य नहीं जानते।

तैसे तुरीय प्रत्यगात्मा, तुम्हारा, सत्स्वरूप, इस कार्य कारण संघातके अंतर स्थितभी, स्वमाया रूप वस्त्रसे ढपा हुआभी स्वतः निर्विकारहै। परन्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अदृश्यमान हुआ भी कोईक श्रद्धा आदि साधनों सहित मुमुक्षुश्रुति अनुभवसे सम्यक् अपरोक्ष करसक्तेहैं; अन्य नहीं। हे पुत्र! व्यष्टि जाग्रतादि उपाधियोंसे तूही तुरीय आत्माभी विश्वादि संज्ञाको पाताहै। तैसेही समष्टि

उपाधियोंसे तू चैतन्यही वैराटादि संज्ञाको पाताहै। उपाधियोंसे रहित तूही शुद्ध ब्रह्म कहाताहै। जैसे क्रिया भेदसे एकही मनुष्य अनेक संज्ञा पाता भी सर्वक्रियारहित शुद्ध मनुष्यमात्र है। जैसे एक आकाश घटादि उपाधियोंसे घटाकाशादि संज्ञा पाता है, उपाधियोंसे रहित शुद्ध आकाशमात्रहै। हे पुत्र! तुम्हारा स्वरूप सर्व मन बुद्धि आदियोंका अनुभव करनेवाला मनादियोंके अंतर स्थित है, इसीसे मनादियोंसे अदृष्टहै। जैसे सर्व स्वप्नसृष्टिका अनुभव करनेवाला स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नसृष्टिके अंतर स्थित है, इसीसे स्वप्नसृष्टिसे स्वप्नद्रष्टा अज्ञात अचिन्त्य हुआभी सर्वका द्रष्टा है। हे पुत्र! तू चैतन्य सर्व धर्माधर्मसे नाम मायातत्कार्यसे रहित है, इसीसे तू शांतहै। तुझ द्रष्टाका द्रष्टा कोई नहीं, तू चैतन्य अजाग्रत, अस्वप्न, अनिद्रितहै। इसीसे तू जाग्रतादियोंके अभिमानी विश्वादि भी नहीं क्योंकि उनका द्रष्टाहै। जैसे काष्ठमें, हस्ती आदि पुतलियोंका, काष्ठ विशेष अधिष्ठान आधार है, काष्ठसे हस्ती आदि भिन्न हैं नहीं; तैसे तू चैतन्य इन नामरूप आकाशादि पुतलियोंका अधिष्ठान है क्योंकि असत् जड़ दुःख दृश्य कल्पितसे तुझ चैतन्यका सत् चित् आनंद स्वभाव जुदा देखनेमें आताहै, अधिष्ठानसे विषम सत्ता भ्रमकी कहीहै। तात्पर्य यह कि; अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मासे जो भिन्न भासे सोई भ्रमका रूप है। इससे तू दलील देके विचार; द्रष्टाका स्वभाव और दृश्यका स्वभाव जुदा जुदा है, क्योंकि एक मैं करता है सम्यग्दर्शी हो। हे पुत्र। वाङ्मनसगोचर करके जो ज्ञान होता है सो नामरूप जाति गुणक्रियासंबंधवान् पदार्थोंकाही ज्ञानहोताहै, सोआत्मज्ञान नहीं किन्तु मिथ्या भ्रांतिरूप ज्ञान है। सम्यक् अपरोक्ष अवाङ्मनसगोचर जो निजात्मज्ञानहै, सोई सम्यक् ब्रह्मात्मज्ञान है, वास्तवसे इन दोनों वृत्तिरूपज्ञानोंका निजात्मा द्रष्टा है,

इसीसे कथन चिंतनसे अगोचर है जैसे स्वप्न नरोंके वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर दोनों ज्ञानोंका स्वप्नद्रष्टाहै, दोनोंका विषय नहीं। हे पुत्र! जैसे शुद्ध स्फटिकमणि दूरस्थित रक्तके प्रतिबिंब सहित भासती भी वास्तवसे शुद्ध स्फटिकमणिको लालरंगवाली जानना भ्रांति है।

जाग्रत् और स्वप्न दोनों तुल्य ही हैं।

पुत्रने कहा हे पिता! स्वप्न अल्पकाल स्थायी है और जाग्रत् दीर्घकाल स्थायी है, स्वप्नका पदार्थ देखा पुनः वही नहीं देखा जाता और जाग्रत्का देखा पदार्थ, स्वप्न वा सुषुप्ति हुआ पीछे भी देखा जाता है, तो स्वप्न जाग्रत्को तुल्य कैसे कहा है? पिताने कहा हे पुत्र! जैसे रज्जुविषे सर्पकी दीर्घकाल पुरुषको प्रतीति हुई पुनः तिसी रज्जुविषे तिसी पुरुषको माला वा जलकी लकीर अल्पकाल प्रतीत होकर पुनः तिसी रज्जुविषे तिसी पुरुषको पुनः पूर्ववत् सर्प प्रतीति, दीर्घकाल माला दंड प्रतीति रहित तो तूही विचार कि, क्या भेद हुआ? कुछ नहीं हुआ। जैसे स्वप्नमें स्वप्नांतर होता है तो, प्रथम स्वप्नके देखे पदार्थ स्वप्नांतरके हुए भी वैसेही रहतेहैं और स्वप्नांतरके देखे पदार्थ प्रथम स्वप्नमें वही नहीं रहते यह अनुभव सिद्ध है। हे पुत्र! सर्व जाग्रतादि प्रपंच तुझ अधिष्ठानमें स्वप्नरज्जु सर्पवत् समानही कल्पित हैं किंचित् भेद नहीं।

आत्माही सर्व प्रकाशक है।

हे पुत्र! जैसें सूर्य नेत्रोंमें स्थित हुआ २ नेत्रोंको प्रकाशता और नेत्रद्वारा रूपको भी प्रकाशताहै, तैसेही तू चैतन्य मन प्राण देह इंद्रियादियोंमें स्थित हुआ २ मन इंद्रियादियोंको भी प्रकाशता है और मनइंद्रियादियों द्वारा सब जगत्का व्यवहार [illegible] करता है क्यों कि तुझ आत्मा भिन्न सर्व जड [illegible] द्वारा क्रमसे सर्व पदार्थोंसे चितनरूप संबंध [illegible] पहुँ-

चनेसे पहलेही मनविषे तथा नाम रूप पदार्थोंमें अस्ति भाति प्रियरूपसे प्राप्त है। जैसे वायुके वा वायुसे चलाये तृणके अन्य स्थान पहुँचनेसे पहलेही आकाश वायुमें तथा सर्व पदार्थोंमें प्राप्त है। जैसे स्वप्नमें स्वप्ननरोंके अन्य स्थानके पहुँचनेसे पहलेही स्वप्नद्रष्टा. स्वप्ननरोंको हाजिर हुजूर है।जैसे जहां तरंग जावेगा जल आगेही लाधेगा।जैसे यह शरीर जहां जावेगा तहां आगेही पंचभूत लाधेंगे। हे पुत्र! अन्तःकरणकी जो जो वृत्तियां स्वतंत्र वा इंद्रियोंद्वारा, उत्पन्न होती.हैं सो सो.आत्माके प्रकाशकर प्रकाशित हुई हुई उत्पन्न होती हैं। जैसे अग्निकर तपाये लोहके कूटनेसे जितनेक लोहके चिनगारे निकलते हैं,सो सर्व अग्निकर प्रकाशितही निकलते हैं।

आत्मा एकही है।

हे पुत्र। जैसे एकही सूर्य जलके अनेक पात्रोंमें अनेक रूप देख पडता है पर वास्तव एकही है,तैसे आत्मा.तेरा स्वरूप अंतकरणादि उपाधिकर अनेकरूप हुआ भी वास्तव एक रूपही है। सत् चित आनन्द स्वरूप निजात्माही दुःखोंसे रहित अपरोक्ष सुख मोक्ष स्वरूप है। अन्य अनात्म संसार दुःखरूप बन्ध है आगे जो इच्छा होय सोई कर।

ज्ञानीको ध्यानकी कर्त्तव्यंता अकर्त्तव्यता।

पुत्रने कहा ज्ञानवान्को भी ध्यान कर्त्तव्यहै वा नहीं? पिताने कहा हे पुत्र! जब शुद्ध दर्पणसे सम्यक् अपना मुख देखा तो, कह पुनःमुखका ध्यान करना चाहिये कि,नहीं? पुनः दर्पणसे मुख देखे तो विलासमात्र है, कर्त्तव्य नहीं। हे पुत्र! प्रत्यगात्मा तुम्हारा स्वरूप स्वभावसेही बन्ध मोक्षादि विकल्पसे रहित है। परन्तु सम्यक् आत्मज्ञान रहित स्वरूप अपनेमें बंध मोक्षकी कपना करके पुनःतिनकी निवृत्तिप्राप्तिवास्ते अनेक प्रकारके यत्न

करते हुए दुःखपाते हैं। तैसे आपही आत्म विचारकर सुख पाते हैं। इससे आपही सुख दुःख कलपता है और आपही मिटाता है. तो यही मालिक रहा; जैसे आकाशके स्वरूपका, अज्ञानी नीलता रजादिमलीनतासे आकाशको मलीन जानके तिसकी निवृत्तिके वास्ते यत्न करे, परंतु सम्यक् आकाशके स्वरूपका ज्ञानी आकाशमें मलीनता जानता नहीं इसीसे यत्न करता नहीं।

हे पुत्र ! जैसे पंच विषय सर्व ब्रह्मादि लोकोंमें एक सरीखे हैं और जैसे पोडशकलारूप सूक्ष्म शरीर सर्व ब्रह्मादिसे चींटीतक स्थूल शरीरोंमें एकही सरीखे हैं, तैसे यह मनादिकोंका साक्षी आत्मा विष्णुसे चींटी पर्यंत निर्विकार असंग निर्विकल्प सत् चित् सुखरूप बंध मोक्षसे रहित एक सरीखा सर्वके हृदयमें स्थित है। इसीसे ग्रहण त्याग, आविर्भाव तिरोभाव अपना आप होनेसे होता नहीं।

परम समाधि–परम पदार्थ।

चित्तकी एकाग्रतारूप समाधि चित्तके विक्षेपरूप असमाधि, दोनोंका द्रष्टा आपको जानना यही परमसमाधि है। हे पुत्र ! मन सहित प्रतिबिंबरूप जीवको समाधि आदिकर्म करना है वा नहीं करना, परन्तु बिंबरूप सूर्य आत्माको नहीं करना, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। प्रतिबिंबकी समाधि क्या है? चल अचल जलमें स्थित भी बिंबरूप जानना और प्रतिबिंबकी असमाधि क्या है? आपको बिंबसे पृथक् जानना यही समाधि असमाधिका स्वरूप मालूम देता है। जो बिंब प्रतिबिंबके कर्तव्य आपमें माने तो भ्रांति है। तू बिंबभूत आत्मा त्यागका त्यागकर, वैरागसे वैराग-कर, समाधिअसमाधिको सिद्धकरनेवाला प्रथम स्वतः सिद्ध आपको जाननेवत् जान, जो सुखीवत् सुखी होवे। यही ब्रह्म-रूप, अस्पर्श योगरूप, समाधि है। निर्विवाद सर्वको सुलभ अत्यन्त हितकर है यही ब्रह्म विदनका धन है। शास्त्र

विद्वान् और स्वरूप अनुभवके सम्यक् विचारसे सुलभ प्राप्तहै; अधिकारियोंको।

आत्मा अनात्माका स्वभाव तथा बंध मोक्षके हेतु अकर्तव्यता।

हे पुत्र! आत्मा अनात्मा दो वस्तुहैं तिनके भिन्न भिन्न स्वभाव हैं आत्मा अनात्मा नहीं होता और अनात्मा आत्मा नहीं होताहै तम प्रकाशवत्। दोनोंके मध्यमें आत्मा वा अनात्मामेंसे किसीमें तुझको अहंप्रत्यय अवश्य करनाही पडेगा; क्योंकि तीसरी वस्तुका अभाव हैं किसी न किसी पदार्थविषे अंह प्रत्यय किये विना मन माने नहीं। इससे तू सम्यक् विचारकर कह दोनोंके मध्यमें तू कौनहै? आत्मा वा अनात्मा, जो तू आत्माहै तो, कार्य कारण रूप संघातादि अनात्मा तथा तिसके धर्म जन्मादियोंका तुझ आत्माको द्रष्टा होनेसे, तुझे नहीं पहुँचसक्ते। जो तू अनात्माहै तो अनेक यत्नसे भी जन्मादि बंधन दूर होसक्ते नहीं क्योंकि दोनोंका स्वतःस्वभाव सिद्ध है। इससे दोनों रीतिसे तुझको बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते अनेक साधनोंका कर्तव्य निष्फल है। यही रीति द्रष्टा और दृश्यविषे प्रेरक प्रेर्यविषे, असत् सत् विषे जड चैतन्य विषे, सुख और दुःख विषे, पूर्ण अपूर्णविषे संगी असंगी विषे, स्वाभाविक निर्विकल्प सविकल्पविषे संसारी असंसारी विषे वाङ्मनस गोचर विषे, अवाङ्मनसगोचर विषे, निर्विकार सविकारविषे, परमार्थ शुद्ध अशुद्ध विषे, इत्यादि सर्व पदार्थोंमें जोड लेना। तात्पर्य यह कि, पूर्वोक्त विशेषणोंमें एक तो अनात्मादि कार्य कारण प्रपंच दृश्यकोटिकाहै और एक आत्मादि विशेषण ब्रह्मात्मकोटिकाहै। जो अर्थ आत्मानात्मामें किया है सोई अन्यमें भी जानलेना।

हे पुत्र! सम्यक् विचारके कह-तू अब आपको क्या जानताहै पुत्रने कहा हे पिता! आत्मानात्मादि विचारका, निश्चय, मनन,

चिंतन, अहंप्रत्यय करना, अंतःकरणका स्वभाव है, मैं चैतन्य तोइस स्वभावसे रहित मन वाणीसे अवाच्य स्वयंप्रकाश रूप हूं, मुझमें जानने न जाननेका मार्ग नहीं। मुझ चैतन्यको किंचिन्मात्र भी बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते कर्तव्यनहीं। यही हमारा निश्चय है। हे पुत्र! वाङ्मनसगोचरादि विशेषण सहित मनादि दृश्यको तथा तिनके संकल्पादि धर्मोंको अपना द्रष्टा स्वरूप मत मानियो।

कृष्ण और झूलनोत्सव।

(कृष्णका ध्यान.)

क्षेत्रज्ञ कृष्ण आपहैं। क्षेत्र दृश्यरूप, क्षेत्रज्ञ कृष्णको, मत करियो। यह भक्ति भी अभक्तिहै और पूजाभी अपूजाहै। सम्यक् कृष्णकी पूजा यही जाननी कि, क्षेत्र क्षेत्रज्ञको जुदा २ जानना। हे पुत्र! मायारूपी पृथ्वीविषे, तूला विद्यारूपी वृन्दावनमें, इस संघातरूप मंदिरविषे, अन्तःकरणरूप हिंडोलेमें स्थित, क्षेत्रज्ञरूप तुझ कृष्णको, सत्व रजतम रूप डोरियोंसे; चिदाभासयुक्त अहंकार रूप जीव पुजारी, झुलानेवत् झुलारहाहै और तू अनेक दैवी आसुरी गुणरूप पुष्पोंकी सुगंधि लेनेवत्लेरहाहै नाम तिनको प्रकाश कर रहाहै मन चक्षुआदि इंद्रियरूप लोग, तेरे दर्शनकर प्रसन्न होतेहैं नाम आप अपने विषयमें तुझ कृष्ण क्षेत्रज्ञकी सत्ता स्फूर्तिकर प्रवृत्ति निवृत्तिरूप व्यवहार करतेहैं। शब्द स्पर्श रूप रस गन्धविषयरूप भोग्य, नामरूप प्रपंचरूपी थालमें रखके, पूर्वोक्त जीव वा माया विशिष्ट शबलब्रह्म, चिदाभास सहित मायारूप ईश्वर महंत तुझ कृष्णको सुख दुःखका अनुभवरूपी भोग लगाताहै नाम तू चैतन्यही सुख दुःखादियोंका अनुभव करनेवालाहै, अन्य जडनहीं शरीरमें रोमावली तुझ आगे वृक्षोंके बगीचेहैं। तूही क्षेत्रज्ञ कृष्ण अवाङ्मनसगोचरकर कथन चिंतन करनेवाली ब्रह्मविद्यारूप

बुद्धि राधासे तथा बुद्धिकी अनेक वृत्तियांरूपी गोपियों से, पूर्वोक्त वृन्दावनमें रास खेलरहा है, नाम सर्व कर्त्ता भोक्ता त्यागीभी, अकर्त्ता अभोक्ता, अत्यागी अपनी महिमामें स्थित है। पंचभूत तेरी पूजाके पात्र हैं। पंचकोश पूर्वोक्त मंदिरके किंवाड हैं। अस्ति भाति प्रियरूप सम्यक् अपरोक्ष निजात्मज्ञान मंदिरकी परिक्रम है क्योंकि परिक्रमा करनेसे ठाकुर बीच आजाता है, तैसे सत् चित् आनंद स्वरूपसे भिन्न तुझ ब्रह्मात्माका स्वरूप है नहीं। श्रुति स्मृति विद्वानोंका अनुभव मंदिरमें घण्टेके समान है। सूर्य चन्द्रमा दोनों झाडों के समान हैं। तारागण अंतर बाहर छोटे दीपकोंके तुल्य हैं। दिन रात्रि नगारे के समान है। जगत् का अत्यंताभाव दृढ निश्चय इस मंदिराकी शोभा है। धर्म,अर्थ,काम मोक्ष मंदिर के चारों कोन हैं। विषयोंमें आरती मंदिरकी कांतिहै पुत्र ईषणा, धन ईषणा, वित्त ईषणाका, त्यागरूप, मनोनाश, वासनाक्षय और तत्त्वज्ञान रूपी, ठाकुर के माथे में तिलक है। अपने कार्य सहित माया अविद्यारूप मलसे में सत् चित आनन्द असंग हूँ। यह निश्चय ठाकुरका स्नान है और अतर बाहर सर्व नामरूप मनादि दृश्यका मैं सत् चित् सुखरूप द्रष्टा आत्मा हूँ; यही निरन्तर ब्रह्माकार वृत्तिरूप तुलसी ठाकुर पर है। अपनेसहित सर्वहरिरूपजानना पूर्वक सर्व कायिकवाचिक मानसिक व्यवहारमें निष्कर्तव्यता चिंतन तुझ ठाकुरके भूषणहैं। मैं परिच्छिन्ननहीं तू ही है, यही नमस्काररूप स्तुति है। मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मामें, नामरूप जगत् है ही नहीं,यह दृढ निश्चय तुझ ठाकुरका चरणामृत है। मैं आत्मा त्रिगुणातीत गुणोंका साक्षी हूँ, यह निश्चय ठाकुरकी पानबीडी है। संसाररूप जड पुतलीकी चेष्टा करनेवाला आपको जाननाही तुम्हारी आरती है। मनरूपीवायुके फुर्णे अफुर्णेमें, मैं चैतन्य आकाशवत् सम हूँ, यही तुझको पंखा,

होरहा है।जैसे सूर्यकी किरण सूर्यसे अभिन्न है, तैसे नामरूप तुझ चैतन्यमें अध्यस्त होनेसे तुझसे अभिन्नही है, यही तेरे आगे घूप. है। मन इंद्रियोंका दमनही मर्दन है। जो इस प्रकार ध्यान करता है, इसीलोकमें वा ब्रह्मलोकमें ज्ञानद्वारा मोक्षको प्राप्त होता है।

मोक्ष किसको प्राप्त होता है।

हे पुत्र! सम्यक् आत्मज्ञानीकी सर्वचेष्टा समाधिरूपीही है, जैसे इस संघातकी सर्व चेष्टा पंचभूतरूपही है। आत्मज्ञानी मोक्षकी नहीं इच्छा करता भी मोक्षको पाता है। जैसे पक्का फल वृक्षसे न गिरनेकी इच्छा करता भी बलात्कारसे नीचे गिरपडता है। और ब्रह्मात्मा अज्ञानी मोक्षके लिये लाखों इच्छा करता भी मोक्षको नहीं पाता;जैसे कूपमें पडा पुरुष लाखों बार कूदनेसे बाहर नहीं निकसता है। इससे सम्यक् देह अभिमान त्याग- पूर्वक आत्मदर्शी हो।

सम्यक् त्याग।

पुत्रने कहा सम्यक् त्याग क्या है ? हे पुत्र! जैसे तरंग, भूषण खिलौनेमें, भौतिक पदार्थ,घटपटादिमें, रज्जुके सर्पा दिपदार्थोंमें, स्वप्न पदार्थोंमें, जल, स्वर्ण, चीनी,पंचभूत,मृत्तिका, तंतु, रज्जु, स्वप्नद्रष्टा,आदिरूप सम्यक् विचारपूर्वक बुद्धिकरनी,नामजलादि कारणसे भिन्न तरंगादि कार्योंकोमिथ्या वाअभाव जलरूप जानना ही तरंगादियोंका त्याग है।तैसे नाम रूप कार्य.कारण संघातरूप प्रपंचमेंअस्तिभाति प्रियरूप,आत्मबुद्धि करनी वा पूर्वोक्तआत्मासे भिन्न सर्व नामरूपको मिथ्या वा अत्यंताभाव जाननाही प्रपंचका परमत्याग है। एकको ग्रहण एकको त्याग करना इसकानामत्याग नहीं क्योंकि जबतक शरीर है तबतक हजारोंवार अनेकपदार्थोंका त्याग ग्रहण होताहै। कार्यको कारण रूप जाननाही कार्यकापरम त्याग है,तैसे इस नामरूप प्रपंचका अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा

विवर्त उपादान कारण है और नाम रूप कल्पित है, इससे आत्म रूपही है, कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती, इस निश्चयका नाम त्याग है।

तीन प्रकारका निश्चय।

हे पुत्र! अपने सहित सर्व कार्य कारण प्रपंच अस्ति भाति प्रियरूप आत्माही है, इस विधिपक्षको ग्रहणकर। वा वाङ्मनसगोचर कार्य कारण संसारसे मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा अवाङ्मनसगोचर हूँ, इस निषेधीपक्षको ग्रहण कर। वा विधिनिषेध दोनों मन वाणीका कथन चिंतनरूप अनात्माका इससे दृश्य है, मैं चैतन्य विधिनिषेधसे रहित हूँ। मुझकरही विधिनिषेध सिद्ध होतेहैं। मैं चैतन्य विधिनिषेधका विषय नहीं हूँ। और विधिनिषेध भी मैंही हूँ; सर्व रूप होनेसे। इन तीनों निश्चयोंसे भिन्न और निश्चय तुझको भयका हेतु होगा। तथा संसारका कारण होगा। आगे जो इच्छा हो सोई कर।

मनुष्यमात्र आत्मतत्त्व पानेका अधिकारी है।

हे पुत्र! चारों वर्णाश्रम पुरुषके मल रहित सफेद वस्त्रोंपरही रंग चढता है; मलीनपर नहीं चढता। रंगको कुछ पक्षपात नहीं चाहे किसीका वस्त्र होवे। तैसे शम दम अमानित्वादि तथा सत् संभाषणादि धर्मानुष्ठान कर, शुद्ध अन्तःकरणमेंही गुरु शास्त्रद्वारा निजात्मबोध होता है, अन्य कोई जाति निजात्मबोधमें कारण नहीं। यह सबके अनुभव सिद्ध है।

साधन।

(शास्त्रका असाधारण संकेत)

हे पुत्र! निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानसे शुद्ध मनकर और सगुण वा निर्गुण उपासनाके अनुष्ठानसे निश्चल मन कर। पश्चात् ज्ञानरूपी रंग चढेगा, अन्यथा नहीं चढेगा। वा निरअहंकार सरलबुद्धि आदि साधनसे गुरुभक्ति कर, गुरुसेवासेभी शुद्ध अन्तः

करण हुये पीछे ज्ञानरूप रंग लगेगा। यह शास्त्रका असाधारण संकेत है।

ब्रह्म सगुण है वा निर्गुण ?

पुत्रने कहा हे पिता ! ब्रह्म सगुण है वा निर्गुण है ? पिताने कहा हे पुत्र । एक किर्लकाटी नाम करके जीव विशेष है, उसके एक दिनमें स्वाभाविक अनेक रंग बदलते हैं। तिसको न जानता हुआ नगरनिवासी पुरुषने, वनवासीसे पूछा कि, किर्लकाटीका लाल रंग है वा सफेद ? उसने कहा कि, लालभी यही होता है और सफेद भी यही होताहै। तैसेही हे पुत्र ! सत् चित् आनंद रूप तेरा स्वरूपही सगुण और निर्गुण दोनों रूप है, अन्य नहीं। मूर्ख विवाद करते हैं। हे पुत्र । जो ईश्वर निर्गुण होवे तो, सगुण माननेवालोंको दंड देवे। और जो ईश्वर सगुण होवे तो, निर्गुण माननेवालोंको दंड देवे। जो जीव ईश्वरका भेद होवे तो, अभेद वालोंको दण्ड होवे, जो अभेद होवे तो भेद माननेवालोंको दण्ड होवे। ऐसेही अन्यबातोंमें जोड लेना। इससे तुझ सत् चित् आनंद प्रत्यक् आत्मासे भिन्न सब असत् जड दुःखरूप कल्पित है।

गुप्त सिद्धांत ।

हे पुत्र । मैं वाणी विना कहता हूँ और तुम श्रोत्रोंविना श्रवण करो। तूही जीव ईश्वरका तथा सर्वजगतका सिद्धकर्त्ता है। तू नहीं होवे तो जीव ईश्वर जगतको कौन जानताहे ? सो तेराही सब मनोत है। आजतक किसीने भी जीवेश्वरका साक्षात्कार किया नहीं। यद्यपि शास्त्रप्रमाणसे साक्षात् विष्णु आदि मूर्तिमान् ईश्वर देखनेमें आयेहैं; तथापि साक्षात्पंचभूत वा मायारूप अन्य पुरुषोंकी व्यक्तियोंको समानही उनका व्यक्ति तथा व्यवहार देखनेमें आया हे, ईश्वर है वा नहीं, यह ईश्वर जाने । जो

 जगतको रचके आप तिसमें प्रवेश हुआ है, सर्व ईश्वरही है

जो नहीं तो नहीं क्योंकि बुद्धि आदियोंका साक्षी अंतर्यामी,षट्
भाव विकाररहित, सतसुख अव्यक्त, निज चैतन्य भिन्न सर्व जीवे-
श्वर मिथ्याजड है, सो चैतन्य तू है, जो चैतन्य तू न होवे तो
मनादि जडके समान स्वरूपको तू जाने परन्तु तू मनादियोंको
जानता है। इससे तूही चैतन्यसिद्ध हुआ। तूही मनादियोंको सिद्ध
करता है, मनादि तुझको सिद्ध नहीं करते । तैसेही सूर्यादि सर्व
पदार्थोंमें जान लेना। हे पुत्र ! सुन सुबाके अपने ऊपर ईश्वरको तू
क्यों थापता है ? जैसे चक्रवर्ती राजा भ्रमसे अपने ऊपर अन्यराजा
थापे तो भ्रम है ! विचार देख तुझ मनादियोंके साक्षी चैतन्य,
अंतर व्यापक आत्मासे, पृथक् ईश्वर किसी- वैकुंठादि देशमें है
नहीं क्योंकि ईश्वर पूर्ण है। मूर्खवत् मिथ्या दृश्यपदार्थोंका आश्रय
मत कर। इस मनादि दृश्यका द्रष्टा तूही सत्चित् आनंदरूप आ-
त्माहै । हे पुत्र! जो अनेक पुरुषोंके मनकी कल्पना,दृश्यरूपअनेक
वैकुण्ठादि देशमें, विष्णु आदि ईश्वरोंको मनौत सफलहोगी तो
सर्वके अनुभव सिद्ध सत् चित् आनंद साक्षी आत्मारूप ईश्वरकी
मनौतमें तुझको फल क्यों न होगा ?किन्तु अवश्य होगा क्योंकि
दोनों भावना शास्त्रप्रतिपाद्य हैं। अथवा दोनों भावना माया वा
अंतःकरणके परिणाम हैं।यदि सत् हैं,तो दोनों भावना सतहैं असत
हैं तो दोनों असत् हैं।परन्तु सर्वके अनुभवसिद्ध आत्मारूप ईश्वर
का लोप परोक्ष बातोंसे नहीं होता । बहिर्मुख बुद्धि मुमुक्षु को मनकी
निश्चलतावास्ते कथन किया जो देशकाल वस्तुभेद सहित विष्णु
आदि ईश्वर, तिनका मिथ्यापना अर्थात् सम्यक् बाध्य जानकर
होजाता है । तू अपने सत् चित् आनन्दरूप आत्माकोही ईश्वर
जान । जो तू आपको ईश्वर माननेमें भय राखे तो, मत मान
परन्तु "यह मनादियोंका साक्षी सत् चित् आनन्दरूप निजा-
त्मा मैं हूँ" ऐसी भावना कर, जो वहीरूप होवे । जो ऐसे नहीं

जानेगा तों असत् जड दुःखरूप माया तत्कार्य पदार्थोंमध्ये किसीको तू ईश्वर आत्मा निश्चय करेगा तो, अंतमें वही माया, तत्कार्य असत् जड दुःखरूप होवेगी क्योंकि वैकुण्ठादि जानेकी भावनाही कारण है तो,पूर्वोक्त रीतिसे निजात्माको ईश्वर जानना भी भावनाही है आगे जो इच्छा हो सो कर।

मनके रोकनेका उपाय।

पुत्रने कहा हे पिता। मनकें रोकनेका उपाय कहो ? क्योंकि मन रुकेविना दुःख होताहै, रोकनेसे सुख होता है ऐसे शास्त्रोंमें सुना है।पिताने कहा हे पुत्र। जैसे घटाकाश वायुके रोकनेका उपाय पूछे और वायुके रुकने न रुकनेसे सुख दुःख माने तथा जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्ननरोंके मनके रोकनेका उपाय पूछे तथा रुकने न रुकनेसे हर्ष शोक माने। तैसे तेरा प्रश्न है। हे पुत्र! आकाशके वायु बाहर जावे तो,घटाकाश वायुको रोके,परन्तु वायु आकाशसेबाहर जाता नहीं; आकाशके भीतरही वायु स्थित है, आकाशका कार्य होनेसे। आकाशसे वायुका बाहिर न जानाही वायुका रुकनाहै सो स्वतःसिद्ध है। तथा वायुके रुकने न रुकनेसे आकाशको हानि लाभ भी नहीं। तैसेही स्वप्नद्रष्टाके अंतर्भूतही स्वप्नसृष्टिहै, सो बाहिरजावेनहीं,जो बाहर जावे तो रोकना चाहिये।इससेस्वप्नसृष्टिको स्वप्नद्रष्टाने स्वतःसिद्धही रोकरक्खाहै,अब नवीन नहीं रोकना और स्वप्नके मनरुकनेनरुकनेसे स्वप्नद्रष्टको हानिलाभ भी नहीं इत्यादि और भी दृष्टांत जानके दार्ष्टांतमें जोड लेना। हे पुत्र! मनादि प्रपंच तुझ सच्चिदानंदरूप आत्मामें रज्जु सर्पवत् कल्पित है,सोस्वतःहीकल्पितवस्तुकोअधिष्ठाननेरोकरक्खाहै,अधिष्ठानसे पृथक् कल्पित वस्तु भासे नहीं। हे पुत्र। जैसे सूर्यकेआभाससहित ...नका जलहै तथा नालीका जलभी आभास सहित है तथा

केदारेका जलभीं सभासहीहै । इस बहिर्त्रिपुटीको पुरुष चाहे तोडदेवे चाहे बनालेवे, चाहे न्यूनाधिक भाव करे, त्रिपुटीके सर्व न्यूनाधिक भावाभावको जानता है । इस जड त्रिपुटीका पुरुषही मालिक है यह अनुभव प्रत्यक्ष दृष्टांत है । तैसेही अंतर प्रमाता प्रमाण प्रमेयादि जड त्रिपुटीका तूही तुरीय आत्मा चैतन्यही मालिक है तथा त्रिपुटियोंका न्यूनाधिक भाव जानताहैं इससे त्रिपुटिका द्रष्टा तूही चैतन्य निर्विकार है । हे पुत्र । तू अपने पुत्रपनेके अहंकारको त्याग, मैं पितापनेका अहंकार त्यागताहूँ मैं वाणी विनां कहताहूँ; तू श्रोत्र विना सुन और कहे परन्तु ऐसे कह जिससे परे कहना, सूँघना, सुनना, स्पर्श करना, देखना, रस लेना, ध्यान करना, जाननादिव्यवहार बाकी न रहे अथवा सर्व कहना, सुनना, सूँघना, देखना, स्पर्श करना, रस लेना, ध्यान करना, जाननादि व्यावहार आजावे । जैसे पंचभूतोंके जाननेसे सर्व भौतिक पदार्थ जाने जातेहैं, ऐसेहीं पंचभूतों सहित माया तत्कार्य सर्व पदार्थ जिसके जाननेसे जाने जाते हैं ऐसा जानना सुनना चाहिये । इससे—

वृत्रासुर और इन्द्रकी लड़ाई ।

हे पुत्र । तू इंद्र, अज्ञानरूपी वृत्रासुरको, विष्णुरूप गुरुकीसहायतासे ज्ञानरूपी वज्र कर, हनन करैगा तो निर्भय राज्य भोगेगा ।

अहल्या ।

हे पुत्र। अहल्यारूपी अविद्यासे तू चैतन्य साक्षी इंद्र क्यों एकमेक होता है ? विद्वानोंकी निष्ठाको ग्रहण कर मूर्ख मत हो।

चन्द्रमाका वृहस्पतिकी स्त्रीका हरण और उससे बुधकी उत्पत्ति।

हे पुत्र! शमादि अनेक देवी गुणोंरूप देवतों कर पूज्य, विवेकरूप

बृहस्पतिकी ब्रह्मविद्यारूप स्त्री और चतुष्टय साधन सम्पन्न पाप रूप ततत्तासे रहित तुझ अधिकारीरूप चन्द्रमाके सगमसे बोधरूपी बुध पुत्र उत्पन्न होवेगा, तो बन्ध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते सर्व कर्तव्योंसे अकर्तव्य होवेगा। आगे जैसी इच्छा हो तैसे कर।

सहज समाधि।

पुत्रने कहा चित्तकी एकाग्रताविना आनंद नहीं आता तो चित्तकी एकग्रता करनी योग्य है। पिताने कहा हे पुत्र। चित्तकी एकाग्रता स्वभावसेही आप होती रहती है, तैसे यत्न विनाही हर वक्त नामरूपात्मक, सात्विकी, राजसी, तामसी पदार्थोंका वा अध्यात्म आधिभौतिक आधिदैविक पदार्थोंका, वा मायातत्कार्य-रूपपदार्थोंका स्वाभाविकही चित्तकी एकग्रतापूर्वकही ज्ञान होता रहताहै क्योंकि, ज्ञान पूर्वकही, हमारी तुम्हारी, तथा सर्व जीवोंकी इष्ट अनिष्टमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती रहतीहै। आनंद स्वरूप आत्मा ही सबका इष्टहै सो एक पदार्थोंका ज्ञान एक क्षण रहे वा दो क्षण रहे वा चार वा आठ वा दश क्षण रहके पुनः दूसरे पदार्थका ज्ञान होता है। इसी तरह हर वक्त हर पदार्थका वृत्तिरूप ज्ञान अदल बदल होता रहता है। परंतु यह नियम देखनेमें आता है कि किंचित की एकाग्रता विना पदार्थका ज्ञान होनाही नहीं, किंतु क्षणमात्र वा दो क्षणमात्र वा चार क्षण एकाग्र बुद्धिसेही पदार्थका सम्यक् ज्ञान होता है। सो आनद स्वरूप तथा ज्ञान स्वरूप निजात्माही है अन्य पदार्थ नहीं है. सो निजात्मा सर्व देशमें सर्वकालमें सर्ववस्तुमें आकाशके समान पूर्णहै। एक न एक वस्तुका, सर्वकालमें स्वाभाविक ज्ञान बना रहता है इससे यह सिद्ध हुआ कि, यत्न विना स्वाभाविक वृत्ति ज्ञानरूप चित्तकी

एकाग्रता सिद्ध हुई और चित्तकी एकाग्रता निमित्तक आत्मरूप सुखकी प्रगटता भी यत्न विना ही सिद्ध हुई, कर्तव्य करनेसे नहीं इसवास्ते सम्यक् आत्मदर्शीको हरवक्त निर्यत्न सहज समाधि कहीहै। यह नहीं कि, चित्तके अफुर होनेसेही समाधि है, फुरनेसे नहीं, किंतु चित्तके फुरने अफुरनेसे भी पूर्वोक्त रीतिसे समाधिही है। हे पुत्र! जैसे वायुके दशोंदिशाके फुरने अफुरनेका आकाशही विषय नाम सम्बन्धीहै क्योंकि आकाश व्यापकहै।तैसे मनरूप वायुके दशोदिशा फुरने अफुरनेका सत् चित् आनंदरूप आत्माही विषय नाम संबंधीहै क्योंकि पूर्णहै इससे सर्व प्रकारसे निष्कर्तव्यरूप मालाको फेरतेरहो। हे पुत्र। जैसे समुद्रकी झाल हमेशा होती रहतीहै परंतु आकाश तिन झालमें आपको निष्क-र्त्तव्य असंग अक्रिय विकाररहित मानता है;तैसे मनरूपी वृत्ति-योंके फुरने अफुरनेरूप झालमें तू आकाशरूप आत्मा निष्कर्त्त-व्यहै, यह बात सबके अनुभवसिद्ध है।

ज्ञान अज्ञान आदि मननमात्र है।

हे पुत्र! जब तू पूर्व आपको अज्ञानी मानताथा, तब जैसे संघातका धर्म खानपानमान लज्जादि व्यवहार था, तैसेही अब ज्ञानकालमें भी होताहै, कुछ अदल बदल नहीं हुआ यह नहीं कि,पूर्व शिरपर बोझ था अब उतर गयाहै। कोई विलक्षणता हुई नहीं है, इससे विचार देख। ज्ञान अज्ञानादि केवल मननमात्र सिद्ध होतेहैं।हे पुत्र! तू चैतन्यही निर्गुण ब्रह्मको मनरूप मत्री-कर कलपताहै, तूही सगुण ब्रह्मको तथा तिसकी भक्तिको कल्पता है।तथा ज्ञान कर्म उपासना कल्पके आपको अधिकारी अन्य-को अनधिकारी कल्पता है। तूही पाप पुण्य धर्म्माधर्म्म बंध मोक्ष कल्पताहै, तथा सत् असत्, कर्त्तव्य अकर्तव्य, सुख दुःख देवी

तिसी जपको जप । जो पूर्वोक्त रीतिसे इस जपके अर्थको सम्यक् जानता है सोही ज्ञानी है । जो अर्थको न जानके भी इस जपको प्रेमसे जपता है तो उपासनारूप भक्तिमान् कहाता है। राम रामवत् मनवाणीसे जो इस जपका कथन चिंतन करता है सो मन वाणीका कर्म शारीरिक कर्मवत् कहाता है ।

हे पुत्र ! पूर्वोक्त ज्ञानका फल तो, अनुभव प्रत्यक्ष है।यदि राम रामजपका, विष्णुआदियोंके ध्यानरूप उपासनाका, वैकुण्ठादियोंकी प्राप्ति रूप, अदृष्ट फल, शास्त्रोक्तरीतिसे सत् होगा तो "मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा सर्व मनादियोंका द्रष्टा असंग त्रिगुणातीत हूँ; मुझ अवाङ्मनसगोचर आत्माको स्वभावसेही बन्धमोक्षकी प्राप्ति निवृत्ति वास्ते किंचिन्मात्रभी कर्तव्य नहीं, वा सर्व अस्ति भाति प्रियरूप मुझे आत्माकेही होनेसे भी, मैं बंध मोक्षके कर्तव्यसे निष्कर्तव्यहूँ" इस शास्त्रोक्त निर्गुण उपासनारूप जपका भी फल अवश्य होगा।जो गोलमाल होगा तो सर्वका होगा, एकका नहीं । जो पोल है तो सर्वमेंही पोल है, सत्है तो सबका कथन चिंतन सत् है । यह नहीं कि, एक शास्त्र सत्य है, अन्य असत् हैं ।

हे पुत्र ! अत्यन्त अपनेसे भिन्न,दूर वैकुण्ठादिमें,विष्णु आदि ईश्वरोंकी, दृढ भावनारूप भजनसे प्राप्ति होती है तो अत्यन्त अपनेसे अभिन्न सच्चिदानंद निजात्माकी दृढभावनारूप भजनसे क्यों न तद्रूपताकी प्राप्ति होगी ? किन्तु अवश्य होगी । इससे "मैं सच्चिदानंद सर्व मनादियोंका साक्षी आत्मा हूँ,वा मन वाणीके विषय जाति गुण क्रियावान् पदार्थों सहित,मन वाणीसे में अवाङ्मनसगोचर हुआ भी अस्ति भाति प्रियरूप मैंही सर्वात्मा हूँ वा इत्यादि विकल्पोंसे रहित मैं निर्विकल्प हूँ" इस दृढ भावनारू

भजनको कर; जो आगेही स्वतः वहीरूप हुए २ पुनः भावनाके वशसे वहीरूप होवेगा। जैसे घटाकाश तथा प्रतिबिंब यह भावनाकरें कि, हम महाकाश और बिम्बरूप हैं, सो महाकाश तथा बिंबभावको आगेही प्राप्त हुये २ पुनः भ्रांतिकी निवृत्तिसे वही रूप होते हैं। इसी वास्ते शास्त्रोंमें, निज स्वरूप आत्मवस्तुमें कारण सहित संसाररूप दुःखोंकी निवृत्तिकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्तिकी प्राप्ति कही है। जैसे गुणके स्वाभाविक स्वरूपमें कटुकताकी निवृत्तिकी निवृत्ति और मधुरताकी प्राप्तिकी प्राप्ति कही है।

शास्त्रप्रतिपाद्य कर्म मोक्षदायक है कि नहीं ?

पुत्रने कहा हे पिता! किसी शास्त्रमें कर्मोंको मोक्षका साधन कहा है; किसीमें नहीं। दोनोंमध्ये कौन ठीक है? पिताने कहा हे पुत्र! कर्म नाम करनेका है, सो कायिक वाचिक मानसिक संघातके कर्मकरनेसेही धर्म अर्थ काम मोक्ष नाम सुखकी प्राप्ति होती है, कुछ न करनेसे चारोंकी अप्राप्ति होती है। यह सर्वके अनुभव सिद्ध है। जैसे क्षुधारूप दुःखकी निवृत्ति और तृप्तिरूप सुखकी प्राप्ति, भोजनका करना रूप कर्मसेही होती है। इत्यादि जान लेना। आत्मानात्माका सम्यक् विचार रूपी ज्ञान मोक्षका साधन लिखा है सो भी मानसिक कर्म है यह नहीं कि, शारीरिकही कर्म है, मानसिक कर्म नहीं, किन्तु जो संघातसे करिये तिसीका नाम कर्म है, इससे कर्मोंसेही सुखरूप मोक्ष प्राप्त होता है और सुखरूप आत्मा है, तिस आत्माकीभी संघातरूप कर्ममेंही उपलब्धि होती है, अन्यत्र नहीं।

दूसरी रीतिसे कर्मोंसे मोक्ष नहींहै, यहभी [illegible] है क्योंकि मोक्ष सुखरूप आत्मा संघातकी चेष्टारूप कर्मके [illegible]
साक्षीरूप करके संघातकी [illegible] है। इसवा [illegible]

आत्मा सुखरूप मोक्ष कर्मोंकर सिद्ध नहीं होता, यह भी ठीकहै।

कर्तव्य।

हे पुत्र! सर्व शास्त्रोंमें स्वपक्षमंडन परपक्षखंडन लिख रक्खा है क्या जानें किस शास्त्रकी वात सत्है, किसकी नहीं। कुछ अक्ल काम नहीं कर सक्ती। इसके सर्व संमत मृत्युयादपूर्वक, सत्संभाषणादि सद्गुणोंको, अपनी सामर्थ्य अनुकूल ग्रहणकरना और असत् संभाषणादि असत् गुणोंका निजशक्ति अनुसार त्याग करना, ईश्वरको स्वस्वरूपकरके, वा भेदबुद्धिकरकेअपने व्यवहारके अवसरअनुकूल कालमें, सच्चेदिलसे घड़ी वा दोघड़ी वा एकवक्त वा दो वक्त स्मरण करना तात्पर्य यह कि, निजशक्ति मुवाफिक सगुण वा निर्गुण ईश्वरका, गुरुदत्त नाम उच्चारणादि पूर्वक स्मरण वा ध्यानकरना और सचावटका व्यवहार करना इतनेमें अकल्याण होवे तो होने दे तात्पर्य यह कि; धर्मपूर्वक अपना हक किसीसे छोडना नहीं और अन्यायपूर्वक दूसरेका लेना नहीं।

गृहस्थ तथा विरक्तका कर्त्तव्य तथा गृहस्थ आश्रमकी महिमा।

हे पुत्र! पूर्वोक्त प्रकारही सर्व गृहस्थ सज्जन पुरुषोंको उभय लोकके सुखका कारण है। सारा दिन भजनमें रहना, यह गृहस्थविमुख साधु पुरुषोंका काम है गृहस्थोंका नहीं क्योंकि—चोर यार, ठग, राजा, राज्ञ पुरुष, अभ्यागत, साधु, पशु, पक्षी, जीव, देवता, वेटी; भगिनी, आदिनिज संबंधी, ब्राह्मणादि, धाडवी, जुलमी फकीर फुकरा, लुच्चा, जुआरी, उठाईगीरा, भूत, पिशाच, प्रेत, डाकिनी, इंद्रजालि, भ्रमावक, कालवेलि, स्वांगी, झूठे, मंत्री, तन्त्री रसा-

यनी, वेद्य, वेश्या, कांजड इत्यादि साधु असाधु हजारों जीव फोकट(मुफ्त) मालखानेवाले गृहस्थके आश्रयहैं। गृहस्थ विमुख साधु पुरुषोंके तो आश्रय नहीं। साधुही उलटा गृहस्थके आश्रय हैं खेतीव्यापार नौकरी हुनरादि व्यवहार विना धन आकाशसे वा नदीमेंसे तो आता नहीं और न किसी को पूर्व आयाहै।धन विनाकार्य की सिद्धि होती नहीं। जो गृहस्थ व्यवहार नहीं करे और सारे दिन भजनही करता रहे तो पूर्वोक्त जीवोंकी तथा अपनी पालना कैसे होवे ? जो व्यवहार करेगा तो हजारों तरहके हानि लाभका चिंतन रूप दलील भी तथा शरीर वाणीका व्यापार भी कहीं थोडा कहीं घणा करनाही पडेगा। इतना करनेसे भी नियम कहीं है कि, नफा वा नुकसान होवेगा।

इससे सम्यक् विचार देखिये तो गृहस्थोंको किंचित् कालभी सचेदिलसे ईश्वरका भजन और सचावटका व्यवहार मोक्षदायक होवेगा जो कोई न्यायकारी ईश्वर है तो जो ऐसा नहीं माने तो गृहस्थ लाचारहै।कोई परलोक तथा इस लोकके भय दूर करनेका उपायहै ही नहीं क्योंकि संघातके धर्म थोडे वा घने काम क्रोधादि तथा दर्शनस्पर्शादि संघातमें होवेंगे क्योंकि इनकाही शरीरहै यह भी ईश्वरका संकेत है। शब्दादि ग्राह्य विषय सर्वत्र हाजिर हुजूर हैं, तथा श्रोत्रादि इंद्रियभी स्वस्व तिन विषयोंके ग्राहक सर्वत्र मौजूद होनेसे दोनोंका संबंध अनिवारणहै,यह भी ईश्वरका संकेतहै। इससे श्रोत्रादि इंद्रियकी स्वस्वविषयमें धर्मपू[illegible] वृत्ति होने देनी यही पुरुषार्थरूप तप गृहस्[illegible] द[illegible] । अन्यथा कोई प्रकार तप मनसक्ता [illegible] कि जे [illegible] म क्रोध लोभ मोह अहंकार झूठ कपट [illegible] ठगी [illegible] अ। करते हैं, तथा इन्द्रियोंकी स्वस्-

अन्याय जुलमसे करते हैं तथा जो स्वपरके प्राणोंको पीडन करते हैं, तिनहीं को राजा दंड देताहै, अन्यको नहीं । यह नहीं कि, राजाकी स्तुति करनेवाले जुलमीको दंड न होवे । किंतु जो कायदे वाहर जुलम नहीं करे स्तुतिकरे चाहे नकरे राजा दंड उसको नहीं देगा कायदा छोडनाही जुलम है । वा कायदा न तोडना राजाकी स्तुतिहै । राजाकी खैरख्वाही करेगा तो नेकनामीपूर्वकतिसका नतीजा आगेसे अधिक सुख होगा, सरकारी तर्फ मेहनतकी हुई निष्फल नहीं होगी । यह नहीं कि, राजा सज्जनोंके धर्मरूप कायदे पूर्वक काम क्रोध लोभ मोह अहंकार करते हुये, तथा निज इंद्रियोंको सज्जनोंवत् स्वस्व विषयमें प्रवृत्त निवृत्त करते हुये, तथा खान पान शयन पहरान सवारी आदि करते हुये, तथा निज पुत्र स्त्री आदि अनुकूल मित्रोंसे प्रीतिकरते हुये, तथा निजधनको अन्याय युक्तिसे हर्त्ता चोर ठग दांभिक पुरुषोंसे अप्रीति रूपी द्वेष करते हुये, तथा व्यवहारमें किसीका न लिहाजरूपी अदया करते हुये, तथा दान तीर्थादि न करते हुये, राजा दंड देवेगा । किन्तु यह पूर्वोक्त सबमेंसे करनेवाले भी अन्यायी जुलमीकोही दंड होता देखाहै, अन्यको नहीं । क्योंकि राजा भी ईश्वरही है । यहीरीति परलोकमें ईश्वरकी भी होगी । जो ईश्वर अन्यथा है तो अन्याय अनीश्वरता है । तो परलोकमें रस्ता सुखी होनेका नहीं, क्योंकि मन इन्द्रियादि संघातके गमनागमन विना व्यवहार नहीं होता कोई न कोई व्यवहार विना धन प्राप्त नहीं होता, धन विना गृहस्थको सुख नहीं होता. क्योंकि धनकरके गृहस्थका चित्त स्थिर रहताहै । स्थिरचित्तमें किंचिन्मात्रभी भजन महान् फलकोदेता है । जो ईश्वर गृहस्थका किंचित्काल निरहंकार सहितसचे दिलसे भजन

और सचावटका व्यवहार मात्रही, मोक्षका साधन अंगीकार न करेगा; तो संसार खाताही उठ जावेगा। ऐसा भी कहीं लिखानहीं कि;धर्मपूर्वकव्यवहार करतेगृहस्थी नरककोजातेहैं;किंतुअन्यायी जुल्मीही नरकको जातेहैं यही लिखाहै।पूर्वभी जो ऋषिमुनि तथा अनेक सद्गृहस्थ हुयेहैं क्या वह देखते सूंघते, स्पर्श करते,रसलेते सुनते, चलते, बोलते, मलमूत्र त्यागते, लेते देते, व्यवहार करते नहीं थे ? क्या धन संपादन नहीं करते थे ? किन्तु सब करतेथे। क्या पुत्रोत्पत्ति नहीं करतेथे ? क्या उनको स्त्रीपुत्रादि संबंधी अप्रिय लगतेथे ? वा अबके वक्तमें मन इंद्रियोंकाक्यापूर्वसेस्वभाव बदल गया है? सो भी बदला नहीं। विषयेंद्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभव उनको क्या नहीं होता था ? वा विलक्षण होता था ? ऐसे नहीं किंतु हम लोगोंके माफिकही होता होगा क्योंकि विषय इंद्रियोंके स्वभाव पूर्व और रीतिके थ,अब बदल गये सो नहीं, किन्तु ईश्वरने इनका नियत एकही स्वभाव रक्खा है, अन्यथा होता नहीं। ये भी नहीं कि पूर्व धन आकाशसे यत्न बिना गृहस्थोंको मिलताथा, अब व्यवहार करना पडता है। जो पूर्व रीतिथी सोई अबहै।जो पूर्वोक्त सद्गृहस्थ सद्व्यवहारको करते हुये, सद्गतिको प्राप्त हुये हैं तो अब वर्तमान गृहस्थ लोकभी पूर्वोक्त रीति अनुसार सद्व्यवहार करते हुये-तथा विषयं इंद्रिय-संबंधजन्य सुख दुःखको अनुभव करते हुये, यथायोग्य कायदे बमूजिब काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि करते हुये तथा कायदे बमूजिब निज निज इंद्रियोंको स्वस्व विषयमें प्रवृत्त निवृत्त करते हुये तथा खान पान शयन पंहरान सवारी आदि करते हुये तथा निज अनुकूल स्त्री पुत्र आदि मित्रोंसे प्रीति करते हुये तथा निज

धनके अन्यायसे हर्त्ता चौरादि दांभिक पुरुषोंसे अप्रीतिरूपी द्वेष करते हुये तथा व्यवहारमें किसीका न लिहाज करते हुये तथा दान तीर्थादि न करते हुये; ईश्वर दंड देवेगा। किंतु यह पूर्वोक्त सब करने वालोंमेंसेभी अन्यायी जुल्मीकोही दंड होगा अन्यको नहीं। सदाचारियोंकीतो निश्चय सद्गति होगी, क्योंकि गृहस्थ व्यवहारमें सचावटही महान् तपहै, इश्वरको परम प्रिय है और सद्गतिका कारण है। कठिन तपस्या तो गृहस्थविमुख विरक्तोंकोही योग्यहै और तिन विरक्त पुरुषोंकी श्रद्धा सहित सच्चे दिलसे सेवा करनेसेहीतिनकी सर्व तपस्याकाफल सद्गृहस्थोंको होगा, निंदक तिनके पापके भागी होंगे और महात्मा तो दोनोंसे विमुक्त हुये मोक्ष-पदको प्राप्त होतेहैं। जैसे तुम्बेके गलेमें पत्थर बांधा होयतो, जलके नीचे रहताहै और कदाचित् पत्थर टूट जावे तो तूंबा जालके ऊपर आजाताहै। हे सद्गृहस्थो। विश्वासही वडी चीजहै, देखिये मूढ गूजरी एक वाक्के सुननेसेही, राम नामकी नौका बनाके नदीसे उतरपार होती थी। तो विश्वासही कारण हुआ अन्य साधन नहीं। इससे आप लोगोंको भी विश्वास करना योग्य है आगे जो इच्छा हो सोई किजिये।

अटल सिद्धांत।

हे पुत्र।. सर्व जीवोंके हृदय देशसे पृथक् सत् चित आनंद ईश्वरकहीं कचहरी लगाकर बैठा मालूम होता नहीं। जोहैतो सर्व संघात तिसकी कचहरीहै क्योंकि ईश्वर पूर्णहै। जो वैकुण्ठादि देशमेंही ईश्वर कहोगे तो पूर्ण अन्तर्यामी ईश्वर कहाहै; सो न हुआ

इससे जो कुछहै जीव,वा ईश्वर वा, पुरुष, अल्ला खुदा, सो इन संघातोंमेंही यह बुद्धि आदियोंका सतचित् आनंदसंज्ञावालाही स्पष्टभान होताहै। यद्यपि घटपटादियोंके ज्ञानसे वा ग्रहणसे आनंदभी भान होताहै।इससे संघात पृथक्भी ईश्वरकी स्फूर्ति होती है तथापि यहस्फूर्ति संघात संबंधपूर्वकहीकी जातीहै,अन्तःकरणादि संघात सम्बन्धबिना घटादियोंमें स्फूर्ति नहीं।इससे जहां मनादि संघातहै,तहांही जीव ईश्वरादियोंकी तथा तिनके स्वरूप वा तटस्थ लक्षणादिकोंकी स्फूर्ति है पृथक् नहीं। इससे संघातोंमेंही चैतन्य अस्तिमात्रकी स्फूर्ति होतीहै, सो चैतन्यजीव है वा ईश्वरहै वा दोनों भावसे रहितहै वा साक्षी आत्माहै पुरुषहै वा अन्यहै इत्यादि अनेक कल्पना होतीहैं। परन्तु तिस कल्पनासे हम सत्चित् आनंद अस्तिमात्र पृथक्हैं, क्योंकि जिस जिसको हम जानतेहैं तथा जो जो कल्पना करते हैं, सो सो हम नहीं। हमारे तो मनादि कल्पना करसक्ते नहीं इसीसे हम स्वय प्रकाश हैं। यह अनुभवभी संघात सम्बन्धी है पृथक् नहीं। कुछ हो परंतु पूर्वोक्त सर्व मनादियोंका अस्तिमात्र अनुभवही हमारा स्वरूप है। हिसाबसे देखे तो पृथक् नहीं।

इति बाबा विशुद्धानंद कामलीवाला विरचित पक्षापतरहित श्रीअनुभवप्रकाशका अष्टम सर्ग समाप्त॥ ८॥

समाप्तोयं ग्रन्थः।

॥ श्रीः ॥

किंचित् बहिरकथाका विचार ।

ब्रह्माका अपनी पुत्रीके पीछे कामातुरहोकर दौडना।

मैत्रेयने कहा हे गुरो ! ब्रह्मा प्रजापति निजकन्याके पीछे कामातुर होके दौडा है, ऐसा लिखाहै सो कैसे जानना ? मुनिने कहा- हे साधो ! जड मन इन्द्रियादि नामरूप प्रजाका जो पति नाम स्वामी प्रेरकहोवे सो, कहिये प्रजापति सो यह लक्षण चैतन्य सत् सुखरूप आत्मामेंही घटताहै । सो वृत्ति इद्बोध, बोध इद्वृत्ति, इस शास्त्रप्रमाणसे और निजमायासे, नामरूप वृत्तिसहित, दृश्य जातिको यह सच्चिदानंद आत्माही उत्पन्न करता है सो आत्मा कामादिवृत्ति आरूढ हुआ, चक्षु आदिइंद्रियद्वारा, बाहर जड घट पटादि दृश्यरूप निजकन्याके प्रकाशवास्ते, दृश्य समीप जाता है जैसे कोठेसे, जल सहित सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिम्ब, किदारदेशमें जाताहै, यही तिस कथाका अर्थ है ।

महादेवका लिंग वढाना ।

हे गुरो ! महादेवने पार्वतीको लिंगपर चढाके लिंग बढाया है और विष्णुने लिंगके द्वादश भाग चक्रसे किये हैं सो कैसे हैं ? हे साधो ! इस मनादिव्यष्टि, समष्टि, स्थूल, सूक्ष्मजडरूप, मिथ्या, दुःखरूप नाम जगत्कूं प्रकाशे नाम जो सत्ता स्फुरण करे तिस सत्चित् सुखरूप वस्तुका नाम महादेव है । सो निज उपाधि मायासे असत् जड दुःखरूपात्मक यह संसाररूप लिंग खडा नाम उत्पन्न कियाहै और मायारूप पार्वतीकी योनि नाम कारणमें थापन कियाहै । अर्थ यह कि, पूर्वोक्त संसाररूप लिंगका उपादान कारण मायाही है । इससे लिंग अनंतकोटि योजनोंसे भी गिननेसे अनगिनतहै । ज्ञान प्रथम, पूर्वोक्त लिंगका, अविवेक दृष्टिबुद्धिरूप गऊका अन्त कहना सो मिथ्या भाषणहै और ज्ञानसे प्रथम लिंग

विवेक दृष्टि बुद्धिरूप केतकीका अनन्त कथन करना सो सत्यं भाषण है। तिनको वर शापकाअर्थ यह जानना;देह अभिमान पूर्वक पापरूप मलमें सन्मुखता और पूर्वोक्त पुण्यरूप महादेवके विचारद्वारा सन्मुखता। मुमुक्षुरूप देवतोंसे प्रार्थ्य विष्णुरूप गुरुने पूर्वोक्त जगद्रूप लिंगके द्वादश टुकडे विचाररूप चक्रसे किये अर्थ यहहै कि, पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेंद्रिय एक अन्तःकरण और एक माया यह द्वादश अध्यात्म हैं और द्वादशही इनके सूर्यादि अधिदैव और द्वादशही इनके शब्दादि विषय अधिभूत हैं इतना मात्रही त्रिपुटीरूप संसार लिंग है। यद्यपि चौदह त्रिपुटी लिखीहैं तथापि द्वादशाके अन्तरभूतही निजबुद्धिसेजान लेना वा यह तत्त्व अहंकार, तीनगुण पंचमहाभूत, एक इनका कारण माया, एक प्रतिबिम्बरूप जीव, यह पूर्वोक्त संसाररूप लिंगके द्वादश टुकडे जानना। तात्पर्य यह कि गुरुने शिश्योंको अनेक रीतिसे विधिपक्षकर और निषेधा पक्षकर प्रक्रियाओंसे नामरूप द्वैत संसारका अत्यंताभाव बोधन कर,शेष अद्वैत महादेवको निजात्मा स्वरूप बोधन किया। यही वहिर कथाका अध्यात्ममें अर्थ है।

जालन्धर आख्यान।

(विष्णु भगवान्‌का जालन्धरकी स्त्रीका पातिव्रत भ्रष्ट करना)

तैसेही ब्रह्मात्माका अज्ञान जालंधर असुरहै और कामक्रोधादि आसुरीसेनासहित इस शरीररूपी स्वर्गका राज्य करता है। सत्त संभाषणादि देवतों सहित, निज शत्रु ब्रह्मात्मज्ञानरूप इन्द्रको, स्वर्गसे निकास दियाहै। आत्मादि देहमें दृढनिश्चय बुद्धिरूप तिसकी स्त्री है देवतानरूप मुमुक्षुओंसे प्रार्थ्य गुरुरूप विष्णुने,अज्ञानरूप जालन्धरके नाशके लिये पूर्वोक्त तिसकी स्त्रीको उपदेश कर

पूर्ववाली मिथ्या दृष्टिरूप प्रतिव्रत धर्मको,छुटाके सत् ब्रह्मात्मदृष्टि कराया यही जालन्धरकी कथाका अध्यात्म अर्थ है।

छप्पन कोटि यादव ।

तैसेही छप्पनकोटि यादव लिखाहै सो कोटि नाम प्रकारकाभी है इससे छप्पन गोत्र नाम प्रकारके यादव होनेसे छप्पन कोटि यादव ठीकही थे।

प्रत्येक नंदकी नौ नौ लक्ष गौ।

तैसे एक एक नंदकी नौ,नौलक्ष गऊ लिखीहैं,तैसेही उपनंदोंकी लिखीहैं सो लक्ष नाम चिह्नका है।काली पीली आदि रंगवालियां नव प्रकारकी गऊ एकघरमें होनी मुशकिल हैं सो नंदोंके घरमेंथीं।

अक्षौहिणी ।

तैसेही चौपटवत् किलेकी नाइ फौजका आकार होवें वा नेत्रवत किलेकी नाई फौजकाआकारहोकेस्थितहोवेउसे अक्षौहिणीकहतेहैं सो एकहजार फौजकाभी किलाहोताहै और दशहजारकाभीहोताहै।

पद्मव्यूह ।

तैसे पद्मवत् किलेके आकार फौज होवे तिसका नाम पद्मव्यूह है आगे यथा योग्य गनतीका हिसाब लगालेना। जिस गनतीसे विद्वानोंके अनुभवसे विरोध न आवे तैसे करलेना।

रावणके छप्पन कोटि बाजा बजानेवाले।

तैसेंही रावणके,छप्पन कोटि बाजा बजानेवाले लिखे हैं, सो भी छप्पन प्रकारकाभ्बाजा जानलेना।

योजन।

तैसेही शास्त्रमें चार कोशका योजन लिखा है, तैसेही चार हाथका तथा चारफुटका भी लिखा है। योग्यतानुसार लगालेना और कुम्भकर्णादि शरीरोंका भी इसी हिसाबसे शरीर जानलेना

तात्पर्य यह है तौल और मापका अनेक प्रकार, जिनसोंका निज
निज देश अनुसारी संकेत जुदा २ न्यूनाधिक है ।

कर्णका सवामन सोना दान करना ।

तैसेही पूर्वोक्त तौल मापके हिसाबसेंही कर्णका सवामन सुवर्ण
ना भी जानलेना ।

तेतीस कोटि देवता ।

तैसेही देवता तेतीस कोटि लिखेहैं और यहभी शास्त्रमें लिखा
है कि, तेतीस प्रकारके प्रधान देवताहैं, अवांतर अनेक भेद हैं

द्वारकामें ३ कोटि अस्सीलाख शाला ।

तैसेही द्वारकामें तीन कोटि अस्सीलाख शाला लिखीहैं । सोभी
तीन प्रकारकी कर्मकाण्ड, उपासनाकांड और ज्ञानकांडकी, वा सा
धारण तीन प्रकारकी प्रधान शालाथीं और अनेक, न्यायादि भिन्न
भिन्न विषयके प्रतिपादक, शास्त्रके अनुकूल अस्सी प्रकारकी शाला
थीं। तिन २ शाला स्थानों विषे अनुकूल चिह्नवाली ध्वजा पताका
लग रही थीं और द्वारकाकी बहिर शाला जुदी जानलेनी वा न्यू-
नाधिक होयँगी, परंतु अनुभवसे ऐसेही घटताहै आगे ईश्वर जाने ।

सुवर्णमयनगर ।

तैसेही द्वारका लंका आदि नगर सुवर्णके लिखे हैं सो भी
धनाढ्योंके गृहके दरवाजोंमें सुवर्ण लिप्त तांबेके कलश लगे रहतें
हैं तथा देवमंदिरोंके शिखर तथा दरवाजोंपर कलश लगे रहतेहैं
और कहीं कहीं धनाढ्योंके मकानोंमें मीनेका काम हुआ करता
है । जिन जिन राजनगरोंमें पूर्वोक्त कलशादि व्यवहार बहुत
होवें सो नगर सुवर्णमय कहलाता है साक्षात् स्वर्णका नहीं हो
सक्ता यही विद्वानोंके अनुभवमें जँचता है अन्य नहीं॥ इति ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
श्रीकृष्णदास "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम प्रेस-बम्बई